हिन्दी

राघवपाण्डवीय

पं० दामोदर झा



चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९
वाराणसी २२१००१

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१२८

कविराजपण्डितविरचितं

राघवपाण्डवीयम्

सुबोधिनी-सरला-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

पं० श्रीदामोदरझा साहित्याचार्यः

(संस्कृताध्यापक : प्रभुनारायण राजकीय इण्टर कालेज,

रामनगर वाराणसी ।)



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१२८



कविराजपण्डितविरचितं

राघवपाण्डवीयम्

सुबोधिनी-सरला-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

पं० श्रीदामोदरझा साहित्याचार्यः

(संस्कृताध्यापक : प्रभुनारायण राजकीय इण्टर कालेज,

रामनगर, वाराणसी ।)



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६५

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२२



Phone : 3076

भूमिका

अपूर्वे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

श्रृङ्गारी चेत्कविर्जातं सर्वं रसमयं जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत् ॥

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि काव्यसंसार उत्कर्ष की ओर बढ़ता आया है और आभूत-संप्लव बढ़ता जायगा। इस सृष्टि में सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणों के सदृश जो दीप्यमान काव्य हैं वे तो मनुष्य-प्रवाह की अन्तिम सीमा तक रहेंगे किन्तु जो मन्दप्रभ होकर ही उत्पन्न होते हैं वे दीपों की भांति कुछ क्षण प्रकाशित होकर काल के गर्भ में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार कितने काव्य रङ्गमञ्च पर आ कर तिरोभूत हुए हैं ? इस का पता लगाना असम्भव नहीं है। जो बचे हुए हैं उन्हीं से इस प्रवाह के स्वरूप का परिचय होता है।

आदिकाल से लेकर पुराणों के रचनाकाल तक यद्यपि दिन-प्रतिदिन इस का उत्कर्ष होता गया किन्तु तब तक पाणिनीय व्याकरण का प्र... न होने से न तो व्याकरण का ही कोई ठोस स्वरूप था और न काव्य की ...ओं की ओर लोगों की रुचि अग्रसर हुई थी। कुछ अलङ्कारों का परिचय तो ...गया था किन्तु कविगण उन्हें गौण दृष्टि से देखते थे। वे तो अपनी ...में विविध शास्त्रों के सिद्धान्तों के निरूपण करने में ही अपना पुरुषार्थ सम... थे।

विक्रम संवत् के प्रारम्भ से दो ढाई शत... पूर्व अश्वघोष के समय से इस का कुछ परिमार्जित रूप दृष्टिगोचर हो... है। काव्य को सर्वतोभावेन परिमार्जित स्वरूप देने का श्रेय तो भास को ...ा है, इन के कुछ ही दिन पश्चात् कालिदास ने काव्य-जगत् में पदार्पण कर ...प के स्वरूप को परिमार्जित भाषा तथा अलङ्कारों से सुसज्जित कर दिया ...

कुछ समय पश्चात् सुबन्धु की ...दत्ता तथा बाण की कादम्बरी को देख कर कवियों के हृदय में ... हस्तकौशल की ओर रुचि जागृत हुई। श्लेष तथा चित्रकाव्य। का ...निर्माण होने लगा। समय-क्रम से दशवीं शताब्दी भोजराज का समय तो इस ...बाजी का केन्द्र समझा जाता है।

यद्यपि चौदहवीं शताब्दी में श्रीहर्ष जैसे अनश्वर-प्रकाश इस जगत् में आये तथा और भी अनेक उपस्थित हुए हैं किन्तु काव्यकला का आम्रेडन तो नवमी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक ही विशेषरूप में हुआ है।

इस से पूर्व कालिदास, भवभूति, सुबन्धु तथा बाण आदि अनेक यशस्वी कवियों की कृतियाँ संसार में उपस्थित हो चुकी थीं, अब उक्त समय के कविगण इन से बढ़कर अपनी रचना का विकास देखना चाहते थे। जिस मार्ग से कालिदास आदि आगे बढ़े थे उस सरल-सरस मार्ग में इन से आगे बढ़ जाना सम्भव नहीं दिखायी दिया। फिर चित्रकाव्य रचना के द्वारा ही इन लोगों ने अपना मनोरथ पूर्ण समझा।

इसी परम्परा में राघवपाण्डवीय के रचयिता पण्डित कविराज आते हैं। इन्हों ने प्रस्तुत राघवपाण्डवीय काव्य में आदि से अन्त तक एक ही शब्दावली से रामायण तथा महाभारत दोनों कथानकों का वर्णन कर के अपने को कालि-दा... दिकों से ऊँचा नहीं तो बराबर तो अवश्य समझा है।

...ों ने लिखा है—

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा॥

इस से ... सिद्ध होता है कि वासवदत्ताकार सुबन्धु तथा कादम्बरीकार बाणभट्ट की श्रे... अपने को मानते हुए ये कवि अन्य कवियों से अपना ऊँचा स्थान समझते हैं...

चित्रकाव्यप्रधान... तुःशताब्दी में इस राघवपाण्डवीय के सदृश अनेक काव्य बने हैं। दशवीं ... पूर्वार्ध में राजा मुञ्ज की सभा के सदस्य धनञ्जय का बनाया हुआ भी ए... ...पाण्डीय नाम का महाकाव्य है। यह काव्य अठारह सर्गों में है। इस में ... सर्ग के अन्त में धनञ्जय शब्द आया है इसलिये इस काव्य का नाम धनञ्ज... सदस्य थे, यह बात इन्हों ने स्वयं ... है। ये कवि मुञ्ज राजा की सभा के ... दशरूपक में स्पष्ट की है। जैसे—

विष्णोः सुतेना...
विद्वन्मनोरा...
आविष्कृतं मुञ्जमह...।
वैदग्ध्यभाजा द...

इसी प्रकार अन्य भी चित्रकाव्य हैं—हरदत्तसू... लिखा हुआ 'राघव-नैषधीय' काव्य है, इस में श्रीराम तथा नल के चरित्र के द्वारा एकत्र निबद्ध

किये हुए हैं। चालुक्य सोमदेव (११२३ ई०–११३८ ई०) के सभापण्डित 'विद्यामाधव' ने 'पार्वतीरुक्मिणीय' नामक नव सर्ग का काव्य बनाया है जिस में इन्हों ने पार्वती और रुक्मिणी के विवाह का श्लेष शब्दों में एकसाथ वर्णन किया है। 'यादवराघवीय' नामक एक ३०० श्लोक में लघु काव्य है। जिस में विलोम पद्धति से राम और कृष्ण दोनों के चरित्रों का एकसाथ वर्णन किया गया है। यह श्लेष-काव्य तो नहीं कहा जा सकता अपि तु विलोम काव्य कहा जा सकता है। इस में साधारण क्रम से पढ़ने पर राम का चरित्र निकलता है और श्लोकों को उलटे क्रम से पढ़ने पर कृष्ण का चरित्र निकलता है। चिदम्बर सुमति ने एक काव्य लिखा है, इस का नाम 'राघवपाण्डवीययादवीय' है। इस में श्लेष के द्वारा रामायण, महाभारत तथा भागवत की कथाओं का त्रिवेणी संगम कराया गया है। श्लेष काव्यों में इनकी कृति अतुलनीय है। ये चिदम्बरसुमति विजयनगर के राजा व्यंकट (१५८६–१६१४ ई०) के सभा-पण्डित थे। इस काव्य में केवल तीन सर्ग हैं और यह अभी तक अप्रकाशित ही है। दैवज्ञ सूर्य ने अपने रामकृष्ण विलोमकाव्य में श्लेष के बिना सहायता के ही द्व्यर्थक काव्य का निर्माण किया है। इस में केवल ३६ या ३८ श्लोक हैं जिस के प्रथमार्ध में राम की और द्वितीयार्ध में कृष्ण की प्रशस्ति है। इस में श्लोक का उत्तरार्ध पूर्वार्ध का ही विपरीत क्रम से निबद्ध पाठ है जिसे विलोमकाव्य कहते हैं। दैवज्ञ सूर्य का समय १६वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। चिदम्बर कवि ने पञ्चकल्याण चम्पू नामक एक विचित्र ही चम्पू का निर्माण किया है। जिस में एक साथ ही राम, कृष्ण, शिव, विष्णु तथा सुब्रह्मण्य के विवाह के कथानकों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत राघवपाण्डवीय काव्य के रचयिता कविराज पण्डित श्लेषकाव्य के कलाकारों में से एक हैं। पुरातत्व के अन्वेषक के० बी० पाठक के विचार से इस कवि का व्यक्तिगत नाम माधवभट्ट था कविराज इनकी उपाधि थी; परन्तु डाक्टर सुब्बैया ने प्रमाणित किया है कि इस कवि का वास्तविक नाम ही 'कविराज' था, यह उपाधि नहीं थी। क्योंकि इन्हों ने अपने नाम के अन्त में 'सूरि' शब्द को जोड़ कर प्रयोग किया है। यह 'सूरि' शब्द नाम के अन्त में जोड़ा जाता है, उपाधि के अन्त में नहीं। यथा—

तस्यावदातैः कविसूक्तिसूत्रैः संस्यूतनानागुणरत्नराशेः।
विनोदहेतोः कविराजसूरिर्निबन्धनद्वन्द्वमिदं विधत्ते॥

रा० पा० १।३५

यह कवि जयन्तीपुर में कादम्ब-वंश के राजा कामदेव के आश्रय में रहते

थे। कामदेव राजा का समय ११८२–११८७ ई० है। अतः इस कवि का समय बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। प्रस्तुत लेख में इसवी वर्ष आदि का निर्देश पूज्यपाद श्रीबलदेव उपाध्याय जी के "संस्कृत-साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के आधार पर किया गया है।

प्रस्तुत 'राघवपाण्डवीय' काव्य में तेरह सर्ग हैं। कवि ने सभी सर्गों के अन्तिम श्लोक में 'कामदेव' शब्द का प्रयोग किया है, अतः इस काव्य को 'कामदेवाङ्क' काव्य कहा गया है।

पूर्ववर्ती धनञ्जय के 'राघवपाण्डवीय' काव्य के रहते हुए भी इस कवि ने फिर से 'राघवपाण्डवीय' काव्य बना कर व्यङ्ग्य-भाषा में धनञ्जय के 'राघवपाण्डवीय' से अपने 'राघवपाण्डवीय' को ऊँचा बताया है। इन्हों ने कामदेव राजा का वर्णन करते हुए लिखा है—

"श्रीविद्याशोभिनो यस्य श्रीमुञ्जादियती भिदा।
धारापतिरसावासीदयं तावद्धरापतिः॥"

रा० पा० १।१८

इस श्लोक में इन्होंने धनञ्जय के आश्रयदाता मुञ्ज को केवल धारानगरी का और अपने आश्रयदाता कामदेव को पूरी पृथ्वी का पति बताया है। व्यञ्जनाशक्ति से ये राजा मुञ्ज तथा राजा कामदेव के व्यक्तित्व में यही अन्तर तथा धनञ्जय के 'राघवपाण्डवीय' और अपने 'राघवपाण्डवीय' के महत्त्व में भी यही अन्तर कह रहे हैं। इतना ही नहीं; इन्हों ने 'सुबन्धुर्बाणभट्टश्च' इत्यादि श्लोक लिख कर अपनी इस कृति को वासवदत्ता तथा कादम्बरी के तुल्य मानते हुए अन्य कवियों की सभी कृतियों को अधःस्थित माना है।

इस कवि ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक रायायण तथा महाभारत दोनों कथानकों का श्लेष की सहायता से एक ही शब्द में निर्वाह किया है। यह कवि वेदव्यास के ऊपर आधुनिक दृष्टिकोण से वाल्मीकीय रामायण के अनुकरण करने का अपवाद लगा दिये होता; यदि यह साद्यन्त एकरूपता का निर्वाह कर लिये होता। किन्तु पूरा निर्वाह नहीं हो सका है। इन्हों ने राम के पक्ष का वर्णन युधिष्ठिर के पक्ष के साथ तथा रावण के पक्ष का वर्णन दुर्योधन के पक्ष के साथ मिला कर किया है; किन्तु कहीं कहीं निर्वाह न होने के कारण राम के पक्ष का वर्णन दुर्योधन के पक्ष के साथ तथा रावण के पक्ष का वर्णन युधिष्ठिर के पक्ष के साथ मिला कर किया है। जो कि हम आगे दरसायेंगे। यही कारण है कि व्यासदेव अनुकरण करने के कलङ्क से बच गये। वाल्मीकीय की घटनाओं के ऊपर श्लेष

करने के लिये महाभारत से यह कवि इस प्रकार की घटना खोज निकालते हैं जो देख कर जनता प्रमुग्ध हो जाती है ।

इन्हों ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अभीष्ट देवताओं को प्रणाम किया है। इस के पश्चात् अपने ग्रन्थ के आधारभूत ग्रन्थों के कर्ता वाल्मीकि तथा कृष्ण-द्वैपायन की वन्दना की है ।

इस के पाश्चात् इन्हों ने अपने आश्रयदाता कादम्बवंश-भूषण राजा कामदेव की प्रशंसा की है; जिन की प्रेरणा से इन्हों ने यह ग्रन्थ लिखा है। तदनन्तर अपनी श्लेषकाव्य लिखने की शैली स्पष्ट की है । इस के पश्चात् सज्जनों की प्रशंसा तथा अपने काव्य के प्रति उनकी प्रवृत्ति की प्रार्थना की है। तदनन्तर अपने उद्दिष्ट काव्य का प्रारम्भ किया है ।

इस के प्रारम्भ में इन्हों ने राजा दशरथ की परिस्थितियों से मिलाकर राजा पाण्डु की परिस्थियों का वर्णन किया है । इन में से भी दोनों की मृगयाविहार-मुनिबध-शाप आदि परिस्थितियों को बड़ी निपुणता से मिलाया है ।

इस के पश्चात् दशरथ के पुत्रों की तथा पाण्डु के पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन मिश्रितरूप से किया गया है । इस के बाद इन दोनों पक्षों के क्रमशः बढ़ने का वर्णन उन की विशेष घटनाओं का भी मिश्रण करते हुए किया गया है । इस के अनन्तर राम को विश्वामित्र के साथ भेजना तथा युधिष्ठिर को वारणावत नगर को भेजना, इन दोनों घटनाओं को मिला कर कवि ने वर्णन किया है । दूसरे तपोवन जाने के रास्ते में तथा एकचक्र-नगर जाने के रास्ते में ताड़का तथा हिडिम्बा निशाचरी का दर्शन साथ-साथ कराया है । यहाँ इन्हों ने एक का मरण तथा दूसरी का विवाह कराने के लिये 'जीवितेश' (यम तथा पति) शब्द को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ निकाला है ।

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने राम को जनकपुर के स्वयंवर तथा युधिष्ठिर को पञ्चाल नरेश द्रुपद के यहाँ द्रौपदी के स्वयंवर में पहुँचाया है । सीता तथा द्रौपदी का वर्णन तो एक ही शब्दावली से किया ही है । फिर धनुषभङ्ग तथा लक्ष्यवेध, दोनों का वर्णन भी एक ही शब्दावली से किया है । विवाह कर के अपने नगर लौटने पर रामादिकों की पितृभक्ति को युधिष्ठिरादिकों की पितृव्यभक्ति से मिलाकर वर्णन किया है । चार पुत्रों से राजा दशरथ की शोभा से, चार अनुजों से राजा युधिष्ठिर की शोभा का संवाद किया है ।

इसके बाद इन्द्र की सहायता के लिये राजा दशरथ के युद्ध का वर्णन अर्जुन के खाण्डववन-दहन में मिला कर किया गया है । आगे दशरथकृत यज्ञ

को युधिष्ठिरकृत राजसूय यज्ञ से मिलाया गया है। फिर मन्थरा के द्वारा राम के राज्यापहरण को द्यूतक्रीड़ा के द्वारा युधिष्ठिर के राज्यापहरण को मिलाया है।

बीच-बीच में दोनों पक्षों की बहुत सी छोटी-छोटी बातों को भी कवि ने मिलाने की स्तुत्य-कला दिखलायी है; प्रस्तुत लेख में उन सभी स्थलों का विश्लेषण करने से इस का काय विशाल हो जायगा, इस भय से मैं गौण बातों को छोड़ते हुए केवल मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए प्रकृत ग्रन्थ का परिचय दे रहा हूँ।

दोनों के वनवास का साथ-साथ वर्णन करते हुए वन में रामकृत विराधवध को भीमकृत किर्मीरवध से मिला कर कवि ने वर्णन किया है। यहाँ तक के कथानक से तृतीय सर्ग समाप्त किया है।

इस काव्य में जब कवि दोनों पक्षों की विशेष घटनाओं का ही सम्मेलन नहीं कर पाते हैं तब किसी एक पक्ष की साधारण घटना से मिला कर दूसरे पक्ष की विशेष घटना का वर्णन कर देते हैं। जैसे चतुर्थ सर्ग के आदि में अर्जुनकृत तपस्या के फलस्वरूप श्रीशङ्कर जी के दर्शन को रामकृत अगस्त्य ऋषि के दर्शन से मिलाकर कवि ने वर्णन किया है तथा दोनों से अस्त्र-प्राप्ति का भी उल्लेख किया है।

तदनन्तर अर्जुन की स्वर्ग-स्थिति को राम के वन में स्वस्थ रहने के साथ सम्मेलन किया है। इस में स्वर्ग में अर्जुन के प्रति उर्वशी की कामवासना का शूर्पणखा की कामवासना से मिलान किया गया है।

जनस्थान के खरदूषणादि राक्षसों के युद्ध का वर्णन स्वर्ग में निवातकवच जाति के राक्षसों के युद्ध से मिलाकर बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। इस युद्ध से लौट कर दोनों के अपने सगे भाई तथा पत्नी के पास पहुँचने का वर्णन है।

पाचवें सर्ग में पंचवटी में रावण के आगमन को कवि ने घोषयात्रा के लिये दुर्योधन के पाण्डवों के निवास-वन में आगमन से मिलाया है। तदनन्तर कवि ने रावण के द्वारा सीतापहरण का वर्णन जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी के अपहरण से मिलाया है, इस में भी राम के मारीचमृग के पीछे जाने का वर्णन पाण्डवों के शिकार के लिये वनान्तर गमन से मिला कर किया है। इस अपहरण में जटायु पक्षी द्वारा अवरोध का वर्णन भीम के द्वारा किये गये जयद्रथ के अवरोध से मिला कर किया गया है। किन्तु इस में प्रस्तावक्रम के विरुद्ध रावणकृत जटायु की दुरवस्था का भीमकृत जयद्रथ की दुरवस्था से सम्मेलन कराया गया है।

तदनन्तर कबन्ध राक्षस से राम के साक्षात्कार का युधिष्ठिरादिकों की बुद्धि की परीक्षा के लिये जलप्रतिबन्धक यक्षरूपधारी धर्मराज के साक्षात्कार का सम्मेलन है।

पम्पासरोवर के परिसर वन में राम के पहुँचने का वर्णन पाण्डवों के मत्स्य-देश में पहुँचने के साथ किया गया है। बालि के वध का वर्णन कीचक के वध के साथ मिलाकर किया गया है।

इसके पश्चात् कवि ने दोनों पक्षों से सम्बन्ध जोड़ते हुए वर्षाऋतु का वर्णन तथा उसके अन्त होने पर उत्कृष्ट कविकला दिखलाते हुए शरद ऋतु का वर्णन कर के पाँचवा सर्ग समाप्त किया है।

छठे सर्ग के प्रारम्भ में अव्यवस्थितरूप से साधारण तथा विशेष घटनाओं को मिलाते हुए कवि अग्रसर हो रहे हैं; जैसे—शरत्काल से राम के कष्ट को दुर्योधनादि के द्वारा गोग्रहण के लिये विराट-देश पर आक्रमण से मिलाया है। इस से आगे बानरों की सेना के समारोह को अपनी गायों की रक्षा के लिये राजा विराट के सैनिक-समारोह से मिलाया है। फिर हनुमान् की सीतान्वेषणयात्रा को उत्तरकुमार के साथ बृहन्नलारूपधारी अर्जुन की युद्ध-यात्रा से मिलाया है। इस के बाद हनुमान् के समुद्रतट पर पहुँच कर समुद्रदर्शन का वर्णन कवि ने अर्जुन के कौरवी-सेना के समीप पहुँच कर सैन्यावलोकन से मिला कर किया है। फिर हनुमान् के समुद्र के उल्लङ्घन का वर्णन सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ के अपमानित होने के साथ मिला कर किया है। आगे सीता-दर्शन को अर्जुन के द्वारा विराट के गायों के दर्शन से मिलाया है। इस के बाद अशोकवन-मर्दन का वर्णन अर्जुनकृत कौरव सैन्यमन्थन से मिला कर करते हुए हनुमान् तथा राक्षस-सेना के युद्ध का वर्णन अर्जुन तथा कौरव-सेना के युद्ध से मिला कर कवि ने किया है। फिर प्रस्तावक्रम के विरुद्ध यहाँ मेघनाद के द्वारा हनुमान् के बन्धन का वर्णन अर्जुन के द्वारा दुर्योधन के अव-रोध से मिलाकर किया है। इस के पश्चात हनुमदादि के द्वारा मधुवनभङ्ग के अपराध के सुग्रीव द्वारा क्षमाकरण कार्य को कवि ने विराट द्वारा युधिष्ठिर के सिर पर अक्षप्रहाररूपी अपराध के युधिष्ठिर द्वारा क्षमाकरण कार्य से मिलाया है। फिर राम के द्वारा हनुमान् के वचनों के उत्तर देने से विराट के द्वारा अभिमन्यु को उत्तरा दान का सम्मेलन कर के कवि ने छठा सर्ग समाप्त किया है।

सातवें सर्ग के प्रारम्भ में राम की सेना के समारोह को युधिष्ठिर की सेना के समारोह से कवि ने मिलाया है। युद्ध से पूर्व विभीषण के आगमन से

घटोत्कच के आगमन का मिलान किया है। फिर राम के द्वारा समुद्र-दर्शन तथा बानरों से निर्मित सेतु के दर्शन को कृष्ण का संग्रह करने के लिये गये हुए पहले दुर्योधन के द्वारा समुद्र-दर्शन, कुछ श्लोकों के बाद अर्जुन के द्वारा समुद्र के दर्शन तथा कृष्ण के द्वारा की हुई द्वारका की व्यवस्था के दर्शन से मिलाया है। इस के पश्चात् सुवेलपर्वत ने रावण को सुविधा देते हुए राम को सुविधा दी थी, इस बात को कृष्णकृत दुर्योधन को सैनिक-सहायता दान करते हुए अर्जुन को स्वशरीर समर्पण से मिलाया है।

इस के पश्चात् रावण के भेजे हुए शुक-दूत के साथ धृतराष्ट्र के भेजे हुए दूत से मिला कर बहुत से उत्तर-प्रत्युत्तर कराये गये हैं। इस के अनन्तर दोनों सैनिकों की तैयारी का वर्णन किया गया है। तदनन्तर दूतरूप में अङ्गद के साथ सम्मेलन कर के श्रीकृष्ण को दूतरूप में भेजा गया है। इस में सीता लौटाने की बातचीत का राज्य लौटाने की बातचीत से मिला कर वर्णन किया गया है। आगे सीता-वियोग से व्यथित राम को सुग्रीव के द्वारा समझा-बुझा कर स्वस्थ करने की परिस्थिति से मिला कर स्वजनवध की आशङ्का से व्यथित अर्जुन को श्रीकृष्ण के द्वारा समझा-बुझा कर स्वस्थ करने की परिस्थिति का वर्णन किया गया है। इस प्रकार सातवाँ सर्ग समाप्त किया गया है।

इस के पश्चात् आठवें सर्ग के प्रारम्भ से दोनों पक्षों के युद्धों को मिलाते हुए वर्णन किया गया है। फिर श्लेष के द्वारा राम-रावण सैनिकों के तथा युधिष्ठिर-दुर्योधन-सैनिकों के प्रधान वीरों के नामोल्लेख करते हुए वह्निपुत्र सेनापति नील का वह्निप्रभव सेनापति धृष्टद्युम्न से सम्मेलन करा कर वर्णन किया गया है।

अश्विनीकुमार के पुत्र मैन्द-द्विविद को अश्विनीकुमार के पुत्र नकुल-सहदेव से मिलाते हुए, वायु के पुत्र हनुमान् को वायु-पुत्र भीम से सम्मेलन कराकर युद्ध का वर्णन किया गया है। इस से आगे सहस्रकिरण वाले सूर्य के पुत्र सुग्रीव का वर्णन सहस्रनेत्रवाले इन्द्र के पुत्र अर्जुन से मिला कर किया गया है। फिर राम के पक्षीय विभीषण राक्षस का वर्णन पाण्डव-पक्षीय घटोत्कच राक्षस से मिला कर किया गया है। आगे श्लेष के द्वारा राम तथा अर्जुन के विशेष युद्ध का वर्णन किया गया है। इस स्थान में रावण के पक्ष के मेघनाद के युद्ध का वर्णन कौरव-पक्षीय भीष्म के युद्ध से मिलाकर किया गया है। इन के विरोध में इन्द्र के पौत्र अङ्गद के युद्ध का वर्णन इन्द्र के पौत्र अभिमन्यु के युद्ध से मिला कर किया गया है।

आगे रामलक्ष्मण दोनों भाइयों को कृष्णार्जुन से मिलाकर विपक्षीय मेघनाद को भीष्म से मिलाया गया है तथा इस के द्वारा दोनों भाई राम के नागपाश-बन्धन को भीष्म के द्वारा नागसदृश बाणों से कृष्णार्जुन को आच्छादित कर देने से मिलाया गया है।

फिर पाशबद्ध होकर राम के भूमि पर पतन को क्रोध से भीष्म को मारने के लिये कृष्ण के रथ से नीचे उतरने से मिलाया गया है। तदनन्तर गरुड़ के द्वारा राम के नागपाश-मुक्ति-क्रिया का अर्जुन के द्वारा श्रीकृष्ण को प्रकृतिस्थ करने से मिलान है। आगे प्रहस्त के आक्रमण का वर्णन भीष्म के पुनराक्रमण के साथ ही है। इस के बाद नील के द्वारा प्रहस्त के बध को शिखण्डी के द्वारा भीष्म के वध से मिलाया गया है। फिर युद्ध में उपस्थित हुए रावण को कर्ण के साथ एकरूपता देकर आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ है।

नवमें सर्ग के प्रारम्भ में दोनों-दोनों सेनाओं को मिलाते हुए युद्ध का विस्तृत वर्णन कर के सुग्रीव से मानभङ्ग प्राप्त कर के सायंकाल रावण के लङ्कानगर में प्रवेश करने को अर्जुन के द्वारा किरीटखण्डित होने के बाद सायंकाल कर्ण के शिबिर-प्रवेश से मिलाया गया है।

इस के बाद के युद्ध में कुम्भकर्ण से मिलाकर भगदत्त को युद्ध करने के लिये भेजा गया है। कुम्भकर्ण के भयङ्कर युद्ध को भगदत्त के भयङ्कर युद्ध से मिला कर फिर आगे कुम्भकर्ण के युद्ध से भगदत्त के योजनपाल हाथी के भयङ्कर युद्ध में मिला कर वर्णन किया गया है। इस के बाद सुग्रीव तथा भीम सम्मिलित रूप में कुम्भकर्ण तथा योजनपाल हाथी से भिड़े हैं, इस युद्ध में दोनों की अर्थात् सुग्रीव तथा भीम की बहुत बुरी दशा हो गयी, किसी-किसी प्रकार दोनों के प्राण बच गये हैं। फिर कुम्भकर्ण तथा भगदत्त के भयङ्कर युद्ध में अपनी-अपनी सेना को भागते हुए देखकर राम तथा अर्जुन मोर्चे पर उपस्थित होकर कुम्भकर्ण तथा भगदत्त से लड़ने लगे हैं। त्रिभुवनकम्प उत्पन्न करने वाले भयङ्कर युद्ध में राम ने कुम्भकर्ण को तथा अर्जुन ने भगदत्त को मार डाला है। दोनों के शिर तथा शरीर को पृथ्वी पर गिराते हुए कवि ने नौवाँ सर्ग समाप्त किया है।

दशवें सर्ग के प्रारम्भ में स्वजन-वध से क्रोधित रावण तथा दुर्योधन के द्वारा विशाल सैनिक-संघटन किया गया है। रावण-पक्ष के इस संघटन में मिला कर द्रोणाचार्यकृत पद्मव्यूह (चक्रव्यूह) रचना का भी वर्णन है। इस युद्ध के प्रारम्भ में रावण के पुत्र देवान्तक ने (इसी का नाम नरान्तक भी कहा गया है)

अङ्गद को युद्ध के लिये घेर लिया है। इसी वर्णन के साथ में मिला कर सुशर्मा राजा के द्वारा अर्जुन के युद्ध के लिये ललकारे जाने का वर्णन किया गया है। देवान्तक के सैन्य-संनिवेश को तोड़ने के लिये राजा सुग्रीव ने इन्द्र के पौत्र अङ्गद को आदेश दिया है, इन्हीं शब्दों के द्वारा द्रोणकृत व्यूह को तोड़ने के लिए राजा युधिष्ठिर ने इन्द्र के पौत्र अभिमन्यु को आदेश दिया है।

अङ्गद ने तथा दूसरे पक्ष में अभिमन्यु ने भयङ्कर युद्ध में शोणित की नदियाँ बहा दी हैं। बहुत बड़े युद्ध में अङ्गद के सम्मुख वही देवान्तक आया है तथा इन्हीं शब्दों के द्वारा अभिमन्यु के सामने दुःशासन का पुत्र दोषण आया है। दोनों-दोनों में द्वन्द्व युद्ध हुआ है तथा इस युद्ध में देवान्तक तथा अभिमन्यु स्वर्ग स्थित हो गये अर्थात् मारे गये और अङ्गद तथा दोषण स्वस्थ चित्त हो गये अर्थात् प्रसन्न हो गये। उक्त दोनों मरने वालों के पिताओं के मन में अशान्ति फैल गयी जिस से भयङ्कर युद्ध का उद्योग होने लगा। यहाँ भी प्रस्ताव क्रम के विरुद्ध रावण-पक्षीय देवान्तक की मृत्यु के साथ पाण्डवपक्षीय अभिमन्यु की मृत्यु से सम्मेलन कराया गया है।

इस के बाद हनुमान् के द्वारा त्रिशिरा नामक राक्षस के बध से मिला कर सात्यकी के द्वारा भूरिश्रवा के बध का वर्णन किया गया है। फिर लक्ष्मण के द्वारा अतिकाय के वध से मिला कर अर्जुन के द्वारा जयद्रथ-वध का वर्णन किया गया है। इस प्रकार दशवाँ सर्ग समाप्त होता है।

ग्यारहवें सर्ग के प्रारम्भ में दोनों-दोनों पक्षों के सैनिक समारोह के पश्चात् मेघनाद तथा द्रोणाचार्य को एकशब्दावली के द्वारा युद्ध में प्रवेश करा कर कवि ने दोनों के भयङ्कर-युद्ध का प्रदर्शन कराया है।

इसके पश्चात् प्रस्ताव क्रम के विरुद्ध सूर्य के पुत्र सुग्रीव तथा कर्ण को मिला कर राक्षस से युद्ध कराया गया है। इस जगह कर्ण का प्रतिपक्षी घटोत्कच राक्षस था। इसी उपक्रम में सुग्रीव के द्वारा कुम्भ का विनाश तथा कर्ण के द्वारा घटोत्कच का निधन एक ही शब्दावली से हुआ है। आगे कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ तथा द्रोणाचार्य को साथ-साथ युद्ध में प्रवेश कराया गया है। फिर हनुमान् के द्वारा निकुम्भ का वध तथा धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोणाचार्य का वध एक ही शब्दावली से र ाया गया है।

इस से आगे पिता के मारने का वैर धारण करने वाला खर का पुत्र मकराक्ष ने तथा पिता के मारे जाने से वैर धारण करने वाले अश्वत्थामा ने साथ-साथ भयङ्कर युद्ध में वीरता दिखलायी है। राम के पास पहुँच कर मकराक्ष का प्रताप

समाप्त हो गया, दूसरे पक्ष में—श्रीकृष्ण के समक्ष अश्वत्थामा के नारायणास्त्र का प्रभाव नष्ट हो गया। यहीं पर कवि ने ग्यारहवां सर्ग समाप्त किया है।

बारहवें सर्ग के आदि में रावण ने मेघनाद के ऊपर युद्धविजय की पूरी आशा कर के इसे युद्ध में भेजा है, उधर दुर्योधन ने इसी रूप में कर्ण को भेजा है। राम के पक्ष से अग्नि के पुत्र नील के सेनापतित्व में सेना आगे बढ़ने लगी, उधर युधिष्ठिर के पक्ष से अग्निप्रभव धृष्टद्युम्न के सेनापतित्व में सेना युद्ध के लिये निकली है। भयङ्कर युद्ध के बाद आगे चल कर राम के साथ मेघनाद का युद्ध हुआ है उधर राजा युधिष्ठिर के साथ कर्ण का युद्ध दिखलाया गया है। इस युद्ध में मेघनाद ने माया-सीता का वध करते हुए दुर्वचनों से राम को मर्माहत किया है, शिबिर में आने पर राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को यह समाचार सुनाया है। इस वचन से लक्ष्मण भी शोकाकुल हो गये हैं, फिर विभीषण ने दोनों को समझा-बुझाकर स्वस्थ किया है। उधर कर्ण ने युद्ध में युधिष्ठिर का अपमान किया है तथा दुर्वचनों से इन्हें मर्माहत किया है, शिबिर में आने पर इन्होंने अपने छोटे भाई अर्जुन को कुछ खरी-खोटी सुनायी है जिस से अर्जुन युधिष्ठिर के ऊपर क्रोधित हो गये हैं, फिर श्रीकृष्ण ने दोनों को समझा-बुझा कर स्वस्थ किया है।

इस के बाद राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को तथा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई अर्जुन को शत्रु का वध करने के लिये पूर्ण समारोह के साथ भेजा है। फिर विभीषण ने लक्ष्मण का पार्ष्णिग्रहण कर के उस के भयङ्कर सैनिकों का विनाश किया है। इसी शब्दावली से भीम के द्वारा अर्जुन का पार्ष्णिग्रहण कर के दुःशासन का संहार कराया गया है। फिर मेघनाद-लक्ष्मण तथा कर्णार्जुन के महाभयङ्कर युद्धवर्णन के अन्त में लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद का तथा अर्जुन के द्वारा कर्ण का संहार एक ही शब्दावली से दिखलाया गया है।

इस से आगे स्वयं रावण की अध्यक्षता में बहुत बड़ी सेना युद्ध में आयी है, उधर राजा शल्य की अध्यक्षता में कौरवी सेना लड़ने चली है। इस युद्ध में राम के द्वारा राक्षसी सेना के विनाश के साथ युधिष्ठिर के द्वारा शल्यवध का वर्णन किया गया है। इस से आगे विरूपाक्ष-वध के साथ सहदेव के द्वारा शकुनि के वध का वर्णन है। फिर रावण तथा दुर्योधन की सेना के संहार होने का वर्णन तो साथ-साथ है ही आगे सायंकाल अपनी सेना विनष्ट हुई देखकर शोकाकुल रावण लङ्कानगर में प्रवेश करता है तथा इन्हीं शब्दों से दुर्योधन का युद्धभूमि त्याग कर के व्यास ह्रद में प्रवेश करा कर कवि ने बारहवाँ सर्ग समाप्त किया है।

तेरहवें सर्ग के प्रारम्भ में रावण के अपने नगर से न निकलने पर सेनासहित राम ने उस के निवासस्थान लङ्कादुर्ग को घेर लिया है इस के बाद रावण युद्ध के लिये बाहर निकला है। इन्हीं शब्दों से दुर्योधन के व्यासह्लद से बाहर न निकलने पर सेना सहित राजा युधिष्ठिर ने व्यासह्लद को घेर लिया है फिर दुर्योधन के युद्ध के लिये बाहर निकलने का भी वर्णन किया गया है। आगे राम ने जिस प्रकार रावण को युद्ध के लिये आह्वान किया है उसी प्रकार भीम ने युद्ध के लिए दुर्योधन को ललकारा है। फिर राम के युद्धभूमि में उतरने के साथ-साथ इधर इस युद्धस्थल में बलराम के आगमन का वर्णन किया गया है। इस से आगे इन दोनों-दोनों के युद्ध देखने के लिये देवगन्धर्वादिकों से आकाश के भरने का विस्तृत वर्णन है। आगे भयङ्कर युद्ध का वर्णन किया गया है। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने में सन्दिग्ध राम को पुरातन मुनि अगस्त्य ने आदित्यहृदय स्तोत्र से सूर्य की आराधनारूपी उपाय बताया है। उधर भीम को जीतने में संन्दिग्ध देख कर पुरातन मुनि श्रीकृष्ण ने जांघों पर गदाप्रहाररूपी उपाय इशारे से सूचित किया है। फिर दशो मुखों के कट जाने से रावण तथा ऊरुभङ्ग होने से दुर्योधन जमीन पर गिर गया है। दोनों के पराजय होने से पुष्पवृष्टि तथा देवाङ्गनाओं के नृत्य का वर्णन समानरूप से है।

इस से आगे अग्निपरीक्षा में सीता के अग्नि से बाहर निकलने के वर्णन से मिलाकर द्रौपदी के मानसिक दुःखरूपी सन्ताप से बाहर निकलने का अर्थात् उस सन्ताप से मुक्त होने का वर्णन किया गया है।

इस के पश्चात् एक ही शब्दावली के द्वारा राम तथा युधिष्ठिर राजधानी के लिये प्रस्थान कर के भरत तथा धृतराष्ट्र से मिले हैं। दोनों के आगमन से अयोध्या तथा हस्तिनापुर में महोत्सव का समारोह हुआ है। आगे राम तथा युधिष्ठिर अपनी अपनी माता कौशल्या तथा कुन्ती को प्रणाम किये हैं तथा दोनों नूतन पुत्र-जन्म होने के सदृश प्रसन्न हुई हैं।

इस से आगे एक ही शब्दावली से राम लक्ष्मण तथा युधिष्ठिरादिकों का जटामोक्ष हुआ है, राज्याभिषेक का समारोह हुआ है फिर राज्याभिषेक हुआ है। इसी प्रसङ्ग में सुख-समृद्धि का वर्णन है। अन्त में अगस्त्यमुनि से अनेक प्राचीन कथाएँ सुनने के पश्चात् राजा राम ने वानरों को अपने-अपने नगर को जाने के लिये विदा किया है। इसी शब्दावली से राजा युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से धर्म सम्बन्धी अनेक प्रकार के उपदेश सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण को अपनी नगरी द्वारकापुरी जाने के लिये बिदा किया है। यहीं पर कवि कविराज ने राम,

युधिष्ठिर तथा अपने आश्रयदाता इस ग्रन्थ के निर्माण कराने वाले राजा कामदेव से पृथिवी का पालन कराते हुए ग्रन्थ को समाप्त किया है।

इस कवि ने पाण्डव-पक्ष का वर्णन राम के पक्ष के वर्णन से मिला कर तथा कौरव पक्ष का वर्णन रावण के पक्ष के वर्णन से मिला कर काव्य बनाने का उपक्रम किया था, जिस का निर्वाह इस ने अन्त तक पूर्णरूप से कर लिया है। समुचित घटना न मिलने के कारण निम्नलिखित चार स्थानों में कवि को उपक्रम से विरुद्ध आचरण करना पड़ा है अर्थात् राम के पक्ष से मिला कर कौरव पक्ष का वर्णन तथा रावण के पक्ष से मिला कर पाण्डव पक्ष का वर्णन करना पड़ा है।

प्रथम—रावण के द्वारा जटायु की दुर्दशा से मिला कर भीम के द्वारा जयद्रथ की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। द्वितीय—मेघनाद के द्वारा हनुमान् के बन्धन से अर्जुन के द्वारा विराटनगर में दुर्योधन के अवरोध को मिलाया गया है। तृतीय—रावण के पुत्र देवान्तक की मृत्यु के साथ अभिमन्यु के निधन का वर्णन हुआ है। चतुर्थ—सुग्रीव के द्वारा कुम्भराक्षस-वध से कर्ण के द्वारा घटोत्कच-वध को मिलाया गया है। इन से अतिरिक्त सर्वत्र उपक्रम का निर्वाह पूर्णरूप से किया गया है। घोषित कर के कहना पड़ता है कि इस कवि की कृति शतमुख से स्तुत्य है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकञ्च फलं भवेत्॥
आदौ नमःक्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सताञ्च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी-प्रदोषध्वान्त-वासराः॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।

वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गाः अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

उपर्युक्त लक्षण के अनुसार यह 'राघवपाण्डवीयम्' भी महाकाव्य है। इस में भी राम तथा युधिष्ठिर धीरोदात्त नायक हैं। वीर रस अङ्गी है। यथासंभव अन्य सभी रस अङ्ग हैं। इतिहासोद्भव कथानक हैं। ग्रन्थारम्भ से अन्त तक उद्देश्य-भूत एक ही फल है। ग्रन्थारम्भ में नमस्क्रिया खलों की निन्दा सज्जनों का अभिमुखीकरण आदि सभी उचित उपक्रमों से युक्त है। प्रायः सभी सर्गों में नानावृत्त वाला नियम लागू किया गया है। सर्गों की संख्या आठ से अधिक है। सर्गान्त में अग्रिम कार्यक्रम का भी आभास मिल ही जाता है। यद्यपि सन्ध्या-सूर्येन्दु का वर्णन विस्तारपूर्वक नहीं है फिर भी 'मृगयाशैलर्तुवनसागराः' का वर्णन तो विस्तृतरूप से है ही। इस में वर्षा ऋतु तथा शरद् ऋतु का वर्णन सोन्दर्य का प्रवाह वहाते हुए बृहद् रूप में किया गया है। विप्रलम्भशृङ्गार का वर्णन तो है ही; स्थान-स्थान पर सूक्ष्मरूप में संभोगशृङ्गार का भी वर्णन है। मुनियों का वर्णन स्वर्ग, नगर तथा मार्गों का वर्णन है। युद्धयात्रा, विजय, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रप्राप्ति तथा अभ्युदय आदि विषयों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस काव्य को महाकाव्यों की श्रेणी में रखने के सम्बन्ध में किसी को विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये। मैं तो कहूँगा कि एक ग्रन्थरूपी शरीर में दो महाकाव्य हैं; क्यों कि दोनों पक्ष महाकाव्य के लक्षणों से पूर्णरूप से लक्षित हो रहे हैं। अस्तु इस विशेष प्रतिभाशील कवि का यशो-गान करते हुए मैं अपनी कलम को विश्राम देता हूँ।

निर्जला एकादशी
वि० सं० २०२२

विदुषामनुचरः
दामोदर झा

॥ श्रीः ॥

राघवपाण्डवीयम्

सुबोधिनी-सरलासंस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमः सर्गः

स्वाधिष्ठानाम्बुजरजःपुञ्जपिञ्जरमूर्त्तये ।
इच्छाधीनजगत्सृष्टिकर्मणे ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

वन्दे गुरुवरौ पूर्वं मुकुन्दमुरलीधरौ ।
याभ्यामभ्यञ्जितं चक्षुर्मसार्थानवलोकते ॥
कविराजकृते काव्ये राघवैः पाण्डवैः प्लुते ।
वागर्थप्रतिपत्त्यर्थं वन्दे वाणी-विनायकौ ॥

स्वस्यात्मनोऽधिष्ठानं स्थितिस्थानं यदम्बुजं कमलं तस्य रजसां परागाणां पुञ्जेन पिञ्जरमूर्त्तये पीतस्वरूपाय परागधूसरितायेत्यर्थः। इच्छाधीना या जगत्सृष्टिः संसाररचना, सैव कर्म यस्य तस्मै ब्रह्मणे परमेष्ठिने नमः ।

काव्यकार कविराज अभीष्ट देवता को नमस्कार करते हैं—अपने बैठने का स्थान जो कमल, उसके पराग से पीले स्वरूप वाले और अपनी इच्छा के अधीन संसार-रचना का कार्य है जिनका अर्थात् स्वेच्छा से संसार-रचना करने वाले ब्रह्मा जी को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

पुनातु वः सरस्वत्या विलासशिशुकः शुकः ।
करांशुमय-माणिक्य-पञ्जरान्तरगोचरः ॥ ॥

करांशुमयमाणिक्यपञ्जरान्तरगोचरः करस्य येंऽशुकाः किरणाः तन्मयं तद्रूपं यन्माणिक्यपञ्जरं तदन्तरस्य तन्मध्यभागस्य गोचरः विषयीभूतः तन्मध्यस्थित इत्यर्थः, सरस्वत्याः वाग्देव्याः विलास-

शिशुकः विलासो लीला तदर्थं शिशुकः बालकः इव 'इवे प्रतिकृताविं'ति कः। शुकः शुकपक्षी वः युष्मान् पाठकान् श्रोतॄँश्च पुनातु पवित्रयतु।

हाथ के किरण रूपी मणिपञ्जर में रहने वाला श्री सरस्वती जी का कीडा-शुक आपलोगों (पाठकों, श्रोताओं) को पवित्र करे ॥ २ ॥

ब्रह्माण्डमण्डलच्छद्म-पद्मकुड्मलदीर्घिका ।
जायतां जगतः शान्त्यै शाम्भवी शक्तिरेकिका ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्डमण्डलच्छद्मपद्मकुड्मलदीर्घिका ब्रह्माण्डानां ब्रह्मगोलकानां यन्मण्डलं समूहः तच्छद्मना कपटेन यानि पद्मकुड्मलानि कमलकोरकाणि तेषां दीर्घिका वापी ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिस्थानं सृजनकर्त्रीत्यर्थः। एवंभूता एकिका अद्वितीया शाम्भवी शक्तिः शिवसम्बन्धिनी शक्तिः पार्वतीत्यर्थः। जगतः संसारस्य जगन्निवासिन इति भावः। शान्त्यै उपद्रवराहित्याय जायताम् भवतु।

ब्रह्माण्डों के बहाने जो कमल-कलिकाएँ उनके लिये कमलवापिका स्वरूप जो शङ्कर जी की अकेली शक्ति पार्वती वह सारे संसार की शान्ति के लिये होवें ॥३॥

श्रीलतालिङ्गिताङ्गस्य विष्णुकल्पद्रुमस्य वः ।
अवतारमहाशाखाः पुष्णन्तु फलमीप्सितम् ॥ ४ ॥

श्रीलतालिङ्गिताङ्गस्य श्रीर्लक्ष्मीरेव लता, पक्षे श्रिया शोभया युक्ता लता श्रीलता तया आलिङ्गिताङ्गस्य आलिङ्गितशरीरस्य पक्षे आवेष्टितशरीरस्य विष्णुकल्पद्रुमस्य विष्णुरेव कल्पद्रुमः तस्य अवतारमहाशाखाः अवतारा मत्स्यादयः एव बृहच्छाखाः ताः वः युष्माकम् ईप्सितमभीष्टं फलं पुष्णन्तु पुष्टिं नयन्तु पूरयन्त्वित्यर्थः। अत्र श्लेषानुप्राणितं रूपकमलङ्कारः।

लक्ष्मीरूपी लता से आलिङ्गित शरीरवाले विष्णुरूपी कल्पवृक्ष की अवतार-रूपी बड़ी-बड़ी डालियाँ आपलोगों के मनोभिलषित फल की पुष्टि करें ॥ ४ ॥

कान्तिः श्रीकण्ठकण्ठस्य जयत्यालिङ्गनोत्सुका ।
स्कन्धारूढेव कालिन्दी मौलिमन्दाकिनीर्ष्यया ॥ ५ ॥

मौलिमन्दाकिनीर्ष्यया मौलौ शिरसि या मन्दाकिनी गङ्गा तस्याः ईर्ष्यया विद्वेषेण आलिङ्गनोत्सुका परिरम्भणोत्कण्ठिता स्कन्धारूढा स्कन्धोपरि आरूढा कालिन्दीव यमुनेव श्रीकण्ठकण्ठस्य शिवगलस्य कान्तिः आभा जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

शिर पर अवस्थित गङ्गा जी की ईर्ष्या से मानो आलिङ्गन के लिये उत्सुक कन्धे पर चढ़ी हुई यमुना की तरह भासमान शङ्कर जी के गले की कान्ति विजयी है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होने के कारण प्रणम्य है ॥ ५ ॥

स नः करोतु विघ्नानां वारणं वारणाननः ।
मदधाराभिरारब्ध-भोगावलिरिवालिभिः ॥ ६ ॥

अलिभिरिव भ्रमरैरिव मदधाराभिः दानोदकरेखाभिः आरब्ध-भोगावलिः आरब्धा भोगावलिः सर्पशरीरपङ्क्तिः सर्पशरीराकारा रेखाः इति भावः, यस्मिन् सः 'भोगः सुखे धने चाहेः शरीरफणयोरपि' इति मेदिनी। वारणाननः गजाननः नः अस्माकं विघ्नानां प्रत्यूहानां वारणं निरसनं करोतु। अत्र अलीनां मदधाराणाञ्च उभयेषां प्रस्तुतत्वादपि उपमैवालङ्कारः, उपमानोपमेययोः द्वयोः प्रस्तुतत्वेऽपि भवत्युपमालङ्कारः। आरब्धभोगावलिरित्यत्र गम्योत्प्रेक्षा।

भौंरों के समान काली मदधाराओं से जिन के शरीर में सर्पशरीरों का समूह बनाया जाता है अर्थात् सर्पशरीर के आकार की रेखाएँ बनायी जाती हैं वह गणेश जी हमारे विघ्नों का निरोध करें ॥ ६ ॥

जगत्प्रदीपयोर्वंशौ सूर्याचन्द्रमसोरपि ।
ययोरुद्दीपितौ वाग्भिस्तौ वन्दे कविपुङ्गवौ ॥ ७ ॥

जगत्प्रदीपयोः जगतां प्रकाशकयोः सूर्याचन्द्रमसोः सूर्यचन्द्रयोः अपि वंशौ अन्ववायौ ययोः वाल्मीकिद्वैपायनयोः वाग्भिः वचनैः रामायणमहाभारतरूपैरिति भावः। उद्दीपितौ प्रकाशतां नीतौ तौ कविपुङ्गवौ कविश्रेष्ठौ वाल्मीकिद्वैपायनौ वन्दे प्रणमामि।

संसार के प्रकाशित करने वाले सूर्य और चन्द्रमा के भी वंश जिन दो कविश्रेष्ठों के रामायण-महाभारत रूप वचनों से प्रकाशित किये गये उन दोनों कविश्रेष्ठ वाल्मीकि और द्वैपायन को प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥

अन्यो विधाता वाल्मीकिरादिकाव्यं कमण्डलुः ।
रघुनाथ-कथा गङ्गा तया पूता जगत्त्रयी ॥ ८ ॥

वाल्मीकिः अन्यो विधाता प्रसिद्धब्रह्मणः अपरः स्रष्टा। आदिकाव्यं रामायणं तस्य कमण्डलुः कुण्डी जलपात्रमिति यावत्। रघुनाथकथा रामोपाख्यानं गङ्गा सुरसरित् तया रामकथास्वरूपिण्या गङ्गया जगत्त्रयी त्रिभुवनं पूता पवित्रीकृतम्। अत्र रूपकमलङ्कारः।

वाल्मीकि कवि अपर ब्रह्मा हैं और उनकी रामायण ही उनका कमण्डलु है तथा राम की कथा ही गङ्गा जी हैं जिस से तीनों भुवन पवित्र किये गये। ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने वाली गङ्गाजी ने भी तीनों भुवन पवित्र किये हैं इसलिये यह रूपक अत्यन्त सयुक्तिक है ॥ ८ ॥

द्वैपायनोऽपरो ब्रह्मा तत्सृष्टिर्भारतार्णवः ।
सूक्तयो दिव्यरत्नानि त्रैलोक्यं तैरलङ्कृतम् ॥ ९ ॥

द्वैपायनः वेदव्यासः अपरो ब्रह्मा अतिरिक्तो विधाता, तत्सृष्टिः तस्य रचना भारतार्णवः महाभारतसमुद्रः, सूक्तयः सुललितपद्यानि एव दिव्यरत्नानि शोभनरत्नस्वरूपाणि, तैः सूक्तिरत्नैः त्रैलोक्यं त्रिभुवनम् अलङ्कृतम् आभूषितम् जातम् । अत्र सावयवरूपकमलङ्कारः ।

वेदव्यास अतिरिक्त ब्रह्मा हैं और उनकी रचना है महाभारतरूपी समुद्र तथा उसके सुललित पद्य हैं सुन्दर सुन्दर रत्न, उनसे तीनों भुवन अलङ्कृत हुए हैं ॥९॥

निःश्रेण्यौ ब्रह्मलोकस्य वाग्देव्याः कर्णकुण्डले ।
धर्मद्रुममहामूले वाल्मीकिव्यासयोः कृती ॥१०॥

वाल्मीकिव्यासयोः रामायणमहाभारतनिर्मात्रोः कृती रामायण-महाभारतस्वरूपकर्मणी ब्रह्मलोकस्य निःश्रेण्यौ युगलसोपाने वाग्देव्याः सरस्वत्याः कर्णकुण्डले कर्णभूषणकुण्डलस्वरूपे तथा धर्मद्रुममहामूले धर्मरूपिणो वृक्षस्य बृहद् युगलमूलभूते स्तः । अत्र मालारूपक-मलङ्कारः ।

वाल्मीकि और व्यास के रामायण और महाभारतरूपी दोनों कार्य ब्रह्मलोक की दो सीढ़ियां, सरस्वती देवी के दो कुण्डल तथा धर्मरूपी वृक्ष की दो विशाल जड़ें हैं ॥ १० ॥

भारतादिपुराणानि श्रीरामचरितानि च ।
त्रिसन्ध्यसवनान्येष सर्वसाधारणो मखः ॥ ११ ॥

भारतादिपुराणानि महाभारतादिपुराणानि श्रीरामचरितानि रामायणम् पुराणानां रामायणस्य च पठनं श्रवणमिति भावः। त्रिसन्ध्य-सवनानि त्रिसन्ध्यं स्नानानि 'सवनं त्वध्वरे स्नाने सोमनिर्दलनेऽपि च' इति मेदिनी । एष मखः यज्ञः सर्वसाधारणः सर्वेषां सामान्यः सर्वेषां सुलभः अस्तीत्यर्थः ।

महाभारतादि पुराण और रामायण, इनका पठन तथा श्रवण करना तथा तीनों सन्ध्याओं में स्नान करना यह यज्ञ सभी के लिये सुलभ है ॥ ११ ॥

पुराणरामायणभारतादिक्षीराणि संयोजितभक्तिवत्सैः।
पुरातनैर्या दुदुहे कवीन्द्रैः सा भारती कामदुघा ममास्तु ॥१२॥

संयोजितभक्तिवत्सैः संयोजिता भक्तिरेव वत्सा यैः तैः भक्तिं कृत्वेत्यर्थः। पुरातनैः प्राचीनैः कवीन्द्रैः वाल्मीक्यादिभिः या भारती सरस्वती पुराणरामायणभारतादिक्षीराणि, पुराणानि मत्स्यकूर्मादीनि रामायणमहाभारतादीनि क्षीराणि पयांसि दुदुहे दुग्धा सा सरस्वती मम कामदुघा अभिलषितफलदात्री अस्तु भवतु। अत्र रूपकमलङ्कारः। तथा उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

जो सरस्वती प्राचीन कवियों के द्वारा भक्तिरूपी वत्स का संयोग कराकर पुराण-रामायण आदि दूध दुही गयी, वह सरस्वती मेरे लिये मनोरथ पूर्ण करनेवाली होवें ॥ १२ ॥

अस्ति कादम्बसन्तान-सन्तानकनवाङ्कुरः।
कामदेवः क्षमादेव-कामधेनुर्जनेश्वरः ॥१३॥

कविराजः चिकीर्षितकाव्यविषयं प्रस्तौति—अस्तीति। कादम्बसन्तानसन्तानकनवाङ्कुरः कादम्बः कलहंसः 'कादम्बः कलहंसे स्याद्' इत्यमरः। तस्य सन्तानः वंशः 'वंशोऽन्ववायः सन्तान'इत्यमरः। हंसपर्यायः कादम्बसंज्ञको वंशः इत्यर्थः। स एव सन्तानकः कल्पवृक्षः तस्य नवाङ्कुरः नवीनप्ररोहः क्षमादेवकामधेनुः क्षमादेवानां भूदेवानां ब्राह्मणानामिति यावत्। कामधेनुः मनोरथपूरकः कामदेवः जनेश्वरः कामदेवसंज्ञको राजा अस्ति। अत्रानुष्टुप्छन्दः।

कादम्बवंशरूपी कल्पवृक्ष का नवप्ररोह स्वरूप ब्राह्मणों को अभिलषित वस्तु देनेवाला कामदेव नाम का राजा है ॥ १३ ॥

कामः पुरातनो येन नूतनेनाभिभूयते।
भार्गवो राघवेणेव रामो रामेण संगरे ॥१४॥

नूतनेन नवीनेन येन कामदेवेन राज्ञा पुरातनः प्राचीनः कामः रतिपतिः, संगरे युद्धे नूतनेन रामेण राघवेण रामचन्द्रेण पुरातनः रामः भार्गव इव परशुराम इव अभिभूयते तिरस्क्रियते रूपेणेति भावः। यथा नूतनेन रामेण पुरातनो रामः परशुरामः युद्धे अभिभूतः तथा नवीनेन कामदेवेन राज्ञा प्राचीनः कामः मन्मथः सौन्दर्येण पराजीयते इत्यर्थः। अत्रोपमालङ्कारः।

नवीन राम के द्वारा प्राचीन राम परशुराम जैसे युद्ध में जीते गये उसी प्रकार

नवीन कामदेव राजा के द्वारा प्राचीन काम--कामदेव जीते जाते हैं अर्थात् सौन्दर्य से जीते जाते हैं ॥ १४ ॥

दत्तयः कीर्तयश्चैव यदीयाः कर्णमार्गगाः ।
कान्ताभ्यश्च कविभ्यश्च कामदं यस्य दर्शनम् ॥१५॥

यदीयाः यस्य कामदेवस्य राज्ञः सम्बन्धिन्यः दत्तयः दानानि कीर्तयश्च कर्णमार्गगाः राधेयकर्णपथगामिन्यः, राधेयः कर्णोऽपि महादानी आसीत्, कीर्तिपक्षे जनानां श्रवणमार्गेषु गमनशीलाः सन्ति, यस्य कामदेवस्य राज्ञः दर्शनम् अवलोकनम् कान्ताभ्यः प्रियाभ्यः कामदं कामविकारोत्पादकम् कविभ्यश्च कामदम् अभिलषितपूरकम् अस्ति ।

जिस कामदेव राजा के दान अङ्गपति कर्ण के रास्ते से चलने वाले हैं अर्थात् कर्ण के ही समान यह राजा भी दानी है, और जिस कामदेव राजा की कीर्तियाँ लोगों के कान के रास्ते से चलने वाली हैं अर्थात् सभी लोगों से सुनी गयी हैं, और जिसका दर्शन प्रेयसियों के लिये कामविकार उत्पन्न करने वाला तथा कवियों के लिये मनोरथ पूर्ण करने वाला है ॥ १५ ॥

दधानोऽपि धनुर्विद्यावैशारद्यं किरीटिवत् ।
अङ्गनापाङ्गबाणानां यः स्वयं याति लक्ष्यताम् ॥१६॥

यः कामदेवो राजा किरीटिवत् अर्जुनवत् धनुर्विद्यावैशारद्यम् अस्त्रविद्यानैपुण्यं दधानोऽपि धारयन्नपि अङ्गनापाङ्गबाणानां कामिनीकटाक्षशराणाम् स्वयम् आत्मना एव लक्ष्यतां शरव्यतां याति गच्छति। अत्र धनुर्विद्यावैशारद्यं दधानोऽपि बाणलक्ष्यतां यातीत्यत्र बाणलक्ष्यतानिवारणकारणभूते धनुर्विद्यावैशारद्ये सत्यपि बाणलक्ष्यतागमनेन विशेषोक्तिरलङ्कारः । अथवा अङ्गनापाङ्गबाणानामेव लक्ष्यतां याति शत्रुबाणानां लक्ष्यतां न याति इत्यर्थे सति परिसंख्यालङ्कारः ।

जो कामदेव राजा अर्जुन के समान धनुर्विद्या में निपुणता धारण करने पर भी कामिनियों के कटाक्षबाणों का स्वयं निशाना बनता है अर्थात् सुन्दर और तरुण होने के कारण कामिनियों के कटाक्षों से सदा बींधा जाता है ॥ १६ ॥

यद्यशोराजहंसस्य ब्रह्माण्डं पञ्जरायते ।
ग्रासक्षीरायते चास्य पुरस्तात् क्षीरनीरधिः ॥१७॥

यद्यशोराजहंसस्य यस्य कामदेवस्य राज्ञः यशोराजहंसस्य कीर्तिमरालस्य ब्रह्माण्डं ब्रह्मगोलकं सम्पूर्णं जगदिति यावत्, पञ्जरायते पञ्जरमिव आचरति अर्थात् यथा पञ्जरेबद्धो हंसः पञ्जरमात्रं परिभ्रमन्

शोभते तथैवास्य यशः सम्पूर्णब्रह्माण्डान्तः परिभ्रमद् विराजते। अस्य यशोराजहंसस्य पुरस्तात् अग्रे क्षीरनीरधिः दुग्धोदधिः ग्रासक्षीरायते कवलदुग्धमिवाचरति अर्थात् यथा हंसस्य पुरो वर्तमानस्य ग्रासक्षीरस्य हंसशरीरापेक्षया महदल्पत्वं वर्तते तथैवास्य यशसः परिमाणापेक्षया क्षीरनीरधेरत्यल्पत्वं वर्त्तते। उभयत्रोपमालङ्कारः।

जिस कामदेव राजा के राजहंस के समान यश के लिये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पिंजरे के समान आचरण करता है अर्थात् जिसका यश सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भरा हुआ है तथा जिसके सामने स्थित दुग्धसमुद्र उसके भोजन दुग्ध के समान है। यहाँ भी दुग्धसमुद्र के ग्रास-क्षीर होने से यशोराजहंस की विस्तृतता व्यक्त होती है ॥१७॥

श्रीविद्याशोभिनो यस्य श्रीमुञ्जादियती भिदा।
धारापतिरसावासीदयं तावद्धरापतिः ॥१८॥

श्रीविद्याशोभिनः श्रिया राजलक्ष्म्या विद्यया च शोभिनः शोभमानस्य यस्य कामदेवस्य राज्ञः श्रीविद्याशोभिनः श्रीविद्याख्यया तान्त्रिकपटलविशेषसिद्ध्या शोभिनः शोभमानात् श्रीमुञ्जात् मुञ्जनामकनृपात् इयती भिदा एतावानेव भेदः आसीत् यत् असौ मुञ्जः धारापतिः धाराख्यायाः नगर्याः पतिः आसीत् अयं तावत् कामदेवस्तु धरापतिः सम्पूर्णपृथिवीपतिः अस्ति। अत्र व्यतिरेकोऽलङ्कारः॥

लक्ष्मी और सरस्वती से सुशोभित जिस कामदेव राजा का श्रीविद्या नामक तान्त्रिक सिद्धि से शोभित श्री मुञ्जराजा से केवल इतना ही अन्तर है कि वह धारा नामक नगरी का पति था और यह धरा अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवी का पति है ॥१८॥

धर्मार्थकामान् भजता यथावदनुबन्धिनः।
अवन्ध्या येन नीयन्ते सज्जना इव वासराः ॥१९॥

अनुबन्धिनः परस्परसंबद्धान् धर्मार्थकामान् त्रिवर्गं यथावद् समुचितरीत्या भजता सेवमानेन येन कामदेवेन राज्ञा सज्जना इव वासराः दिवसाः अवन्ध्याः सफलाः नीयन्ते याप्यन्ते (अयं भावः यथायं सज्जनान् सफलान् पूर्णकामान् स्वान् स्वान् गृहान् नयति प्रेषयति तथैवायं धर्मार्थकामैः सफलान् दिवसानपि गमयति)। अत्रोपमालङ्कारः।

आपस में संबद्ध धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग का समुचित प्रकार से सेवन करते हुए जिस कामदेव राजा के द्वारा पूर्णमनोरथ सज्जनों के समान त्रिवर्गसेवन से सफल दिन बिताये जाते हैं ॥ १९ ॥

दूषणध्वंसदक्षेण पुण्यसेतुप्रवर्तिना ।
रामेणेव कृतं येन जनस्थानमकण्टकम् ॥२०॥

दूषणध्वंसदक्षेण खरानुजदूषणराक्षसविनाशकुशलेन पक्षे दोषनिवारणचतुरेण पुण्यसेतुप्रवर्तिना पुण्यस्य मनोज्ञस्य सेतोः सेतुबन्धस्य प्रवर्तिना प्रतिष्ठापकेन, पक्षे-पुण्यस्य धर्मस्य सेतोः मर्यादायाः प्रवर्तिना संस्थापकेन, 'पुण्यं मनोज्ञेऽभिहितं तथा सुकृतधर्मयो' रिति विश्वः । रामेणेव दाशरथिनेव येन कामदेवेन राज्ञा जनस्थानम् दण्डकारण्यभागविशेषः पक्षे जनपदम् अकण्टकं दस्युचौरादिरहितं कृतम् । 'कण्टकः क्षुद्रशत्रौ च कर्मस्थानकदोषयोः । रोमाञ्चे च द्रुमाङ्गे च कण्टको मकरेऽपि च ॥' इति विश्वः । पूर्णोपमालङ्कारः ।

दूषण नामक राक्षस के विनाश करने में चतुर तथा सुन्दर सेतुबन्ध करने वाले और दण्डकारण्य के एक भाग जनस्थान को निष्कण्टक करने वाले राम के समान दोषों का विनाश करने वाले, और धर्म की मर्यादा स्थापित करनेवाले जिस कामदेव राजा ने जनस्थान अर्थात् जनपद को दस्युचौरादिकण्टक से शून्य कर दिया ॥२०॥

भूरिक्षमाभारभृता विजयार्जितसंपदा ।
भूमेरुत्खातशल्येन यस्तुल्यो धर्मजन्मना ॥२१॥

यः कामदेवो राजा भूरिक्षमाभारभृता क्षमा तितिक्षा पृथ्वी च तस्याः बहुभारधारकेण विजयार्जितसंपदा विजयेन अर्जुनेन पक्षे शत्रुजयेन अर्जिता संपद् येन सः तेन । भूमेरुत्खातशल्येन भूमेः पृथिव्याः उत्खातः विनाशितः शल्यो राजा येन तेन पक्षे उत्खातं दूरीकृतं शल्यं कण्टकं येन दूरीकृताः कण्टकभूताः शत्रवः येन इति भावः । एवंभूतेन धर्मजन्मना युधिष्ठिरेण तुल्यः विशेषणसमत्वात् समानः आसीत् । अत्र श्लेषमूलोपमालङ्कारः ।

जो कामदेव राजा बहुधा तितिक्षा का भार धारण किये हुए, राजा के पक्ष में पृथ्वी का भार धारण किये हुए, अर्जुन के द्वारा उपार्जित सम्पत्तिवाले, राजा के पक्ष में शत्रुओं के जीतने से सम्पत्ति उपार्जन करने वाले, पृथ्वी से शल्य राजा का विनाश करने वाले, राजा के पक्ष में—पृथ्वी से कण्टकों को दस्यु-चोर आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाले धर्म के पुत्र युधिष्ठिर के समान है ॥ २१ ॥

यथा सर्वेषु देवेषु कामदेवो जगत्प्रियः ।
तथा मनुष्यदेवेषु कामदेवो जगत्प्रियः ॥२२॥

यथा येन प्रकारेण सर्वेषु देवेषु सुरेषु कामदेवो मन्मथः जगत्प्रियः त्रिजगतां प्रियः सर्वप्रिय इत्यर्थः। तथा तेन प्रकारेण मनुष्यदेवेषु राजसु कामदेवः कामदेवसंज्ञको राजा जगत्प्रियः जगतां प्रियः सर्वप्रियः अस्तीति शेषः।

जिस प्रकार देवताओं में कामदेव सर्वप्रिय हैं उसी प्रकार राजाओं में कामदेव राजा सर्वप्रिय हैं ॥२२॥

आदित्यस्यान्ववायो जयति रघुपतेर्जन्मनोज्जृम्भितश्री-
स्तत्साम्यं सोमवंशः श्रयति सुरभितः पाण्डवानां यशोभिः।
धत्ते तत्साम्यमद्य स्मरहरधरणीसंभवस्यान्ववायो
यस्यालंकारभावं भजति कृतधियां कामदः कामदेवः ॥२३॥

रघुपतेः रामचन्द्रस्य जन्मना उज्जृम्भितश्रीः वर्धितशोभः आदित्यस्य सूर्यस्य अन्ववायः वंशः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। पाण्डवानां युधिष्ठिरादीनां यशोभिः सुरभितः विख्यातः 'सुरभिः शल्लकीमातृभिन्मुरागोषु योषिति। विख्याते सचिवे धीरे चैत्रेऽपि च पुमानयम् ॥' इति मेदिनी। सोमवंशः चन्द्रवंशः तत्साम्यं तत्सादृश्यं श्रयति धारयति। अद्य आधुनिके काले, स्मरहरधरणीसंभवस्य स्मरहरस्य शिवस्य धरणी भूमिः निवासस्थानमिति यावत् कैलाश इत्यर्थः, तत्संभवः तदुत्पन्नः हंसः कादम्बः इत्यर्थः, तस्य अन्ववायः वंशः तत्साम्यं तयोः वंशयोः सादृश्यं धत्ते धारयति। कृतधियां पण्डितानां कामदः मनोरथपूरकः कामदेवः कामदेवो राजा यस्य कादम्बवंशस्य अलङ्कारभावम् अलङ्करणस्वरूपतां भजति धारयति। अत्र स्रग्धरा वृत्तम्—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

श्री रामचन्द्र जी के जन्म से बढ़ी हुई शोभा वाला सूर्यवंश सर्वोत्कृष्ट है और पाण्डवों के यश से प्रसिद्ध चन्द्रवंश उसकी समानता धारण करता हैं। शंकर जी की भूमि से उत्पन्न कादम्ब वंश आज उन दोनों वंशों का सादृश्य धारण किये हुये है। पण्डितों का मनोरथ पूर्ण करनेवाला कामदेव राजा जिस वंश में अलङ्कार का स्वरूप धारण किये हुए है अर्थात् जो कि कादम्बवंश का अलङ्कार है ॥ २३ ॥

केचिद्दानेषु वीराः समरभुवि पुनः केचिदन्ये दयायां
कर्णाद्याः पार्थमुख्याः खचरपतिमुखाः पूर्वमासन् युगेषु।

तेषां तेषां च तेषामपि वहति धुरं साम्प्रतं तावदस्या-
मेकः श्रीकामनामा जलनिधिलहरी स्रग्धरायां धरायाम् ॥२४॥

युगेषु सत्यादिषु पूर्वं पूर्वस्मिन् काले केचित् कर्णाद्याः दानेषु वीराः आसन् केचित् पार्थमुख्याः अर्जुनप्रभृतयः समरभुवि युद्धभूमौ वीराः आसन् पुनः अन्ये खचरपतिमुखाः खे आकाशे चरन्तीति खचराः विद्याधराः तत्कुमारजीमूतवाहनप्रभृतयः दयायां वीराः आसन्। साम्प्रतं तावत् अस्मिन् युगे तु अस्यां जलनिधिलहरीस्रग्धरायां समुद्रतरङ्गमालाधारिण्यां धरायां पृथिव्यां तेषां कर्णादीनां तेषां च अर्जुनादीनां च तेषामपि जीमूतवाहनादीनामपि धुरं रथाग्रभागं भारमित्यर्थः, सर्वेषां कार्यभारमिति यावत्। एकः अद्वितीयः श्रीकामनामा श्रीकामदेवनामा राजा वहति धारयति अर्थादयमेक एव दानेषु युद्धेषु दयासु च वीरः अस्ति। स्रग्धरा वृत्तम्।

सत्य आदि युगों में पहले कर्ण आदि कुछ लोग दानवीर थे, अर्जुन आदि कुछ लोग युद्धवीर थे तथा विद्याधरकुमार जीमूतवाहन आदि कुछ लोग दयावीर थे। इस समय तो समुद्रों की लहरियों की माला धारण करने वाली पृथ्वी में अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी में कर्णादि तथा अर्जुनादि और जीमूतवाहनादि सभी का कार्यभार अकेला ही यह श्री कामदेव नाम का राजा धारण किये हुए है। अर्थात् यह अकेले दान, युद्ध, तथा दया इन तीनों में वीर है ॥ २४ ॥

आनेता मध्यदेशात् प्रवचनविदुषां सोमपब्राह्मणाना-
मारोढा मर्त्यमूर्त्या सुरपतिसदसो मण्डनं मानवत्याः।
जेता भूमेर्जयन्तीपुरपुरमथनश्रीपदाम्भोजभृङ्गः
सोऽपि क्ष्मापस्त्रिनेत्रः स्वकुलकुलगिरिर्योऽनुलेभे तपोभिः ॥२५॥

सोऽपि क्ष्मापः कामदेवो भूपः मध्यदेशात् गङ्गायमुनयोर्मध्यदेशात् प्रवचनविदुषां प्रकृष्टवचनज्ञानां सोमपानां सोमरसपायिनां ब्राह्मणानाम् आनेता आनीय संघटनकर्ता, मर्त्यमूर्त्या स्वमनुष्यशरीरेण सुरपतिसदसः इन्द्रसभायाः आरोढा आरोहणकर्ता, योगित्वादेतच्छरीरेण सुरलोकगमनसंभवादेतद्विशेषणम्। मानवत्याः मानिन्याः योषितः मण्डनम् अलङ्कारस्वरूपः, तस्याः माननिर्वाहकत्वादिति भावः। भूमेः पृथिव्याः जेता विजयी जयन्तीपुरपुरमथनश्रीपदाम्भोजभृङ्गः जयन्तीपुरे जयन्तीनामके पुरे यः पुरमथनः शिवः तस्य श्रीपदाम्भोजभृङ्गः श्रीपदं चरणमेवाम्भोजं कमलं तत्र भृङ्गः भ्रमरः कमले भ्रमरवत्

संसक्तमानस इत्यर्थः, त्रिनेत्रः शिवः तद्भावनया तन्मयत्वात् शिवस्वरूप इति भावः। अत्र रूपकमलङ्कारः। अथवा ज्ञानचक्षुषा स्वयं त्रिनेत्रः अस्ति । तपश्चरणैः स्वकुलकुलगिरिं स्वकुलमेव कुलगिरिः हिमालयः तदवयवः कैलास इति भावः तम् अनुलेभे प्राप्तवान् । अनेनैव देहेन तपसा कैलासं विजितवानिति भावः ।

वह राजा प्रवचन में निपुण यज्ञ में सोमपान करने वाले ब्राह्मणों को गङ्गा-यमुना के मध्य देश से लाने वाला, मनुष्यशरीर से ही (योगबल से) इन्द्रसभा का आरोहण करने वाला, मानवती स्त्री का (मानरक्षा के द्वारा) आभूषण स्वरूप, पृथ्वी का जीतने वाला, जयन्ती नामक नगर के जो शंकर भगवान् उनके चरण कमल में भौंरे के समान लीन रहने वाला, ज्ञानचक्षु के कारण तीन नयन वाला वा शिवस्वरूप है। जिसने कि तपस्याओं से अपने कुलरूपी कुलगिरि कैलास पर्वत को प्राप्त किया है अर्थात् इस कादम्ब वंश में जन्म ग्रहण किया है ॥ २५ ॥

न्यञ्चत्काञ्चीमनोज्ञाः सुललितमधुराः कुन्तलैरुल्लसन्त्यः
पुष्णन्त्यो हारशोभां धृतकरकटकाः कान्तिमद्वेदिमध्याः ।
अङ्गश्रीभङ्गिभाजः परिमिलदलकाः प्रोल्लसत्कामरूपाः
सेवन्ते तं समन्तादनुदिनमबलाश्रेणयः क्षोणयश्च ॥२६॥

न्यञ्चत्काञ्चीमनोज्ञा न्यञ्चन्ती शोभमाना या काञ्ची रसना तया मनोज्ञाः मनोहराः, पक्षे—न्यञ्चन्ती जनान् पूजयन्ती 'अञ्चु गतिपूजनयोः' या काञ्चीनगरी तया मनोज्ञाः, सुललितमधुराः सुललितेन, शोभनेन हावविशेषेण मधुराः रमणीयाः 'ललितं हावभेदे स्यादि'ति विश्वः, पक्षे-सुललिता रमणीया मधुरा मथुरापुरी यासु ताः। कुन्तलैरुल्लसन्त्यः कुन्तलैः केशपाशैः शोभमानाः, पक्षे-कुन्तलैः एतन्नामकैः देशैः शोभमानाः, हारशोभां हारेण मुक्तावल्या, पक्षे-हारदेशेन शोभां रमणीयतां पुष्णन्त्यः वर्धयन्त्यः, 'हारो मुक्तावली देशः' इति विश्वः, धृतकरकटकाः धृताः करेषु कटकाः वलयाः याभिस्ताः, पक्षे धृतः करः राजग्राह्यभागो यत्र सः धृतकरः एवंभूताः कटकाः गिरिसानूनि यासु ताः, कान्तिमद्वेदिमध्याः कान्तिमन्तः शोभमानाः वेदयः अङ्गुलिमुद्राकाराः मध्याः मध्यभागाः यासां ताः 'वेदिरंगुलिमुद्रायां बुधेऽलङ्कृतभूतले' इति विश्वः। 'वेदिः स्यात् पण्डिते पुमान् । स्त्रियामंगुलिमुद्रायां स्यात्परिष्कृतभूतले । इति मेदिनी, पक्षे-कान्तिमत्यः वेदयः अलंकृतभूतलानि यत्र एवंभूताः

मध्याः मध्यप्रदेशाः यासु ताः, अङ्गश्रीभङ्गिभाजः अङ्गस्य शरीरस्य पक्षे अङ्गदेशस्य श्रिया शोभया भङ्गिभाजः विच्छित्तिमत्यः, परिमिलदलकाः परि समन्तात् मिलन्तः संलग्नन्तः अलकाश्चूर्णकुन्तलाः यासां ताः, पक्षे-परिमिलन्ती संमिलन्ती अलकापुरी यासु ताः, प्रोल्लसत्कामरूपाः प्रोल्लसन्ति मनोहराणि कामरूपाणि कामस्वभावाः यासां ताः, 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये' इति विश्वः, पक्षे-प्रोल्लसन् शोभमानः कामरूपः कामरूपदेशः यासु ताः, एवंभूताः अबलाश्रेण्यः कामिनीपंक्तयः स्त्रीसमूहाः इत्यर्थः, क्षोण्यः पृथिव्यः, विभिन्नदेशोपलक्षणयात्र क्षोणिशब्दे बहुवचनम् , तं कामदेवं राजानं समन्तात् परितः सेवन्ते भजन्ते। अत्र श्लेषोपबृंहिता तुल्ययोगितालङ्कारः।

हिलती हुई रसना (करधन) से मनोहर, दूसरे पक्ष में—लोगों का सम्मान करने वाली काञ्चीनगरी से सुन्दर, सुन्दर जो ललित अर्थात् हाव-भाव उससे मनोहर, दूसरे पक्ष में—सुन्दर है मधुरा अर्थात् मथुरापुरी जिनमें, केशपाश से सुशोभित, दूसरे पक्ष में—कुन्तल देश से शोभित, मुक्ताहार से शोभा बढ़ानेवाली, दूसरे पक्ष में—हार देश से शोभा बढ़ानेवाली, हाथ में वलय धारण करने वाली, दूसरे पक्ष में—पहाड़ की चोटियों पर भी राजकर धारण किया गया है जिनमें ऐसी, शोभा से युक्त अंगुली की मुद्रा के आकार वाले मध्य भाग हैं जिनके, दूसरे पक्ष में–शोभा से युक्त अलंकृत भूतल हैं जिनमें ऐसी, शरीर की, दूसरे पक्ष में अङ्ग देश की शोभा से छटा धारण करने वाली, चारों तरफ संसक्त हैं केशपाश जिनके, दूसरे पक्ष में संमिलित है अलकापुरी जिनमें, मनोहर है कामस्वभाव विलास का स्वभाव जिनका, दूसरे पक्ष में—सुन्दर है कामरूप देश जिनमें, इस प्रकार की स्त्रियों की श्रेणियाँ तथा पृथिवियाँ (पृथिवी शब्द में पृथक्-पृथक् देशों के उपलक्षण से बहुवचन है) उस कामदेव राजा की सेवा करती हैं ॥२७॥

कूर्माकारं चरणयुगलं धूतदिग्दन्तिशुण्डा-
दण्डावूरू भुजयुगमपि व्यक्तनागेन्द्रशोभम् ।
प्रायः पृथ्वीधरणविषये तत्समर्थान् पदार्था-
नेकीकृत्य त्रिभुवनसृजा निर्मिता यस्य मूर्तिः ॥२७॥

यस्य कामदेवस्य राज्ञः चरणयुगलं कूर्माकारं कच्छपस्वरूपम् मांसलत्वादुन्नतपृष्ठत्वेनेति भावः, ऊरू धूतदिग्दन्तिशुण्डादण्डौ धूताः कम्पिताः दिग्दन्तिनां दिग्गजानां शुण्डादण्डाः करस्तम्भाः याभ्यां तौ दिग्गजशुण्डविजयिनावित्यर्थः। भुजयुगमपि व्यक्तनागेन्द्रशोभं व्यक्ता

प्रकटिता नागेन्द्रस्य शेषनागस्य शोभा येन तत् अत एव प्रायः प्रायशः पृथ्वीधरणविषये राज्ञः पृथ्वीधारणकार्यविषये तत्समर्थान् पृथ्वी-धारणकार्यसमर्थान् पदार्थान् आदिकच्छपदिग्गजशेषनागादीन् उप-करणभूतान् एकीकृत्य संघटितान् कृत्वा त्रिभुवनसृजा ब्रह्मणा यस्य मूर्तिः आकृतिः निर्मिता रचिता। अत्र प्रायः इतिशब्देन उत्प्रेक्षायाः वाच्यत्वात् वाच्योत्प्रेक्षालङ्कारः। अत्र मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

जिस कामदेव राजा के दोनों पैर कछुए के आकार वाले हैं, दोनों जाँघें दिग्गजों की शुंड को जीतने वाली हैं और दोनों भुजाएँ शेषनाग की शोभा प्रकट करने वाली हैं इसलिये शायद पृथ्वी-धारण करने के विषय में समर्थ आदिकच्छप, दिग्गज और शेषनाग रूपी पदार्थों को इकट्ठा करके ही ब्रह्मा ने इस राजा की मूर्ति बनायी है ॥ २८ ॥

कस्त्राता कामदेवः समरविजयिनां कोऽग्रणीः कामदेवः
कस्त्यागी कामदेवः सरसकविगिरां किं पदं कामदेवः।
कः सेव्यः कामदेवः श्रितभरणविधौ कः कृती कामदेवः
प्रश्नानामेक एकप्रतिवचनमहो रामवत्कामदेवः ॥२८॥

अस्मिन् संसारे त्राता रक्षकः कः? समरविजयिनां युद्धजेतॄणाम् अग्रणीः अग्रेसरः कः? त्यागी दानी कः? 'त्यागो विहापितं दान-मुत्सर्जनविसर्जने। विश्राणनं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम् इत्यमरः। सरसकविगिरां सरसानां कविभारतीनाम् कवितानामित्यर्थः। पदं श्रवणावबोधसमादरकारकं पदं स्थानं किम्? सेव्यः सेवनीयः कः? श्रितभरणविधौ श्रितानाम् आश्रितानां भरणविधौ धारणपोषणविषये कृती सफलप्रयत्नः कः? प्रश्नानाम् एतेषां प्रश्नानाम् एकप्रतिवचनम् एकमेवोत्तरम् रामवत् दाशरथिरिव एकः कामदेव एवास्ति। अत्रा-नेकेषां प्रश्नानामेकोत्तरत्वादुत्तरालङ्कारः। कामदेवशब्दानामनेकत्वेऽपि अर्थस्यैकत्वे नोत्तरालङ्कारस्वरूपच्युतिः। तदर्थयुक्तस्यैव कामदेव-शब्दस्यानेकावृत्तौ लाटानुप्रासोऽपि। स्रग्धरावृत्तम्।

लोगों का रक्षक कौन है? कामदेव, युद्धजेताओं में अग्रेसर कौन है? कामदेव, दानी कौन है? कामदेव, सरस कविताओं का पात्र कौन है? कामदेव, सेवा करने योग्य कौन है? कामदेव, आश्रितों के पालन के विषय में दक्ष कौन है? कामदेव, इन प्रश्नों का एक उत्तर राम के समान एक कामदेव है ॥ २९ ॥

जित्वा शत्रून् स्वमभिविशतो धाम हर्म्याग्रलग्नाः
भावोद्भेदाद्गलितगतयो लोलमालायताक्ष्यः ।
प्रान्तप्रेङ्खच्छफरकनकस्तम्भशोभैर्निजाङ्गैः
सीमन्तिन्यो विदधति दृढं यस्य मीनध्वजत्वम् ॥२९॥

शत्रून् अरीन् जित्वा विजित्य स्वम् आत्मीयं धाम गृहम् अभिविशतः प्रविशतः यस्य कामदेवस्य राज्ञः हर्म्याग्रलग्नाः अगाराणाम् अग्रभागे स्थिताः, लोलमालायताक्ष्यः लोलाः चञ्चलाः याः मालाः तद्वत् आयतानि दीर्घाणि अक्षीणि यासां ताः, भावोद्भेदाद् गलितगतयः भावानां मानसिकविकाराणामुद्भेदाद् उद्रेकात् गलितगतयः रुद्धसञ्चाराः स्तम्भोद्गमात् स्थिरा इत्यर्थः, सीमन्तिन्यः योषितः, प्रान्तप्रेङ्खच्छफरकनकस्तम्भशोभैः, प्रान्तयोः मुखपार्श्वयोः कर्णयोरिति यावत् प्रेङ्खन्तौ आन्दोलितौ यौ शफरौ मत्स्यौ मत्स्याकारे कर्णभूषणे इति भावः । ताभ्याम् उपलक्षितैः कनकस्तम्भशोभैः सुवर्णस्तम्भसदृशैः निजाङ्गैः स्वशरीरावयवैः शरीरकरणैरित्यर्थः । मीनध्वजत्वम् दृढं विदधति, मत्स्यध्वजत्वस्य दार्ढ्यं कुर्वन्ति ।

शत्रुओं को जीत कर अपने महल में प्रवेश करते हुए जिस कामदेव राजा के, महलों की छत पर उपस्थित चञ्चल माला के समान बड़ी बड़ी आँख वाली मानसिक विकार के प्रादुर्भाव से गतिविहीन कामिनियाँ बगल में कानके हिलते हुए आभूषणस्वरूप मछलियों से सोने के खम्भों के सदृश अपने शरीरों से मत्स्यध्वजत्व को सुदृढ़ बनाती हैं ॥ २९ ॥

योषावेषो विषधरगृहं केशमोक्षोऽम्बुगर्भः
शष्पग्रासः शबरशिबिरं शम्बरत्वङ्निचोलः ।
पाण्योः शाखाकवलनविधिर्धारणं कण्ठदाम्नां
यच्छत्रूणां भवति भुवने जीवनोपायवर्गः ॥३०॥

यच्छत्रूणां यस्य कामदेवस्य राज्ञोऽरीणां योषावेशः स्त्रीस्वरूपधारणम् विषधरगृहं पातालभुवनं पातालभुवनप्रवेश इत्यर्थः, केशमोक्षः केशमोक्षणं मुक्तकेशेन शरणयाचनमिति भावः, केशमोक्षः इत्यस्य केशमुण्डनं संन्यासिवेषधारणमिति वा संन्यासिनोऽवध्यत्वात् । अम्बुगर्भः जलमध्यप्रवेशः, जलमध्यस्थितस्य रिपोराक्रमणं नीतिविरुद्धम् , शष्पग्रासः तृणकवलनम् , दन्तेषु तृणधारणम् शत्रोः शरणगमनस्य प्रकारः, शबरशिबिरं वनम् तत्प्रवेश इत्यर्थः शम्बरत्वङ्निचोलः

शम्बरत्वचां मृगचर्मणां निचोलः सर्वशरीराच्छादनवस्त्रं तद्धारणेन साधूनां स्वरूपधारणमिति भावः। 'शम्बरं सलिले पुंसि मृगदैत्य-विशेषयो' रिति मेदिनी। पाण्योः हस्तयोः शाखाकवलनविधिः अंगुलिदंशनविधानम्, हस्तयोरङ्गुलीः मुखे निधाय शत्रोः शरणगमनम् इति शत्रुशरणगमनप्रकारविशेषः। कण्ठदाम्नां कण्ठे रज्जूनां धारणम् इत्यपि शत्रुशरणगमनप्रकारान्तरम्। भुवने संसारे एषः जीवनोपाय-वर्गः जीवनधारणोपायानां वर्गः समूहः भवति।

जिस कामदेव राजा के शत्रुओं का स्त्रीवेष धारण करना, बन्धनमुक्त केश कर लेना अथवा केशों का मुण्डन करा कर संन्यासी रूप धारण करलेना, पानी के बीच में खड़ा हो जाना, दाँतों तले तिनका दबा कर शरण में जाना, भीलों के निवासस्थान जंगल-पहाड़ में प्रवेश करना, मृगचर्म का शरीराच्छादनवस्त्र-धारण करना, दोनों हाथों की अँगुलियों को दाँतों तले दबा कर शरण में जाना, गले में रस्सी बाँध कर शरण में पहुँचना, संसार में जीवन-धारण करने के लिये यह उपाय-समूह होता है ॥ ३० ॥

विशिष्टगीता धृतवंशदीप्तिः श्रुतिप्रतिष्ठा पुरुषार्थसूतिः।
सन्मार्गविस्तारवती सुजातिर्यं भारतश्रीर्भजतेऽभिरामा ॥३१॥

यं कामदेवं राजानं विशिष्टगीता विशिष्टैः वेदप्रामाण्यस्वीकर्तृभिः-गीता प्रख्यापिता, 'वेदप्रामाण्यस्वीकर्ता शिष्ट इत्युच्यते बुधैः' इति, पक्षे विशिष्टा उत्कृष्टा गीता श्रीकृष्णोपदेशः यस्यां सा, धृतवंशदीप्तिः धृता वंशस्य स्वान्ववायस्य दीप्तिः प्रकाशः विख्यातिरिति यावत् यस्यां सा, पक्षे-धृता राजवंशानां दीप्तिः विवरणं यस्यां सा, श्रुतिप्रतिष्ठा श्रुतिषु जगज्जनानां कर्णेषु प्रतिष्ठा स्थितिः यस्याः सा विश्रुता इत्यर्थः, पक्षे श्रुतीनां वेदानां प्रतिष्ठा स्थापनं यस्यां सा, पुरुषार्थसूतिः पुरुषाणां येऽर्थाः धनानि तेषां सूतिः प्रसूतिरुत्पत्तिः यस्यां सा, पक्षे पुरुषार्थानां धर्मार्थकाममोक्षाणां सूतिः उत्पत्तिर्यस्यां सा, सन्मार्गविस्तारवती सतां शोभनानां मार्गाणाम् पथाम् राजमार्गाणामित्यर्थः, यः विस्तारः विस्तीर्णता तद्वती, पक्षे-सतां सज्जनानां ये मार्गाः आचरणविषयाः तेषां विस्तारवती विवरणवती, सुजातिः शोभनाः ब्राह्मणादिजातयः यस्यां सा, पक्षे-शोभना जातयश्छन्दोविशेषाः यस्यां सा, अभिरामा मनोहारिणी, पक्षे-अभि भिया रहितं अभि इत्यत्र सामान्ये नपुंसकम् अभि भयरहितं रामः बलरामः यस्यां सा अत्र दृष्टभक्तिरितिवद्विशेषणस्य सामान्ये नपुंसकत्वात् समासः अन्यथा ह्रस्वत्वानुपपत्तिः,

भारतश्रीः भारतवर्षलक्ष्मीः, पक्षे-महाभारतशोभा भजते सेवते। अत्र उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। विशेषणैः महाभारतश्रियोऽपि वर्णनात्समासोक्तिरलङ्कारः।

जिस कामदेव राजा की विशिष्ट सज्जनों से प्रख्यापित अपने वंश की प्रख्याति धारण करनेवाली, लोगों के कानों में प्रतिष्ठा धारण करने वाली, पुरुषों के धन उत्पन्न करनेवाली, अच्छी सड़कों का विस्तार रखनेवाली, ब्राह्मण आदि सुन्दर जातियाँ रखनेवाली तथा मनोहर, भारतवर्ष की राजलक्ष्मी; दूसरे पक्ष में—विशेषताओं से युक्त भीष्मपर्व में गीता है जिसमें, राजाओं के वंशों का विवरण रखने वाली, वेदों के पक्ष की स्थापना करने वाली, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों को उत्पन्न करने वाली, सज्जनों के आचार के विषयों से युक्त, जाति अर्थात् आर्या आदि मात्रिक छन्दों से युक्त, भयरहित बलराम हैं जिसमें ऐसी महाभारत की सम्पत्ति उपाख्यानसमूह सेवा करती है ॥ ३१ ॥

छत्रचन्द्रमसि यस्य निर्मले लोकतापमपहर्तुमुद्यते।
कुड्मलीभवति वैरिभूभृतामातपत्रशतपत्रसंततिः ॥३२॥

यस्य कामदेवस्य राज्ञः निर्मले स्वच्छे छत्रचन्द्रमसि छत्रम् आतपत्रमेव चन्द्रमाः तस्मिन् लोकतापम् जनानां सन्तापम् अपहर्तुमुद्यते निवारयितुं तत्परे सति वैरिभूभृतां विपक्षभूपानाम् आतपत्रशतपत्रसन्ततिः छत्रपद्मानां समूहः कुड्मलीभवति अकुड्मलं कुड्मलं भवतीति कुड्मलीभवति अभूततद्भावे च्विः, छत्राणां समूहः असंकुचितोऽपि संकुचितो भवतीत्यर्थः। शत्रून् विजित्यासावेकातपत्रमेव राज्यं कुरुते इति भावः। अत्र रूपकमलङ्कारः। अत्र रथोद्धतावृत्तम्—रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

जिस कामदेव राजा के स्वच्छ छत्ररूपी चन्द्रमा के लोगों के सन्ताप दूर करते रहने पर शत्रुराजाओं के छत्ररूपी कमलों का समूह संकुचित हो जाता है अर्थात् यह उनके राजत्व का अपहरण कर लेता है ॥ ३२ ॥

औदार्ये रघुनाथधर्मसुतयोस्तत्सोदराणां पुनः
सौभ्रात्रे पतिदेवताव्रतविधौ पृथ्वीसुताकृष्णयोः।
श्रीरामायणभारतार्णवकृतेष्वाख्यानरत्नेषु च
श्रेयान् संप्रति कामदेवनृपतिः कौतूहली वर्तते ॥३३॥

श्रेयान् श्रेष्ठोऽयं कामदेवनृपतिः कामदेवनामको राजा रघुनाथधर्मसुतयोः रामयुधिष्ठिरयोः औदार्ये उदारताविषये, पुनः तत्सो-

दराणां तत्सहोदराणां भरतादीनां भीमादीनाञ्च सौभ्रात्रे भ्रातृस्नेहे पृथ्वीसुताकृष्णयोः सीताद्रौपद्योः 'कृष्णा स्याद् द्रौपदीनीलीकणाद्राक्षासु योषिति' इति मेदिनी। पतिदेवताव्रतविधौ पातिव्रतधर्मविषये श्रीरामायणभारतार्णवकृतेषु श्रीरामायणभारते अर्णवाविव तयोः कृतेषु रचितेषु उपनिबद्धेष्वित्यर्थः। आख्यानरत्नेषु च आख्यानानि उपाख्यानानि रत्नानि इव तेषु च संप्रति इदानीम् कौतूहली कुतूहलवान् एतद्विषयकविशेषकाव्यरचनायाम् उत्कण्ठित इति यावत्, वर्तते अस्ति। अत्रोपमालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम्, सूर्याश्वैर्मसजास्ततातः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

यह श्रेष्ठ कामदेव राजा, राम और युधिष्ठिर की उदारता के विषय में फिर उनके भाइयों के भ्रातृप्रेम के विषय में सीता और द्रौपदी के पातिव्रत धर्म के विषय में श्री रामायण तथा महाभारत में वर्णित श्रेष्ठ कथानकों के विषय में इस समय उत्कण्ठित हैं, अर्थात् उपाख्यानों की विशेष काव्य-रचना के विषय में उत्कण्ठित हैं ॥ ३३ ॥

ज्ञानं जृम्भयति श्रियं विशदयत्यानन्दमुद्दीपय-
त्याधत्ते मतिपाटवं वितनुते वाचां समीचीनताम्।
प्रत्यक्षीकुरुते पदार्थनिवहं ख्यातिं प्रतिष्ठापय-
त्यन्यः को नृपतेर्विनोदविभवः सत्सूक्तिगोष्ठीरसात् ॥३४॥

सत्सूक्तिगोष्ठीरसरूपः विनोदविभवः ज्ञानं जृम्भयति विकासयति श्रियं वाक्शोभां विशदयति स्वच्छीकरोति संस्करोतीत्यर्थः आनन्दम् उद्दीपयति उत्तेजयति वर्धयतीति यावत्, मतिपाटवं बौद्धिकनैपुण्यम् आधत्ते ददाति वाचां वचनानां समीचीनताम् औचित्यं वितनुते विस्तारयति शिक्षयतीति भावः, पदार्थनिवहं लौकिकंपदार्थनिवहं वस्तुसमूहं, शास्त्रीयं पदार्थनिवहम् अभिधेयं लक्ष्यं व्यङ्ग्यं च शब्दार्थसमूहं प्रत्यक्षीकुरुते प्रकटयति परिचाययतीति भावः। ख्यातिं प्रसिद्धिं प्रतिष्ठापयति द्रढयति विस्तारयतीति वा, अतः सत्सूक्तिगोष्ठीरसात् सतां सज्जनानां सुक्तिगोष्ठीरसात् सुभाषितसमितेरानन्दात् अन्यः अतिरिक्तः नृपतेः वास्तविकनरपालस्य विनोदविभवः मनोऽवलम्बनविषयः कः? कोऽस्ति? न कोऽपीति भावः। वास्तविकनरपालस्य मनोऽवलम्बनविषयः एष एव। वास्तविकनरपालस्य विनोदविभवः विनोदे मनोऽवलम्बने विभवः निर्वृतिः शान्तिरिति यावत् 'विभवो निर्वृतौ

धने' इति विश्वः, कः ? कोऽस्ति ? न कोऽपीति भावः । अत्र सत्सूक्तिगोष्ठीरसस्य विनोदविभवत्वसिद्धौ एकस्मिन् कारणे सत्यपि अनेकेषां कारणानामुपस्थितौ समुच्चयोऽलङ्कारः ।

अच्छे सुभाषितों की गोष्ठी का रस ज्ञान को विकसित करता है, वाणी के चमत्कार को स्वच्छ करता है, आनन्द बढ़ाता है, बौद्धिक चतुरता देता है, वाणी में औचित्य का समावेश करता है, पदार्थों का समूह परिचित कराता है, प्रसिद्धि उत्पन्न करता है । इसलिये अच्छे राजाओं के लिये सुभाषित-गोष्ठी के आनन्द के अतिरिक्त मनबहलाव की सामग्री क्या है ? अर्थात् यही एक अच्छे राजाओं के लिये मनोविनोद की सामग्री है और दूसरा विषय कुछ भी नहीं ॥ ३४ ॥

तस्यावदातैः कविसूक्तिसूत्रैः संस्यूतनानागुणरत्नराशेः ।
विनोदहेतोः कविराजसूरिर्निबन्धनद्वन्द्वमिदं विधत्ते ॥३५॥

अवदातैः विशुद्धैः 'अवदातः सिते गौरे विशुद्धेऽप्यन्यलिङ्गकः' इति मेदिनी, कविसूक्तिसूत्रैः कवीनां सुभाषितव्यवस्थाभिः 'सूत्रं तन्तुव्यवस्थयो' रिति मेदिनी, रत्नपक्षे तन्तुभिः, संस्यूतनानागुणरत्नराशेः संस्यूताः संलग्नाः नाना अनेकेषाम् गुणानामेव सहृदयतादीनां रत्नानां राशयः यस्मिन् तस्य, तस्य कामदेवस्य राज्ञः विनोदहेतोः मनोऽवलम्बनार्थं कविराजसूरिः कविराजपण्डितः इदं वक्ष्यमाणं निबन्धनद्वन्द्वं प्रबन्धयुगलं रामायणमहाभारतरूपं विधत्ते करोति । गुणरत्नमित्यत्ररूपकमलङ्कारः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

विशुद्ध कविसूक्ति परिपाटी के द्वारा उपनिबद्ध हैं अनेक गुणरूपी रत्नों के समूह जिसमें उस कामदेव राजा के मनबहलाव के लिये कविराज पण्डित यह प्रबन्धयुग्म बनाता है ॥ ३५ ॥

श्रीरामायणमाणिक्यं भारतस्वर्णमुद्रितम् ।
न कस्य कुरुते लोके विस्मयोल्लासि मानसम् ॥३६॥

भारतस्वर्णमुद्रितं महाभारतस्वरूपसुवर्णखचितं श्रीरामायणमाणिक्यं श्रीरामायणस्वरूपं माणिक्यं लोके कस्य मानसं चित्तं विस्मयोल्लासि आश्चर्यविस्फारितं न कुरुते न करोति, सर्वस्यैव मानसम् आश्चर्यचकितं करोतीत्यर्थः ।

महाभारतरूपी सोने से जड़ी हुई श्रीरामायण रूपी मणि संसार में किसका मन आश्चर्यचकित नहीं कर देती है ॥ ३६ ॥

अथ कविः प्रारिप्सितकाव्यस्य निबन्धनशैलीं श्लोकद्वयेन निर्दिशति—

प्रायः प्रकरणैक्येन विशेषणविशेष्ययोः ।
परिवृत्त्या क्वचित्तद्वदुपमानोपमेययोः ॥३७॥
क्वचित् पदैश्च नानार्थैः क्वचिद्वक्रोक्तिभङ्गिभिः ।
विधास्यते मया काव्यं श्रीरामायणभारतम् ॥३८॥

प्रायः बहुशः प्रकरणैक्येन एकप्रस्तावेन क्वचित् क्वापि विशेषण-विशेष्ययोः परिवृत्त्या परिवर्तनेन विशेषणस्य विशेष्यत्वेन विशेष्यस्य विशेषणत्वेन चेति भावः, क्वचित् तद्वत् तेनैव प्रकारेण उपमानोपमेययोः परिवृत्त्या परिवर्तनेन उपमानस्योपमेयत्वेनोपमेयस्योपमानत्वेन चेत्यर्थः, क्वचित् नानार्थैः अनेकार्थैः पदैः सुप्तिङन्तरूपैः शब्दैः, क्वचित् वक्रोक्ति-भङ्गिभिः वक्रोक्तिपरिपाटीभिः 'अन्यतात्पर्यग्रहणं वक्रोक्तिः' तस्याः रीत्या इति भावः, मया कविराजसूरिणा श्रीरामायणभारतम् एतन्महाकाव्य-युग्मविषयकं राघवपाण्डवीयमित्यर्थः, काव्यं विधास्यते रचयिष्यते ।

बहुलतया प्रकरण की एकता से, कहीं कहीं विशेषण और विशेष्य के रद्दोबदल कर देने से, इसी प्रकार कहीं कहीं उपमान और उपमेय के परिवर्तन से, कहीं अनेकार्थक शब्दों से, कहीं अन्यतात्पर्यग्रहण के तरीके से मेरे द्वारा अर्थात् कविराज पण्डित के द्वारा यह रामायण-महाभारतरूपी अर्थात् राघवपाण्डवीय रूपी काव्य बनाया जायगा ॥ ३६ ॥

पदमेकमपि श्लिष्टं वक्तुं भूयान् परिश्रमः ।
कथाद्वयैक्यनिर्वोढुः किं धरापतितोऽधिकम् ॥३९॥

एकमपि श्लिष्टं सम्बद्धम् अनेकार्थयुक्तमित्यर्थः, पदं सुप्तिङन्तं शब्दं वक्तुं प्रयोक्तुं भूयान् महान् परिश्रमः आयासः भवति प्रयोक्तुरिति भावः, कथाद्वयैक्यनिर्वोढुः कथाद्वयस्य आख्यानकयुगलस्य रामायण-महाभारतरूपस्य ऐक्यनिर्वोढुः एकत्वनिर्वाहकस्य ममेत्यर्थः। धरापतितः भूपालविषये अत्र सप्तम्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिः अधिकं किम् अधिक-परिश्रमदायकं किं कार्यम् ? न किमपीत्यर्थः। भूपतिप्रीत्यर्थं दुष्करमपि कार्यं मया परिश्रमानुभवविरहितेनैव कर्तव्यम् इति भावः ।

एक भी अनेक अर्थवाले शब्द का प्रयोग करने में महान् आयास करना पड़ता है किन्तु दो कथाओं की एकता निभाने वाले मेरे लिये महाराज कामदेव के विषय में आयास करने वाला कौन सा कार्य है ? अर्थात् कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे राजा की प्रसन्नता के लिये करने में मुझे परिश्रम का अनुभव हो ॥ ३९ ॥

श्रीमद्रामायणं गङ्गा भारतं सागरो महान् ।
तत्संयोजनकार्यज्ञः कविराजो भगीरथः ॥४०॥

श्रीमत् शोभमानं रामायणं गङ्गा अस्ति पवित्रत्वादिति भावः, भारतं महाभारताख्यानं महान् सागरः समुद्रः अस्ति विस्तृतत्वादित्यर्थः । तत्संयोजनकार्यज्ञः तयोः रामायणमहाभारतयोः संयोजनकार्यज्ञः संमिश्रणकार्यमर्मज्ञः कविराजः कविराजपण्डितः भगीरथः मन्तव्यः । अत्र रूपकमलङ्कारः ।

पवित्रता के कारण श्री रामायण तो गंगा जी है और विस्तीर्णता के कारण महाभारत समुद्र है, रामायण-महाभारत इन दोनों का संमिश्रण करने वाले कविराज पण्डित भगीरथ हैं ॥ ४० ॥

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥४१॥

सुबन्धुः वासवदत्तागद्यकारः, बाणभट्टः कादम्बरीकविः, कविराजः राघवपाण्डवीयरचयिता इति त्रयः एते त्रयः कवयः, वक्रोक्तिमार्गनिपुणाः वक्रोक्तिमार्गे भङ्गिमामयश्लेषरचनापरिपाट्यां निपुणाः कुशलाः सन्तीत्यर्थः । चतुर्थः अस्मिन् मार्गे चतुर्थः कविः विद्यते अस्ति न वा अथवा नास्ति, कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी इति न्यायेन एतादृशस्य कवेः संभावनाऽपि भवितुमर्हति । अत्र प्रस्तुताप्रस्तुतानामेकधर्मसम्बन्धाद् दीपकमलङ्कारः ।

वासवदत्तागद्य के रचयिता सुबन्धु, हर्षचरित तथा कादम्बरी के निर्माता बाणभट्ट, तथा राघवपाण्डवीयम् के कर्ता कविराज ये तीनों भङ्गिमामयश्लेषरचना की परिपाटी में निपुण हैं । इस प्रकार का कवि कोई चतुर्थ व्यक्ति है या नहीं है इसमें सन्देह है ।

रम्या रामायणी यैषा भारती सैव भारती ।
अर्धनारीश्वरमयी मूर्तिरेकत्र शोभताम् ॥४२॥

या एषा रम्या मनोहरा रामायणी रामायणसम्बन्धिनी भारती वाणी, भारती महाभारतसम्बन्धिनी भारती वाणी सैव तत्स्वरूपैवेत्यर्थः द्वे अपि अर्धनारीश्वरमयी मूर्तिः अर्धपार्वतीशङ्करमयी मूर्तिरिव अत्र गम्योपमा, एकत्र एकस्मिन स्थाने राघवपाण्डवीयश्लिष्टप्रबन्धे इत्यर्थः शोभताम् राजताम् ।

जो यह सुन्दर 'रामायणमय वाणी है वही महाभारतमय वाणी भी है अर्थात् राघवपाण्डवीयम् काव्य रामायण भी है और महाभारत भी। ये दोनों अर्धनारीश्वरमयमूर्ति के समान एक ही काव्य में सब जगह संश्लिष्टरूप में शोभा प्राप्त करें।'

एकत्रचन्द्रातपसुन्दरस्य पार्श्वेऽपरस्मिन्स्फुरदुष्णभासः।
अयं सुमेरोरनुयाति लीलां कथाद्वयाश्चर्यमयः प्रबन्धः ॥४३॥

अयं राघवपाण्डवीयरूपः, कथाद्वयेन रामायण-महाभारत रूपेण आश्चर्यमयः आश्चर्यपरिपूर्णः प्रबन्धः एकत्र पार्श्वे एकस्मिन् भागे चन्द्रातपसुन्दरस्य चन्द्रातपेन चन्द्रिकया सुन्दरस्य मनोहरस्य अपरस्मिन् पार्श्वे अन्यभागे स्फुरदुष्णभासः स्फुरन् देदीप्यमानः उष्णभाः सूर्यः यस्य तस्य सुमेरोः सुमेरुपर्वतस्य लीलां रामणीयकम् अनुयाति धारयति प्राप्नोतीत्यर्थः, अयं प्रबन्ध एकस्मिन्नर्थे चन्द्रवंशमन्यस्मिन्नर्थे सूर्यवंशं वर्णयतीत्यप्यर्थो व्यज्यते। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति वृत्तम्। निदर्शनालङ्कारः।

यह दो कथाओं से युक्त चकित करनेवाला राघवपाण्डवीय प्रबन्ध एक बगल में चन्द्रमा की चाँदनी के द्वारा सुन्दर, दूसरे बगल में चमकनेवाला सूर्य है जिसके उस सुमेरुपर्वत की शोभा का अनुकरण करता है। अर्थात् इसके भी एक अर्थ में चन्द्रवंश और दूसरे अर्थ में सूर्यवंश का वर्णन होता है।

मनोज्ञरामायणभारताख्यभागीरथीसागरसंनिपाते ।
सन्तः प्रकुर्वन्त्ववगाहलीलामस्मिन्नघच्छेदिनि काव्यतीर्थे ॥४४॥

अस्मिन् अघच्छेदिनि पापविनाशके मनोज्ञरामायणभारताख्यभागीरथीसागरसंनिपाते मनोहररामायणमहाभारतसंज्ञकगंङ्गासागरसंगमे काव्यतीर्थे राघवपाण्डवीयकाव्यस्वरूपे ऋषिसेवितजले तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजस्सु च। अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु' इति मेदिनी, सन्तः सज्जनाः अवगाहलीलां स्नानक्रीडां पक्षे—पठनावबोधादिविलासं प्रकुर्वन्तु अत्र रूपकमलङ्कारः।

इस पापनष्टकरनेवाले रमणीय रामायणमहाभारतनामक गङ्गासागरसंगम रूप काव्यतीर्थ में सज्जन लोग स्नानक्रीड़ा, दूसरे पक्ष में—पठन-अवगमनादि विलास करें।

विस्तारितागाब्धिपुरीवनान्तां संदर्शितेन्द्वर्कदिनर्तुशोभाम्।
सृष्टिं कविस्सूक्तिमयीं वितन्वन्प्रजापतेः किं न समानमल्लः ॥४५॥

कविः कवयिता विस्तारितागाब्धिपुरीवनान्तां विस्तारितो वर्णितः पक्षे—विरचितः अगः पर्वतोवृक्षश्च अब्धिः समुद्रः पुरी नगरी वनान्तः वनानां स्वरूपं यस्यां ताम् 'अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति मेदिनी, 'अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽतिमनोहरे' इति विश्वः, सन्दर्शितेन्द्वर्कदिनर्तुशोभां सन्दर्शिता वर्णिता पक्षे—रचिता इन्दोः चन्द्रस्य अर्कस्य सूर्यस्य दिनानामृतूनाञ्च शोभा यस्यां तां सूक्तिमयीं शोभनवचनरूपां सृष्टिं काव्यम् पक्षे—संसारजातं वितन्वन् विस्तारयन् प्रजापतेः विधातुःसमानमल्लः सदृशयोधः सदृशपुरुषार्थीत्यर्थः किं न भवति ? अवश्यं भवतीति भावः। अत्रोपमालङ्कारः।

पर्वत समुद्र पुरी और वनों का स्वरूप वर्णन किया है जिसमें, दूसरे पक्ष में—रचना की है जिसमें, तथा चन्द्रमा सूर्य दिन और ऋतुओं की शोभा दिखलायी है जिसमें, कवि के पक्ष में वर्णन के द्वारा तथा ब्रह्मा के पक्ष में रचना के द्वारा, ऐसी सुन्दरवचनमय सृष्टि अर्थात् काव्य, दूसरे पक्ष में—संसार, फैलाता हुआ कवि क्या ब्रह्मा के समान योद्धा अर्थात् पुरुषार्थी नहीं है ? अर्थात् अवश्य ही कवि ब्रह्मा के समान पुरुषार्थी है।

दोषान्धकारव्यपसारणेन गुणाम्बुजोन्मीलननित्यदक्षाः।
सन्तः प्रबन्धं मम शोधयन्तु लोकं मयूखा इव चण्डरश्मेः ॥४६॥

चण्डरश्मेः सूर्यस्य मयूखाः किरणा लोकमिव संसारमिव दोषान्धकारव्यपसारणेन दोषाः दूषणानि त्रुटय इति यावत् अन्धकारा इव तेषां व्यपसारणेन दूरीकरणेन, पक्षे—दोषाणां रात्रीणां येऽन्धकाराः तेषां दूरीकरणेन गुणाम्बुजोन्मीलननित्यदक्षाः गुणाः माधुर्यादयः अम्बुजानि कमलानीव, पक्षे—गुणानि गुणवन्ति 'अर्श आद्यच्' अम्बुजानि गुणाम्बुजानि तेषामुन्मीलने विकासे नित्यदक्षाः सततचतुराः सन्तः सज्जनाः मम कविराजस्य प्रबन्धं बृहन्निबन्धं राघवपाण्डवीयमित्यर्थः शोधयन्तु शुद्धं कुर्वन्तु निर्दोषं विदधत्वित्यर्थः 'शुद्धं स्यात्त्रिषु केवले। निर्दोषे च पवित्रे च' इति मेदिनी। पक्षे पवित्रम्। अत्रोपमालङ्कारः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति वृत्तम्।

सूर्य की किरणें संसार को जैसे पवित्र करती हैं उसी प्रकार अन्धकार के समान दोषों को दूर करके, दूसरे पक्ष में—दोषा अर्थात् रात के अन्धकार को दूर करके माधुर्यादि गुणों के विकास करने में सतत दक्ष रहने वाले, दूसरे पक्ष में—गुणवान कमलों के विकसित करने में सतत दक्ष रहने वाले, सज्जन लोग मेरे राघवपाण्डवीयरूपी प्रबन्ध का संशोधन करें।

अनध्वन्याः काव्येष्वलसगतयः शास्त्रगहने-
ष्वदुःखज्ञा वाचां परिणतिषु मूकाः परगुणे ।
विदग्धानां गोष्ठीष्वकृतपरिचर्याश्च खलु ये
भवेयुस्ते किं वा कविभणितिकण्डूतिनिकषाः ॥४७॥

ये जनाः काव्येषु काव्यपरिपाटीषु काव्यनियममार्गेष्विति यावत् अनध्वन्याः पथिकेतराः अपरिचिता इत्यर्थः, शास्त्रगहनेषु शास्त्राण्येव गहनानि काननानि दुर्गमस्थानानीति भावः तेषु अलसगतयः मन्दसञ्चाराः, वाचां वाणीनां परिणतिषु परिणामेषु उपसर्गप्रत्ययादिभिः नामधातूनां विभिन्नरूपेष्वित्यर्थः अदुःखज्ञाः दुःखान्यजानन्तः तदमर्मज्ञा इति भावः, परगुणे अन्येषां गुणवर्णने मूकाः विद्वेषिस्वभावाद्वाचंयमाः, विदग्धानां चतुराणां पण्डितानामित्यर्थः गोष्ठीषु सभासु अकृतपरिचर्याः सेवारहिताः विदुषां सेवाविमुखा इति भावः, ते कविभणितिकण्डूतिनिकषाः कवीनां या भणितयः वचनानि तासां याः कण्डूतयः विवादार्थं खर्जनानि तेषां निकषाः घर्षणस्थानानि परीक्षास्थानानि इति भावः किं वा भवेयुः कथं वा भवेयुः न भवेयुरित्यर्थः । शास्त्रगहनेष्वित्यत्र रूपकमलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् 'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इतिलक्षणात् ।

जो कि काव्यमार्ग के पथिक नहीं हैं अर्थात् काव्य के नियमों से अपरिचित हैं, जो शास्त्ररूपी वन में मन्दगति वाले है, जो शब्दों के उपसर्ग-प्रत्यय आदि परिणामों के दुःख से अपरचित हैं अर्थात् जो उसके मर्म को नहीं जानते हैं, जो दूसरे के गुण वर्णन में मत्सरी होने के कारण मूक रहते हैं, जिन्होंने निपुण विद्वानों की सभा की सेवा नहीं की है वे कवियों के वचनविन्यास की खुजली के परीक्षक कैसे हो सकते हैं ?

असद्भिरारोपितदूषणापि न सूक्तिरार्यैरवधीर्यतां मे ।
पीत्वोज्झितां राहुमुखेन चान्द्रीं न किं सुधां नाकजुषो जुषन्ते ॥४८॥

असद्भिः दुर्जनैः आरोपितदूषणापि दूषितीकृतापि मे सूक्तिः मम काव्यम् आर्यैः सज्जनैः 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः' इत्यमरः, न अवधीर्यतां न उपेक्ष्यताम्, राहुमुखेन राहुवक्त्रेण पीत्वोज्झितां निपीय त्यक्तां चान्द्रीं चन्द्रसम्बन्धिनीं सुधां पीयूषं नाकजुषः स्वर्गनिवासिनः देवाः किं न जुषन्ते किं न सेवन्ते, सेवन्त एवेति भावः । अत्र दृष्टान्तोऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

दुर्जनों के द्वारा दोषारोपण किये जाने पर भी मेरा काव्य सज्जनों के द्वारा उपेक्षित न किया जाय। राहु के मुख के द्वारा पीकर त्याग देने पर भी चन्द्रमा-सम्बन्धिनी सुधा का क्या देवता लोग सेवन नहीं करते हैं? अर्थात् अवश्य करते हैं।

रत्नावतंस इव भारतमण्डलस्य
क्रामन्दिशो दशरथः स्फुटवीरलक्ष्मीः।
राजा सुमन्त्रविहिताभिरतिर्बभूव
पाण्डुर्यशोभिरभिरञ्जितसर्वलोकः ॥ ४६ ॥

दशरथः सूर्यवंशीयः दशरथनामा स्फुटवीरलक्ष्मीः स्फुटा प्रकटीभूता वीरलक्ष्मीः वीररसशोभा यस्य सः, दिशः दिग्वासिनो वीरान् क्रामन् स्वपराक्रमेणाभिभवन्, सुमन्त्रविहिताभिरतिः सुमन्त्रे एतन्नामके मन्त्रिणि विहिता कृता अभिरतिः अनुरक्तिः येन सः, यशोभिः पाण्डुः उज्ज्वलः, अभिरञ्जितसर्वलोकः अभिरञ्जितः अनुरञ्जितः सर्वलोकः येन सः, भारतमण्डलस्य भारतदेशपरिधेः 'मण्डलं परिधौ कुष्ठे देशे द्वादश राजसु' इति मेदिनी, रत्नावतंस इव रत्नकर्णभूषणमिव राजा बभूव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, इतः परं प्रायः सर्वत्र श्लेषोऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्, उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

सूर्यवंश में दशरथ नामवाला, जिसकी वीरता को शोभा प्रकट है, सुमन्त्र मन्त्री के ऊपर जिसका प्रेम है, जो यश से सफेद है तथा सभी लोगों का अनुरञ्जन करने वाला है वह भारतमंडल का रत्नकर्णभूषण के समान राजा हुआ।

महाभारतपक्षे—पाण्डुः पाण्डुनामा चन्द्रवंशीयः स्फुटवीरलक्ष्मीः प्रकटवीररसशोभः, दशदिशः क्रामन् स्वपराक्रमेण दशदिग्वासिनो वीरानभिभवन्, रथः रथवान् 'अर्श आद्यच्' महारथीत्यर्थः, सुमन्त्रविहिताभिरतिः सुमन्त्रे शोभनमन्त्रणायाम् विहिता कृता अभिरतिः प्रेम येन सः, यशोभिः औदार्यादिगुणप्रख्यातिभिः, अभिरञ्जितसर्वलोकः अनुरञ्जितसर्वलोकः भारतमण्डलस्य भारतभूपरिधेः रत्नावतंस इव रत्नकर्णभूषणमिव राजा बभूव।

पाण्डु नाम का चन्द्रवंशीय जिसके वीररस की शोभा प्रकट है, अपने पराक्रम से दशो दिशाओं को अपने वश में करने वाला, महारथी, सुन्दर मन्त्रणा में प्रेम करने वाला, अपने औदार्यादि गुण की प्रसिद्धि से सभी लोगों का अनुरञ्जन करने वाला, भारतभूमण्डल का रत्न कर्णभूषण के समान राजा हुआ।

मातुः श्रियं संदधदिन्दुमत्याः श्लाघ्यः शरत्काल इवोडुपङ्क्तेः ।
असौ प्रजारक्षणदक्षभावादजस्य चक्रे मनसः प्रमोदम् ॥५०॥

श्लाघ्यः प्रशंसनीयः असौ दशरथः मातुः इन्दुमत्याः इन्दुमतीसंज्ञिकायाः श्रियं कान्तिं संदधत् धारयन् 'धन्या पितृमुखी कन्या धन्यो मातृमुखः सुतः' इति नियमेन मातुः कान्तिधारणेन भाग्यशालित्वं सूचयति, इन्दुमत्याः चन्द्रवत्याः उडुपङ्क्तेः तारामण्डलस्य श्रियं संदधत् शरत्काल इव शरत्समय इव प्रजारक्षणदक्षभावाद् प्रजारक्षणनैपुण्यात् अजस्य स्वर्गतस्य अजनामकस्य पितुः मनसः प्रमोदम् मानसस्य आनन्दं चक्रे कृतवान् । अत्रोपमालङ्कारः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

प्रशंसा के योग्य, चन्द्रमा से युक्त तारामण्डल की कान्ति शरत्समय के समान अपनी माता इन्दुमती की कान्ति धारण करने वाले इस राजा दशरथ ने प्रजा की रक्षा करने में निपुणता के कारण स्वर्ग में रहने वाले पिता अज के मन को आनन्दित किया ।

पक्षे--श्लाघ्यः प्रशंसनीयः असौ पाण्डुः इन्दुमत्याः चन्द्रवत्याः उडुपङ्क्तेः तारामण्डलस्य श्रियं शोभां शरत्काल इव शरत्समय इव, मातुः अम्बालिकायाः श्रियं कान्तिं पाण्डुरवर्णामिति भावः, श्वश्र्वा द्वैपायने नियुक्ता सा सङ्गमकाले पाण्डुवर्णा जाता अतस्तद्वर्ण एव तस्यास्तनयः पाण्डुर्जातः इति पुराणप्रसिद्धिः, संदधद् धारयन् प्रजारक्षणदक्षभावात् प्रजारक्षणे नैपुण्यात् अजस्य प्रजास्रष्टुर्ब्रह्मणः मनसः प्रमोदं मानसस्योल्लासं चक्रे कृतवान् 'स्वसृष्टप्रजा संरक्षणाद् ब्रह्मणः प्रमोदः स्वाभाविक एव इति भावः ।

प्रशंसा के योग्य, चन्द्रमा से युक्त तारामण्डल की शोभा शरत्समय के समान माता अम्बिका की कान्ति धारण किये हुए इस पाण्डु राजा ने प्रजाओं के रक्षण में निपुणता के कारण ब्रह्मा जी के मन में आनन्द उत्पन्न किया । स्वनिर्मित प्रजाओं की रक्षा करने से ब्रह्मा जी के मन में आनन्द होना स्वाभाविक ही था ।

विचित्रवीर्यस्य दिवं गतस्य पितुः सः राज्यं प्रतिपद्य बाल्ये ।
पुरीमयोध्यां धृतराष्ट्रभद्रां सहस्तिशोभां सुखमध्युवास ॥५१॥

सः दशरथः दिवं स्वर्गं गतस्य प्राप्तस्य मृतस्येत्यर्थः, विचित्रवीर्यस्य आश्चर्यजनकसामर्थ्यस्य 'वीर्यं शुक्रे प्रभावे च तेजःसामर्थ्ययोरपि' इति विश्वः, पितुरजस्य राज्यं बाल्ये षड्वर्षीये वयसि एव

प्रतिपद्य प्राप्य धृतराष्ट्रभद्रां धृतं राष्ट्रस्य भद्रं कल्याणं यस्यां तां, सहस्तिशोभां हस्तिशोभया युक्ताम् अयोध्यां पुरीम् अयोध्यानामिकां नगरीं सुखं सानन्दं यथा स्यात् तथा अध्युवास निवसति स्म। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस राजा दशरथ ने स्वर्ग गये हुए, आश्चर्यजनक सामर्थ्य वाले अपने पिता अज का राज्य बचपन में ही प्राप्त करके राष्ट्र का कल्याण धारण करने वाली तथा हाथियों की शोभा धारण करने वाली अयोध्यापुरी में सुख से निवास किया।

पक्षे—सः पाण्डुः दिवंगतस्य स्वर्गं प्राप्तस्य विचित्रवीर्यस्य विचित्रवीर्यसंज्ञकस्य पितुः क्षेत्रपतेः, अयं पाण्डुः विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादुत्पन्नः इति पुराणम्, राज्यं बाल्ये शैशवे एव प्रतिपद्य अधिगत्य अयोध्यां न विद्यते योध्यः योधनीयः यस्यां तां धृतराष्ट्रभद्रां धृतराष्ट्रेण एतन्नामकेन ज्येष्ठभ्रात्रा भद्रं कल्याणं यस्यां ताम् सहस्तिशोभां हस्तिशब्दशोभया युक्तां हस्तिनापुरीमित्यर्थः सुखं सानन्दं यथा स्यात्तथा अध्युवास, तस्यां निवसति स्म।

उस राजा पाण्डु ने स्वर्ग गये हुए विचित्रवीर्य नामक पिता का राज्य बचपन में ही प्राप्त करके, जिसमें युद्ध करने योग्य प्रतिपक्षी कोई नहीं है तथा धृतराष्ट्र नामक बड़े भाई से कल्याण प्राप्त करने वाली, हस्तिशब्द की शोभा से युक्त अर्थात् हस्तिनापुरी में सुख से निवास किया।

बाणश्रेणिकरालकार्मुकभृता तेन घ्नता विद्विषः,
क्ष्माभारक्षयजृम्भितोरगपतिप्रारब्धनानाशिषा ।
पूर्वोर्वीपतिकल्पिताभयचतुर्दिक्पालवर्जां निजा-
माज्ञां स्थापयता त्रिलोकवलये दोर्मण्डलं मण्डितम् ॥५२॥

बाणश्रेणिकरालकार्मुकभृता बाणानां श्रेणी परम्परा तया करालं भयङ्करं यत् कार्मुकं धनुः तद्भृता तद्धारकेण, विद्विषः रिपून् घ्नता नाशयता, क्ष्माभारक्षयजृम्भितोरगपतिप्रारब्धनानाशिषा क्ष्माभारस्य पृथ्वीभारस्य क्षयेण नाशेन बहुरिपुजनानां हननादिति भावः, जृम्भितः जृम्भिकया युक्तः भारस्य सुवहत्वेन पूर्वश्रमापनिनीषयाऽऽलस्योपगमादिति भावः, यः उरगपतिः शेषनागः तेन प्रारब्धाः नाना आशिषः यस्य तेन, पूर्वोर्वीपतिकल्पिताभयचतुर्दिक्पालवर्जां पूर्वे स्वपूर्वजाः ये उर्वीपतयः भूपतयः तैः कल्पितम् अभयं येभ्यस्तेषां चतुर्दिक्पालानाम् इन्द्रादीनां

वर्जां वर्जनं यस्यां तां निजामाज्ञां त्रिलोकवलये त्रिभुवनमण्डले स्थापयता जगत्त्रयनिवासिनः स्वाज्ञां ग्राहयता इत्यर्थः, तेन दशरथेन पक्षे—पाण्डुना दोर्मण्डलं भुजद्वयवलयं बाणप्रक्षेपणसमयोपलक्षितं बाहुद्वयमितिभावः, मण्डितम् आभूषितम् शरसन्धानविशेषमुद्रयेति भावः। अत्र क्षमाभारक्षयस्य असम्बन्धे सम्बन्धवर्णनादतिशयोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

बाणों के समूह से भयंकर धनुष धारण करने वाले, शत्रुओं के मारने वाले, पृथ्वी के भार के कम होने से पूर्वश्रम के आलस्य से जमुहाई लेने वाले शेषनाग के द्वारा अनेक आशीर्वाद दिये जाते हैं जिसके लिये, अपने पूर्वज राजाओं के द्वारा दिया गया है अभय जिन्हें उन चतुर्दिक्पालों को छोड़ कर अपनी आज्ञा तीनों भुवन में स्थापित करने वाले उस दसरथ ने, पक्षे—पाण्डु ने अपनी दोनों भुजाओं के मण्डल को सुशोभित किया। बाण फेंकने के समय वलयाकार दोनों भुजाओं को इसने सुशोभित किया यह भावार्थ है।

विक्षिप्तस्य प्रतिनृपकुलं राजशब्दस्य लोके,
तेनात्मानं नियतविषयं कुर्वता तेजसश्च।
पादन्यासः शिरसि रचितः सर्वपृथ्वीधराणां
छत्रच्छायामपगमयता घर्मभासा च तुल्यम् ॥५३॥

लोके संसारे प्रतिनृपकुलं सर्वत्र राजवंशेषु विक्षिप्तस्य प्रसृतस्य राजशब्दस्य 'राजा' इतिपदस्य तेजसश्च प्रतापस्य, सूर्यपक्षे—प्रभायाः नियतविषयं निश्चितस्थानम् आत्मानं स्वं कुर्वता विदधता छत्रच्छायामपगमयता छत्रच्छायाम् राजच्छत्राणां सच्छोभामपगमयता दूरीकुर्वता राज्यापहरणेनेतिभावः 'छाया स्यादातपाभावे प्रतिबिम्बार्कयोषितोः। पालनोत्कोचयोः कान्तिसच्छोभापङ्क्तिषु स्त्रियाम्' इति मेदिनी। सूर्यपक्षे—छत्राणां छायामातपाभावम् अपगमयता प्रातर्मध्याह्नादिक्रमेण संचारयता, तेन दशरथेन, पक्षे—पाण्डुना घर्मभासा उष्णरश्मिना सूर्येण तुल्यं सदृशं यथा स्यात्तथा सर्वपृथ्वीधराणां सर्वेषां राज्ञां, पक्षे—पर्वतानां शिरसि उत्तमाङ्गे आज्ञाप्रदानेनेति भावः, पक्षे—शिखरेषु, पादन्यासः पराभवेनापमानः कृतः इति लक्ष्यार्थः, पक्षे—रश्मिनिःक्षेपः रचितः कृतः। तुल्यशब्दस्य क्रियाविशेषणत्वेऽप्युभयगतक्रिययोरुपमेयोपमानभावत्वादुपमैवालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तं, मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद्गुरू चेत्।

संसार में प्रत्येक राजवंश में फैले हुए 'राजा' शब्द का तथा तेज का नियत विषय अपने आपको करने वाले, राजछत्र की छाया हटाने वाले, सूर्यपक्ष में—छाते की छाया दिन के चढ़ने के क्रम से इधर से उधर हटाने वाले, उस दशरथ ने, दूसरे पक्ष में—उस पाण्डु ने सूर्य के समान सभी राजाओं के शिर पर, पैर रक्खा अर्थात् सभी राजाओं को हरा कर अपने अधीन किया, सूर्यपक्ष में—सभी पर्वतों के शिखरों पर किरणों का प्रक्षेप किया।

करग्रहात्कोसलकेकयेन्द्रभुवोर्गुरुश्रीर्विनमत्सुमित्रः।
पृथावरोधः समरेजितारिर्गोप्ता हिमाद्रीश्वरतां स लेभे ॥५४॥

गोप्ता रक्षकः स दशरथः कोसलकेकयेन्द्रभुवोः कोसलकेकयेन्द्रौ कोसलकेकयदेशनृपौ भुवौ उत्पत्तिस्थानभूतौ ययोस्तयोः कौसल्या-कैकय्योः करग्रहात् पाणिग्रहणात् विवाहकरणादित्यर्थः, गुरुश्रीः गुर्वी महती श्रीः शोभा यस्य सः, विनमत्सुमित्रः विनमन्ती प्रणमन्ती सुमित्रा यस्य सः, पृथौ समरे महति युद्धे अरोधः महतापि वैरिणा नास्ति रोधो वारणं यस्य सः अवारित इत्यर्थः जितारिः जिताः पराजिताः अरयः शत्रवः येन सः हिमाद्रीश्वरतां हिमालयपर्वता-धिकारित्वं लेभे प्राप्तवान्। उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजाति वृत्तम्।

कोशल तथा केकय नरेन्द्र की कन्याओं अर्थात् कौसल्या और कैकेयी का पाणिग्रहण करने से अधिक शोभावाले, सुमित्रा से विवाह करने वाले, बड़े युद्ध में भी अबाधित होकर शत्रुओं के जीतने वाले जन-रक्षक उस दशरथ ने हिमालय पर्वत का भी अधिकार प्राप्त किया।

पक्षे—कोसलकेकयेन्द्रभुवोः कोसलकेकयभूपतिभूम्योः तद्देशयो-रिति यावत्, करग्रहात् राजकरग्रहणात् गुरुश्रीः गुर्वी महती श्रीः सम्पत्तिर्यस्य सः, विनमत्सुमित्रः विनमन्ति प्रणमन्ति आज्ञाप्रतीक्ष-काणि इति भावः सुमित्राणि सुहृदो यस्य सः, पृथावरोधः पृथा कुन्ती अवरोधः राज्ञी यस्य सः 'अवरोधो राजदारेष्वपि तासां गृहेषु च' इति कोशः, समरे युद्धे जितारिः जिताः अरयः येन सः, गोप्ता रक्षकः सः पाण्डुः हि इति पादपूरणे माद्रीश्वरतां माद्रीपतित्वं लेभे प्राप्तवान्।

कोसल तथा केकय राजा के देशों के राजकर ग्रहण करने से बड़ी सम्पत्ति वाले, झुके हुए अर्थात् आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाले हैं अच्छे मित्र जिसके, कुन्ती है रानी जिसकी, युद्ध में शत्रुओं को जीतने वाले, जनरक्षक उस पाण्डु ने माद्री का स्वामित्व प्राप्त किया अर्थात् माद्री से विवाह किया।

ततः प्रजानां परिपालनेन कृतात्मकृत्यः क्षितिपः कदाचित् ।
प्रियानुयातो मृगयानुरोधात् सयौवनश्रीः प्रययौ वनान्तम् ॥५५॥

ततस्तदनन्तरं प्रजानां जनानां परिपालनेन संरक्षणेन कृतात्मकृत्यः कृतं निर्व्यूढम् आत्मकृत्यं स्वकर्तव्यं येन सः, सयौवनश्रीः यौवनश्रिया संयुक्तः तरुण इति यावत् क्षितिपः राजा दशरथः पक्षे—पाण्डुः, कदाचित् कस्मिंश्चित् समये मृगयानुरोधाद् आखेटकुतूहलात् आखेटार्थमित्यर्थः, प्रियानुयातः प्रियैः प्रियसुहृद्भिः, पक्षे—प्रियाभ्यां कुन्तीमाद्रीपत्नीभ्याम् अनुयातः अनुगतः, वनान्तं वनप्रान्तम् 'अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽति मनोहरे' इति विश्वः, प्रययौ गतवान् । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

इसके बाद प्रजाओं की रक्षा करने से अपना कर्त्तव्य पूरा करने वाला, तरुण राजा दशरथ, दूसरे पक्ष में—पाण्डु किसी समय शिकार खेलने के अनुरोध से प्रियमित्रों से संयुक्त, दूसरे पक्ष में—दोनों पत्नी कुन्ती-माद्री से युक्त जंगली प्रदेश में पहुँचे ।

शावानुविद्धहरिणीरसितोलपानां
कोलावलीदलितबालकसेरुकाणाम् ।
दन्तावलोन्मथितपल्लवशल्लकीनां
राजाभवद्वनभुवामुपकण्ठवर्ती ॥ ५६ ॥

राजा दशरथः पक्षे—पाण्डुः, शावानुविद्धहरिणीरसितोलपानां शावैः शिशुभिः अनुविद्धाः अनुगताः याः हरिण्यः ताभिः रसिताः आस्वादिताः उलपाः वीरुधः यासु तासां 'लता प्रतानिनी वीरुद्-गुल्मिन्युलप इत्यपि' इत्यमरः, कोलावलीदलितबालकसेरुकाणां कोलावलीभिः शूकरपङ्क्तिभिः दलितानि खण्डितानि बालकसेरुकाणि कसेरुसंज्ञककन्दानि यासु तासाम्, दन्तावलोन्मथितपल्लवशल्लकीनां दन्तावलैः हस्तिभिः उन्मथिताः उत्पाटिताः पल्लवाः यासामेवंभूताः शल्लक्यः लताविशेषाः यासु तासाम् वनभुवां वनस्थलीनाम् उपकण्ठवर्त्ती समीपवर्ती बभूव, तत्र गतवानित्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

राजा दशरथ, दूसरे पक्ष में—पाण्डु बच्चों से अनुसृत हरिणियों के द्वारा खायी गईं हैं लताएं जिनमें, सुअरो के समूह के द्वारा टुकड़े टुकड़े किये गये हैं अर्थात् खाये गये हैं छोटे-छोटे कसेरू जिनमें, हाथियों के द्वारा तोड़े-मरोड़े गये पल्लव वाली शल्लकी नाम की लतायें हैं जिनमें, ऐसे वन प्रदेशों के समीप पहुँचे ।

शङ्कुव्याकीर्णरङ्कु द्रुतनिशितशरक्षुण्णदीव्यत्तरक्षु
ज्याघोषक्षुब्धकण्ठीरवरवचकितव्यस्तमातङ्गयूथम् ।
खड्गव्यालूनखड्गं तुमुलकलकलप्रान्तकूजच्छकुन्तं
भल्लध्वस्ताच्छभल्लं वनभुवि मृगयाकर्म तेन प्रतेने ॥५७॥

तेन राज्ञा दशरथेन पक्षे—पाण्डुना वनभुवि विपिनभूमौ शङ्कुव्याकीर्णरङ्कु शङ्कुना प्रहरणविशेषेण व्याकीर्णाः इतस्ततो विक्षिप्ता रङ्कवो मृगविशेषा यस्मिन् तत्, द्रुतनिशितशरक्षुण्णदिव्यत्तरक्षु द्रुताः शीघ्रगामिनः ये निशिताः तीक्ष्णाः शराः तैः क्षुण्णाः खण्डिताः दीव्यन्तः क्रीडन्तः तरक्षवो व्याघ्रविशेषाः, लघुकायव्याघ्राः इत्यर्थः 'चित्ता' इति भाषायाम्, यस्मिन् तत्, ज्याघोषक्षुब्धकण्ठीरवरवचकितव्यस्तमातङ्गयूथम् ज्याघोषेण मौर्वीशब्देन क्षुब्धाः क्षोभं गताः, क्रुद्धा इति यावत्, ये कण्ठीरवाः केसरिणः तेषां रवेण शब्देन चकितानि चञ्चलीकृतानि व्यस्तानि इतस्ततो विभक्तानि मातङ्गयूथानि हास्तिकानि यस्मिन् तत् खड्गव्यालूनखड्गं खड्गेन असिना व्यालूनाः खण्डिताः खड्गाः खड्गिनः 'गेंडा' इति भाषायाम्, 'गण्डके खड्गखड्गिनौ' इत्यमरः, यस्मिन् तत्, तुमुलकलकलप्रान्तकूजच्छकुन्तं तुमुलः सघनः यः कलकलः सैनिकमृगयाशब्दः तेन प्रान्ते समीपे कूजन्तः त्रासेन शब्दं कुर्वन्तः शकुन्ताः पक्षिणः यस्मिन् तत्, भल्लध्वस्ताच्छभल्लं भल्लेन भाला इति प्रसिद्धेन अस्त्रविशेषेण ध्वस्ताः विनष्टाः अच्छभल्लाः भल्लूकाः 'अच्छभल्लस्तु भल्लूकः' इति नाममाला, यस्मिन् तत्, एवंभूतं मृगयाकर्म आखेटक्रीडनं प्रतेने विस्तारितं कृतमित्यर्थः। अत्रानुप्रासो यमकञ्चेति शब्दालङ्कारः। स्रग्धरावृत्तम्।

उस राजा दशरथ ने दूसरे पक्ष में—पाण्डु ने जङ्गल में शङ्कु नामक विशेष अस्त्र से इधर-उधर बिखर गये हैं रङ्कुजाति के मृगविशेष जिसमें, शीघ्रगामी तेज बाणों से बेध दिये गये हैं खेलते हुए छोटी जाति के बाघ अर्थात् चीते जिसमें, प्रत्यञ्चा की टंकार से क्रोध भरे सिंहों के शब्द से भयभीत तथा इधर-उधर बिखर गये हैं हाथी के झुण्ड जिसमें, तलवार से काट दिये गये हैं गैंडे जिसमें, सघन सैनिक शब्दों से वन-प्रान्त में भयत्रस्त शब्द कर रहे हैं पक्षी जिसमें, भाले से विनष्ट किये गये हैं भालू जिसमें, इस प्रकार का शिकार खेलने का कृत्य फैलाया, अर्थात् इस प्रकार का मृगयाकर्म किया ।

एवं स तेनानुदिनं वनेषु निषेव्यमाणो मृगयाविहारः ।
समीरणोत्सेक इवाप्सु नावं सप्ताङ्गचिन्तां नृपतेर्जहार ॥५८॥

तेन राज्ञा दशरथेन, पक्षे—पाण्डुना वनेषु एवं उक्तप्रकारेण अनुदिनं प्रतिदिनं निषेव्यमाणः अनुशीलितः स मृगयाविहारः आखेटक्रीडा अप्सु जलेषु समीरणोत्सेकः पवनसञ्चारः नावमिव नौकामिव नृपतेः भूपस्य सप्ताङ्गचिन्तां स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानां राज्यसप्ताङ्गानां चिन्तामनुचिन्तनं जहार हृतवान् । यथा जले पवनावेगो नावं हरति तथैव वने मृगयारसः नृपतेः राज्यचिन्तनं दूरमपहृतवान् । राज्यचिन्तां विहाय मृगयायां निरतो बभूवेत्यर्थः । अत्रोपमालङ्कारः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

उस राजा दशरथ के द्वारा, दूसरे पक्ष में—पाण्डु के द्वारा बन में इस प्रकार से संसेवित उस आखेटक्रीडा ने, पानी में हवा का संचार जैसे नाव को दूर हरण कर लेता है उसी प्रकार राजा के स्वाम्यादि सप्तांगों के अनुचिन्तन को हर लिया अर्थात् राज्य-चिन्ता छोड़ कर राजा शिकार खेलने में ही तल्लीन रहने लगे ।

स गाढबुद्धिस्तमसोपकण्ठे विवर्तमानं गतभीरभीकम् ।
मत्वा मृगं मार्गणलक्ष्यभूतमनग्रजन्मानमृषिं चकार ॥५९॥

गाढबुद्धिः दृढबुद्धिः गतभीः निर्भयः स राजा दशरथः तमसोपकण्ठे तमसानदीसमीपे विवर्तमानं विशेषरूपेण तिष्ठन्तम् अभीकं निर्भयं निरुपद्रवस्थानत्वादिति भावः, अनग्रजन्मानम् ऋषिं ब्राह्मणेतरं मुनिं श्रवणनामानमिति यावत् मृगं मत्वा वन्यपशुमवगत्य कलशजलभरणभुकभुकशब्देनेति पुराणम्, 'मृगः पशौ कुरङ्गे च' इति मेदिनी, मार्गणलक्ष्यभूतं शब्दवेधिबाणोद्देश्यभूतं चकार कृतवान् । स्वरूपमनालोक्यैव शब्दवेधिबाणेन प्रजहार, इति पुराणम् । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

दृढ़बुद्धि निर्भय उस राजा दशरथ ने तमसानदी के समीप वर्तमान निरुपद्रव स्थान होने के कारण भयशून्य अब्राह्मण श्रवण नामक मुनि को (कलश में पानी-भरने का शब्द सुन कर) जङ्गली पशु समझ कर शब्दबेधि बाण का निशाना बनाया ।

पक्षे—तमसा मोहेन गाढबुद्धिः गाढा चञ्चला बुद्धिर्यस्य सः, गाहू विलोडने इति धातुः, गतभीः स्वकर्मणि निर्भयः सन् उपकण्ठे समीपे विवर्तमानं विक्रीडन्तं कामक्रीडासक्तमिति भावः अभीकं

कामुकं 'अभीकः कामुके क्रूरे निर्भये त्रिषु ना कवौ' इति मेदिनी, योगबलेन मृगरूपमाधाय यौवनवत्या कयाचिन्मृग्या सह रममाण-मिति पुराणप्रतिपादितोऽर्थः, अनग्रजन्मानं न अग्रजन्मा ज्येष्ठजन्मा यस्मात् सः तम्, सर्वज्येष्ठजन्मानं ब्राह्मणमित्यर्थः ऋषिं मृगं हरिणं मत्वा अवबुध्य मार्गणलक्ष्यभूतं चकार बाणशरव्यं कृतवान्, बाणेन प्रजहारेत्यर्थः।

मोह से चञ्चल बुद्धि वाले निर्भय उस राजा पाण्डु ने समीप में कामक्रीड़ा करते हुए कामुक (योगबल से मृग रूप धारण करके किसी युवती मृगी के साथ रमण करते हुए) सर्वश्रेष्ठ जन्म वाले अर्थात् ब्राह्मण ऋषि को हरिण समझ कर बाण का निशाना बनाया अर्थात् बाण से मारा।

तपस्विनश्छन्नतनोः शरेण विभिन्नमूर्त्तेर्जनकान्महाधेः।
शापं सुतापायनिबद्धमृत्युं प्रियानुवृत्तौ कुशलोऽप्यवाप ॥६०॥

प्रियानुवृत्तौ कुशलोऽपि सर्वेषां प्रियकर्मानुसरणे निपुणोऽपि दशरथः छन्नतनोः तरुगहनेनावृतदेहस्य, शरेण बाणेन विभिन्नमूर्तेः खण्डितशरीरस्य तपस्विनः मुनेः श्रवणस्य, महाधेः पुत्रवधेन महान् आधिः मानसीव्यथा यस्य तस्मात् जनकात् पितुः बाणविद्धस्य मुनेः-पितुः सकाशादित्यर्थः, सुतापायनिबद्धमृत्युं सुतस्य पुत्रस्य यः अपायः विश्लेषः तेन निबद्धो निश्चितो मृत्युः यस्मिन् तं शापं आक्रोशम् वचसा अशुभकामनामित्यर्थः अवाप प्राप्तवान्।

सबों के लिये प्रियकार्य के अनुसरण करने में निपुण होने पर भी दशरथ ने वृक्षसमूह से छिपे हुए शरीर वाले और बाण से खण्डित शरीर वाले उस तपस्वी के पिता जो कि पुत्र के बध होने से बहुत बड़ी मानसी व्यथा धारण किये हुए थे उनसे पुत्र के वियोग से निश्चय मृत्यु है जिसमें ऐसा शाप प्राप्त किया। अर्थात् 'पुत्र के वियोग से ही तुम भी मरोगे, ऐसा शाप उन्होंने दिया।

पक्षे—कुशलोऽपि लोकव्यवहारे निपुणोऽपि पाण्डुः महाधेर्जनकात् महत्याः मानसिक्याः व्यथायाः उत्पादकात्, छन्नतनोः मृगरूपेणावृत-स्वशरीरात् तथा शरेण विभिन्नमूर्तेः बाणेन विद्धदेहात् तपस्विनः तस्मान्मुनेः, तस्य मुनेः इत्यर्थः, सकाशात् सुतापाय अतिकष्टाय प्रिया-नुवृत्तौ कान्तानुसरणे कान्तासङ्गमे इत्यर्थः निबद्धमृत्युं निबद्धो निश्चितो मृत्युः यस्मिन् तं शापम् आक्रोशम् अवाप प्राप्तवान्। यथा स्त्रीप्रसङ्ग-काले मां त्वमवधीः तथैव स्त्रीसङ्गमे सति तत्काले एव तव ध्रुवो मृत्युर्भविष्यति इति शापं स तस्य मुनेः सकाशात् प्राप्तवान्।

लोक-व्यवहार में निपुण होने पर भी उस पाण्डु ने बहुत बड़ी मानसी व्यथा उत्पन्न करने वाले, मृगरूप से छिपे हुए स्वरूप वाले, बाण से बींधी हुई देह वाले उस मृगरूपधारी मुनि से बहुत बड़े कष्ट के लिये, प्रिया के संगम में निश्चित है मृत्यु जिसमें ऐसा शाप प्राप्त किया। अर्थात् उस मुनि ने शाप दिया कि मेरे ही समान स्त्रीप्रसंग करते ही उसी क्षण तुम्हारी मृत्यु होगी।

विषद्रुमस्य व्यसनाह्वयस्य फलं स लब्ध्वा सहसा निवृत्तः।
कान्तोपभोगेषु पराङ्मुखात्मा निनाय कालं निरपत्यदुःखी ॥६१॥

स दशरथः पक्षे—पाण्डुः व्यसनाह्वयस्य मृगयासंज्ञकस्य 'व्यसनं त्वशुभे सक्तौ पानस्त्रीमृगयादिषु' इति मेदिनी, विषद्रुमस्य विषवृक्षस्य फलं शापरूपं लब्ध्वा सहसा तत्कालं निवृत्तः परावर्तितवान् तथा कान्तोपभोगेषु कान्ताः प्रियाः ये विषयाद्युपभोगाः तेषु, पक्षे—कान्तायाः प्रियायाः उपभोगेषु संभोगेषु पराङ्मुखात्मा पराङ्मुखः विमुखः आत्मा यस्य सः, निरपत्यदुःखी निरपत्यः निःसन्तानश्चासौ दुःखी भूत्वा कालं समयं निनाय अतिवाहितवान्। अत्र रूपकमलङ्कारः।

वह दशरथ, दूसरे पक्ष में—पाण्डु मृगयानामक विष वृक्ष का फल प्राप्त करके लौटे तथा सुन्दर-विषयाद्युपभोगों से, दूसरे पक्ष में—पत्नी के संभोगों से विमुख होकर निःसन्तान होने के कारण दुखी होकर समय बिताने लगे।

असन्ततेः सन्ति कुतः सुखानीत्यसौ विचिन्त्य प्रतिपन्नमन्युः।
सार्धं स्वदारैर्नियतः सुतार्थे राजा सुरप्रार्थनतत्परोऽभूत् ॥६२॥

असन्ततेः निःसन्तानस्य कुतः सुखानि सन्ति न सन्तीत्यर्थः। तस्य इहलोके परलोकेऽपि गतिः नास्ति 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च' इति विचिन्त्य एवं विचार्य प्रतिपन्नमन्युः प्राप्तशोकः 'मन्युः पुमान् क्रुधि, दैन्ये शोके च यज्ञे च' इति मेदिनी। असौ राजा दशरथः, पक्षे—पाण्डुः स्वदारैः स्वपत्नीभिः सार्धं सह नियतः कृत-नियमः सुतार्थे पुत्रप्राप्त्यर्थं सुरप्रार्थनतत्परोऽभूत् देवस्तुतिसंलग्नो बभूव।

निःसन्तान व्यक्ति को सुख कहाँ? ऐसा विचार करके शोकयुक्त यह राजा दशरथ, दूसरे पक्ष में—पाण्डु अपनी स्त्रियों के साथ नियम पालन करते हुए पुत्र-प्राप्ति के लिये देवताओं की स्तुति करने में तत्पर हो गये।

एतस्मिन्सति समये विपक्षभीताः
क्षीराब्धेस्तटभुवमेत्य शक्रमुख्याः।

गीर्वाणाः कृतनतिसूक्तयस्त्रिधाम्ने
लोकानामुदितमुपप्लवं शशंसुः ॥६३॥

एतस्मिन् समये सति अस्मिन्नेव समये वर्तमाने दशरथकृतदेवाराधनसमये, पक्षे—पाण्डुकृतदेवाराधनसमये इत्यर्थः, विपक्षभीताः विपक्षेभ्यः वैरिभ्यः त्रस्ताः राक्षसभयपीडिता इत्यर्थः, शक्रमुख्याः इन्द्रादयः गीर्वाणाः देवाः क्षीराब्धेः पयोधेः तटभुवं तीरभूमिम् एत्य गत्वा कृतनतिसूक्तयः कृताः नतयः प्रणामाः सूक्तयः वेदमन्त्रैः स्तुतयश्च यैस्ते, त्रिधाम्ने त्रीणि धामानि स्वर्गमर्त्यपातालभुवनरूपाणि गृहाणि यस्य तस्मै विष्णवे इत्यर्थः, लोकानां भुवनानाम् उदितमुत्पन्नम् उपप्लवम् उपद्रवं राक्षसैः कृतमिति भावः, शशंसुः कथयामासुः। अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम्—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।

इसी समय में अर्थात् दशरथ के द्वारा देवताओं की आराधना करने के समय में, दूसरे पक्ष में—पाण्डु के द्वारा देवताओं की आराधना करने के समय में शत्रुओं से डरे हुए इन्द्रादि देवताओं ने क्षीरसमुद्र की तटभूमि में पहुँच कर नमस्कार तथा वेदमन्त्रों से स्तुति करके त्रिलोकीनाथ विष्णु भगवान् को भुवनों का राक्षसों के द्वारा उत्पन्न हुआ उपद्रव निवेदन किया।

संदिश्य त्रिदशगणं यथानुरूपं
तेजोंशैर्भुवि जननाय तत्र तत्र।
दैत्यारिस्तदनु तमोनुदोऽन्ववाये
स्वैरंशैरवतरितुं चतुर्भिरैच्छत् ॥६०॥

तदनु ततः पश्चात् दैत्यारिः विष्णुः त्रिदशगणं देवसमूहं तत्र तत्र तस्मिंस्तस्मिन्निर्दिष्टस्थाने भुवि पृथिव्यां तेजोंशैः तेजोविभागैः यथानुरूपं यथायोग्यं जननाय जन्मग्रहणाय आदिश्य आदेशं दत्त्वा स्वैः स्वकीयैः चतुर्भिरंशैः चतुर्भिर्विभागैः रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नरूपैरित्यर्थः, तमोनुदः सूर्यस्य अन्ववाये वंशे अवतरितुम् अवतारग्रहणाय ऐच्छत् इच्छतिस्म। प्रहर्षिणीवृत्तम्।

इसके पश्चात् श्री विष्णु भगवान ने देवगण को उस-उस निर्दिष्ट स्थान में पृथ्वी पर अपने तेज के अंशों से जन्म ग्रहण करने का आदेश देकर राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नरूप चार विभागों से सूर्य के वंश में स्वयं अवतार ग्रहण करने की इच्छा की।

पक्षे—दैत्यारिः श्रीविष्णुः त्रिदशगणं त्रिदशाः देवाः गणः सेनामुखं यस्य तम् इन्द्रमित्यर्थः 'सेनामुखं गुल्मगणौ' इत्यमरः, भुवि पृथिव्यां यथानुरूपं यथायोग्यं चतुर्भिस्तेजोंशैः यमवाय्वश्विनीकुमारद्वयरूपैः युधिष्ठिरभीमनकुलसहदेवशरीरधारिभिः सह अत्र सहार्थे तृतीया, तमोनुदोऽन्ववाये तमोनुदः चन्द्रस्य वंशे 'चन्द्राग्न्यर्कास्तमोनुदः' इत्यमरः, तत्र तत्र कुन्त्यां माद्रयाञ्च जननाय जन्मग्रहणाय अर्जुनरूपेणेति भावः, संदिश्य आदेशं दत्वा तदनु पश्चात् स्वैरंशैः स्वकीयैः सर्वैरंशैः सह अवतरितुं पूर्णावतारं ग्रहीतुम् ऐच्छत् इच्छति स्म। कृष्णस्तु भगवान् स्वयमित्युक्तः पूर्णावतारग्रहणं चकांक्षेति भावः।

श्री विष्णु भगवान ने देवता लोग सैनिक हैं जिसके उस इन्द्र को पृथ्वी पर यथायोग्य युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव शरीरधारी यम, वायु, अश्विनीकुमार युग्म, इन चार तेजों के अंशों के साथ चन्द्रमा के वंश में कुन्ती और माद्री के गर्भ से अर्जुन रूप में जन्म ग्रहण करने के लिये आदेश देकर इसके पश्चात् अपने सभी अंशों के साथ पूर्ण अवतार ग्रहण करने की इच्छा की। दशों या चौबीसों अवतारों में एक कृष्णावतार ही पूर्णावतार माने जाते हैं। अन्य सभी आंशिक अवतार माने जाते हैं।

ततो मुनिव्याहृतमन्त्रयुक्त्या तदीयपत्नीपरिचर्यया च।
भक्त्योपसक्त्या च नृपस्य जज्ञे पिण्डोपलब्धिर्विबुधप्रसादात् ॥६५॥

ततस्तदनन्तरं मुनिव्याहृतमन्त्रयुक्त्या मुनिना ऋष्यशृङ्गेण व्याहृतः उच्चारितः यो मन्त्रः तस्य युक्त्या विधिना तदीयपत्नीपरिचर्यया च तदीयानां दशरथसम्बन्धिनीनां पत्नीनां कौसल्याकैकेयीसुमित्राणां परिचर्यया देवाराधनया च नृपस्य दशरथस्य भक्त्या देवश्रद्धया उपसक्त्या उपासनया विबुधप्रसादात् अग्निदेवप्रसन्नताकारणात् पिण्डोपलब्धिः पायसपिण्डप्राप्तिः जज्ञे बभूव। यद्भक्षणेन तत्पत्नीनां पुत्राः प्रादुर्भूता इति भावः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इसके बाद ऋष्यशृङ्ग मुनि से उच्चारित मन्त्रों की विधि से और दशरथ की पत्नियों की देवाराधना से, राजा दशरथ की भक्ति और उपासना से, अग्निदेवता के प्रसन्न होने के कारण पायसपिण्ड प्राप्त हुआ। जिसके भक्षण करने से उन की पत्नियाँ गर्भवती हुईं।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं मुनिव्याहृतमन्त्रयुक्त्या मुनिना दुर्वाससा व्याहृतः उपदिष्टः यो मन्त्रः तस्य युक्त्या प्रयुक्त्या प्रयोगेणेत्यर्थः,

तदीयपत्नीपरिचर्यया च तदीयपत्न्योः पाण्डुपत्न्योः कुन्तीमाद्र्योः परिचर्यया आराधनया च नृपस्य राज्ञः पाण्डोः भक्त्या उपसक्त्या च भक्तिभावनया उपासनया च विबुधप्रसादात् विबुधानां देवानाम् धर्मवाय्विन्द्राश्विनीकुमाराणां प्रसादात् प्रसन्नताकारणात् पिण्डोपलब्धिः पिण्डप्राप्तिः पिण्डकारणानां पुत्राणां प्राप्तिः जज्ञे अभूत्।

इसके बाद दुर्वासा के उपदेश दिये हुए मन्त्र के प्रयोग से तथा उनकी पत्नियों अर्थात् कुन्ती-माद्री दोनों की आराधना से राजा पाण्डु की भक्ति और उपासना से धर्म, वायु, इन्द्र, अश्वनीकुमारद्वय की प्रसन्नता के कारण पिण्ड के कारणों की अर्थात् पुत्रों की प्राप्ति हुई।

स्फुरदृष्यशृङ्गविततान्यथान्वहं सवनान्तराण्यधिगतो महीपतिः।
चतुरोऽपि पञ्चमुखभासुरश्रियस्तनयानवाप हरिदस्रतेजसः ॥६६॥

अथ अनन्तरं महीपतिः राजा दशरथः स्फुरदृष्यशृङ्गविततनानि स्फुरन् देदीप्यमानः यः ऋष्यशृङ्गः एतन्नामकः ऋषिः तेन विस्तारितानि सवनान्तराणि यज्ञभेदान् अन्वहं प्रतिदिनम् अधिगतः प्राप्तवान् कृतवानित्यर्थः 'अन्तरमवकाशांशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये' इति मेदिनी, पञ्चमुखभासुरश्रियः पञ्चं विस्तृतं मुखं यस्य सः सिंहः तद्वत् भासुरा देदीप्यमाना श्रीः कान्तिर्येषां तान् 'पचि-विस्तार वचने' इति धातुः, अथवा पञ्चमुखः शिवः तद्वत् भासुरा श्रीर्येषां तान्, हरिदस्रतेजसः हरिः विष्णुः दस्रौ अश्विनीकुमारौ तद्वत् तेजो येषां तान्, चतुरोऽपि चतुःसंख्याकान् अपि अपिरत्र समुच्चये सहैवैकस्मिन् दिने इत्यर्थः 'अपि संभावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये' इति मेदिनी, तनयान् पुत्रान् रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नानित्यर्थः अवाप प्राप्तवान्। अत्र मञ्जुभाषिणीवृत्तम् 'सजसाजगौ भवति मञ्जुभाषिणी।'

इसके बाद राजा दशरथ ने अपनी कान्ति से चमकने वाले ऋष्यशृङ्ग ऋषि के द्वारा विस्तारित अर्थात् उनके विधान के अनुसार आयोजित यज्ञ प्रतिदिन किया, जिससे सिंह अथवा शङ्करजी के समान देदीप्यमान कान्तिवाले तथा विष्णु और अश्विनीकुमार के समान तेजस्वी चार पुत्रों को एक ही समय में प्राप्त किया।

पक्षे—अथ अनन्तरं सः चतुरः निपुणः पाण्डुः महीपतिः राजा स्फुरदृष्यशृङ्गवितता नि स्फुरन्तः विक्रीडन्तः ऋष्याः भल्लूकाः यत्र तत् स्फुरदृष्यं, स्फुरदृष्यं चादः शृङ्गं स्फुरदृष्यशृङ्गं, शृङ्गं पर्वतशिखरं तस्मिन् विततानि विस्तृतानि वनान्तराणि वनभेदान् वनविशेषा-

नित्यर्थः। अधिगतः प्राप्तवान्, 'ऋष्यः पर्वतभेदे स्याद् भल्लूके शोणके पुमान्' इति मेदिनीकरः, अन्वहं दिनक्रमेण क्रमश इत्यर्थः हरिदस्रतेजसः हरिश्च हरिश्च हरिश्चेति हरयः यमवाय्विन्द्राः 'स्वरूपामेकशेष एकविभक्तौ' इति पाणिनिसूत्रम्, 'हरिर्वातार्कचन्द्रेन्द्रयमोपेन्द्रमरीचिषु' इति विश्वः, दस्रावश्विनीकुमारौ हरयश्च दस्रौ च इति हरिदस्राः तेषां तेजसः शुक्रात् 'तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले शुक्रेऽप्यतस्त्रिषु' इत्यमरः, मुखभासुरश्रियः मुखेन भासुरा देदीप्यमाना श्रीः शोभा येषां तान् पञ्च पञ्चसंख्याकान् तनयान् पुत्रान् युधिष्ठिरभीमार्जुननकुलसहदेवानित्यर्थः अवाप प्राप्तवान्।

इसके बाद वह चतुर पाण्डु राजा खेलते हुए भालुओं वाली चोटियों पर फैले हुए विशेष वन में पहुँचे, क्रमशः यम, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार के वीर्य से मुख में देदीप्यमान शोभा धारण करने वाले पाँच पुत्रों को प्राप्त किया।

कृतार्थता कीदृगहो नृपस्य यदेनमालम्बितपुत्रमूर्तिः।
देवः स्वयं धर्ममयः सिषेवे सहानुजन्मा गुरुभक्तिनम्रः ॥६७॥

अहो इति प्रशंसायाम्, 'अहो धिगर्थे च करुणार्थविषादयोः, सम्बोधने प्रशंसायां विस्मये पादपूरणे' इति मेदिनी, नृपस्य दशरथस्य पक्षे—पाण्डोः कृतार्थता पूर्णमनोरथता कीदृक् कथंभूता? प्रशंसनीया इत्यर्थः, यत् स्वयं धर्ममयः देवः यज्ञपुरुषः विष्णुः 'धर्मोऽस्त्री-पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ। अहिंसोपनिषन्न्याये ना धनुर्यमसोमयोः' इति मेदिनी, रामरूपेणेत्यर्थः, पक्षे—धर्ममयः यमराजो देवः स्वयं युधिष्ठिररूपेणेत्यर्थः आलम्बितपुत्रमूर्तिः अवलम्बितपुत्रस्वरूपः सहानुजन्मा अनुजन्मभिः भ्रातृभिः सहितः, गुरुभक्तिनम्रः पितृभक्तिप्रह्वः सन् एनं दशरथं पक्षे—पाण्डुं सिषेवे सेवितवान्। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

अरे! राजा दशरथ की, दूसरे पक्ष में—पाण्डु की मनोरथपूर्णता कैसी होगी? जो कि स्वयं यज्ञपुरुष विष्णु राम रूप से, दूसरे पक्ष में—यमराजस्वरूप देवता युधिष्ठिर रूप से पुत्रस्वरूप धारण करके भाइयों के साथ पितृभक्ति से विनम्र होकर इस राजा की सेवा कर रहे थे।

स लक्ष्मणोन्नीतसमृद्धिरुद्यच्छत्रुघ्नसंपद्भरतैधितश्रीः ।
ज्यायान्विरेजे क्रमशोऽभिरामः कौमारमासाद्य वयः कुमारः ॥६८॥

स ज्यायान् ज्येष्ठः रामः कुमारः लक्ष्मणोन्नीतसमृद्धिः लक्ष्मणेन एतन्नामकेन लघुभ्रात्रा उन्नीता वर्द्धिता समृद्धिः उन्नतिः यस्य सः, उद्यच्छत्रुघ्नसंपद् उद्यन् वर्धमानः यः शत्रुघ्नः तेन संपद् सम्पत्तिः यस्य सः, भरतैधितश्रीः भरतेन एधिता वर्द्धिता श्रीः शोभा यस्य सः कौमारं वयः बाल्यं वयः आसाद्य प्राप्य क्रमशः क्रमिकोन्नत्या अभि न भीर्भयम् यस्मिन् तत् अभि यथा स्यात्तथा विरेजे विराजते स्म । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

वह सबसे बड़ा कुमार राम, लक्ष्मण के द्वारा जिसकी समृद्धि बढ़ायी गयी है, बढ़ते हुए शत्रुघ्न के द्वारा संपत्ति प्राप्त करने वाले, भरत के द्वारा जिसकी शोभा बढ़ायी गई है, वह बाल्य वयस प्राप्त करके क्रमशः भयरहित होकर सुशोभित होने लगे ।

पक्षे—अभिरामः सुन्दरः ज्यायान् ज्येष्ठः सः कुमारः युधिष्ठिरः, लक्ष्मणा राजचिह्नेन पद्मादिरेखयेति भावः 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमि'त्यमरः, उन्नीतसमृद्धिः उन्नीता अनुमिता समृद्धिः उन्नतिर्यस्य सः, उद्यच्छत्रुघ्नसंपद् उद्यन्ती प्रादुर्भवन्ती शत्रुघ्नी शत्रुघातिनी संपद् यस्य सः भरतैधितश्रीः भरतेन स्वकुलादिभूतेन राज्ञा एधिता वर्धिता श्रीः शोभा यस्य सः, कौमारं वयः बाल्यं वयः आसाद्य प्राप्य क्रमशः क्रमिकोन्नत्या विरेजे शुशुभे ।

पद्मादिरेखा के चिह्नों से अनुमित है उन्नति जिसकी, उत्पन्न हो रही है शत्रुविनाशकारिणी सम्पत्ति जिसकी, अपने कुल के आदिभूत राजा भरत से शोभा बढ़ रही है जिसकी, वह सुन्दर सबसे बड़ा कुमार युधिष्ठिर बाल्य वयस को प्राप्त कर के क्रमशः अत्यन्त सुशोभित होने लगे ।

युधिष्ठिरं भीमधनञ्जयाभ्यां समं दधानं नकुलेन लक्ष्मीम् ।
समादवाप्तं सहदेवनिष्ठं ज्येष्ठं सुतं वीक्ष्य तुतोष तातः ॥६६॥

तातः पिता दशरथः युधिष्ठिरं युधि संग्रामे स्थिरं भीमधनञ्जयाभ्यां समं भीमः शिवः धनञ्जयो वह्निः ताभ्यां समं तुल्यं 'भीमोऽम्बुवेतसे शंभौ घोरे चापि वृकोदरे' इति विश्वः, 'भीमः शम्भौ च पाण्डवे' इति त्रिकाण्डशेषः, 'धनञ्जयोऽर्जुने वह्निनागदिग्देहमारुते' इति मेदिनी, कुले लक्ष्मीं न दधानं न, कुले वंशे लक्ष्मीं शोभां न दधानं न धारयन्तमिति न धारयन्तमेवेत्यर्थः, सहदेवनिष्ठं देवनिष्ठया देवभक्त्या सह वर्तते इति सहदेवनिष्ठः तं समात् मया लक्ष्म्या सहितः समः विष्णुः तस्मात् अवाप्तं प्राप्तं तदंशादिति भावः, ज्येष्ठं सुतं राममित्यर्थः वीक्ष्य अव-

लोक्य तुतोष सन्तुष्टो बभूव। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। उपमालङ्कारोऽपि।

पिता दशरथ युद्ध में स्थिर रहने वाले, शिव और अग्नि के तुल्य, कुल में शोभा नहीं धारण करने वाले नहीं अर्थात् कुल में शोभा धारण करने वाले, देवताओं की भक्ति के सहित, विष्णु के अंश से प्राप्त बड़े पुत्र राम को देख कर बहुत सन्तुष्ट हुए।

पक्षे—तातः पिता सः पाण्डुः भीमधनञ्जयाभ्यां समं भीमार्जुनाभ्यां सहितं नकुलेन एतन्नामकेन माद्रीसुतेन लक्ष्मीं शोभां दधानं धारयन्तं सहदेवनिष्ठं सहदेवे एतन्नामके कनिष्ठपाण्डवे निष्ठा श्रद्धा प्रेमेतिभावः, यस्य तं मात् यमाद् यमांशादित्यर्थः 'मो यमे समयेऽपि स्याद् विषे च मधुसूदने' इति मेदिनी, अवाप्तं प्राप्तं ज्येष्ठं सुतं युधिष्ठिरं वीक्ष्य अवलोक्य तुतोष सन्तुष्टोऽभूत्।

पिता वह पाण्डु भीम और अर्जुन के साथ नकुल के द्वारा शोभा धारण करने वाले, सहदेव में प्रेम रखने वाले यमराज से प्राप्त हुए बड़े पुत्र युधिष्ठिर को देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

सन्तानलाभादनृणः पितॄणां हर्षादसंभावितपूर्वशापः।
सार्धं स्वदारैरनुभूतकामः स शक्रतोषैकरतिर्बभूव ॥७०॥

स दशरथः सन्तानलाभाद् अपत्यप्राप्तेः पितॄणाम् अनृणः पितॄणाम् ऋणमुक्तः सन् हर्षाद् प्रसादात् असंभावितपूर्वशापः असंभावितः अगणितः पूर्वशापः शूद्रमुनिशापः येन सः स्वदारैः सार्धं स्वपत्नीभिः सह अनुभूतकामः अनुभूतं कामं काम्यवस्तु येन सः 'कामः स्मरेच्छयोः पुमान्, रेतस्यपि निकामे च काम्येऽपि स्यान्नपुंसकम्' इति मेदिनी, शक्रतोषैकरतिः यज्ञादिद्वारा इन्द्रसन्तोषप्रेमवान् तत्पर इत्यर्थः, बभूव भूतवान्। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

वह राजा दशरथ सन्तान प्राप्ति से पितृऋण से मुक्त होकर हर्ष से पूर्वशाप की परवाह न करते हुए, अपनी पत्नियों के साथ काम्य वस्तुओं का उपभोग करते हुए यज्ञादि द्वारा इन्द्र को सन्तुष्ट करने में तत्पर हुए।

पक्षे—सः पाण्डुः सन्तानलाभात् पुत्रप्राप्तेः पितॄणाम् अनृणः ऋणमुक्तः सन् हर्षाद् अतिप्रसन्नत्वाद्धेतोः असंभावितपूर्वशापः असंभावितः विस्मृतः पूर्वशापः येन सः, स्वदारैः सार्धं स्वपत्न्या माद्र्या सह अनुभूतकामः उपभुक्तकामोपभोगः सन् शक्रतोषैकरतिः इन्द्रसन्तोषैकतत्परः, इन्द्रनिकटवर्ती स्वर्गवासी इत्यर्थः, बभूव भूतवान्।

वह पाण्डु पुत्र की प्राप्ति से पितरों से उऋण होकर अति प्रसन्नता के कारण पूर्वशाप को भूलकर अपनी पत्नी माद्री के साथ कामोपभोग करके शाप के कारण इन्द्र को सन्तुष्ट करने में तत्पर हो गये अर्थात् स्वर्ग चले गये ।

विद्या गुरूणां विनयादवाप्य काले कुमारा धृतराष्ट्रमेत्य ।
ववन्दिरे भूमिपतिं जनानां विलोचनालीमनिमेषयन्तः ॥७१॥

कुमाराः रामदयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः गुरूणां विनयात् नम्रताव्यवहारात् सेवनादिति भावः । विद्याः चतुर्दशविद्याः अवाप्य प्राप्य काले सायंप्रातरादिवन्दनोचितसमये, पक्षे—तद्वनवासिमुनिसमुदायनिर्णीतसमुचितसमये जनानां लोकानां विलोचनालीं नयनपरम्पराम् अनिमेषयन्तः निमेषरहितां कुर्वन्तः धृतराष्ट्रं धृतं राष्ट्रं येन तम् , पक्षे—धृतराष्ट्रनामानं भूमिपतिं राजानम् एत्य आगत्य ववन्दिरे वन्दनां कृतवन्तः । पूर्ववदुपजातिवृत्तम् ।

राजकुमार राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि गुरुओं के प्रति नम्रव्यवहार से सभी विद्याएँ प्राप्त करके सायं-प्रातः आदि वन्दनोचित समय में दूसरे पक्ष में—उस वन में रहने वाले ऋषियों के द्वारा निर्णीत उचित समय में लोगों की नयन-परम्परा को निर्निमेष करते हुए राष्ट्र के धारण करने वाले महाराज दशरथ के पास आकर, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्रनामक महाराज के पास आकर वन्दना किये ।

गुणैरुपेता गुरुभीष्महृद्यैः क्षत्रानुरूपैर्वचनैर्विनीताः ।
कृपाश्रयास्ते कुशलाः कलासु प्रमाणकोटिप्रवणा विजह्रुः ॥७२॥

ते रामादयः कुमाराः गुणैः शौर्यादिभिः उपेताः युक्ताः गुरुभीष्महृद्यैः गुरूणि सारभूतानि भीष्माणि भयङ्कराणि हृद्यानि मनोहराणि यानि वचनानि तैः 'भीष्मो गाङ्गेयभीमयोः' इति मेदिनी, क्षत्रानुरूपैः क्षत्रियोचितैः वचनैः विनीताः विनयं प्राप्ताः कृपाश्रयाः दयाश्रयीभूताः दयालव इत्यर्थः, कलासु कुशलाः निपुणाः, प्रमाणकोटिप्रवणाः प्रमाणानां शास्त्राणां कोटौ शिखरभागे प्रवणाः तत्पराः शास्त्राणां पारं गन्तुं तत्पराः सन्तः इत्यर्थः, विजह्रुः विहारं चक्रुः, चिक्रीडुरिति यावत् ।

वे राम आदि चारों राजकुमार शौर्यादि गुणों से युक्त, गंभीर, भयङ्कर तथा मनोहर, क्षत्रियोचित वचनों से नम्रता धारण किये हुए, दयालु और सभी कलाओं में निपुण, शास्त्रों की अन्तिमकोटि तक पहुँचने में तत्पर होकर विहार कर रहे थे।

पक्षे—ते युधिष्ठिरादयः कुमाराः गुरुभीष्महृद्यैः गुरोः द्रोणाचार्यस्य भीष्मस्य गाङ्गेयस्य च हृद्यैः मनोहरैः गुणैः शौर्यादिभिः उपेताः युक्ताः, क्षत्त्रा विदुरेण 'क्षत्ता शूद्रात्क्षत्रियजे प्रतीहारे च सारथौ। भुजिष्यातनयेऽपि स्यान्नियुक्तवेधसोः पुमान् ॥' इति मेदिनी, अनुरूपैः उचितैः वचनैः विनीताः शिक्षिताः, कृपाश्रयाः कृपाचार्यः आश्रयो येषां ते कृपाचार्याश्रिता इत्यर्थः, कलासु कुशलाः, प्रमाणकोटिप्रवणाः प्रमाणकोटिः कौरवपाण्डवानां क्रीडास्थानं तत्र तत्पराः सन्तः विजह्रुः विहारं चक्रुः।

वे युधिष्ठिर आदि राजकुमार द्रोणाचार्य और भीष्म के मनोनुकूल गुणों से युक्त, विदुर के द्वारा उचित वचनों से शिक्षित किये गये, कृपाचार्य का आश्रय लिये हुए, सभी कलाओं में निपुण, प्रमाणकोटि नाम के क्रीड़ास्थल में तत्पर अर्थात् वहाँ शस्त्रविद्या का अभ्यास करते हुए विहार कर रहे थे।

ते स्निग्धगम्भीरगिरः कुमारास्त्रैलोक्यतापप्रशमैकदक्षाः।
नवाम्बुवाहा इव धार्तराष्ट्रानुद्वेजयन्ति स्म चिरं विपक्षान् ॥७३॥

ते रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः कुमाराः, स्निग्धगम्भीरगिरः स्निग्धाः मधुराः गम्भीराः मांसलाश्च गिरः येषां ते त्रैलोक्यस्य यः सन्तापः दुःखं मेघपक्षे औष्ण्यं तस्य प्रशमे नाशने एकदक्षाः प्रधाननिपुणाः, विपक्षान् वर्षर्तुकारणेन विगतपक्षान् धार्तराष्ट्रान् हंसान् नवाम्बुवाहा इव नवमेघा इव चिरं सततं विपक्षान् शत्रून् उद्वेजयन्ति स्म व्याकुलयन्ति स्म, पक्षे—विपक्षान् विशिष्टसहायकयुक्तान् धृतराष्ट्रपुत्रान् व्याकुलयन्ति स्म। पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

वे राम आदि, दूसरे पक्ष में–युधिष्ठिर आदि राजकुमार, मधुर और पुष्ट वचन बोलने वाले, तीनों भुवन के कष्ट के नाश करने में निपुण, मेघपक्ष में गर्मी के नाश करने में निपुण, वर्षा ऋतु से नष्ट पंख वाले हंसों को बादल के समान हमेशा शत्रुओं को उद्विग्न करने लगे, दूसरे पक्ष में—विशिष्ट सहायकों वाले धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि को व्याकुल करने लगे।

गुरुकृपोपनतायुधविद्यया समधिकं परिबृंहिततेजसः।
पवनसंगतपावकसंनिभा नृपसुताः परभीषणतां दधुः ॥७४॥

नृपसुताः राजकुमाराः रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः गुरुकृपोपनतायुधविद्यया गुरोः वशिष्ठस्य विश्वामित्रस्य च कृपया दयया उपनता प्राप्ता या आयुधविद्या शस्त्रविद्या तया, पक्षे—गुरुकृपाभ्यां

द्रोणाचार्यकृपाचार्याभ्याम् उपनता प्राप्ता या आयुधविद्या शस्त्रविद्या तया परिबृंहिततेजसः परिवर्धितपराक्रमाः 'तेजो दीप्तौ प्रभावे च स्यात्पराक्रमरेतसोः' इति मेदिनी। पवनसंगतपावकसंनिभाः, वायुप्रेरितवह्नितुल्याः ते परभीषणतां परेषां शत्रूणां भीषणतां भयङ्करत्वं समधिकं अत्यधिकं यथा स्यात्तथा दधुः धारयामासुः। अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तम्, 'द्रुतविलम्बितमाहनभौ भरौ' इति लक्षणात्, उपमालङ्कारः।

राजकुमार राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि गुरु वशिष्ठ तथा विश्वामित्र की कृपा से प्राप्त हुई शस्त्रविद्या के द्वारा, दूसरे पक्ष में–द्रोण तथा कृपाचार्य से प्राप्त हुई शस्त्रविद्या के द्वारा बढ़े हुए पराक्रम वाले, वायु से प्रेरित अग्नि के समान शत्रुओं के लिये अत्यधिक भीषणता प्राप्त किये।

रसप्रसङ्गैरपराजितानां द्विजिह्वमार्गैर्न वशीकृतानाम्।
तीव्रप्रतापज्वलनेन तेषां भाव्यं भयं शत्रुगणोऽनुमेने ॥७५॥

रसप्रसङ्गैः शृङ्गारयोगैः अपराजितानामनाकृष्टानाम् अथवा वीररसप्रयोगैः अविजितानां द्विजिह्वमार्गैः खलानाः सकपटवचनव्यवहारैः न वशीकृतानां वशे नागतानां तेषां रामादीनां तीव्रप्रतापज्वलनेन तीव्रः तीक्ष्णः प्रतापः एव ज्वलनः वह्निः तेन शत्रुगणः भाव्यं भावि भयम् 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति षष्ठी, तत्कर्तृकं भयमित्यर्थः, अनुमेने अनुमिनोति स्म। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, रूपकमलङ्कारः।

शृङ्गारादि रसों के वश में न आये हुए, अथवा वीररस के प्रयोग अर्थात् युद्ध से विजित न हुए, खलों चुगुलखोरों के वचन-प्रयोग से वश में न आये हुए उन रामादि कुमारों के तीक्ष्ण प्रतापरूपी अग्नि से शत्रुओं ने उन से भावी भय का अनुमान किया।

पक्षे—रसप्रसङ्गैः विषप्रयोगैः अपराजितानां न मृतानां 'रसो गन्धरसे जले, शृङ्गारादौ विषे वीर्ये तिक्तादौ द्रवरागयोः' इति मेदिनी, द्विजिह्वमार्गैः सर्पवर्त्मभिः पातालगमनेनेति भावः, न वशीकृतानां न पराभूतानां सर्पदंशैरपि न मृतानामितिभावः तेषां युधिष्ठिरादीनां तीव्रः तीक्ष्णः प्रतापः सन्तापो यस्मिन् तेन ज्वलनेन अग्निना लाक्षागृहानलेनेत्यर्थः, भाव्यं भयं भाविनं मृत्युं शत्रुगणः अनुमेने अनुमिनोति स्म। लाक्षागृहानलेन पाण्डवा मरिष्यन्ति इत्यनुमानं शत्रवश्चक्रुरित्यर्थः।

विष के प्रयोग से न मरे हुए, सर्पों के मार्ग से अर्थात् विष पिलाकर गंगाप्रवाह में प्रक्षेप गंगा-प्रवाह द्वारा पाताल लोक-गमन तथा सर्पों के दंश से भी

मृत्यु के बशमें नहीं किये गये उन पाण्डवों की तेज गर्मी वाली आग से भावी मृत्यु का अनुमान शत्रुओं ने किया ।

एवं काले याति भग्नारिरक्षो दीव्यच्चेतो बाधितुङ्गाधिजन्मा ।
भीमद्वेषी भूमिपालं ययाचे दायादस्य प्रेषणं धर्मयोनेः ॥७६॥

एवं अनेन प्रकारेण काले याति समये व्यतीते सति भीमद्वेषी भीमः भयङ्करः द्वेषः सः अस्यास्तीति भीमद्वेषी भयङ्करविद्वेषवान् गाधिजन्मा गाधेः पुत्रः विश्वामित्रः भग्नारि भग्नः विनाशितः अरिः शत्रुर्येन तत् दीव्यच्चेतः दीव्यत् क्रीडत् सोत्साहमित्यर्थः, चेतः मानसं यस्य तत् रक्षः राक्षसं बाधितुं विनाशितुं धर्मयोनेः धर्मोत्पत्तिस्थानस्य रामस्येत्यर्थः, 'योनिस्तूत्पत्तिस्थाने भगेऽपि च' इति त्रिकाण्डशेषः। दायादस्य पुत्रस्य 'दायादौ सुतबान्धवौ' इत्यमरः, प्रेषणं यज्ञरक्षार्थं प्रस्थापनम् भूमिपालं राजानं दशरथं ययाचे याचितवान्। अत्र शालिनी वृत्तं 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः'।

इस प्रकार कुछ समय वीतने पर भयङ्कर द्वेषवाले गाधि के पुत्र विश्वामित्र मुनि ने अपने शत्रुओं के नाश करने वाले, उत्साह से भरे मन वाले, राक्षसों को मारने के लिये अपने पुत्र धर्म के उत्पत्तिस्थान राम को यज्ञरक्षार्थ भेजने के लिये राजा से याचना (मांग) की।

पक्षे—एवं एवं प्रकारेण काले याति समये व्यतीते सति भग्नारिरक्षः भग्ना विनाशिता अरेः शत्रोः रक्षा येन सः, दीव्यच्चेतोबाधितुङ्गाधिजन्मा दीव्यत् क्रीडत् यत् चेतः युधिष्ठिरादीनां मनः तद् बाधितुं शीलं यस्य सः चेतोबाधी यः तुङ्गः उन्नतः महानिति यावत्, आधिः मानसी व्यथा तस्याधेः जन्म यस्मात् सः, भीमद्वेषी दुर्योधनः दायादस्य बान्धवस्य धर्मयोनेः युधिष्ठिरस्य प्रेषणं वारणावतप्रस्थापनं भूमिपालं राजानं धृतराष्ट्रं ययाचे प्रार्थयामास।

इस प्रकार कुछ समय वीतने पर विनष्ट की है शत्रु की रक्षा जिस ने, सोत्साह मन को बाधित करने वाली तथा बहुत बड़ी मानसिक व्यथा को जन्म देनेवाले भीम के शत्रु दुर्योधन ने बान्धव युधिष्ठिर को वारणावत नगर प्रेषण की राजा धृतराष्ट्र से याचना की।

तद्वाक्यान्ते दत्तकर्णानुमोदः
पुत्रप्रीत्या जातकृच्छ्रः कुमारम् ।

धर्मात्मानं प्रेषयामास विश्वा-
मित्रप्रीत्यै सानुजं भूमिपालः ॥७७॥

तद्वाक्यान्ते विश्वामित्रवचनावसाने दत्तकर्णानुमोदः दत्तः कर्णे अनुमोदः अनुमोदनं जनैरिति शेषः यस्य सः पुत्रप्रीत्या सुतस्नेहेन जातकृच्छ्रः जातम् उत्पन्नं कृच्छ्रं काठिन्यं यस्य सः, वियोगदुःखादिति भावः, भूमिपालः राजा धर्मात्मानं धर्मस्वरूपं विष्णोरवतारत्वादिति भावः, सानुजं लक्ष्मणसहितं कुमारं कोः पृथिव्याः मारं कामदेवं राजकुमारं राममित्यर्थः, विश्वामित्रप्रीत्यै तत्प्रसन्नतार्थं प्रेषयामास तेन सह वनं प्रेषयति स्म । अत्रापि शालिनी वृत्तम् ।

विश्वामित्र के कहने के बाद लोगों के द्वारा जिसके कान में अनुमोदन का शब्द दिया गया है वह, पुत्र के स्नेह से कष्ट का अनुभव करनेवाले राजा ने भाई सहित धर्मात्मा राजकुमार राम को विश्वामित्र की प्रसन्नता के लिये उन के साथ बन में भेज दिया ।

पक्षे—तद्वाक्यान्ते दुर्योधनवचनावसाने दत्तकर्णानुमोदः दत्तः कर्णेन राधेयेन अनुमोदः अनुमोदनं यस्मै सः, पुत्रप्रीत्या युधिष्ठिरादीनां प्रेम्णा जातकृच्छ्रः जातमुत्पन्नं कृच्छ्रं कष्टं यस्य सः युधिष्ठिरादीनामनिष्टाचरणचिन्तनादिति भावः, भूमिपालः राजा धृतराष्ट्रः विश्वामित्रप्रीत्यै विश्वेषां सर्वेषाम् अमित्रः शत्रुः दुर्योधनः तत्प्रीत्यै तत्प्रसन्नतार्थं सानुजं लघुभ्रातृभिः सहितं कुमारं राजकुमारं धर्मात्मानं धर्मस्वरूपं युधिष्ठिरं प्रेषयामास वारणावतनगरमिति शेषः ।

दुर्योधन के कहने के बाद कर्ण के अनुमोदन करने पर पुत्र युधिष्ठिरादि के प्रेम से कष्ट का अनुभव करते हुए राजा धृतराष्ट्र ने संसार के शत्रु दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये भाइयों के साथ धर्मस्वरूप कुमार युधिष्ठर को वारणावतनगर को भेज दिया ।

मात्रा समं सावरजः स राज्ञा प्रस्थापितो धाम तपोधनानाम् ।
स्थानान्तरं विद्विषतां रणेषु समर्थकोदण्डधरः प्रतस्थे ॥७८॥

मात्रा कौसल्यया समं सहितेन राज्ञा दशरथेन स्थानान्तरं गृहादन्यत्स्थानं तपोधनानां मुनीनां धाम गृहं तपोवनमित्यर्थः, प्रस्थापितः प्रेषितः सावरजः अनुजलक्ष्मणसहितः सः रामः विद्विषतां शत्रूणां रणेषु युद्धेषु समर्थकोदण्डधरः, समर्थं शक्तं कोदण्डं धनुः धारयतीति समर्थकोदण्डधरः सन् प्रतस्थे प्रस्थानं चकार । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

माता कौसल्या के सहित राजा दशरथ के द्वारा घर से अन्यस्थान मुनियों के गृह तपोवन को भेजे गये भाई लक्ष्मण के साथ वह राम शत्रुओं के युद्ध में समर्थ धनुष धारण किये हुए चल दिये।

पक्षे—राज्ञा धृतराष्ट्रेण प्रस्थापितः प्रेषितः रणेषु युद्धेषु विद्विषतां समर्थकः अनुमोदकः तत्कृतयुद्धस्य स्वीकर्ता इत्यर्थः, दण्डधरः अभिमानधारकः, 'दण्डोऽस्त्री लगुडे पुमान्, दमे यमेऽभिमाने च' इति मेदिनी, मात्रा जनन्या कुन्त्या सहितः, सावरजः अनुजैः सहितः सः युधिष्ठिरः स्थानान्तरं हस्तिनापुरादन्यत्स्थानं तपोधनानां मुनीनां धाम गृहं वारणावतनगरमित्यर्थः, प्रतस्थे चचाल।

राजा धृतराष्ट्र के द्वारा भेजे गये, युद्ध में शत्रुओं का अनुमोदन करने वाले, अभिमान धारण करने वाले, माता कुन्ती के साथ, तथा भाइयों के साथ वह युधिष्ठिर हस्तिनापुर से अतिरिक्त स्थान तपोधनों के गृह वारणावतनगर को प्रस्थान किये।

परकल्पितकामदेहदाहं विषयं प्राप्य स वारणावतंसः।
अविशङ्कमुवास तत्र भास्वद्द्युतिलाक्षाभवने प्रदोषरुद्धः ॥७६॥

प्रदोषरुद्धः प्रदोषेण निशामुखेन रुद्धः अवरुद्धः निशाप्रारम्भकारणेन त्यक्तशस्त्राभ्यासव्यापारः इति भावः, रणावतंसः युद्धस्य भूषणस्वरूपः सः रामः परकल्पितकामदेहदाहं परेण अन्येन शिवेनेत्यर्थः, कल्पितः कृतः कामस्य मदनस्य देहदाहः यस्मिन् तं विषयं देशं प्राप्य उपेत्य तत्र तस्मिन् प्रदेशे भास्वद्द्युतिलाक्षाभवने भास्वतः सूर्यस्य द्युत्या लाक्षायाः आभा कान्तिर्यत्र तद् लाक्षाभं वनं तस्मिन् सायंकाले सूर्यप्रभया रक्तकानने इति यावत्, वा इति निश्चयेन अविशङ्कं भयरहितं यथा स्यात्तथा उवास उषितवान्। 'वा स्याद्विकल्पोपमयोर्वितर्के पादपूरणे। निश्चये सहने हेतावव्याप्तिविनियोगयोः' इति मेदिनी। अत्र कालभारिणीयं नाम विषमपदवृत्तम्, 'विषमे ससजा यदा गुरू चेत्' सभरा येन तु कालभारिणीयम्' इति लक्षणात्। लाक्षाभवने इत्यत्रोपमालङ्कारः।

सायंकाल होने के कारण रुके हुए शस्त्राभ्यासवाले, युद्ध में भूषण के समान शोभा पाने वाले, वह राम दूसरे के द्वारा अर्थात् शिव के द्वारा किया गया है कामदेव का शरीरदाह जिस में उस देश में पहुँच कर वहाँ सूर्य की कान्ति से लाक्षा के समान लाल कान्ति वाले वन में निश्चित रूप से निडर होकर निवास करने लगे।

पक्षे—पर कल्पितकामदेहदाहं परैः शत्रुभिः कल्पितः कल्पना-विषयीकृतः कामेन इच्छया देहदाहः शरीरज्वालनं यस्मिन् तं सवार-णावतं वारणावतनगरयुक्तं विषयं देशं प्राप्य उपेत्य तत्र तस्मिन् स्थाने प्रदोषरुद्धः प्रकृष्टाः दोषाः दुर्गुणाः येषां तैः प्रदोषैः विरोचना-दिभिर्दुर्योधनानुचरैः रुद्धः आवृतः सन् सः युधिष्ठिरः भास्वद्द्युति-लाक्षाभवने भास्वन्ती देदीप्यमाना द्युतिः कान्तिर्यस्य तत् लाक्षाभवनं तस्मिन् लाक्षाभवने अविशङ्कम् विरोचनादीनां सुखमिष्टव्यवहारेण शङ्कारहितं यथा स्यात्तथा उवास उषितवान् ।

शत्रुओं के द्वारा कल्पना की गई है स्वच्छन्दता से युधिष्ठिरादिकों का शरीर-दाह जिस में तथा वारणावतनगर से युक्त देश में पहुँच कर उस स्थान में बहुत दुर्गुणवाले दुर्योधन के अनुचर विरोचन आदि से घिरे हुए वह युधिष्ठिर चमकती हुई कान्तिवाले लाक्षागृह में विरोचनादि के कपटपूर्ण सभ्याचरण से शङ्कारहित होकर रहने लगे ।

उपनतजनक्लृप्तश्लाघ्यमार्गे च तस्मिन्
विदुरवचनमारादाप्तभावेन शृण्वन् ।
अनयदपि कियन्तं कार्यमालोक्य कालं
प्रकटितगुरुभक्तिः सानुजो राजसूनुः ॥८०॥

आरात् समीपे उपनतजनक्लृप्तश्लाघ्यमार्गे उपनतजनैः उपस्थित-लोकैः क्लृप्तः निर्मितः श्लाघ्यः प्रशंसार्हः मार्गः वर्त्म यस्मिन् तस्मिन् विदुरवचनम् विदुरस्य ज्ञातुः विश्वामित्रस्येत्यर्थः, 'ज्ञाता तु विदुरो विन्दुः' इत्यमरः, वचनम् आदेशम् आप्तभावेन प्रत्ययितभावनया शृण्वन् मानयन्नित्यर्थः, प्रकटितगुरुभक्तिः प्रकटिता प्रकाशिता गुरु-भक्तिः गुरौ श्रद्धा येन सः सानुजः अनुजलक्ष्मणसहितः राजसूनुः राजकुमारः रामः कार्यमालोक्य मखविध्वंसकसंहारेण मखरक्षारूपं कर्तव्यं निरीक्ष्य कियन्तमपि कालं समयम् अनयदतिवाहितवान् । अत्र मालिनी वृत्तम्, 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात् ।

समीप में उपस्थित लोगों के द्वारा बनाया गया है प्रशंसनीय मार्ग जिसमें उस वन में सब कुछ जानने वाले विश्वामित्र का आदेश विश्वस्तभावना से मानते हुए गुरुभक्ति प्रकट करने वाले, अनुज लक्ष्मण के सहित राजकुमार राम ने मखविध्वंसक राक्षसों का संहार करना कर्तव्य समझ कर कुछ समय विताया ।

पक्षे—विदुरवचनं कौरवमन्त्रिणो विदुरस्य उपदेशम् आप्तभावेन विश्वस्तबुद्ध्या शृण्वन् मानयन् आराद् दूरं यावत्, 'आराद् दूर-समीपयोः' इत्यमरः, उपनतजनक्लृप्तश्लाघ्यमार्गे उपनतैः उपस्थितैः विदुरप्रेरणयेति भावः, जनैः क्लृप्तः निर्मितः श्लाघ्यमार्गः प्रशंसितं निर्गमनवर्त्म यस्मिन् भूमेरधस्तादिति तात्पर्यम्, तस्मिन् लाक्षागृहे कार्यं प्रयोजनं वैरप्रतीकाररूपमित्यर्थः, आलोक्य विचार्य प्रकटित-गुरुभक्तिः प्रकटिता बाह्यरूपेण दर्शिता गुरुभक्तिः महती श्रद्धा येन सः सानुजः बन्धुभिः सहितः राजसूनुः राजकुमारः युधिष्ठिरः कियन्तमपि कालं स्तोकं समयम् अनयद् अतिवाहितवान्।

कौरवों के मन्त्री विदुर का उपदेश विश्वासपूर्वक मानते हुए, विदुर के द्वारा भेजे गये आदमियों के द्वारा दूर तक बनाया गया है निर्गमन-मार्ग जिसमें उस लाक्षागृह में वैर-प्रतीकाररूपी प्रयोजन सोचकर, बाह्यरूप से बहुत बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हुए, भाइयों के सहित राजकुमार युधिष्ठिर ने थोड़ा सा समय बिताया।

स्वयमेधितचित्रभानुहेतिस्फुरितां तां वसतिं विहाय भूपः।
स वनान्तरमुद्यतारिभीमः सुगुरोर्भूतधुरो धरः प्रपेदे ॥८१॥

एधितचित्रभानुहेतिः एधिताः वर्द्धिताः चित्राः अनेकविधाः भानवः रश्मयः यासाम् ताः एवंविधाः हेतयः आयुधानि यस्य सः, 'हेतिः स्यादायुधज्वालासूर्यतेजःसुयोषिति' इति मेदिनी, हेतिरित्यत्र 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति विसर्गलोपः। उद्यतारिभीमः उद्यताः युद्धायोत्थिताः ये अरयः शत्रवः तेषां कृते भीमः भयङ्करः, सुगुरोः शोभनाचार्यस्य विश्वामित्रस्येत्यर्थः, भूतधुरो भूतायाः उत्पन्नायाः धुरः कार्यभारस्य धरः धारकः, भूपः तस्याः वनभुवो रक्षकः, सः रामः, स्फुरितां शोभया देदीप्यमानां तां वसतिं गृहं 'वसती रात्रिवेश्मनोः' इत्यमरः, स्वयम् आत्मनैव स्वेच्छयेत्यर्थः, विहाय त्यक्त्वा वनान्तरम् अन्यद्वनं प्रपेदे प्राप्तवान्। अत्र कालभारिणीयं नाम विषमपदवृत्तम्, 'विषमे ससजा यदा गुरू चेत्सभरा येन तु कालभारिणीयम्' इति लक्षणात्।

बढ़ी हुई अनेक प्रकार की किरणोंवाले शस्त्र हैं जिनके, युद्ध के लिये उद्यत शत्रुओं के लिये भयंकर, अच्छे गुरु का कार्यभार धारण करने वाले, उस भूमि की रक्षा करने वाले वह राम शोभा से चमकते हुए उस गृह को स्वेच्छा से छोड़ कर दूसरे वन को चले गये।

पक्षे—उद्यतारिभीमः, उद्यताः युद्धायोद्युक्ताः अरयः शत्रवः यस्य सः उद्यतारिः, उद्यतारिः भीमः भीमनामकः कनिष्ठभ्राता यस्य सः, सुगुरोः शोभनोपदेशकस्य विदुरस्येत्यर्थः, भूतधुरो भूतायाः उद्भूतायाः तद्बुद्धावुत्पन्नायाः धुरः कार्यभारस्य भूमेरन्तरमार्गेण गमनरूपस्येत्यर्थः, धरः धारकः तत्कार्यक्रमानुसारेण व्यवहर्ता इत्यर्थः, भूपः तद्भूमिरक्षकः सः युधिष्ठिरः, स्वयमेधितचित्रभानुहेतिस्फुरितां स्वयमात्मनैव एधितः वर्द्धितः यः चित्रभानुः वह्निः तस्य हेत्या ज्वालया स्फुरितां प्रज्वलितां तां वसतिं गृहं लाक्षागृहमित्यर्थः, विहाय त्यक्त्वा वनान्तरं वनमध्यम् 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्द्धिभेदतादर्थ्ये । छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्यात्मसदृशेषु' इति मेदिनी, प्रपेदे प्राप्तवान् गतवानिति यावत् ।

युद्ध के लिये उद्यत शत्रु हैं जिसके इस प्रकार के भीम हैं जिसके, अच्छे उपदेशक विदुर के प्रस्तावित सुरङ्गमार्ग से गमन रूपी कार्य भार को धारण करने वाले उस भूमि के रक्षक युधिष्ठिर स्वयं प्रज्वालित-अग्नि की ज्वाला से जलते हुए उस लाक्षागृह को छोड़कर वन के मध्य में पहुँचे ।

विलङ्घ्य गङ्गां व्रजतः सुदूरमम्लानदेहस्य बलानुभावात् ।
तस्याग्रतः सुन्दरतोज्ज्वलाङ्गी निशाचरी प्रादुरभून्मदान्धा ॥८२॥

गङ्गां भागीरथीं विलङ्घ्य उत्तीर्य सूदूरं व्रजतः गच्छतः बलानुभावात् विश्वामित्रदत्तायाः बलानामिकायाः विद्यायाः प्रभावात् अम्लानदेहस्य अमलिनशरीरस्य श्रान्तिरहितस्येत्यर्थः तस्य रामस्य अग्रतः अग्रे मदान्धा मदेन गर्वेण अन्धा ज्ञानशून्या सुन्दरता सुन्दनामके राक्षसे स्वपत्यौ अनुरक्ता उज्ज्वलाङ्गी ज्वलतीति ज्वलः ज्वालेत्यर्थः उद्गतः ऊर्ध्वंगतो ज्वलः यस्मिन् तत् उज्ज्वलम् अङ्गं यस्याः सा उज्ज्वलाङ्गी मुखेन उल्कां निःसारयन्ती निशाचरी ताटकाभिधाना राक्षसी प्रादुरभत् प्रकाशं गता प्रकटरूपेण तदग्रे आगतेत्यर्थः । अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

गङ्गा जी को पार करके दूर जाते हुए, विश्वामित्रकी दी हुई बला नाम की विद्या के प्रभाव से श्रान्तिरहित-अङ्गवाले उस राम के आगे सुन्द नामक अपने पति में अनुरक्त रहने वाली मुख से उल्का निकालती हुई ताड़का नाम की राक्षसी प्रकट रूप से सामने आ गई ।

पक्षे—गङ्गां विलङ्घ्य सुदूरं व्रजतः गङ्गामुत्तीर्य दूरं गच्छतः बलानुभावात् शारीरिकशक्तिप्रभावात् अम्लान देहस्य अमलिनशरीरस्य

अश्रान्तशरीरस्येत्यर्थः तस्य युधिष्ठिरस्य अग्रतः अग्रे सुन्दरतोज्ज्वलाङ्गी सुन्दरतया सौन्दर्येण उज्ज्वलाङ्गी प्रस्फुरितशरीरा मदान्धा मदेन कामोन्मादेन अन्धा ज्ञानशून्या निशाचरी हिडिम्बा नाम राक्षसी प्रादुरभूत् प्रत्यक्षस्वरूपेण सम्मुखमागच्छत् ।

गङ्गा पार कर के दूर जाते हुए, शारीरिक बल के प्रभाव से मलिनता रहित शरीर वाले अर्थात् विना थके हुए शरीर वाले उस युधिष्ठिर के आगे सुन्दरता से चमकते हुए शरीर वाली काममद से मोहित हिडिम्बा नाम की राक्षसी प्रकट हुई ।

स्ववेगचलितोच्छलत्खगमृगाहिडिम्बावली-
निरन्तरतलोदरीकृतकदक्षिणा सा क्षणात् ।
निरीक्ष्य नृपनन्दनं मुखरकौशिके कानने
दशान्तरमुपागमत्किमपि कामचारोद्धुरम् ॥८३॥

मुखरकौशिके मुखरः शब्दं कुर्वाणः कौशिको विश्वामित्रो यस्मिन् तस्मिन् कानने वने स्ववेगचलितोच्छलत्खगमृगाहिडिम्बावली-निरन्तरतलोदरी स्ववेगेन चलिताः सञ्चरन्तः उच्छलन्तः ये खगाः पक्षिणः मृगाः वन्यपशवः अहयः सर्पाः तेषां ये डिम्बाः प्लीहाः 'डिम्बो भयध्वनावण्डे फुप्फुसप्लीहविप्लवे' इति मेदिनी, तेषामावली समूहः तया आवल्या निरन्तरं परिपूर्णं तलम् अधोभागो यस्य एवं भूतम् उदरं यस्याः सा कृतकदक्षिणा कृतके कपटे दक्षिणा निपुणा सा ताटका नृपनन्दनं राजकुमारं राममवलोक्य क्षणात् तत्क्षणमेव कामचारोद्धुरं कामचारेण स्वेच्छाचरणेन उद्धुरमुद्धतम् किमपि अनिर्वचनीयं दशान्तरं दशाविशेषं क्रोधसंरक्तलोचनदन्तकटकटाहस्तक्षेपणादिकमित्यर्थः उपागमत् उपगतवती प्राप्तवतीति यावत् । अत्र पृथ्वी नामकं वृत्तम्, 'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति लक्षणात् ।

शब्द करते हुए विश्वामित्र हैं जिसमें उस वन में अपने वेग से चलते हुए तथा उछलते हुए जो पक्षी मृग तथा सर्प उनके प्लीहों के समूह से परिपूर्ण तलहटी वाला उदर है जिसका, कपट करने में निपुण वह ताड़का राजकुमार राम को देख कर उसी समय स्वतन्त्राचरण से उद्धत किसी अनिर्वचनीय दशा को अर्थात् क्रोधपरवशता को प्राप्त हुई ।

पक्षे—मुखरकौशिके मुखराः सशब्दाः कौशिकाः उलूकाः यस्मिन् तस्मिन् कानने वने स्ववेगचलिता स्वस्याः आत्मनः वेगेन ओजसा

चलिता भीमाभिमुखं प्रस्थिता उच्छलत्खगमृगा उच्छलन् महता वेगेन निःसरन् खगः खं कर्म गच्छति प्राप्नोतीति खगः सक्रिय इत्यर्थः, खगः सक्रियः मृगः याच्ञा यस्याः सा, 'खमिन्द्रिये पुरे क्षेत्रे शून्ये बिन्दौ विहायसि । संवेदने देवलोके कर्मण्यपि नपुंसकम्' इति मेदिनी, 'मृगः पशौ कुरङ्गे च करिनक्षत्र भेदयोः । अन्वेषणे च याञ्चायां मृगी तु वनितान्तरे' इति च मेदिनी, वलीनिरन्तरतलोदरी बलीभिः जठरावयवैः निरन्तरं निरवकाशं तलं यस्य तत् एवं भूतमुदरं यस्या सा, कृतकदक्षिणा कस्य आत्मनः दक्षिणा समर्पणम् कदक्षिणा, कृता कदक्षिणा यया सा आत्मसमर्पिकेत्यर्थः, 'को ब्रह्मणि समीरात्मयमदक्षेषु भास्करे' इति मेदिनी, सा हिडिम्बा नृपनन्दनं राजकुमारं भीमं निरीक्ष्य अवलोक्य क्षणात् तत्क्षणमेव कामचारोद्धुरम् कामचारेण मदनसञ्चारेण उद्धुरम् उद्धतं किमपि वर्णनातीतम् अवस्थान्तरं दशाविशेषम् उपागमत् प्राप्तवती, कामेन परवशा जातेत्यर्थः ।

शब्द करने वाले उलूक हैं जिसमें ऐसे वन में अपने वेग से भीम के अभिमुख-गई हुई, बहुत वेग से निकल रही है सक्रिय याचना जिसकी, त्रिवली से निरवकाश तलवाला उदर है जिसका, अपने आप को दक्षिणा कर देने वाली, अर्थात् अपने को सौंप देने वाली वह हिडिम्बा राजकुमार भीम को देख कर उसी क्षण कामविकार से उद्धत किसी विशेष दशा को प्राप्त कर गई अर्थात् काम से परवश हो गई ।

विषमेषुप्रहारार्तां तां कृत्वा पततो द्रुतम् ।
स हि डिम्बस्य शकलैरपुष्णात्पिशिताशिनः ॥८४॥

स हि रामस्तु तां ताटकां विषमेषुप्रहारार्तां विषमेषोः कठिनबाणस्य प्रहारार्तां प्रहारेण पीडितां द्रुतं शीघ्रं कृत्वा डिम्बस्य कालखण्डस्य प्लीहस्येत्यर्थः शकलैः खण्डैः पिशिताशिनः मांसभक्षिणः पततः पक्षिणः अपुष्णात् पुपोष । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

उस राम ने उस ताड़का को कठिन बाण के प्रहार से शीघ्र पीडित कर के उसकी प्लीहा के टुकड़ों से मांस भक्षी पक्षियों का पोषण किया ।

पक्षे—सः भीमः तां हिडिम्बां विषमेषुप्रहारार्तां विषमेषोः कामस्य प्रहारेण आर्तां व्यथितां कृत्वा अवगत्य द्रुतम् त्वरया आपततः आगच्छतः विरुद्धभावनयेति भावः हिडिम्बस्य हिडिम्बनामकस्य हिडिम्बाभ्रातुः शकलैः शरीरखण्डैः पिशिताशिनः मांसभक्षिणः शृगालादीन् अपुष्णात् पुपोष ।

उस भीम ने उस हिडिम्बा को काम के प्रहार से पीड़ित जान कर इन्हें मारने के लिये शीघ्रता से आते हुए हिडिम्ब-नामक हिडिम्बा के भाई के शरीर के टुकड़ों से मांस-भक्षी सियार आदि जानवरों का पोषण किया।

प्रतीपदर्शिनी सैषा विचचारास्य यत्पथि।
ततो गुरुगिरा तस्या जीवितेशो बभूव सः ॥८५॥

यत् यतो हेतोः सैषा ताटका अस्य रामस्य पथि मार्गे प्रतीपदर्शिनी विरुद्धाचरणा विचचार विचरणमकरोत् युद्धार्थं बभ्रामेत्यर्थः ततः तस्मात्कारणात् गुरुगिरा गुरुवचनेन तस्याः ताटकायाः जीवितेशः यमः बभूव, ताममारयदित्यर्थः। 'जीवितेशो यमे पुंसि त्रिषु स्याज्जीवितेश्वरे' इति विश्वः। अत्राप्यनुष्टुप् छन्दः।

क्यों कि यह ताड़का राम के पथ में विरुद्ध आचरण कर रही थी इसलिये गुरु के वचन से राम इसका यम हो गये अर्थात् इन्हों ने इसे मार डाला।

पक्षे—यद् यतो हेतोः पथि वनगमनमार्गे सैषा हिडिम्बा अस्य भीमस्य प्रतीपदर्शिनी वनिता भूत्वेत्यर्थः विचचार आचरणमकरोत्, 'प्रतीपदर्शिनी वामा वनिता महिला तथा' इत्यमरः। ततः तस्मात्कारणात् गुरुगिरा गुरोः युधिष्ठिरस्य वचनेन सः भीमः तस्याः हिडिम्बायाः जीवितेशः पतिः बभूव अभवत्।

क्यों कि वनगमन मार्ग में यह हिडिम्बा इस भीम की पत्नी स्वरूप से आचरण करने लगी। इस कारण से बड़े भाई युधिष्ठिर के वचन से वह भीम उस हिडिम्बा के पति हो गये।

वचनमात्मगुरोरनुतिष्ठता नृपसुतेन समेत्य निशाचरी।
अनुपतत्पिशिताशिघटोत्कचा समययुक्तमपायमवाप सा ॥८६॥

आत्मगुरोः स्वगुरोः विश्वामित्रस्येत्यर्थः वचनमनुतिष्ठता आज्ञां पालयता नृपसुतेन राजकुमारेण रामेण समेत्य सङ्गत्य युद्धे इति भावः, उत्कचा उद्गतकेशा विश्लथकेशा इत्यर्थः अनुपतत्पिशिताशिघटा अनुपतन्ती धावन्ती पिशिताशिनां मांसाहारिणां गृध्रादीनां घटा समूहो यस्यां सा, सा ताटका निशाचरी राक्षसी समययुक्तं तत्कालोचितम् अपायं विध्वंसं मरणमित्यर्थः अवाप प्राप्तवती। अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तं 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इतिलक्षणात्।

अपने गुरु विश्वामित्र का आदेश पालन करनेवाले राजकुमार राम से युद्ध में मिलकर खुले हुए बालवाली, दौड़ रहा है मांसाहारी जन्तुओं का समूह जिस पर वह राक्षसी उस समय के लिये उचित मरण को प्राप्त हुई।

पक्षे—आत्मगुरोः स्वज्येष्ठभ्रातुः युधिष्ठिरस्येत्यर्थः वचनं कथनम् अनुतिष्ठता कुर्वता नृपसुतेन राजकुमारेण भीमेन समेत्य समागमं कृत्वा अनुपतत्पिशिताशिघटोत्कचा अनु पश्चात् सङ्गमानन्तरमित्यर्थः पतन् प्रादुर्भवन् पिशिताशी मांसाहारी घटोत्कचः घटोत्कचनामा पुत्रः यस्याः सा, निशाचरी राक्षसी हिडिम्बा समययुक्तं शपथसहितं स्मरणानन्तरमेव भवत्समक्षमागमिष्यामीति शपथं कृत्वेत्यर्थः, 'समयः शपथाचारसिद्धान्तेषु तथा धियि' इति मेदिनी, अपायं विश्लेषं वियोगमित्यर्थः अवाप प्राप्तवती, भीमादीन् परित्यज्य स्वभवनं हिडिम्बवनं जगामेत्यर्थः।

अपने बड़े भाई युधिष्ठिर का वचन पालनकरने वाले राजकुमार भीम से संभोग कर के संभोग के अनन्तर ही उत्पन्न हुआ है मांसाहारी घटोत्कच पुत्र जिस से ऐसी उस हिडिम्बा राक्षसी ने 'स्मरण करते ही आप के समीप आ जाऊँगी' इस शर्त के साथ भीम से वियोग प्राप्त किया। अर्थात् इन्हें छोड़ कर अपने घर हिडिम्बवन को चली गयी।

महामुनेः प्राप्तवतस्तपोवनं नरेन्द्रसूनोरथ धर्मजन्मनः।
सद्भावनम्रस्य पराशरोद्भवप्रसादलाभेन बभूव निर्वृतिः ॥८७॥

अथ अनन्तरं धर्मजन्मनः धर्मस्य पुण्यस्य जन्म उत्पत्तिर्यस्मात् तस्य धर्मोत्पत्तिकारणस्य महामुनेः विश्वामित्रस्य तपोवनं तपस्यायाः आधारभूतं वनमित्यर्थः, प्राप्तवतः गतवतः सद्भावनम्रस्य सद्भावेन गुरुभक्त्या नम्रस्य प्रह्वस्य नरेन्द्रसूनोः राजकुमारस्य रामस्य शरोद्भव-प्रसादलाभेन बाणोत्पन्नप्रसन्नताप्राप्त्या बाणैः राक्षसमारणादिति भावः, परा उत्तमा निर्वृतिः शान्तिः सन्तोष इत्यर्थः बभूव अभूत्। अत्र इन्द्रवंशावंशस्थयोरुपजातिवृत्तम्, 'स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः, जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात्।

इसके बाद धर्म की उत्पत्ति के कारण महामुनि विश्वामित्र के तपोवन में पहुँचे हुए गुरु भक्ति से नम्र राजकुमार राम को राक्षस मारने के कारण बाण से उत्पन्न प्रसन्नता के लाभ से बहुत बड़ा सन्तोष मिला।

पक्षे—अथ अनन्तरं महामुनेः महामुनिशालिहोत्रस्य तपोवनं प्राप्तवतः उपगतस्य सद्भावनम्रस्य सद्भावनया विनीतस्य नरेन्द्रसूनोः राजकुमारस्य धर्मजन्मनः युधिष्ठिरस्य पराशरोद्भवप्रसादलाभेन पराशरोद्भवस्य द्वैपायनस्य प्रसादलाभेन एकचक्रनामके ग्रामे निवासं

कुरु इत्युपदेशरूपायाः प्रसन्नतायाः प्राप्तिकारणेन निर्वृतिः सुखं बभूव अभवत् ।

इसके बाद महामुनि शालिहोत्र के तपोवन पहुँचे हुए सद्भावना से विनम्र राजकुमार युधिष्ठिर को पराशर के पुत्र व्यास के 'एकचक्र नामक ग्राम में निवास करो' इस उपदेश रूप में प्रसन्नता के लाभ से शान्ति मिली ।

तेनैवैकेन गुरुणा स निर्वृत्तप्रयोजनः ।
एकचक्राहितगतिर्भास्वानिव तदा बभौ ॥८८॥

तेन एकेन एव गुरुणा विश्वामित्रेण, पक्षे—व्यासेन निर्वृत्तप्रयोजनः पूर्णकृत्यः तदा तस्मिन् समये एकचक्राहितगतिः भास्वानिव एकचक्रेण एकरथाङ्गेन, सूर्यस्य रथे एकमेव चक्रमिति पुराणप्रसिद्धिः, आहिता विहिता गतिर्गमनं येन एवंभूतः सूर्य इव एकचक्रे एकाधिपत्यराज्ये आहिता अग्रेसरीकृता गतिः योग्यता येन सः रामः, पक्षे—एकचक्रे एकचक्रनामके ग्रामे आहिता प्रवर्तिता गतिः गमनं येन सः युधिष्ठिरः बभौ शुशुभे । अत्र अनुष्टुप् छन्दः । श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारः ।

उस एक ही गुरु विश्वामित्र के द्वारा, दूसरे पक्ष में—व्यास के द्वारा पूर्ण प्रयोजन वाले, उस समय में एक ही पहिया वाले रथ से गमन करने वाले सूर्य के समान एकाधिपत्य राज्य के विषय में बढ़ती हुई योग्यता वाले राम, दूसरे पक्ष में—एकचक्र नामक ग्राम में बढ़ी हुई गति वाले युधिष्ठिर सुशोभित होनेलगे ।

तस्मिन्प्रदेशे नृपसूनुसङ्गात् सनाथभावं सहसा प्रपन्ने ।
क्रतुक्रियासक्तधियां मुनीनां रक्षोनिमित्तं भयमुद्दिदीपे ॥८९॥

सहसा अकस्मात् नृपसूनुसङ्गात् राजकुमाररामस्य समागमात्, पक्षे—राजकुमारयुधिष्ठिरस्य समागमात् सनाथभावं सरक्षकदशां प्रपन्ने प्राप्ते तस्मिन् प्रदेशे विश्वामित्रतपोवने, पक्षे—एकचक्रग्रामप्रान्ते क्रतुक्रियासक्तधियां सरक्षकत्वाद्धेतोः यज्ञक्रियासंलग्नबुद्धीनां मुनीनां रक्षोनिमित्तं सुबाहुमारीचादिराक्षसहेतुकं, पक्षे—बकराक्षसहेतुकं भयम् उद्दिदीपे अवर्धत । अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ, इति लक्षणात् ।

एकाएक राजकुमार राम के समागम से, दूसरे पक्ष में—राजकुमार युधिष्ठिर के समागम से सरक्षक परिस्थिति प्राप्त किये हुए उस विश्वामित्रतपोवन में, दूसरे

पक्ष में—उस एकचक्रग्राम के आसपास में अपने को रक्षकसहित समझ कर यज्ञ-कार्य में संलग्न बुद्धिवाले मुनियों का सुबाहुमारीचादि राक्षस निमित्तक भय, दूसरे पक्ष में—वकराक्षसनिमित्तक भय प्रचण्ड हो गया। मुनियों ने अपने को रक्षकसहित समझ कर यज्ञ करना प्रारम्भ किया, उधर राक्षस उपद्रव करने में अधिक उद्दण्डता दिखलाने लगे।

रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिमात्राभिनोदितः।
मरुदानन्दनो यत्नमातस्थौ नृपनन्दनः ॥६०॥

रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिमात्राभिनोदितः रक्षांसि राक्षसाः अहितानि शत्रुभूतानि येषाम् एवं भूताः ये द्विजाः ब्राह्मणाः तैः आयस्ताः प्रक्षिप्ताः याः दृष्टयः तन्मात्रेण अभिनोदितः प्रेरितः, मरुदानन्दनः मरुतां देवानाम् आनन्दनः आनन्दकः नृपनन्दनः राजकुमारः रामः यत्नं प्रयत्नम् आतस्थौ कृतवान्। अत्र अनुष्टुपछन्दः।

राक्षस हैं शत्रु जिनके ऐसे जो ब्राह्मण उनके द्वारा प्रक्षिप्त केवलदृष्टि से प्रेरित हुए, देवताओं को आनन्दित करने वाले राम ने प्रयत्न करना प्रारम्भ किया।

पक्षे—रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिमात्रा द्विजैः ब्राह्मणैः आयस्ताः प्रक्षिप्ताः दृष्टयः द्विजायस्तदृष्टयः रक्षायै ऊहिताः वितर्किताः इति रक्षोहिताः, रक्षोहिताः द्विजायस्तदृष्टयः यस्यां सा रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिः रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिश्चासौ माता रक्षोहितद्विजायस्तदृष्टिमाता तया मात्रा कुन्त्या अभिनोदितः प्रेरितः मरुदानन्दनः पवनानन्दकः पवनपुत्र इत्यर्थः, नृपनन्दनः राजकुमारः भीमः यत्नं प्रयत्नम् आतस्थौ प्रारभत।

ब्राह्मणों के द्वारा प्रक्षिप्त रक्षा के लिये वितर्कित दृष्टि है जिसके ऊपर ऐसी माता कुन्ती के द्वारा प्रेरित पवन के पुत्र राजकुमार भीम ने प्रयत्न आरम्भ किया।

मारीचेष्टमनिष्टकारिणमसौ सिद्धाश्रमस्थायिनां
विप्राणामभयार्थमध्वरविधे गोप्ता गुरोराज्ञया।
सद्यः सानुचरं निशाचरपतिं भीमः सुबाहुं रणे
दोर्वीर्येण जघान वीरपदवीमारुह्य घोराम्बकम् ॥६१॥

अध्वरविधेः यज्ञविधानस्य गोप्ता रक्षकः भीमः भयङ्करः राक्षसानामिति भावः असौ रामः वीरपदवीमारुह्य वीराणां मार्गं युद्ध-

मवलम्ब्य सिद्धाश्रमस्थायिनां तस्मिन् सिद्धतपोवने स्थितानां विप्राणां ब्राह्मणानाम् अभयार्थं भयनिवारणार्थं गुरोर्विश्वामित्रस्य आज्ञया आदेशेन रणे युद्धे मारीचेष्टं मारीचस्य मारीचनामकस्य राक्षसस्य इष्टं प्रियम् भ्रातरमित्यर्थः अनिष्टकारिणम् अप्रियकारिणं सानुचरम् अनुगामिराक्षससहितं घोराम्बकम् घोरा भयकारिणी अम्बा माता ताटका यस्य सः घोराम्बः, घोराम्ब एव घोराम्बकः तं निशाचरपतिं राक्षसाधीश्वरं सुबाहुं सुबाहुनामानं सद्यः तत्कालं दोर्वीर्येण बाहुबलेन जघान मारितवान्। अत्र शार्दूलविक्रीड़ितं वृत्तम्।

यज्ञविधि के संरक्षक राक्षसों के लिये भयङ्कर इस राम ने वीरों का मार्ग युद्ध का अवलम्बन कर के उस सिद्धाश्रम में रहने वाले ब्राह्मणों को निर्भय करने के लिये गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से युद्ध में मारीच के प्रिय तथा अप्रिय करने वाले, अनुगामी राक्षसों के साथ, भयङ्कर ताड़का है माता जिसकी, राक्षस-गणों में प्रधान उस सुबाहु को उसी समय बाहुबल से मार डाला।

पक्षे—अध्वरविधेः यज्ञविधानस्य गोप्ता रक्षकः असौ भीमः भीमनामकः द्वितीयपाण्डवः, गुरोः मातुः आज्ञया आदेशेन सिद्धाश्रम-स्थायिनां सिद्धाश्रमे स्थितानां विप्राणां ब्राह्मणानाम् अभयार्थं भय-निवारणार्थं घोरां भयङ्करीं वीरपदवीं वीराणां मार्गं युद्धम् आरुह्य अवलम्ब्य सानुचरम् अनुगामिराक्षससहितं निशाचरपतिं राक्षसेश्वरं सुबाहुं सुष्ठु शोभनौ बाहू यस्य तं बकं बकनामानं राक्षसं रणे युद्धे दोर्वीर्येण बाहुबलेन सद्यः तत्कालमेव मारीचेष्टं मारीचानां याजक-ब्राह्मणानाम् इष्टं प्रियं यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा 'मारीचो रक्षसो भेदे कक्कोले याजकद्विजे' इति मेदिनी, जघान अमारयत्।

यज्ञ विधि के रक्षक उस भीम ने माता के आदेश से सिद्धाश्रम में रहने वाले ब्राह्मणों के भयनिवारण के लिये वीरों का भयङ्कर मार्ग युद्ध का अवलम्बन कर के अनुगामी राक्षसों के सहित, राक्षसों के पति अच्छी भुजा वाले बकनामक राक्षस को युद्ध में बाहुबल से उसी समय यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के प्रिय आचरण के रूप में मार डाला।

भूचरद्विजगणाशनं द्विषं खेचरद्विजगणाशनं ततः।
तं विधाय कुलमग्रजन्मनां राक्षसक्षयकरो ररक्ष सः ॥६२॥

ततस्तदनन्तरं राक्षसक्षयकरः राक्षससंहारकः सः रामः पक्षे—भीमः भूचरद्विजगणाशनं भुवि चरतीति भूचरः, भूचरः यः द्विजगणः ब्राह्मणसमूहः सः अशनं भोजनं यस्य तं द्विषं शत्रुं सुबाहुं पक्षे—

वकं खेचरद्विजगणाशनं खेचराणामाकाशचारिणां द्विजगणानां पक्षिसमूहानां गृध्रादीनामित्यर्थः अशनं भोजनं भोज्यमित्यर्थः विधाय कृत्वा अग्रजन्मनां ब्राह्मणानां कुलं ररक्ष रक्षितवान्। अत्र रथोद्धता वृत्तम्, 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्। चरद्विजगणाशनमित्यत्र यमकमलङ्कारः।

इसके बाद राक्षसों के संहार करने वाले उस राम ने, दूसरे पक्ष में—भीम ने पृथ्वी पर विचरण करने वाले द्विजों का—ब्राह्मणों का समूह भोजन है जिसका ऐसे उस शत्रु सुबाहु को, दूसरे पक्ष में—वक को आकाशचारी द्विज गण—पक्षियों के समूह का भोजन बना कर ब्राह्मणों के कुल की रक्षा की।

द्विजराजगवीभिः स वर्धितश्रीर्नृपात्मजः।
जगदानन्दयन् साक्षात्कामदेव इवाबभौ ॥६३॥

इति हरधरणीप्रसूत-कादम्बकुलतिलक-वीरचक्रवर्तिभूपकामदेव-प्रोत्साहितकविराजविरचिते राघवपाण्डवीये काव्ये सुबाहुवकवधो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्विजराजगवीभिः द्विजराजस्य विश्वामित्रस्य, पक्षे—द्विजराजानां तत्रस्थश्रेष्ठब्राह्मणानां गोभिः आशीर्वचनैः, कामदेवपक्षे—चन्द्रकिरणैः वर्धितश्रीः वर्धितशोभः नृपात्मजः राजकुमारः सः रामः, पक्षे--भीमः जगत् संसारं आनन्दयन् प्रमोदयन् साक्षात्कामदेव इव मदन इव कामदेवभूप इवेत्यपि व्यज्यते आबभौ शुशुभे। अत्रानुष्टुप् छन्दः, श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारः।

इति राघव पाण्डवीये काव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीदामोदरझा-साहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्र के, दूसरे पक्ष में--वहाँ के निवासी ब्राह्मणश्रेष्ठों के आशीर्वादात्मक वचन से, कामदेव पक्ष में--चन्द्रमा की किरणों से बढ़ी हुई शोभा वाले, राजकुकार वह राम, दूसरे पक्ष में—भीम संसार को आनन्दित करते हुए साक्षात् कामदेव के समान सुशोभित हुए।

इति राघव पाण्डवीय काव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्रीदामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

—:o:—

द्वितीयः सर्गः

नृपेण कन्यां जनकेन दित्सितामयोनिजां लम्भयितुं स्वयंवरे ।
द्विजप्रवर्येण स धर्मनन्दनः सहानुजस्तां भुवमप्यनीयत ॥१॥

जनकेन जनकनामकेन नृपेण राज्ञा स्वयंवरे स्वयंवरणमहोत्सवे दित्सितां दातुमिष्टां अयोनिजाम् योनिभिन्नोत्पन्नां भूमेर्निर्गतामित्यर्थः कन्यां पुत्रीं सीतामिति भावः, लम्भयितुं प्रापयितुं सहानुजः अनुज-लक्ष्मणसहितः धर्मनन्दनः धर्मं नन्दयतीति धर्मनन्दनः धर्मपालक इत्यर्थः रामः द्विजप्रवर्येण द्विजश्रेष्ठेन विश्वामित्रेण तां भुवमपि जनक-राजधानीमपि अनीयत प्रापितः। अत्र वंशस्थवृत्तम्, जतौ तु वंशस्थ-मुदीरितं जरौ इति लक्षणात् ।

जनक नामक राजा के द्वारा स्वयंवर में देने के लिये निश्चित की हुई अयोनि अर्थात् भूमि से उत्पन्न पुत्री सीता को प्राप्त कराने के लिये भाई लक्ष्मण के साथ धर्म का पालन करने वाले राम ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्र के द्वारा जनकपुर लाये गये ।

पक्षे—जनकेन पित्रा नृपेण भूपतिना द्रुपदेनेत्यर्थः, स्वयंवरे स्वयं-वरणोत्सवे दित्सितां दातुमिष्टाम् अयोनिजां योनिभिन्नोत्पन्नां यज्ञात्समुद्-भवामित्यर्थः कन्यां पुत्रीं द्रौपदीं लम्भयितुं प्रापयितुं सहानुजः अनुजैः भीमादिभिः सहितः सः राजकुमारः धर्मनन्दनः धर्मपुत्रः यधिष्ठिरः द्विजप्रवर्येण एकचक्रग्रामप्रान्तनिवासिना ब्राह्मणश्रेष्ठेन तां भुवमपि पाञ्चालनगरीमपि अनीयत प्रापितः ।

पिता राजाद्रुपद के द्वारा स्वयंवर में देने के लिये निश्चित की गयी अयोनि अर्थात् यज्ञ से उत्पन्न पुत्री द्रौपदी को प्राप्त कराने के लिये भाई भीम आदि के साथ वह राजकुमार युधिष्ठिर समीप में रहनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ के द्वारा पाञ्चाल-नगरी पहुँचा दिये गये ।

मार्गेष्वथो दीर्घतमः सुतस्य कलत्रकृच्छ्रप्रतिमोक्षणेन ।
अङ्गारवर्णस्य जितात्मनोऽसौ चकार तोषं नरदेवजन्मा ॥ २ ॥

अथो अनन्तरं मार्गेषु जनकनगरगमनपथेषु जितात्मनः संयतात्मनः जितेन्द्रियस्येत्यर्थः, अङ्गारवर्णस्य प्रज्वलितवह्निखण्डसदृशवर्णस्य देदीप्य-

मानस्वरूपस्येत्यर्थः दीर्घतमःसुतस्य दीर्घतमाः नाम ऋषिः तत्पुत्रस्य गौतमस्येत्यर्थः कलत्रकृच्छ्रप्रतिमोक्षणेन कलत्रस्य तत्पत्न्याः अहिल्यायाः यत् कृच्छ्रं कष्टं पाषाणस्वरूपत्वं तन्मोचनेन नरदेवजन्मा नरदेवात् राज्ञः जन्म यस्य सः राजकुमार इत्यर्थः असौ रामः तोषं प्रीतिं चकार कृतवान् । अहिल्यायाः पाषाणत्वमोचनेन गौतमस्य प्रीतिं कृतवान् इति भावः । अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

इसके बाद जनकपुर जाने के मार्ग में इन्द्रियों के जीतने वाले प्रज्वलित आग के टुकड़े के समान स्वरूप वाले दीर्घतमा नामक ऋषि के पुत्र गौतम की पत्नी अहिल्या की पत्थररूपता का कष्ट दूरकरने से राजकुमार उस राम ने गौतम की प्रसन्नता उत्पन्न की ।

पक्षे—अथो अनन्तरं दीर्घतमःसु घनान्धकारपूर्णेषु मार्गेषु पाञ्चालनगरगमनपथेषु जितात्मनः कामविकारेण विजितात्मनः कामवशीभूतस्येत्यर्थः अङ्गारवर्णस्य अङ्गारवर्णनाम्नः तस्य गन्धर्वस्य कलत्रकृच्छ्रप्रतिमोक्षणेन कलत्रेभ्यः पत्नीभ्यः यत् कृच्छ्रं कष्टं परवशतारूपमिति भावः तत्प्रतिमोक्षणेन तन्निरासेन नरदेवजन्मा राजकुमारः असौ अर्जुनः तोषं सन्तोषं चकार कृतवान् । रात्रौ घनान्धकारमये पथि उल्कया गच्छन्नर्जुनः कामपरवशत्वात्स्त्रीभी रममाणेनाङ्गारवर्णेनावरुद्धोऽसौ युद्धे तं विजित्य ज्ञानोपदेशेन तस्य सन्तोषं चकारेति पुराणम् ।

इस के बाद रात के समय घने अन्धकारमय पाञ्चालगमनमार्ग में काम विकार से विजित आत्मा वाले अर्थात् स्त्रियों के वशीभूत अङ्गारवर्ण नामक गन्धर्व के कलत्रकष्ट अर्थात् स्त्रीपराधीनता का कष्ट दूर करने से राजकुमार इस अर्जुन ने उस की सन्तुष्टि की । ज्ञानोपदेश से स्त्रीपराधीनता रूपी उसका कष्ट दूर करके उसे आनन्द पहुँचाया ।

सार्धं द्विजैः संवृतधाम्नि जिष्णावुपेयुषि ख्यातककुत्स्थवंशे ।
नयज्ञसेनस्य नयोपपन्ना राज्ञः पुरी भूपतिभिः पुपूरे ॥३॥

द्विजैः ब्राह्मणैः सार्धं सह संवृतधाम्नि अप्रकटतेजसि ख्यातककुत्स्थवंशे ख्यातः प्रसिद्धः ककुत्स्थः ककुत्स्थनामा यस्मिन् एवंभूतः वंशोऽन्ववायो यस्य तस्मिन् जिष्णौ जयनशीले रामे उपेयुषि प्राप्तवति सति नयज्ञसेनस्य नयज्ञा नीतिज्ञात्री सेना यस्य तस्य राज्ञो जनकस्य नयोपपन्ना नयेन नीत्या उपपन्ना युक्ता, पुरी भूपतिभिः स्वयंवरागतैर्नृपतिभिः पुपूरे पूर्णाभवत् । अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

ब्राह्मणों के साथ अप्रकटतेजवाले प्रसिद्ध ककुत्स्थ नामक राजा के वंश में पैदा होनेवाले, विजयशील उस राम के आजाने पर नीतिजाननेवाली सेना है जिस की उस राजा जनक की नीति से युक्त पुरी, स्वयंवर में आये हुए राजाओं से भर गयी।

पक्षे—द्विजैः ब्राह्मणैः सार्धं साकं संवृतधाम्नि अप्रकटिततेजसि ख्यातककुत्स्थवंशे ककुदि छत्रचामरादौ राजचिह्ने तिष्ठतीति ककुत्स्थः 'प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। ख्यातः प्रसिद्धः ककुत्स्थः वंशः चन्द्रवंशो यस्य तस्मिन् जिष्णौ अर्जुने उपेयुषि प्राप्तवति सति यज्ञसेनस्य द्रुपदस्य राज्ञो भूपतेः योपपन्ना यैः यानैः उपपन्ना परिपूर्णा पुरी नगरी 'यो ना वायौ यमनेयायात्राप्तिधूमितत्यागेषु। वारणयोगसमज्ञायानेषु पुमांस्तु गन्तरि ख्यातः' इति मेदिनी, भूपतिभिः स्वयंवरागतैः नृपतिभिः न पुपूरे न = न परिपूर्णा इति न परिपूर्णा एव इत्यर्थः।

ब्राह्मणों के साथ अप्रकटिततेजवाले प्रसिद्ध–छत्रचामरादिराजचिन्हवाला वंश है जिस का उस अर्जुन के आ जाने पर द्रुपद राजा की रथ आदि यानो से संयुक्त नगरी स्वयंवर में आये हुए राजाओं से नहीं भर गई ऐसी बात नहीं; अर्थात् अवश्य भर गई।

आलोलचामरमरालचितान्तरालै-
श्छत्रोत्करैः स्तवकिता पृथिवीश्वराणाम्।
नानादिगन्तरजुषां कमलाकराणा-
मेकालयत्वमिव सा नगरी जगाम ॥ ४ ॥

सा नगरी जनकनगरी, पक्षे—पाञ्चालनगरी नानादिगन्तरजुषाम् अनेकदिगन्तरस्थितानां पृथिवीश्वराणां राज्ञाम् आलोलचामरमरालचितान्तरालैः आलोलाश्चञ्चलाः ये चामराः एव मरालाः हंसाः तैः चिताः पूरिताः अन्तरालाः अवकाशस्थानानि येषां तैः छत्रोत्करैः छत्रसमूहैः स्तवकिता स्तवकयुक्ता कृता परिपूरिता इत्यर्थः अत एव नानादिगन्तरजुषाम् अनेकदिग्भागावस्थितानां कमलाकराणां कमलसरोवराणाम् एकालयत्वमिव एकः आलयः गृहं एकालयः तत्त्वमिव एकगृहत्वमिव जगाम प्राप। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, अंशे रूपकमपि, वसन्ततिलका वृत्तम्।

वह जनक की नगरी, दूसरे पक्षमें—पाञ्चालनगरी अनेकदिशाओं के निवासी राजाओं के चंचलचामररूपी हंसों से भरे हुए हैं अवकाशभाग जिनके उन

छत्रसमूहों से गुच्छे की तरह भरी हुई, अनेक दिशाओं में रहनेवाले कमल सरोवरों की एकाश्रयता को मानो प्राप्त कर गई।

सद्योमृष्टाभरणकिरणैः पूरयन्तो दिगन्ता-
न्वीर्योत्कर्षादहमहमिकां भूभृतो दर्शयन्तः।
वैन्ध्यं वैन्ध्यास्तरव इव ते पुष्पिताः सानुभागं
क्षत्रायत्ते विहितमतयः शोभयन्ति स्म रङ्गम् ॥५॥

सद्योमृष्टाभरणकिरणैः सद्यः तत्कालं मृष्टानि मार्जितानि यानि आभरणानि तेषां किरणैः रश्मिभिः दिगन्तान् दिग्भागान् पूरयन्तः, वीर्योत्कर्षात् बलाधिक्यात् अहमहमिकाम् अहमग्रे अहमग्रे इत्येवं रूपं भावं दर्शयन्तः, क्षत्रायत्ते क्षत्रियाधीने कर्मणि वीरतायामिति भावः विहितमतयः कृतबुद्धयः ते भूभृतः राजानः, पुष्पिताः विकसिताः वैन्ध्याः विन्ध्यपर्वतोत्पन्नाः तरवः वृक्षाः वैन्ध्यं विन्ध्यसम्बन्धिनं सानुभागमिव शिखरप्रदेशमिव रङ्गं स्वयंवरस्थानं शोभयन्ति स्म सुशोभितं चक्रुः। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इति लक्षणात्। उपमालङ्कारः।

तत्काल परिमार्जित आभूषणों की किरणों से दिग्भागों को पूरित करते हुए, बल की अधिकता से 'मैं आगे, मैं आगे' इस प्रकार होड़ लगाये हुए, क्षत्रियों के अधीन के काम वीरता दिखलाने का विचार किये हुए वे राजा लोग विन्ध्याचल पहाड़ से उत्पन्न विकसित वृक्ष विन्ध्याचल के शिखर प्रदेश को जैसे सुशोभित करते हैं उसी प्रकार स्वयंवरस्थान को सुशोभित किये।

अथानुरूपेण जनेन गुप्ता मनोज्ञवेषा मनुजेन्द्रकन्या।
उपाययौ लोचनवर्त्म राज्ञामाज्ञेव मूर्ता मकरध्वजस्य ॥६॥

अथ अनुरूपेण उचितेन जनेन मनुष्येण दासीप्रतीहारादिजनेन गुप्ता सुरक्षिता मनोज्ञवेषा अलङ्कारादिभिः सुन्दरस्वरूपा मनुजेन्द्रकन्या राजकुमारी सीता, पक्षे—द्रौपदी, मकरध्वजस्य कामदेवस्य मूर्ता शरीरधारिणी आज्ञेव आदेश इव राज्ञां भूपतीनां लोचनवर्त्म नयनपथम् अवलोकनस्थानमिति यावत् उपाययौ आगतवती। स्वयंवरसभायामुपस्थिता बभूवेति भावः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुत्प्रेक्षालङ्कारः।

इसके बाद दासी प्रतीहारादि उचित व्यक्तियों से सुरक्षित सुन्दर आभूषित शरीर वाली राजकुमारी सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी कामदेव की प्रत्यक्षरूप-

धारण करने वाली आज्ञा के समान राजाओं के अवलोकन पथ पर आ गई। अर्थात् स्वयंवर सभा में वह प्रत्यक्षरूप से उपस्थित हो गयी।

सा तत्र यानादवतीर्य तन्वी सौदामनीवाम्बुदराजिमध्यात्।
समीपमाप स्वपणीकृतस्य चापस्य पुष्पायुधचापयष्टिः ॥७॥

तन्वी कृशाङ्गी पुष्पायुधचापयष्टिः कामदेवस्य धनुर्दण्डस्वरूपा सा सीता, पक्षे—द्रौपदी अम्बुदराजिमध्यात् मेघसमूहान्तरतः सौदामनीव विद्युदिव तत्र सभायाम् यानाद् वाहनाद् अवतीर्य स्वपणीकृतस्य स्वशुल्कीकृतस्य चापस्य धनुषः समीपमाप समीपं गतवती। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। उपमारूपकञ्चालङ्कारः।

कृशशरीरवाली कामदेव के धनुर्दण्डस्वरूप वह सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी मेघमाला के अन्दर से निकली हुई बिजली के समान उस सभा में सवारी से उतर कर अपने विवाह के शुल्कस्वरूप धनुष के पास पहुँची।

शक्तिर्मूर्तिमयी स्मरस्य जगतो नारीमयं मण्डनं
कान्तानामुपमानकल्पनकलाकान्तेः समुत्तेजनम्।
लक्ष्मीः संसृतिसागरस्य सरसी लावण्यपुण्याम्भसां
सा राजव्रजचक्षुषां क्षणमभूदानन्दपण्यस्थली ॥८॥

स्मरस्य कामदेवस्य मूर्तिमयी शरीरधारिणी शक्तिः सामर्थ्यं, जगतः संसारस्य नारीमयं स्त्रीस्वरूपं मण्डनमाभूषणम्, कान्तानां सुन्दरीणाम् उपमानकल्पनकलाकान्तेः उपमानकल्पनमेव कला शिल्पं तत्कान्तेः शोभायाः समुत्तेजनं वर्धनं, संसृतिसागरस्य संसृतिः संसार एव सागरः तस्य लक्ष्मीः रमा, लावण्यपुण्याम्भसां लावण्यं सौन्दर्यकान्तिः एव पुण्याम्भः पवित्रजलं तेषां सरसी सरोवरस्वरूपा सा सीता, पक्षे—द्रौपदी राजव्रजचक्षुषां नृपसमूहनेत्राणां क्षणं किञ्चित्कालं यावत् आनन्दपण्यस्थली आनन्दः एव पण्यं क्रय्यवस्तु तस्य पण्यस्थली पण्यवीथी अभूत् अभवत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। उल्लेखोऽलङ्कारः, लक्ष्मीः सरसीरित्यत्र परम्परितरूपकमपि।

कामदेव की स्वरूप-धारण करने वाली शक्ति, संसार की स्त्री रूपी आभूषण, सुन्दरियों के उपमान की कल्पना करने के शिल्प की कान्ति का संवर्धन, संसार रूपी समुद्र की शोभा, सौन्दर्य की कान्तिरूपी पवित्रजल के लिये सरोवर, वह सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी राजाओं के समूह की आँखों के लिये कुछ देर तक आनन्दरूपी खरीदने की वस्तु का बाजार बन गई।

सौन्दर्यश्रीपताका निखिलयुवमनःशृङ्खला लोकचक्षुः-
पक्ष्मस्पन्दव्युदासः सुरमुनिहृदयाकर्षणे कामपाशः ।
तारुण्योद्यानवल्ली पतिसुकृतकला कामकोदण्डमौर्वी
रेजे तद्दोर्लताग्रे वरवरणकृते कल्पिता पुष्पमाला ॥९॥

तद्दोर्लताग्रे तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः या दोर्लता बाहुवल्ली तदग्रे अग्रभागे वरवरणकृते वरस्य परिणेतुः वरणकृते वरणार्थं कल्पिता निर्धारिता सौन्दर्यश्रीपताका सौन्दर्यश्रियः सौन्दर्यलक्ष्म्याः पताका वैजयन्ती केतुवस्त्राञ्चलमिति यावत्, निखिलयुवमनःशृङ्खला निखिलानां सर्वेषां यूनां यानि मनांसि तेषां शृङ्खला बन्धनशृंखला, लोकचक्षुःपक्ष्मस्पन्दव्युदासः लोकानां जनानां यत् चक्षुःपक्ष्मस्पन्दनं निमेषोन्मेषौ तयोर्व्युदासः निरसनं, सुरमुनिहृदयाकर्षणे सुराणां देवानां मुनीनामृषीणां यानि हृदयानि तेषामाकर्षणे आकर्षणकार्ये कामपाशः कामस्य पाशः बन्धनरज्जुः तारुण्योद्यानवल्ली तारुण्यमेव उद्यानम् वाटिका तस्य वल्ली लता, पतिसुकृतकला पत्युः परिणेतुः सुकृतकला पुण्यशिल्पं, कामकोदण्डमौर्वी कामस्य मदनस्य यत् कोदण्डं धनुः तस्य मौर्वी ज्यापुष्पमाला वरणमाला रेजे शुशुभे । अत्र स्रग्धरावृत्तम् । एकस्यां मालायामनेकरूपणाद् मालारूपकमलङ्कारः ।

सीता की भुजलता के अग्रभाग में, दूसरे पक्ष में-द्रौपदी की भुजलता के अग्रभाग में वर के वरण करने के लिये निर्धारित (फूल की माला) सौन्दर्य की शोभा के लिये पताका, सभी युवकों के मन के लिये बन्धनबेड़ी, लोगों की आंखों के पक्ष्म के स्पन्दन (निमेषोन्मेष) का निवारण, देवता और मुनियों के हृदय का आकर्षण करने में कामदेव की बन्धनरस्सी, तारुण्यरूपी वगीचे की लता, भविष्य पति के पुण्य की कला, कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा वह पुष्पमाला सुशोभित हो रही थी ।

सा दुग्धसिन्धोरुदितैव लक्ष्मीर्लावण्यमस्या नियतं सुधैव ।
यदेतदापीय दृशा प्रपेदे मनुष्यलोकोऽप्यनिमेषभावम् ॥१०॥

सा सीता, पक्षे—द्रौपदी दुग्धसिन्धोः दुग्धसमुद्राद् उदिता उत्पन्ना लक्ष्मीरेव पद्मा एव, अस्याः लावण्यं सौन्दर्यकान्तिः सुधा एव अमृतमेव नियतं निश्चितम्, यद् यस्माद्धेतोः एतद् लावण्यम् दृशा लोचनेन आपीय आस्वाद्य मनुष्यलोकोऽपि मनुष्यजनः अपि अनिमेषभावम् अनिमेषाः देवाः तद्भावं देवत्वं प्रपेदे प्राप्तवान् । सर्वे मनुष्याः

निर्निमेषाः जाताः इति भावः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। साङ्गरूपकमलङ्कारः।

वह सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी दुग्ध समुद्रसे निकली हुई लक्ष्मी है और उसका लावण्य निश्चित रूप से अमृत है, क्यों कि इसे आंखों के द्वारा पान कर के मनुष्य लोग भी देवत्व (निर्निमेषता) प्राप्त कर गये।

राज्ञां मनोदर्पणमण्डलेषु प्रत्येकमेका युगपत्स्फुरन्ती।
रराज बाला कुमुदाकरेषु लेखा हिमांशोः प्रतिबिम्बितेव ॥११॥

एका बाला सा सीता, पक्षे—द्रौपदी राज्ञां भूपानां मनोदर्पणमण्डलेषु मनांस्येव दर्पणमण्डलानि मुकुरसमूहाः तेषु प्रत्येकम् एकैकस्मिन् युगपत् समकालमेव स्फुरन्ती प्रतिभासितशरीरा कुमुदाकरेषु कुमुदसरोवरेषु बहुषु इति भावः, प्रतिबिम्बिता संक्रान्तप्रतिबिम्बा युगपदेवेति तात्पर्यं हिमांशोः चन्द्रस्य लेखा कला इव रराज शुशुभे। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। मनोदर्पणमित्यत्र रूपकं लेखेवेत्यत्र चोपमालङ्कारः।

बालिका सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी राजाओं के मनरूपी दर्पण के समूह के एक एक में एक ही समय में प्रतिभासितशरीरवाली वह विभिन्न कुमुदसरोवरों में एक ही समय में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की कला के समान सुशोभित होने लगी।

पुष्पैर्विचित्रैर्ग्रथितो विरेजे तस्या घनः कुञ्चितकेशपाशः।
तद्वक्त्रपद्मोत्तमगन्धलोभात् सान्द्रीभवद्भृङ्गपरम्परेव ॥१२॥

तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः विचित्रैः नानाविधैः पुष्पैः कुसुमैः ग्रथितः अवगुम्फितः घनः सान्द्रः कुञ्चितकेशपाशः कुञ्चितः ऊर्मिमान् केशपाशः केशकलापः, तद्वक्त्रपद्मोत्तमगन्धलोभाद् तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः यद् वक्त्रमेव पद्मं कमलं तस्य उत्तमगन्धलोभात् सौरभजिघ्रिक्षाहेतोः सान्द्रीभवद्भृङ्गपरम्परेव सान्द्रीभवन्ती निबिडीभवन्ती या भृङ्गपरम्परा मधुपराजिः सा इव विरेजे शोभते स्म। अत्रेन्द्रवज्रा वृत्तम्, उत्प्रेक्षालङ्कारश्च।

उस सीता का, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी का नाना प्रकार के फूलों से गुम्फित सघन तथा घुघराला केशसमूह, उसके मुखरूपी कमल के सौरभ के लोभ से सघनरूप से इकट्ठी हुई भौरों की श्रेणी के समान सुशोभित हो रहा था।

वक्त्रस्य तस्याः प्रसमीक्ष्य शोभां तारापतिर्मण्डलमाप भानोः।
तथापि नो साम्यमुपैति दीनस्तप्तुं तपः प्राप पुरारिमौलिम् ॥१३॥

तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः वक्त्रस्य मुखस्य शोभां सौन्दर्यं प्रसमीक्ष्य अवलोक्य तारापतिः चन्द्रः अमावास्यायां भानोः सूर्यस्य मण्डलम् आप प्रविशति स्म तद्वत्सौन्दर्यलाभार्थमिति भावः, तथापि तथाकृते सत्यपि साम्यं सादृश्यं नो उपैति न प्राप्नोति स्म अतः दीनः दुःखितः सन् तपः तप्तुं तपस्यां कर्तुं पुरारिमौलिं शङ्करमस्तकं शङ्कर-जटाकाननमिति भावः, प्राप गतवान् इति वितर्कयामि। अत्राप्युप-जातिवृत्तम् , उत्प्रेक्षालङ्कारः।

उस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के मुह का सौन्दर्य देखकर उसे प्राप्त करने के लिये चन्द्रमा अमावास्या तिथि में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर गया, उस पर भी जब उस का सादृश्य नहीं मिला तब तपस्या करने के लिये शङ्करजी के जटाजूट रूपी जंगल में पहुँच गया है यह मैं वितर्क करता हूँ।

एतस्या नेत्रशोभां तुलयति न यदा खञ्जनः प्राप्तकीर्ति-
र्नूनंवातापिहन्तुः श्रयति पदमतो योगयुक्तस्तपस्वी।
तद्वन्नीलोत्पलेन प्रतिदिवसमतो मग्नमप्सु प्रविष्टाः
कान्तारं तद्वदेण्यः प्रथितमिह यतो नास्त्यलभ्यं तपोभिः ॥१४॥

यदा एतस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः नेत्रशोभां नयनसौन्दर्यं प्राप्तकीर्तिः प्राप्ता कीर्तिः येन सौन्दर्यविषये इति भावः सः खञ्जनः खञ्जरीटपक्षी न तुलयति न साम्यं प्राप्नोति अतः योगयुक्तः युक्तियुक्तः 'योगोऽपूर्वार्थसंप्राप्तौ संगतिध्यानयुक्तिषु' इति मेदिनी, तपस्वी दुःखी तपश्चरणशील इत्यपि, वातापिहन्तुः अगस्त्यस्य पदं स्थानं श्रयति आश्रयति दक्षिणां दिशं गच्छतीति भावः। तद्वत् तेनैव प्रकारेण तन्नयनसौन्दर्यमप्राप्येति भावः नीलोत्पलेन नीलकमलेन प्रतिदिवसं प्रतिदिनम् अप्सु जलेषु मग्नं जले निमज्य तपश्चरणं कृतमिति भावः, तद्वत् तेनैव प्रकारेण अतः अस्मादेव कारणात् तन्नयनसौन्दर्यसाम्य-प्राप्त्यभावादितिभावः, एण्यः हरिण्यः कान्तारं महारण्यं 'कान्तारोऽस्त्रीमहारण्ये बिले दुर्गमवर्त्मनि' इति मेदिनी, प्रविष्टाः गताः, यतो यस्माद्धेतोः इह जगति प्रथितं प्रसिद्धमस्ति यत् तपोभिः तपस्यया अलभ्यम् अप्राप्यं न अस्ति किमपीति शेषः, नूनं निश्चयेन। अत्र स्रग्धरावृत्तम् , उत्प्रेक्षालङ्कारः।

जब सुन्दरता की कीर्तिप्राप्तकरनेवाला खञ्जन इस सीता की, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी की आंखों की शोभा का सादृश्य नहीं प्राप्त कर सका तब युक्ति का आश्रय लेने वाला तपस्वी वह वातापिदानव के मारनेवाले अगस्त्य के पद का

आश्रय लिया, अर्थात् वर्षा ऋतु में दक्षिण दिशा में चला गया, उसीप्रकार इसी कारण से नीलकमल प्रतिदिन पानी में डूबा हुआ रहता है, अर्थात् उसकी आंखों का सादृश्य प्राप्त करने के लिये पानी में डूब कर तपस्या कर रहा है, इसीप्रकार हरिणियाँ अपनी आंखों से उसकी आंखों का सादृश्य न प्राप्त कर सकने के कारण बड़े जंगलों में प्रवेश कर गईं, घोर जंगल में प्रवेश कर के तपस्या कर रही हैं, यह भाव है। क्योंकि इस संसार में प्रसिद्ध है कि तपस्या से कोई वस्तु अलभ्य नहीं है।

तद्दन्तशोभामनुकर्तुमेषा नाभूद् यतो दाडिमबीजपङ्क्तिः।
शक्ता ततोऽस्या हृदयं विदद्रे तत्तापतप्तं ध्रुवमीर्ष्ययैव ॥१५॥

यतः यस्माद्धेतोः एषा दाडिमबीजपङ्क्तिः तद्दन्तशोभां तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः दन्तशोभां दशनसौन्दर्यम् अनुकर्तुं तत्सादृश्यं धारयितुं शक्ता समर्था नाभूत् न अभवत् ततस्तस्माद्धेतोः अस्याः दाडिमबीजपंक्तेः तत्तापतप्तं तेन सन्तापेन दुःखितं हृदयं ईर्ष्ययैव विदद्रे विदीर्णम् इति ध्रुवम्। अत्र इन्द्रवज्रावृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

क्यों कि यह दाड़िमबीजपङ्क्ति उस सीता के, दूसरे पक्ष में—उस द्रौपदी के दांतों की शोभा का अनुकरण नहीं कर सकी, इसलिये उस दुःख से दुखी इसका हृदय ईर्ष्या के कारण ही फट गया, यह निश्चित है।

तदीयसौन्दर्यसरोमृणालं भुजद्वयं रक्तकराम्बुजाढ्यम्।
विकासनार्थं रविरश्मितुल्या नखांशवोऽग्रे प्रसरन्ति शोणाः ॥१६॥

तदीयसौन्दर्यसरोमृणालं तदीयस्य सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः यत् सौन्दर्यमेव सरः तस्य मृणालस्वरूपं रक्तकराम्बुजाढ्यं रक्तौ अरुणौ करावेवाम्बुजे ताभ्यामाढ्यं संयुक्तं भुजद्वयमस्तीति शेषः तद्विकासनार्थं शोणाः रक्तवर्णाः रविरश्मितुल्याः सूर्यकिरणसदृशाः नखांशवः नखकिरणाः अग्रे कराग्रभागे प्रसरन्ति प्रसर्पन्ते। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्, रूपकम् उपमा चालङ्कारः।

उस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के सौन्दर्य रूपी सरोवर के मृणाल स्वरूप लाल हाथरूपी कमल से युक्त दोनों भुजाओं को विकसित करने के लिये सूर्य की किरणों के समान लाल नख की किरणें हाथ के आगे फैल रही हैं।

नन्वेतेभ्यः स्फुटमनुनिशं बद्धकोशाञ्जलिभ्यः
सानुक्रोशं निजरुचिलवो दीयतामम्बुजेभ्यः।

इत्येतस्याः प्रतिपदमिव व्याहरद्भ्यामुपान्ते
पादद्वन्द्वं ललितचतुरं नूपुराभ्यामुपात्तम् ॥१७॥

अनुनिशं प्रतिरात्रि स्फुटं स्पष्टरूपेण बद्धकोशाञ्जलिभ्यः बद्धाः कोशाः कुड्मलानि एव अञ्जलयः यैस्तेभ्यः एतेभ्यः अम्बुजेभ्यः कमलेभ्यः निजरुचिलवः निजाया आत्मीयायाः रुचेः कान्तेः लवः कणः सानुक्रोशं सदयं यथा स्यात्तथा दीयतां वितीर्यताम् इति एवं प्रकारेण प्रतिपदं प्रतिचङ्क्रमणम् उपान्ते समीपे व्याहरद्भ्यामिव ब्रुवद्भ्यामिव नूपुराभ्यां मञ्जीराभ्याम् एतस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः ललितचतुरं ललिते विलासविषये चतुरं निपुणं पादद्वन्द्वं चरणयुगलम् उपात्तम् प्राप्तम् उपगतमिति यावत्, ननु इत्यवधारयामि 'प्रश्नावधारणाऽनुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु इत्यमरः। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम्, उत्प्रेक्षाद्वयमलङ्कारः।

हर एक रात में स्पष्ट रूप से कुड्मलरूपी अञ्जली बान्धकर खड़े रहने वाले कमलों को अपनी कान्ति का एक कण दया कर के दिया जाय। यह प्रत्येक-कदम में समीप में कहते हुए के समान दोनों नूपुरों ने इस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के विलास में चतुर दोनों चरणों को प्राप्त किया है, ऐसा मुझे मालूम होता है।

गमनमलसयानैः कुम्भलक्ष्मीं कुचाभ्या-
मविकलकरशोभामूरुकाण्डद्वयेन ।
यदियमहरदेषां हेतुना तेन नूनं
निजवपुषि करीन्द्राः पांसुपूरं क्षिपन्ति ॥१८॥

यद् यस्माद्धेतोः इयं सीता, पक्षे—द्रौपदी एषां हस्तिनां गमनं गमनशोभाम् अलसयानैः मन्दगमनैः, कुम्भलक्ष्मीं कुम्भशोभां कुचाभ्यां स्तनाभ्याम्, अविकलकरशोभां सम्पूर्णशुण्डसौन्दर्यं ऊरुकाण्डद्वयेन ऊरुदण्डयुग्मेन अहरत् हृतवती स्वयं धृतवतीति भावः, तेन हेतुना तेन कारणेन नूनं निश्चितं करीन्द्राः हस्तिनः निजवपुषि स्वशरीरे अनादरबुद्धया पांसुपूरं धूलिसमूहं क्षिपन्ति प्रक्षिपन्ति दधति। अत्र मालिनीवृत्तम्, उत्प्रेक्षालङ्कारः।

क्यों कि इस सीता ने, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी ने इन हाथियों की गमन शोभा अपने मन्दगमन से, मस्तक की शोभा दोनों स्तनों से, सम्पूर्णशुण्ड की शोभा

दोनों ऊरुदण्डों से, छीन ली है इस कारण से निश्चित ये हाथी अपने शरीर पर अनादर की बुद्धि उत्पन्न होने से धूलियों का ढेर डाल लेते हैं।

एवं नरेन्द्रेषु वितर्कयत्सु ततो विलोक्यावयवं तदीयम्।
उत्क्षिप्य पाणी निपुणेन वाणी मध्येसभं केनचिदित्यभाणि ॥१९॥

तदीयं सीतासम्बधिनं, पक्षे—द्रौपदीसम्बन्धिनम् अवयवम् अङ्गं विलोक्य अवलोक्य नरेन्द्रेषु नृपेषु एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वितर्कयत्सु वितर्कं कुर्वत्सु सत्सु ततस्तदनन्तरं मध्येसभं सभायाः मध्ये केनचित् निपुणेन चतुरेण पुरुषेण पाणी करद्वयम् उत्क्षिप्य ऊर्ध्वमुत्तोल्य इति वक्ष्यमाणा वाणी वाक् अभाणि उक्ता। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति वृत्तम्।

उस सीता के अङ्ग को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के अङ्ग को देख कर पूर्वोक्त प्रकार से राजाओं के वितर्क करते रहने के बाद बीच सभा में किसी चतुर पुरुष ने दोनों हाथों को उठा कर आगे कही जाने वाली वाणी कही।

दुरानमं धनुरिदमीश्वरादृते
निजौजसा कलितगुणं विधाय यः।
प्रदर्शयेत् परिषदि लब्धलक्ष्यतां
जयश्रिया सह स लभेत कन्यकाम् ॥२०॥

यः यःकश्चिद् ईश्वरादृते शङ्करातिरिक्तेन केनापि दुरानमं दुःखेनापि नमयितुमशक्यम् इदं प्रत्यक्षीभवत् धनुः परिषदि सभायां निजौजसा स्वबलेन कलितगुणं कलितः गृहीतः गुणः मौर्वी येन तत् विधाय कृत्वा गुणसहितं कृत्वेत्यर्थः लब्धलक्ष्यतां लब्धं प्राप्तं लक्ष्यम् अपदेशः निमित्तमिति यावत् धनुर्भङ्गरूपमिति भावः येन सः लब्धलक्ष्यः तस्य भावः तत्ता तां प्रदर्शयेत् प्रकाशयेत्। 'लक्ष्यं स्यादपदेशेऽपि शरव्येऽपि नपुंसकम्' इति, 'अपदेशः पुमाँल्लक्ष्ये निमित्तव्याजयोरपि' इति च मेदिनी, पक्षे—लब्धं प्राप्तं लक्ष्यं शरव्यं कूपतैलविलोकनद्वारा राधाचक्रच्छिद्रमार्गेण मत्स्यनेत्रबेधरूपमित्यर्थः येन सः लब्धलक्ष्य तस्य भावः तत्ता तां लक्ष्यवेद्धृत्वं प्रदर्शयेत् प्रकाशयेत् सः जयश्रियाः विजयलक्ष्म्या सह कन्यकां जानकीं, पक्षे—द्रौपदीं लभेत प्राप्नुयात्। अत्र रुचिरा वृत्तं 'चतुर्ग्रहैर्यति रुचिरा जभौ स्जगा' इति लक्षणात् तथा सहोक्तिरलङ्कारः।

शङ्कर भगवान् को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति से न झुकाने योग्य इस धनुष को सभा में जो कोई डोरी चढ़ा कर धनुषभङ्गरूपी विवाह का निमित्त प्राप्त करने वाला अपना स्वरूप दिखावे, दूसरे पक्ष में—तेल के कूप में देखते हुए घूमने वाले राधाचक्र के छेद से बाण पार करते हुए मछली की आँख रूपी लक्ष्य को प्राप्त करने वाला अर्थात् निशाना लगाने वाला अपना स्वरूप दिखावे वह विजयशोभा के साथ राजकुमारी सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी को प्राप्त कर सकता है।

इति वचसि तदानीमुक्तमात्रे नरेन्द्राः
पृथुतरभुजदर्पास्तूर्णमुत्थाय पीठात्।
द्रुतपदमभिपेतुस्तद्धनुर्भीमरूपं
फणिपतिमिव भोगिग्राहिणोऽग्र्यं ग्रहीतुम् ॥२१॥

तदानीं तस्मिन् समये तेन जनेनेति शेषः इति वचसि पूर्वोक्तवचने उक्तमात्रे कथितमात्रे सति पृथुतरभुजदर्पाः स्थूलतरभुजाहङ्कारवन्तः बलगर्विताः इत्यर्थः, नरेन्द्राः राजानः पीठाद् आसनात् तूर्णं शीघ्रम् उत्थाय भोगिग्राहिणः सर्पग्राहिणः जाङ्गुलिका इति यावत् नरेन्द्राः विषवैद्याः 'नरेन्द्रस्तु महीपाले विषवैद्ये च पुंस्यथ' इति मेदिनी, भीमरूपं भयङ्करस्वरूपं फणिपतिमिव महासर्पमिव भीमरूपं भयङ्कर-रूपम् अग्र्यं प्रधानं तद्धनुः तच्चापं ग्रहीतुं द्रुतपदं शीघ्रगमनं यथा स्यात्तथा अभिपेतुः अभिपतन्ति स्म। अत्र मालिनीवृत्तमुपमालङ्कारः।

उस समय उस पुरुष के द्वारा वह वचन कहते ही अत्यन्त भुजबल से गर्वित राजा लोग सिंहासन से शीघ्रता से उठ कर साँप के पकड़ने वाले विषवैद्य सपेरा जैसे भयङ्कर नाग को पकड़ने के लिये दौड़ते हैं उसी प्रकार उस भयङ्कर तथा श्रेष्ठ धनुष को पकड़ने के लिये दौड़ पड़े।

कन्यां निधानकलसीमिव कार्मुकं च
भीमं भुजङ्गमिव तत्प्रतिबन्धरूपम्।
दृष्ट्वा विलोलमतयः कतिचित्क्षितीशा
नादातुमुज्झितुमपि क्षमतामवापुः ॥२२॥

निधानकलसीमिव द्रव्यपूर्णघटीमिव कन्यां राजकुमारीं सीतां, पक्षे—द्रौपदीं तथा तत्प्रतिबन्धरूपं तत्कन्याप्राप्तेर्बाधकस्वरूपं भीमं भयङ्करं भुजङ्गमिव सर्पमिव कार्मुकं धनुः च दृष्ट्वा विलोक्य विलोल-

मतयः कन्याप्राप्तिलोभेन धनुर्नमनाक्षमताभयेन च दोलायमानबुद्धयः कतिचित् केचित् क्षितीशाः राजानः न आदातुं धनुर्ग्रहीतुं तथा न उज्झितुं त्यक्तुं क्षमतां योग्यताम् अवापुः प्राप्तवन्तः। उभयतो दोलायमानेन मनसा धनुर्ग्रहीतुं निवर्त्योपवेष्टुं वा कमपि निश्चयं कर्तुं नाशक्नुवन्। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात् उपमालङ्कारश्च।

खजाने के घड़े के समान उस कन्या सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी को तथा उसके प्रतिबन्धस्वरूप भयङ्कर सर्प के समान उस धनुष को देख कर कन्या प्राप्ति के लोभ से तथा धनुष चढ़ाने की अक्षमता के भय से विचलितबुद्धिवाले कुछ राजा लोग न तो धनुष को पकड़ने में और न त्याग करने में समर्थ हुए। अर्थात् लोभ और भय के कारण धनुष छूने तथा छोड़ कर हट जाने में से कुछ भी निर्णय नहीं कर सके।

साभिमानमनसो नराधिपाः केचिदाचरितबाहुसाहसाः।
केऽपि चापनतिबाहुविक्लवाः कुर्वते स्म निजमानमानतम् ॥२३॥

केचित् साभिमानमनसः अभिमानयुक्तचेतसः नराधिपाः राजानः आचरितबाहुसाहसाः आचरितः कृतः बाहोः साहसः यैस्ते केऽपि अन्ये चापनतिबाहुविक्लवाः चापनतौ चापनमने चापनमनायासे इति भावः, बाहुः भुजः विक्लवः क्लिष्टः येषां ते निजमानं स्वाभिमानम् आनतं नम्रं कुर्वते स्म। अत्र रथोद्धतावृत्तम् 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्।

कुछ अभिमानी राजा लोग बाहु का साहस और कुछ धनुष के झुकाने के प्रयत्न में भुजा का कष्ट धारण करके अपने मान को नीचा करके रह गये।

दूरात्केचन केचिदीक्षणपथादन्ये करस्पर्शना-
देके धारणतः सगर्वमितरे मुष्टौ करास्फालनात्।
आनम्रीकरणात्परे कतिपये जीवाटनीघट्टना-
त्कोदण्डे नयशालिनीव नृपतौ वन्ध्यश्रमास्तेऽभवन् ॥२४॥

नयशालिनि नीतिज्ञे नृपतौ इव राजनि इव केचन राजानः दूरात् केचित् ईक्षणपथात् अवलोकनात् अन्ये करस्पर्शनात् करेण धनुः स्पर्शनात् एके अन्ये धारणतः ग्रहणात् इतरे मुष्टौ मुष्टिग्रहणस्थाने सगर्वं करास्फालनात् करान्दोलनात् परे अन्ये आनम्रीकरणात् धनुर्न-

मनात् कतिपये जीवाटनीघट्टनात् संघर्षणात् जीवायाः मौर्व्याः अटन्याः धनुष्कोटेश्च घट्टनात् संघर्षणात् 'जीवा जीवन्तिका मौर्वी बचाशिञ्जित-भूमिषु' इति मेदिनी, ते राजानः कोदण्डे धनुषि वन्ध्यश्रमाः निरर्थकायासाः अभवन् । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उपमालङ्कारः ।

नीति जानने वाले राजा के ऊपर जैसे अन्य राजाओं का आक्रमण व्यर्थ होता है उसी प्रकार कुछ तो दूर ही से, कुछ धनुष के देखने से, कुछ धनुष का स्पर्श कर के, कुछ धनुष को पकड़ कर, कुछ अन्य धनुष की मूठ के स्थान पर घमण्ड के साथ हाथ हिलाने से, कुछ धनुष के झुकाने से, कुछ प्रत्यञ्चा तथा धनुष की चोटी के संघर्षण कराने से वे राजा लोग उस धनुष में निरर्थक परिश्रमवाले हो गये अर्थात् सभी के परिश्रम व्यर्थ हो गये ।

मद्राङ्गचेदिमगधेशपुरःसरेषु
क्षत्राय राजसु जलं मनसा ददत्सु ।
जिष्णु द्विजेन्द्रनिकटाद्धरिवंशकेतु-
गर्भादिवाग्निररणेरुदगात्कुमारः ॥२५॥

मद्राङ्गचेदिमगधेशपुरःसरेषु मद्रदेशः अङ्गदेशः चेदिदेशः मगधदेशः तेषाम् ईशाः ईश्वरा राजानः पुरःसराः अग्रेसराः येषां तेषु मद्रादिदेशपतिप्रभृतिषु राजसु मनसा मानसेन क्षत्राय क्षत्रधर्माय जलं तिलाञ्जलिं ददत्सु त्यक्तशौर्येष्वित्यर्थः, हरिवंशकेतुः सूर्यवंशश्रेष्ठः, पक्षे—चन्द्रवंशश्रेष्ठः 'हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिष' इति मेदिनी, जिष्णुः जयनशीलः कुमारः रामः पक्षे—कुमारः राजकुमारः जिष्णुः अर्जुनः द्विजेन्द्रनिकटात् ब्राह्मणश्रेष्ठविश्वामित्रसकाशात् पक्षे—ब्राह्मणश्रेष्ठपार्श्वात् अरणेः अग्निमन्थनकाष्ठस्य गर्भात् मध्यात् अग्निरिव उदगात् उत्तिष्ठति स्म । अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् उपमालङ्कारः ।

मद्र अङ्ग चेदि मगध देश के राजा प्रभृति के क्षत्रधर्म के लिये मन ही मन तिलाञ्जलि दे देने पर अर्थात् शौर्य त्याग कर बैठ जाने पर सूर्य वंश के श्रेष्ठ जयनशील कुमार राम ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्र के पास से, दूसरे पक्ष में—चन्द्रवंश के श्रेष्ठ कुमार अर्जुन ब्राह्मणश्रेष्ठों के पास से अग्निमन्थनकाष्ठ के अन्दर से प्रकट हुए अग्नि के समान उठकर खड़े हुए ।

वीरश्रीमानतुङ्गाचलतुलनतुलादण्डमुर्वीपतीनां
गीर्वाणद्वेषिगर्वाम्बुधिमथनमहारम्भमन्थाचलेन्द्रम् ।

श्लाघानिःसाणकोणं जगदुदयमहावृष्टिमाहेन्द्रचापं
चापं दोर्विक्रमाग्नेः समिधमिव निजस्याददे राजसुनुः ॥२६॥

उर्वीपतीनां भूपतीनां वीरश्रीमानतुङ्गाचलतुलनतुलादण्डम् वीरश्रीः वीरता तस्याः यः मानः अभिमानः स एव तुङ्गाचलः उत्तुङ्गपर्वतः तस्य तुलने तुलनविषये तुलादण्डम् तुलाया आधारदण्डम्, गीर्वाणद्वेषिगर्वाम्बुधिमथनमहारम्भमन्थाचलेन्द्रम् गीर्वाणानां देवानां ये द्वेषिणः शत्रवः राक्षसा इति यावत् तेषां गर्वः अभिमान एव अम्बुधिः समुद्रः तस्य मथनं विलोडनमेव महारम्भः महत्कार्यं तदर्थं मन्थाचलेन्द्रः मन्दराचलः तम्, श्लाघानिःसाणकोणं श्लाघायाः प्रशंसायाः यः निःसाणः घोषणावाद्यं तस्य कोणः वादनदण्डः तम्, 'कोणोवीणादिवादनम्' इत्यमरः, जगदुदयमहावृष्टिमाहेन्द्रचापं जगतः संसारस्य यः उदयः अभ्युदयः उन्नतिरितियावत् तस्मै या महावृष्टिः तस्याः माहेन्द्रचापम् इन्द्रधनुः निजस्य आत्मीयस्य दोर्विक्रमाग्नेः भुजपराक्रमवह्नेः समिधमिव इन्धनमिव चापं धनुः राजसूनुः राजकुमारः रामः, पक्षे — अर्जुनः आददे जग्राह। अत्र स्रग्धरावृत्तम्, मालारूपकमलङ्कारः, समिधमिवेत्यत्रोत्प्रेक्षा।

राजाओं की वीरता के अभिमानरूपी जो ऊँचा पहाड़ उस के तौलने के लिये तुलादण्ड (तराजू का डण्डा), देवताओं के शत्रु राक्षसों के घमण्डरूपी समुद्र के मथन रूपी महान् कार्य के लिये मन्दराचल पहाड़, प्रशंसा के लिये जो घोषणावाद्य उस के कोण (बजाने का दण्ड), संसार की उन्नति के लिये जो महावृष्टि उस के इन्द्र धनुष, अपने भुजपराक्रमरूपी अग्नि के इन्धन के समान उस धनुष को राजकुमार राम ने, दूसरे पक्ष में—राजकुमार अर्जुन ने ग्रहण किया।

दृष्टः सोऽभिसरन्धनुः परिषदा बाल्यादवज्ञोत्तरं
गृह्णन्नध्यवसायनिश्चलतया सश्लाघदत्तोत्तरम्।
उत्क्षिप्यानमयन्भुजाग्रतरसा सान्द्रीभवद्विस्मयं
ज्यालेखामटनीमुखेन घटयन्केनापि नालोकितः ॥२७॥

सः रामः, पक्षे—अर्जुनः धनुरभिसरन् धनुषोऽभिमुखं गच्छन् परिषदा सभया सभास्थलोकैरिति भावः, बाल्याद् अल्पवयस्कत्वाद् अवज्ञोत्तरम् अनादरसहितं यथा स्यात्तथा दृष्टः अवलोकितः,

धनुः गृह्णन् धारयन् अध्यवसायनिश्चलतया अध्यवसाये प्रयत्ने स्थिरतया कत्र्या सश्लाघदत्तोत्तरम् सश्लाघं सप्रशंसं दत्तम् उत्तरं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा दृष्टः, भुजाग्रतरसा भुजाग्रः करः तस्य तरसा वेगेन उत्क्षिप्य उत्तोल्य आनमयन् गुणारोपणार्थं भुग्नीकुर्वन् सान्द्रीभवन् घनीभवन् विस्मयःआश्चर्यं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा दृष्टः, ज्यालेखां मौर्वीसूत्रम् अटनीमुखेन कोट्यग्रभागेन घटयन् संयोजयन् सः केनापि नालोकितः न दृष्टः, लाघवातिशयादिति भावः। अत्र शार्दूलविक्रीड़ितं वृत्तम्। अत्रावज्ञाश्लाघाविस्मयनामकभावानां वीररसेऽङ्गभावत्वेन भावमिश्रनामकोऽलङ्कारः।

वह राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन धनुष की ओर जाते हुए सभासदों के द्वारा बाल्यावस्था के कारण अनादर के साथ देखे गये, धनुष धारण करते हुए प्रयत्न में स्थिरता के द्वारा दिये गये प्रशंसा से युक्त उत्तर के साथ अर्थात् प्रयत्न में स्थिरता के कारण प्रशंसा युक्त नेत्रों से देखे गये, हाथ के वेग से उठा कर भुकाते हुए वह अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखे गये, डोरी को धनुष की चोटी पर फुर्ती से चढ़ाते हुए वह किसी के द्वारा नहीं देखे गये।

तस्मिन् गुणाकर्षणकर्मधीरे राजात्मजे शंङ्करकार्मुकस्य।
बभूव भङ्गः पृथिवीश्वराणां कर्णव्यथादायिकटुस्वनस्य ॥२८॥

राजात्मजे राजकुमारे तस्मिन् रामे गुणाकर्षणकर्मधीरे गुणाकर्षणकर्मणि धीरे धैर्यशालिनि स्थिरे सतीति यावत् पृथिवीश्वराणां राज्ञां कर्णव्यथादायिकटुस्वनस्य कर्णव्यथादायी कटुस्वनः यस्य तस्य शंङ्कर कार्मुकस्य शिव धनुषः भङ्गः त्रोटनं द्विधाभाव इति यावत् बभूव। धनुर्भङ्गो जातः इति भावः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

राजकुमार उस राम के गुण खींचने के काम में स्थिर रहने पर राजाओं के कानों में कष्ट देने वाले कटुशब्द से युक्त शिवजी के धनुष का भङ्ग हो गया।

पक्षे—राजात्मजे राजकुमारे तस्मिन् अर्जुने करकार्मुकस्य हस्तस्थितधनुषः गुणाकर्षणकर्मधीरे गुणाकर्षणकर्मणि धैर्यशालिनि सति पृथिवीश्वराणां राज्ञां कर्णव्यथादायिकटुस्वनस्य 'अयं न वेद्धुं शक्ष्यति, अयं न वेद्धुं शक्ष्यति' इत्यादि रूपस्य श्रोत्रकष्टकारिकटुशब्दस्य अशं राज्ञामकल्याणं यथा स्यात्तथा भङ्गः बभूव। विरुद्धवादिनां वाक् रुद्धाभवत् इति भावः।

राजकुमार उस अर्जुन के हाथ में स्थित धनुष के गुण खींचने के काम में स्थिर रहने पर राजाओं के 'यह लक्ष्य वेध नहीं कर सकेगा नहीं कर सकेगा'

इत्यादि रूप में कानों के कष्ट देने वाले कड़ुए शब्द का भङ्ग हो गया, अर्थात् उस प्रकार का शब्द बन्द हो गया।

साकं भूपैर्मानभङ्गं प्रपन्ने चापे तस्मिन् निर्वृता लक्ष्यसिद्ध्या।
व्रीडानम्रा सादरं राजपुत्री कीर्त्यारामं प्राप हृद्या कुमारम् ॥२९॥

भूपैः नृपैः साकं सह तस्मिन् चापे धनुषि मानभङ्गम् अभिमानभङ्गं, पक्षे—प्रमाणभङ्गं मध्ये द्विधाभावात् प्रमाणहानिं, द्रुपदधनुः पक्षे—गुणाकर्षणेन धनुर्नमनात्प्रमाणहानिं प्रपन्ने प्राप्ते सति 'मानश्चित्तोन्नतौ ग्रहे, क्लीवं प्रमाणे प्रस्थादौ' इति मेदिनी, लक्ष्यसिद्ध्या धनुषो भङ्गेनाभिलषितवरप्राप्तिरूपोद्देश्यसिद्ध्या, पक्षे—लक्ष्यबेधसिद्ध्या, निर्वृता सुखिता कीर्त्या सौन्दर्यादिगुणेन कीर्तनीया हृद्या हृदयङ्गमा व्रीडानम्रा लज्जयावनतशरीरा राजपुत्री सीता कुमारं राजपुत्रं रामं सादरम् आदरसहितं यथास्यात्तथा प्राप प्राप्तवती, पक्षे—राजपुत्री द्रौपदी कीर्त्यारामं कीर्तेर्यशसः आरामम् उपवनस्वरूपं सादरम् आदरसहितं कुमारमर्जुनं प्राप्तवती। अत्र शालिनीवृत्तं 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धि लोकैः' इति लक्षणात्, सहोक्तिरलङ्कारश्च।

राजाओं के अभिमान भङ्ग के साथ उस धनुष के प्रमाण भङ्ग, एक धनुष के टूटने से दूसरे धनुष के गुण खींच कर झुकाने से नाप में छोटा हो जाने पर अभिलषित वरप्राप्ति रूपी उद्देश्य सिद्धि होने से, दूसरे पक्ष में—लक्ष्य बेधसिद्ध होने से सुख से युक्त सौन्दर्यादिगुणों से वर्णन करने योग्य सबों की हृदयङ्गमा, लज्जा से झुके हुए शरीरवाली राजकुमारी सीता राजकुमार राम के पास आदर के साथ पहुँच गई, दूसरे पक्ष में—राजकुमारी द्रौपदी कीर्ति के उपवनस्वरूप अपने प्रति आदर से युक्त कुमार अर्जुन के पास पहुँच गई।

भृङ्गव्रातैरङ्गसौगन्ध्यलुब्धैः कृष्णा तन्वी दृश्यमाना लतेव।
सा तं भेजे राजवंशप्रदीपं पूर्वाम्भोधिं स्वःस्रवन्तीव सीता ॥३०॥

अङ्गसौगन्ध्यलुब्धैः शरीरसौरभाकृष्टैः भृङ्गव्रातैः भ्रमरसमूहैः कृष्णा लता इव पिप्पलीलता इव 'पिप्पली द्रौपदी कृष्णा' इति त्रिकाण्डशेषः, दृश्यमाना अवलोकिता तन्वी कृशशरीरा सा सीता पूर्वाम्भोधिं पूर्वसमुद्रं स्वःस्रवन्तीव स्वर्गङ्गेव राजवंशप्रदीपं सूर्यवंशश्रेष्ठं 'राजानौ रविशीतगू' इति, तं रामं भेजे प्राप्तवती। अत्रापि शालिनीवृत्तम् उपमाद्वयोः संसृष्टिरलङ्कारः।

शरीर की सुगन्ध के लोभी भौरों से पिप्पलीलता के समान दिखायी देने वाली कृशशरीर वाली वह सीता पूर्वसमुद्र के पास गङ्गा के समान सूर्यवंश के प्रदीप उस राम के पास पहुँची।

पक्षे—अङ्गसौगन्ध्यलुब्धैः शरीरसौरभलिप्सुभिः भृङ्गव्रातैः भ्रमरसमूहैः लता इव दृश्यमाना तन्वी कृशाङ्गी सा कृष्णा द्रौपदी पूर्वाम्भोधिं पूर्वसमुद्रं स्वःस्रवन्ती स्वर्गनदी सीता इव गङ्गा इव 'सीता लाङ्गलपद्धतिवैदेहीस्वर्गगङ्गासु' इति मेदिनी, राजवंशप्रदीपं चन्द्रवंशप्रकाशकं चन्द्रवंशश्रेष्ठमिति यावत् तम् अर्जुनं भेजे प्राप्तवती।

शरीरसौरभ के लोभी भौरों के समूह के द्वारा लता के समान देखी गई दुबले पतले शरीरवाली द्रौपदी, पूर्व समुद्र के पास स्वर्गङ्गा के समान चन्द्रवंशश्रेष्ठ उस अर्जुन के पास पहुँच गई।

राज्ञां लज्जाकलङ्कः खलु मुखशशिनि स्थापितः कार्मुकेण
क्षेपिष्ठं तस्य कोटौ निपुणमुपहिता राजपुत्रेण मौर्वी।
न्यस्ता तद्बाहुमूले निजवरणसखी मङ्क्षु माला कुमार्या
मालायां साधुवादैः सह सकलजनैरर्पिता नेत्रमाला ॥३१॥

तस्य धनुषः कोटौ अटनीभागे राजपुत्रेण राजकुमारेण रामेण, पक्षे—अर्जुनेन मौर्वी ज्या निपुणं यथा स्यात्तथा उपहिता आरोपिता क्षेपिष्ठम् अतिक्षिप्रम् अत्र क्षिप्रशब्दादिष्ठनि स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रेत्यादिपाणिनिसूत्रेण पूर्वस्य गुणे यणादिपरभागस्य च लोपे क्षेपिष्ठमिति सिद्ध्यति, कार्मुकेण धनुषा राज्ञां स्वयंवरागतानां भूपानां मुखशशिनि मुखचन्द्रे लज्जाकलङ्कः लज्जास्वरूपः कलङ्कः स्थापितः आरोपितः खल्विति निश्चयेन, कुमार्या सीतया निजवरणसखी स्वपतिवरणसहायिका माला वरणमाला तद्बाहुमूले रामस्कन्धे मङ्क्षु शीघ्रं न्यस्ता आरोपिता, पक्षे—राजपुत्रेण अर्जुनेन निजवरणसखी स्ववरणसहायिका कुमार्याः द्रौपद्याः माला वरणमाला मङ्क्षु शीघ्रं न्यस्ता निषिद्धा 'ज्येष्ठे अविवाहिते सति नाहं पूर्वं विवाहयिष्यामीत्यभिप्रायेण' मालायाम् उपहितायां धन्योऽयं वीराग्रणीरित्येवंरूपैः साधुवादैः प्रशंसावचनैः सह, पक्षे—मालायां निषिद्धायां धन्योऽयं मर्यादापालको धैर्यशालीत्येवंरूपैः प्रशंसावचनैः सह सकलजनैः सर्वलोकैः नेत्रमाला नयनपरम्परा अर्पिता आरोपिता। अत्र स्रग्धरावृत्तम्, रूपकं तथ द्वितीयभेदसमुच्चयोऽलङ्कारः।

धनुष की चोटी पर राजकुमार राम के द्वारा, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के द्वारा निपुणता के साथ गुण चढ़ाया गया, धनुष के द्वारा शीघ्रता से राजाओं के मुखचन्द्र में लज्जारूपीकलङ्क निश्चित रूप से स्थापित किया गया, कुमारी सीता के द्वारा अपने वरण की सहायिका माला राम के कन्धे पर शीघ्र स्थापित की गई, दूसरे पक्ष में—राजकुमार अर्जुन के द्वारा अपने वरण की सहायिका कुमारी द्रौपदी की माला 'बड़े भाई के अविवाहित रहते मैं विवाह नहीं करूँगा' इस अभिप्राय से शीघ्र निषिद्ध की गई, राम के गले में पहनायी गई माला में 'यह युवा वीरों का अग्रेसर है' इस रूप के प्रशंसा के वचनों के साथ, दूसरे पक्ष में—निषेध की गयी माला में 'यह धैर्यशाली मर्यादापालक है' इत्यादि रूप के प्रशंसावचनों के साथ सभी लोगों के द्वारा नेत्रों की परम्परा स्थापित की गयी।

भग्नोत्साहे गतवति ततः सर्वतो राजलोके
राज्ञा तेन स्वमथ भवनं प्रापितानां सहर्षम्।
निर्दिष्टानां मुनिगुरुगिरा सा नरेन्द्रात्मजानां
सर्वेषामप्यजनि युगपत्तत्र वैवाहिकश्रीः ॥३२॥

ततस्तदनन्तरं भग्नोत्साहे त्रुटितोत्साहबले सर्वतः सर्वस्मिन् अत्र सप्तम्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिः, राजलोके भूपतिजने गतवति सति अथ ततः पश्चात् तेन राज्ञा जनकेन, पक्षे—द्रुपदेन स्वं भवनम् आत्मीयं निकेतनं सहर्षं सानन्दं प्रापितानाम् आनीतानां मुनिगुरुगिरा गुरुवशिष्ठमुनिवचसा, पक्षे—मुनीनां गुरोः मातुश्च वचसा निर्दिष्टानां नियुक्तानां सर्वेषामपि नरेन्द्रात्मजानां राजकुमाराणां रामादीनां पक्षे—युधिष्ठिरादीनां तत्र जनकनगरे, पक्षे—द्रौपद्यां युगपत् समकालमेव वैवाहिकश्रीः वैवाहिकी शोभा समजनि अभूत्। अत्र मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

इस के बाद उत्साह भङ्ग हो जाने से सभी राजाओं के चले जाने पर उस राजा जनक के द्वारा, दूसरे पक्ष में—द्रुपद के द्वारा अपने महल में आनन्द के साथ लाये हुए, गुरुवशिष्ठमुनि के वचन से, दूसरे पक्ष में—मुनि लोग तथा माता के वचन से नियुक्त किये गए उन सभी राजकुमार राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि की वैवाहिक शोभा वहाँ, दूसरे पक्ष में—उस द्रौपदी में एक साथ ही हुई।

ते तत्र सर्वे समकालमेव संप्राप्य दारान् सदृशान् विरेजुः।
त्रैलोक्यसंशोधनजागरूकान् गङ्गाविभङ्गानिव सिन्धुनाथाः ॥३३॥

तत्र जनकनगरे, पक्षे—द्रुपदनगरे ते सर्वे रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः समकालमेव एकस्मिन्नेव समये सदृशान् योग्यान् दारान् अवरोधान् संप्राप्य त्रैलोक्यसंशोधनजागरूकान् त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य संशोधने पवित्रीकरणे जागरूकान् सावधानान् गङ्गाविभङ्गान् गङ्गातरङ्गान् प्राप्य सिन्धुनाथाः समुद्रा इव विरेजुः शुशुभिरे। अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारश्च।

वहाँ जनक नगर में, दूसरे पक्ष में—द्रुपदनगर में वे सभी राम आदि, दूसरे पक्ष में–युधिष्ठिर आदि एक ही समय में सुयोग्या पत्नी प्राप्त कर के तीनों भुवन के पवित्र करने में सावधान गङ्गातरङ्गों को प्राप्त कर के समुद्रों के समान शोभा प्राप्त किये।

सम्बन्धान्मुदितात्मनां निजपदं प्राप्तुं मनः कुर्वतां
दिक्कुञ्जेषु निरन्तरं विकिरतां क्षात्रं प्रदीप्तं महः।
तेषां विक्रमवातवल्गितनिजक्रोधानलप्रेषितः
साक्षात्काल इवोदितो भृगुपतिर्दुर्योधनोऽभ्यागमत् ॥३४॥

सम्बन्धान्मुदितात्मनां वैवाहिकसम्बन्धात् प्रसन्नचित्तानां निजपदं प्राप्तुं स्वस्थानं गन्तुं मनः कुर्वतां कृतविचाराणां दिक्कुञ्जेषु दिगन्तरेषु क्षात्रं प्रदीप्तं महः क्षत्रियसम्बन्धि प्रज्वलितं तेजः वीरत्वमिति यावत् निरन्तरं सततं विकिरतां प्रसारयतां तेषां रामादीनां, पक्षे—युधिष्ठिरादीनां सम्मुखे इति शेषः विक्रमवातवल्गितनिजक्रोधानलप्रेषितः विक्रमः पराक्रमः एव वातः पवनः तेन वल्गितः प्रोद्दीपितः यः निजक्रोधानलः स्वकीयक्रोधाग्निः तेन प्रेषितः उपस्थापितः, उदितः प्रत्यक्षीभूतः साक्षात्काल इव साक्षाद्यमराज इव दुर्योधनः दुःखेन योद्धुं शक्यः भृगुपतिः परशुरामः अभ्यागमत् आगच्छत्, पक्षे—भृगुपतिः भृगूणां गिरिप्रपातानामपि पतिः 'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरः दुर्योधनः दुर्योधननामा कौरवः अभ्यागमत् समागच्छत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् रूपकमुपमालङ्कारश्च।

वैवाहिक सम्बन्ध होने से प्रसन्नचित्त वाले, अपने स्थान पर पहुँचने का विचार करने वाले, दिगन्तरों में क्षात्र तेज वीरता बिखेरनेवाले उन रामादि के सामने, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिरादि के सामने पराक्रमरूपी वायु से उद्दीपित अपने क्रोध रूपी अग्नि से प्रेरित प्रत्यक्ष हुए साक्षात् यमराज के समान कठिनाई से युद्ध करने योग्य परशुराम पहुँच गये, दूसरे पक्ष में—गिरिप्रपातक के अधिपति दुर्योधन सामने आ गये।

स दुरानममानमय्य चापं रणकण्डूतिमखण्डयत्ततोऽस्य ।
परलोकजिगीषयैव साकं नृपतेः कौशिकनन्दनः कुमारः ॥३५॥

ततस्तदनन्तरं कौशिकनन्दनः विश्वामित्रहर्षजनकः नृपतेः दशरथस्य कुमारः पुत्रः स रामः दुरानमम् दुःखेन नमयितुं शक्यं चापं परीक्षार्थं परशुरामदत्तं विष्णुशरासनम् आनमय्य गुणारोपेण भुग्नीकृत्य अस्य परशुरामस्य परलोकजिगीषयैव साकं स्वर्गलोकजयेच्छयैव सह रणकण्डूतिं युद्धाभिलाषम् अखण्डयत् खण्डितवान्। शरासनसंहितामोघबाणेन परशुरामस्य स्वर्गगमनमार्गमखण्यत् । पृष्टञ्च रामेण—

'न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि।
शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम् ॥'

उदितञ्च भार्गवेण-'तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे।
पीडयिष्यति न मां खिलाकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम् ॥११।८७॥'

इति रघुवंशः । अत्र कालभारिणीयं नाम विषमपदवृत्तम्, 'विषमे ससजा यदा गुरू चेत्, सभरा येन तु कालभारिणीयम्' इति लक्षणात्। सहोक्तिरलङ्कारः।

इस के बाद विश्वामित्र को आनन्द देने वाले राजा दशरथ के पुत्र इस राम ने कठिनाई से झुकाने योग्य परीक्षा के लिये परशुराम के दिये हुए विष्णु के धनुष को झुका कर गुण चढ़ाने से उस परशुराम के स्वर्गगमन की इच्छा के साथ ही युद्ध की अभिलाषा को खण्डित कर दिया। अर्थात् अपने अमोघ बाण से परशुराम का स्वर्गगमन मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं कौशिकनन्दनः इन्द्रपुत्रः कुमारः राजकुमारः सः अर्जुनः 'कौशिको नकुले व्यालग्राहे गुग्गुलुशक्रयोः' इति मेदिनी, दुरानमं दुःखेन नमयितुं शक्यं चापं स्वशरासनम् आनमय्य गुणेन संयोज्य युद्धं कृत्वेति भावः, नृपतेः अस्य राज्ञो दुर्योधनस्य परलोकजिगीषयैव साकं शत्रुजनविजयेच्छयैव सह रणकण्डूतिं युद्धोत्साहम् अखण्डयत् खण्डितवान् ।

इसके बाद इन्द्र के पुत्र कुमार अर्जुन ने कठिनाई से गुण चढ़ाने योग्य अपने धनुष को चढ़ाकर अर्थात् युद्ध कर के इस राजा दुर्योधन का शत्रुओं के जीतने की इच्छा के साथ ही युद्ध करने का उत्साह भङ्ग कर दिया।

अथ पुनरपयाते तत्र सम्बन्ध्य सन्धि
प्रकृतिगुरुसुहृद्भिः प्रोज्झितैः काङ्क्ष्यमाणः ।

बधिरितभुवनान्ता भूरिभेरीविरावै-

रुदधिमिवपयोदाः स्वां पुरीं तेऽभिजग्मुः ॥३६॥

अथ अनन्तरं तत्र तस्मिन् परशुरामे, पक्षे—दुर्योधने सन्धिं संघटनं सौहार्दमिति यावत् सम्बन्ध्य बन्धयित्वा पुनरपयाते परावर्तिते सति प्रकृतिगुरुसुहृद्भिः प्रकृतिः प्रजा गुरुः आचार्यादिः पक्षे—द्रोणाचार्यः सुहृदः मित्राणि तैः प्रोज्झितैः विश्लेषितैः काङ्क्ष्यमाणाः दर्शनार्थमभिलष्यमाणाः ते रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः भूरि भेरीविरावैः महद्भिः भेरीशब्दैः बधिरितभुवनान्ताः बधिरीकृतभुवनान्तरालाः उदधिं समुद्रं पयोदाः वारिदाः इव ते स्वां पुरीम् अयोध्यानगरीं, पक्षे--इन्द्रप्रस्थनगरीम् अभिजग्मुः गतवन्तः। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इसके बाद उस परशुराम के, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के सन्धि करके फिर लौट जाने पर प्रजा गुरु और मित्रों के द्वारा दर्शन के लिये अभिलषित वे राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि बहुत बड़े भेरी के शब्दों से सम्पूर्ण भुवन को बधिर बनाते हुए समुद्र के पास जैसे बादल पहुँचते हैं उसी प्रकार अपनी नगरी अयोध्यापुरी, दूसरे पक्ष में—इन्द्रप्रस्थनगरी आ गये।

सुहृद्भिराप्तैरभिनन्दितानां गुणोदयप्रीणितसज्जनानाम्।

प्रतापवित्रासितशात्रवाणां तेषामभूत्तत्र सुखं निवासः ॥३७॥

सुहृद्भिः मित्रैः आप्तैः विश्वस्तैश्च अभिनन्दितानाम् स्वागतादिभिरभिनन्दितागमनानां गुणोदयप्रीणितसज्जनानां गुणोदयेन औदार्यादिगुणप्रकाशेन प्रीणिताः सन्तोषिताः सज्जनाः यैः तेषां प्रतापवित्रासितशात्रवाणां प्रतापेन तेजसा वित्रासिताः विभीषिताः शात्रवाः अरयः येषां तेषां, रामादीनां, पक्षे--युधिष्ठिरादीनां तत्र अयोध्यायां, पक्षे—इन्द्रप्रस्थनगरे सुखं यथा स्यात्तथा निवासः अवस्थितिः अभूत्। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। सुखनिवासहेतोः पदार्थत्वेन काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

मित्र तथा विश्वासी व्यक्तियों से अभिनन्दित आगमनवाले, अपने गुणों के प्रकाश से सज्जनों को प्रसन्न करने वाले, अपने प्रताप से शत्रुओं को भयभीत करनेवाले उन रामादिकों का वहाँ अयोध्यापुरी में, दूसरे पक्ष में–उन युधिष्ठिरादिकों का वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगरी में सुखपूर्वक निवास हुआ।

गुणैर्गुरौ ज्यायसि भक्तिनम्राः पृथग्धुरीणा अपि दर्शितैक्याः।

दिशां विभागानुपपद्यमाना भान्ति स्म चत्वार इवार्णवास्ते ॥३८॥

ज्यायसि गुरौ श्रेष्ठे पितरि, पक्षे—ज्येष्ठे भ्रातरि गुणैः शालीनतादिगुणैः भक्तिनम्राः श्रद्धया प्रह्वाः पृथग्धुरीणा अपि पृथक्पृथक्कार्यभारधारका अपि दर्शितैक्याः एकीभूय सर्वकार्यसाधकाः समुद्रपक्षे—पृथक्पृथगवस्थिता अपि एकत्वं दर्शयन्तः, दिशां विभागान् दिग्भागान् उपपद्यमानाः अधिकृत्य तिष्ठन्तः चत्वारः अर्णवाः समुद्रा इव चत्वारः ते रामादयः, पक्षे—भीमादयः भान्ति स्म शुशुभिरे। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उपमालङ्कारः।

श्रेष्ठ पिताजी के विषय में, दूसरे पक्ष में—ज्येष्ठ भाई के विषय में सुशीलता-गुण से भक्तिनम्र बने हुए, अलग अलग कार्यभार धारण किये हुए भी एकमत होकर सभी कार्यसाधन करनेवाले, समुद्र पक्ष में—अलग अलग नाम से रहते हुए भी एकत्व धारण किये हुए, दिग्भागों को अधिकार में करके, समुद्र पक्ष में—व्याप्त करके रहने वाले चार समुद्रों के समान चारों वे राम आदि, दूसरे पक्ष में—भीम आदि सुशोभित होने लगे।

तैश्चतुर्भिर्बभौ राजा कुमारैः पार्श्ववर्तिभिः।
सुमेरुरिव विष्कम्भैः स हरिप्रस्थभूषितैः ॥३९॥

हरिप्रस्थभूषितैः हरयः सिंहाः प्रस्थाः सानवः तैः सुशोभितैः विष्कम्भैः स्वविस्तारैः सुमेरुः इव सुमेरुपर्वत इव 'प्रस्थोऽस्त्रियां मानभेदे सानावुन्मितवस्तुनि' इति 'विष्कम्भो योगभेदे स्याद्विस्तारप्रतिबिम्बयोः' इति च मेदिनी, हरिप्रस्थभूषितैः प्रकृष्टेन तिष्ठतीति प्रस्थो वंशः, हरिः सूर्यः, हरिप्रस्थः सूर्यवंशः भूषितः सुशोभितः यैः तैः 'हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिषु। कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान्' इति मेदिनी, पक्षे—हरिप्रस्थस्य इन्द्रप्रस्थस्य भुवि उषितैः निवसितैः पार्श्ववर्तिभिः समीपस्थितैः चतुर्भिः तैः कुमारैः रामादिभिः, पक्षे—भीमादिभिः, स राजा दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः बभौ शुशुभे। अत्रानुष्टुप् छन्दः, उपमालङ्कारः।

सिंह और चोटियों से सुशोभित अपने विस्तारों से सुमेरु पर्वत के समान, सूर्यवंश की शोभा बढ़ाने वाले, दूसरे पक्ष में—इन्द्रप्रस्थ भूमि में रहने वाले, समीप में स्थित चारों उन कुमार रामादिकों से, दूसरे पक्ष में—भीमादिकों से वह राजा दशरथ, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर सुशोभित हुए।

मुनीन्द्रदिष्टे समये निविष्टैराराधितानां भृशमाप्तदारैः।
दिने दिने पार्थिवनन्दनानां परस्परं प्रेमभरो मुमूर्छ ॥४०॥



मुनीन्द्रदिष्टे समये मुनीन्द्रेण वशिष्ठेन उपदिष्टे समये आचरणे निविष्टैः संलग्नैः, पक्षे—मुनीन्द्रेण नारदेन दिष्टे निर्दिष्टे समये सिद्धान्ते 'एकैकं वत्सरं द्रौपद्या क्रमशः एकैकस्मिन् पत्यौ स्थातव्यम् तद्गृहे तां दृष्ट्वाप्यन्यो द्वादश वत्सरान् वनं गच्छेत्' इति सिद्धान्ते निविष्टैः संलग्नैः 'समयः शपथाचारसिद्धान्तेषु तथा धियि। क्रियाकारे च निर्देशे सङ्केते कालभाषयोः' इति मेदिनी, आप्तदारैः विश्वासयोग्याभिः पत्नीभिः, पक्षे—विश्वासयोग्यया पत्न्या भृशमत्यर्थमाराधितानां सेवितानां पार्थिवनन्दनानां राजकुमाराणां रामादीनां, पक्षे—युधिष्ठिरादीनां दिने दिने प्रतिदिनम् परस्परं स्वेषु प्रेमभरः प्रेमाधिक्यं मुमूर्छ, वर्धते स्म, 'मूर्छा मोहसमुच्छ्रयोः' इति भट्टोजिदीक्षितः। अत्र उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

मुनि वशिष्ठ के उपदेश दिये हुए आचरण में संलग्न, दूसरे पक्ष में—नारदमुनि के द्वारा निर्देश किये हुए 'द्रौपदी एक एक वर्ष क्रमशः एक एक पति के घर में रहेंगी, उस के घर में दूसरे पति यदि उसे देख भी लें तो वह बारह वर्ष वन वास करें' इस नियम में संलग्न विश्वासपात्र पत्नी के द्वारा संसेवित उन राजकुमार रामादि का, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिरादि का आपस में बहुत बड़ा प्रेम बढ़ने लगा।

इष्टावलोकं जननीगुरूणां तेजोऽतिभास्वद्भरतं दधानम्।
राजा स शत्रुघ्नमनीलसप्तिं प्रास्थापयत्तीर्थनिषेवणाय ॥४१॥

जननीगुरूणां मातुः पित्रादीनाम् इष्टावलोकं इष्टः प्रियः अवलोकः दर्शनं यस्य तम् अतिभास्वत् भास्वन्तं सूर्यम् अतिक्रम्य वर्तते इति अतिभास्वत् तथाभूतं तेजः दधानं धारयन्तं सशत्रुघ्नं शत्रुघ्नसहितम् अनीलसप्तिम् अनीलः श्वेतः सप्तिः अश्वः यस्य तं भरतं भरतकुमारं स राजा दशरथः तीर्थनिषेवणाय उपाध्यायनिषेवणाय अध्ययनायेति यावत् 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च। अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु' इति मेदिनी, कैकयदेशमितिशेषः प्रास्थापयत् प्रहितवान् अत्र पूर्ववदुपजातिवृत्तम्।

उस राजा दशरथ ने उसकी माता के गुरुवर्ग पिता आदि के प्रियदर्शन वाले, सूर्य से बढ़ कर तेज धारण करनेवाले, शत्रुघ्न से युक्त, श्वेत अश्ववाले भरतकुमार को अध्ययन के लिये मातामह के घर कैकय देश भेज दिया।

पक्षे—जननीगुरूणां जननी च गुरवश्च इति जननीगुरवः तेषां मातुः आचार्यज्येष्ठभ्रात्रादिकानाञ्च इष्टावलोकं प्रियदर्शनम् अति-

भास्वत् सूर्याधिकं तेजो दधानम् अनीलसप्ति श्वेताश्वं भरतं भरतवंशीयं शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारम् अर्जुनमिति शेषः तीर्थनिषेवणाय पुण्यक्षेत्रसेवनाय युधिष्ठिरनिकेतनस्थितद्रौपदीदर्शनकारणेनेति भावः स राजा युधिष्ठिरः प्रास्थापयत् प्रेषितवान् ।

माता तथा आचार्य बड़ेभाई आदि के प्रिय दर्शनवाले, सूर्य से बढ़कर तेज धारणकरने वाले, श्वेत घोड़ेवाले, भरतवंशीय, शत्रुके मारनेवाले अर्जुन को (युधिष्ठिर के घर में द्रौपदी का दर्शन हो जाने से बारह वर्ष के लिये) तीर्थों में भ्रमण करने के लिये उस राजा युधिष्ठिर ने भेज दिया ।

सरांसि शैलान्सरितश्च तीर्त्वा गच्छन्नहीनात्मजयैधितश्रीः ।
वीरः किरीटी स्वभुजोपगूढचित्राङ्गदः सातिशयं विरेजे ॥४२॥

सरांसि सरोवरान् शैलान् पर्वतान् सरितः नदीः तीर्त्वा उल्लङ्घ्य गच्छन् व्रजन् अहीनात्मजयैधितश्रीः अहीनेन उन्नतेन आत्मना स्वेन जयस्य विजयस्य एधिता वर्धिता श्रीः शोभा यस्य सः उन्नतस्वबाहुबलविजयार्जितप्रभाव इति भावः, पक्षे—अहीनां सर्पाणाम् इनः प्रभुः 'इनः पत्यौ नृपार्कयोः' इति मेदिनी, तस्य आत्मजया दुहित्रा उलूपीनाम्न्या एधितश्रीः विवाहितया तया वर्धितशोभः, स्वभुजोपगूढचित्राङ्गदः स्वभुजेन निजबाहुना उपगूढम् उपनिबद्धम् चित्रं नानावर्णम् अङ्गदं केयूरं येन सः, पक्षे—स्वभुजाभ्याम् उपगूढा आलिङ्गिता चित्राङ्गदा मणिपुरनरेशपुत्री, येन सः, किरीटी वीरः मुकुटवान् भरतः, पक्षे—अर्जुनः वीरः सातिशयम् अत्यन्तं विरेजे शोभते स्म । अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् । शोभाहेतोः पदार्थत्वे काव्यलिङ्गमलङ्कारः ।

सरोवर पहाड़ और नदियों को पार कर के जाते हुए उन्नत अपने आप के द्वारा विजय की बढ़ायी गयी है शोभा जिस की वह, अपनी भुजा से पहने गये हैं अनेकरंग वाले केयूर जिसके द्वारा वह, मुकुट धारण करने वाला वीर भरत, दूसरे पक्ष में—सर्पों के राजा की पुत्री उलूपी के द्वारा बढ़ायी गयी है शोभा जिस की वह, अपनी भुजाओं से आलिंगन की गयी है चित्रांगदा मणिपुरनरेश की पुत्री जिसके द्वारा वह वीर अर्जुन अत्यन्त सुशोभित हुए ।

प्राप्य प्रभासंपदमिष्टयोगि मातामहस्थानमुपेत्य राष्ट्रम् ।
सन्तोषितः क्षोणिभृताच्युतेन लेभे सुभद्राधिगमोत्सवं सः ॥४३॥

सः भरतः प्रभासंपदं दीप्तिसम्पत्तिं प्राप्य अधिगत्य इष्टयोगि प्रिययुक्तं मातामहस्थानं राष्ट्रम् उपेत्य स्वमातामहाधिकृतं कैकयराज्य-

मुपगत्य अच्युतेन स्थिरेण क्षोणिभृता कैकयभूपतिना सन्तोषितः सन्तोषं प्रापितः सुभद्राधिगमोत्सवं सुष्ठु भद्राणां कल्याणानाम् अधिगमः प्राप्तिः यस्मिन् तम् उत्सवम् उद्धर्षं लेभे प्राप्तवान्। अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्।

वह भरत कान्ति की सम्पत्ति प्राप्त करके प्रियजनों से युक्त मातामह का स्थान कैकयराज्य में पहुँच कर धैर्यशाली उस राजा के द्वारा सन्तोष प्राप्त कराये हुए अच्छे कल्याणों को प्राप्ति है जिस में उस उत्सव को प्राप्त हुए।

पक्षे—सः अर्जुनः प्रभासं पदं प्रभासनामकं तीर्थस्थानं प्राप्य उपेत्य, क्षोणिभृता पृथिवीपालकेन अच्युतेन कृष्णेन सन्तोषितः सन्तोषं प्रापितः, इष्टयोगि इष्टः प्रियः अर्जुनस्येति भावः योगी योगिवेषः यस्मिन् तत् योगिवेषेणेति तात्पर्यम् एवंभूतं मातामहस्थानं राष्ट्रं सूरसेनस्थानं राज्यं यादवराज्यं द्वाराकापुरीमिति यावत्, उपेत्य उपगम्य, सुभद्राधिगमोत्सवं सुभद्रायाः एतन्नाम्न्याः सारणभगिन्याः अधिगमेन प्राप्त्या उत्सवम् उद्धर्षं लेभे प्राप्तवान्।

वह अर्जुन प्रभासनामक तीर्थ स्थान पहुँच कर पृथिवी के पालक श्रीकृष्ण के द्वारा सन्तोष प्राप्त कराये हुए योगी के भेष में अपने मातामह का स्थान यादव-राज्य द्वारकापुरी में पहुँच कर सुभद्रा की प्राप्ति से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किये।

प्रसूत्या पारिजातस्य पूरः क्षीराम्बुधेरिव।
रेजेऽसौभद्र-सन्तान-लब्ध्याशीतरुचोऽन्वयः ॥४४॥

अशीतरुचः सूर्यस्य अन्वयः वंशः सूर्यवंशीय इति यावत्, असौ भरतः भद्रसन्तानलब्ध्या भद्राणां कल्याणानां यः सन्तानः सन्ततिः, परम्परेति यावत्, तस्य लब्ध्या प्राप्त्या, 'सन्तानः सन्ततौ देववृक्षे चापत्यगोत्रयोः' इति त्रिकाण्डशेषः, पक्षे—शीतरुचः चन्द्रस्य अन्वयः वंशः चन्द्रवंशीयः अर्जुनः इत्यर्थः, सौभद्रसन्तानलब्ध्या सौभद्रः सुभद्रासंभवः सन्तानः अपत्यम् पुत्र इति यावत्, तस्य अभिमन्यु-स्वरूपस्य सन्तानस्य लब्ध्या प्राप्त्या, पारिजातस्य प्रसूत्या प्रसवेन पुष्पेणेत्यर्थः, क्षीराम्बुधेः क्षीरसमुद्रस्य पूरः इव ओघ इव रेजे शोभते स्म। अत्र अनुष्टुप्छन्दः श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारः।

सूर्यवंशीय यह भरत कल्याणों की परम्परा के लाभ से, दूसरे पक्ष में—चन्द्रवंशीय अर्जुन सुभद्रा से उत्पन्न पुत्र के लाभ से पारिजात के फूल से क्षीर समुद्र के जलौघ के समान सुशोभित हुए।

कमनीयतया पुष्णन्नन्दथुं सर्वदेहिनाम् ।
स राजनन्दनो रेजे कामदेव इवापरः ॥४५॥

इति हरधरणीप्रसूत-कादम्बकुलतिलक-वीरचक्रवर्तिभूप-कामदेव-प्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये सीता-द्रौपदीस्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

कमनीयतया रामणीयकेन गुणेन सर्वदेहिनां सर्वप्राणिनां नन्दथुम् आनन्दं पुष्णन् वर्धयन् राजनन्दनः सः राजकुमारः भरतः, पक्षे—अर्जुनः अपरः कामदेव इव अन्यः मदन इव अथवा एतत्काव्य-कारयिता कामदेवसंज्ञको भूपतिरिव रेजे शुशुभे । अत्रानुष्टुप्छन्दः । अभेदेऽपि भेदरूपातिशयोक्त्यनुप्राणितोपमालङ्कारः अथवा कामदेव-भूपतिरिवेत्यत्र अन्यकामदेवत्वेन संभावनया उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुरसोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्या-ख्यायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

रमणीयतागुण से सभी प्राणियों का आनन्द बढ़ाते हुए वह राजकुमार भरत, दूसरे पक्ष में--अर्जुन दूसरे मन्मथ के समान अथवा इस काव्य की रचना कराने वाले अपर कामदेव राजा के समान सुशोभित हुए ।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचित सरला नाम की टीका में द्वितीय सर्ग ॥२॥

—:०:—

तृतीयः सर्गः

स राजाभिमतो लोके विजयोर्जितविक्रमः।
हरिसारथिनाभ्येत्य याचितोऽभूद्दिवोवनम् ॥१॥

लोके संसारे अभिमतः प्रियः विजयोर्जितविक्रमः विजयेन शत्रुजयेन ऊर्जितः वर्धितः विक्रमः पराक्रमः यस्य सः, स राजा दशरथः हरिसारथिना हरेः इन्द्रस्य सारथिना मातलिना अभ्येत्य आगत्य दिवः स्वर्गस्य अवनं रक्षणं दैत्येभ्य इति शेषः, याचितोऽभूत् प्रार्थितोऽभवत् अर्थात् देवराजः इन्द्रः स्वसारथिमातलिना दैत्येभ्यः स्वर्गरक्षार्थं दशरथस्य प्रार्थनामकरोत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

संसार में प्रिय शत्रुविजय से बढ़े हुए पराक्रमवाले वह राजा दशरथ इन्द्र के सारथि मातलि के द्वारा दैत्यों के भय से स्वर्ग की रक्षा करने के लिये प्रार्थना किये गये। अर्थात् अपने सारथि मातलि के द्वारा इन्द्र ने स्वर्ग की रक्षा करने के लिये राजा दशरथ से प्रार्थना की।

पक्षे—लोके संसारे अर्जितविक्रमः स्वायत्तीकृतपराक्रमः राजाभिमतः राज्ञो युधिष्ठिरस्य अभिमतः प्रियः स विजयः सः अर्जुनः हरिसारथिना हरिः वायुः सः सारथिः संवाहकः यस्य तेन अग्निनेत्यर्थः 'हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिषु। कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान्' इति मेदिनी, 'रोहिताश्वो वायुसखः शिखावानाशुशुक्षणिः हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' इत्यमरः, अभ्येत्य आगत्य दिवः स्वर्गस्य वनं काननं खाण्डववनमित्यर्थः, याचितोऽभूत् भोजनार्थं प्रार्थितोऽभवत्। पुरा श्वेतकिनो राज्ञो यज्ञे अति भक्षणादग्निरपि मन्दाग्निरोगपीडितोऽभूत् तद्रोगदूरीकरणाय बहुवनौषधिपूर्णस्य इन्द्ररक्षितस्य खाण्डववनस्य औषधरूपेण भक्षणम् आवश्यकमासीत् तदर्थं धनञ्जयं प्रार्थयदिति पौराणिकी कथा।

संसार में पराक्रम उपार्जित करने वाले राजा युधिष्ठिर के प्रिय वह अर्जुन वायु है प्रेरक जिसका उस अग्नि के द्वारा आकर स्वर्ग का कानन अर्थात् खाण्डव वन भोजन के लिये प्रार्थना किये गये। प्राचीन काल में श्वेतकी राजा

के यज्ञ में अतिभक्षण से अग्नि भी मन्दाग्नि रोग से पीड़ित हो गये, उस रोग को दूर करने के लिये बहुत औषधों से परिपूर्ण इन्द्र से सुरक्षित खाण्डव वन का औषध के रूप में भोजन करना (जलाना) आवश्यक था। इसके लिये अग्नि देवता ने अर्जुन की प्रार्थना की, यह पौराणिकी कथा है।

क्रामन् दिवं कीर्तिभिरर्जुनोऽथ तन्नीतवल्गद्धरिणा रथेन।
नरः स साक्षादिव गाण्डिवेन चकार भीतिं धनुषा परेषाम् ॥२॥

अथ अनन्तरं तन्नीतवल्गद्धरिणा वल्गन्तः उच्छलन्तः हरयः अश्वाः यस्मिन् सः वल्गद्धरिः, तन्नीतः तेन मातलिना नीतः आनीतश्चासौ-वल्गद्धरिः तन्नीतवल्गद्धरिः तथाभूतेन रथेन दिवं स्वर्गं क्रामन् गच्छन् कीर्तिभिः यशोभिः अर्जुनः धवलः सः दशरथः गाण्डिवेन एतन्नामकेन स्वधनुषा साक्षान्नर इव नरनारायणयोरन्यतरः नर इव धनुषा स्वकार्मुकेण परेषां शत्रूणां दैत्यानामित्यर्थः, भीतिं भयं चकार कृतवान्। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उपमालङ्कारः।

इसके बाद मातलि के द्वारा लाये हुए तथा उछलते हुए घोड़ेवाले रथ से स्वर्ग जाते हुए, अपनी कीर्ति के द्वारा धवल बने हुए उस दशरथ ने गाण्डीव के द्वारा नरनारायण में से साक्षात् नर के समान अपने धनुष के द्वारा दैत्यों का भय उत्पन्न कर दिया।

पक्षे—अथ अनन्तरं तन्नीतवल्गद्धरिणा वल्गन् उच्छलन् हरिः कपिः हनूमानिति यावत्, यस्मिन् सः वल्गद्धरिः, तन्नीतः तेन अग्निना नीतः असौ वल्गद्धरिः तन्नीतवल्गद्धरिः तेन रथेन दिवमाकाशं क्रामन् गच्छन् कीर्तिभिः यशोभिः उपलक्षितः सः अर्जुनः साक्षात् नर इव साक्षाद् वैश्वानर इव 'नामैकदेशग्रहणान्नामग्रहणम्' इति नियमात्, गाण्डिवेन धनुषा परेषां विपक्षाणां खाण्डववनरक्षक-सैनिकानामित्यर्थः भीतिं चकार भयमुत्पादयामास।

इसके बाद अग्नि के द्वारा लाये हुए तथा उछलने वाले बन्दर हनुमान हैं जिस पर उस रथ के द्वारा आकाश मे गमन करते हुए कीर्ति से युक्त उस अर्जुन ने साक्षात् अग्नि देवता के समान गाण्डीव धनुष से विपक्षभूत खाण्डववन-रक्षक सैनिकों का भय उत्पन्न कर दिया।

स देवदत्तोद्धतवीर्यसंपदक्षीणबाणोज्ज्वलतूणधारी।
द्विषद्द्विजिह्वोग्रवनं स्वबाहुप्रतापरूपज्वलने जुहाव ॥३॥

देवदत्तोद्धतवीर्यसंपद् देवैरिन्द्रादिभिः दत्ता वितीर्णा उद्धता आवेगवती वीर्यसंपत् शक्तिसञ्चयः यस्य सः, अक्षीणबाणोज्ज्वलतूणधारी अक्षीणाः श्रेष्ठाः ये बाणाः शराः तैः उज्ज्वलं देदीप्यमानं तूणम् निषङ्गं धारयतीति सः, स दशरथः स्वबाहुप्रतापरूपज्वलने निजबाहुतेजःस्वरूपवह्नौ द्विषद्द्विजिह्वोग्रवनं द्विषन्तः शत्रवः ये द्विजिह्वाः खलाः तेषाम् उग्रवनम् भयङ्करसमूहं जुहाव जुहोति स्म, नाशयामास इतिभावः। 'द्विजिह्वस्तु खले सर्पे' इति मेदिनी। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, रूपकमलङ्कारः।

देवताओं के दिये हुए उत्कट-शक्तिवाले, श्रेष्ठबाणों से चमकते हुए तूणीरवाले, वह दशरथ अपने बाहु के प्रतापरूपी अग्नि में शत्रुरूपी खलों के उग्रसमूह का हवन कर दिया, अर्थात् मार डाला।

पक्षे—देवदत्तोद्धतवीर्यसंपद् देवदत्तेन देवदत्तशङ्खेन तच्छब्देनेति भावः, उद्धता उत्कटा वीर्यसंपद् शक्तिसमूहो यस्य सः, अक्षीणबाणोज्ज्वलतूणधारी अक्षीणा अरिक्तीभूताः ये बाणाः तैः उज्ज्वलं देदीप्यमानं तूणं निषङ्गं धारयतीति सः बाणप्रक्षेपणेऽपि सततपूर्णतूणधारकः इत्यर्थः, सः अर्जुनः स्वप्रतापरूपज्वलने निजप्रतापाग्नौ द्विषद्द्विजिह्वोग्रवनं द्विषन्तः शत्रुभूताः ये द्विजिह्वाः सर्पाः तैः उग्रं भयङ्करं यद् वनं यत्खाण्डववनं तत् जुहाव, जुहोति स्म, स्वशक्त्या खाण्डववनं ज्वालयामासेत्यर्थः।

देवदत्तशङ्ख के शब्द से उत्कटपराक्रमवाले, कभी न रिक्त होने वाले बाणों से चमकते हुए तूणीर धारण करने वाले उस अर्जुन ने अपने बाहु के प्रतापरूपी अग्नि में शत्रु बने हुए सर्पों से उस भयङ्कर खाण्डववन को होम कर दिया अर्थात् जला डाला।

निजविक्रमनिर्धूतपर्जन्यशरसन्ततिः ।
स पन्नगांस्तार्क्ष्य इव द्रावयामास दानवान् ॥४॥

निजविक्रमनिर्धूतपर्जन्यशरसन्ततिः, निर्धूतः तिरस्कृतः पर्जन्यः वारिदः यया सा, निजविक्रमेण स्वपराक्रमेण निर्धूतपर्जन्या शरसन्ततिः शरसमूहः यस्य सः, सः दशरथः पन्नगान् सर्पान् तार्क्ष्य इव गरुड इव दानवान् दैतेयान् द्रावयामास विद्रावयति स्म, पक्षे—सः अर्जुनः तार्क्ष्य इव गरुड इव पन्नगान् शत्रुभूतान् सर्पान् तथा दानवान् तद्वनस्थितराक्षसान् द्रावयामास विद्रावयति स्म। अत्रानुष्टुपछन्दः, उपमालङ्कारश्च।

अपने पराक्रम से बादलों को नीचा दिखानेवाले शरसमूह हैं जिस के वह दशरथ सर्पों को गरुड़ के समान दैत्यों को तितर-वितर कर दिया। दूसरे पक्ष में-उस अर्जुन ने गरुड़ के समान शत्रुभूत सर्पों को तथा उस वन में रहनेवाले राक्षसों को तितर-वितर कर दिया।

दिवः स कृत्वामयशान्तिमेवं प्रणीतगुप्तिर्हरिणा कृतश्रीः।
पुनः प्रपेदे निजमेव राष्ट्रं रामाननालोकनलम्पटात्मा ॥५॥

सः दशरथः एवम् एवंप्रकारेण आमयशान्तिं रोगप्रशमनं कृत्वा दैत्यानां विनाशं कृत्वेत्यर्थः। दिवः स्वर्गस्य प्रणीतगुप्तिः प्रणीता विहिता गुप्तिः रक्षा येन सः, हरिणा इन्द्रेण कृतश्रीः कृतस्वागतशोभः, रामाननालोकनलम्पटात्मा रामस्य आननालोकने मुखावलोकने लम्पटः साभिलाषः आत्मा स्वरूपं यस्य सः, पुनः निजमेव स्वकीयमेव राष्ट्रं देशं प्रपेदे प्राप्तवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

वह दशरथ इस प्रकार रोग की शान्ति अर्थात् शत्रुओं का विनाश करके स्वर्ग की सुरक्षा करनेवाले, इन्द्र के द्वारा स्वागतादि शोभा किये हुए, राम के मुख के अवलोकन करने के लिये उत्कण्ठित होकर फिर अपने राज्य में पहुँचे।

पक्षे—मयशान्तिम् अग्निभयदूरीकरणेन मयदानवस्य मनःस्वास्थ्यम् एवम् एवंप्रकारेण कृत्वा हरिणा श्रीकृष्णेन प्रणीतगुप्तिः प्रणीता कृता गुप्तिः सुरक्षा यस्य सः, कृतश्रीः कृता उपार्जिता श्रीः विजयशोभा येन सः, रामाननालोकनलम्पटात्मा रामायाः वरवर्णिन्याः द्रौपद्या इति भावः। आननालोकनलम्पटात्मा मुखावलोकनोत्कण्ठितः सः अर्जुनः दिवः स्वर्गात् पुनः निजमेव राष्ट्रं स्वकीयं देशं प्रपेदे प्राप्तवान्।

अग्नि से रक्षा के द्वारा मयदानव की मानसिकशान्ति इस प्रकार से करके श्रीकृष्ण के द्वारा जिसकी सुरक्षा की गई है वह, विजय-शोभा प्राप्त करनेवाले, पत्नी द्रौपदी के मुख के अवलोकन के लिये उत्कण्ठित, वह अर्जुन स्वर्ग से फिर अपने देश में पहुँचे।

स्वर्गमार्गस्य मित्रं या सा भर्तृवरयोगतः।
तुतोष दयिता भक्तिविनमत्तनुमध्यमा ॥६॥

या या पत्नी कैकेयी स्वर्गमार्गस्य स्वर्गे युद्धभूमिपथस्य मित्रं सहायिका, युद्धकाले रथचक्रकीलीभङ्गे सति तच्छिद्रे अङ्गुलिदानेन सहायिका सा मध्यमा दयिता प्रिया कैकेयी भर्तृवरयोगतः भर्तुः वरयोः

द्वयोः वरदानयोः योगतः संयोगात् प्राप्तेरिति यावत्, भक्तिविनमत्तनु भक्त्या पतिभक्त्या विनमन्ती नम्रीभवन्ती तनुः यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा तुतोष सन्तुष्टाभवत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

जो पत्नी कैकयी स्वर्ग में युद्धभूमिमार्ग की सहायिका थी अर्थात् युद्ध के समय में पहिये के बगल की कोल टूट जाने पर उस छिद्र में अङ्गुली डाल कर निकल जाने से पहिये को जिस ने बचाया था वह मध्यमा प्रिया कैकयी पति से दो वरदान की प्राप्ति के कारण पतिभक्ति से शरीर को नम्र करती हुई अत्यन्त प्रसन्न हुई।

पक्षे—या या पत्नी स्वर्गमार्गस्य मित्रं स्वर्गगमनमार्गस्य यज्ञस्य सहायिका, पत्न्याः अभावेन पुरुषस्य यज्ञेऽनधिकारित्वादिति भावः, भक्तिविनमत्तनुमध्यमा भक्त्या पतिभक्त्या विनमन् नम्रीभवन् तनुमध्यमः शरीरमध्यभागो यस्याः सा, सा दयिता सा प्रिया द्रौपदी भर्तृवरयोगतः भर्तृवरस्य श्रेष्ठस्वामिनः योगतः संयोगात् तुतोष सन्तुष्टाभवत्।

जो पत्नी, पत्नी के विना पुरुष के यज्ञ में अनधिकारी होने से स्वर्गगमन के मार्गस्वरूप यज्ञ की सहायिका है, पतिभक्ति से झुके हुए शरीर के मध्यभाग वाली वह प्रिया द्रौपदी श्रेष्ठपति के संयोग से अत्यन्त प्रसन्न हुई।

महार्हमुक्तामयसंविधान-प्रकामरम्या मणिदारुचित्रा।
सभा कुमाराधिगता नृपेण भेजे सुधर्मेव सुराधिपेन ॥७॥

महार्हमुक्तामयसंविधानप्रकामरम्या महार्हैः बहुमूल्यैः मुक्तामयैः मुक्तास्वरूपैः संविधानैः सामग्रीभिः प्रकामं पर्याप्तं रम्या रमणीया मणिदारुचित्रा मणिभिः दारुभिः काष्ठनिर्मितवस्तुभिः चित्रा विविधवर्णा कुमाराधिगता कुमारेण राजकुमाररामेण अधिगता अधिष्ठिता संयुक्तेति यावत्, सभा राजसभा नृपेण राज्ञा दशरथेन सुराधिपेन देवेन्द्रण कुमाराधिगता कार्तिकेयसंयुक्ता सुधर्मेव देवसभेव 'स्यात्सुधर्मा देवसभा' इत्यमरः, भेजे सेविता प्राप्तेति भावः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

बहुमूल्य मोतीमय सामग्रियों से अत्यन्त रमणीय, मणि तथा काठ के सामानों से विविधरंगवाली, राजकुमार राम से संयुक्त राजसभा राजा दशरथ के द्वारा, कुमार कार्तिकेय से संयुक्त सुधर्मा नाम की देवसभा जैसे देवराज इन्द्र के द्वारा सेवित होती है उसी प्रकार सेवित हुई।

पक्षे—महार्हमुक्ता महार्हा बहुमूल्या मुक्ता यस्याम् सा, मयसंविधानप्रकामरम्या मयस्य मयदानवस्य संविधानैः शिल्पैः प्रकाम-

रम्या अतिरमणीया मणिदारुचित्रा मणिभिः दारुभिः काष्ठनिर्मितवस्तुभिः चित्रा विविधवर्णा कुमाराधिगता कुमारेण अर्जुनेन अधिगता प्राप्ता मयदानवादिति भावः, नृपेण राज्ञा युधिष्ठिरेण सुराधिपेन देवेन्द्रेण सुधर्मा इव देवसभा इव भेजे सिषेवे।

बहुमूल्य मोती से युक्त मयदानव की शिल्पकला की सामग्रियों के द्वारा अत्यन्त रमणीय, मणि तथा काष्ठ की वस्तुओं से विचित्ररङ्गवाली, कुमार अर्जुन के द्वारा मयदानव से प्राप्त की हुई (अर्जुन ने खाण्डव वन दहन में मय दानव के प्राण बचाये थे इसके बदले में मयदानव ने इनकी सभा बना दी थी) राजा युधिष्ठिर के द्वारा, इन्द्र के द्वारा सुधर्मा सभा के समान वह सभा सेवित हुई।

इष्टावाप्तिकृतोपायः स देवर्षिकृतादरः।
भीमोद्यमपरः काले जरासन्धारितामगात् ॥८॥

इष्टावाप्तिकृतोपायः इष्टस्य रामादीनां प्रियवस्तुनः अवाप्तौ प्राप्तौ कृतः उपायः प्रयत्नः येन सः, देवर्षिकृतादरः देवैः ऋषिभिश्च कृतः आदरः सम्मानः यस्य सः, भीमोद्यमपरः शत्रूणां कृते भयङ्करप्रयत्नतत्परः स दशरथः काले समये जरासंधारिताम् जरायाः वृद्धावस्थायाः संधारिताम् सम्यग्धारकत्वम् अगात् प्राप्नोत्। वृद्धो बभूवेत्यर्थः। अत्रानुष्टुप्छन्दः।

रामादिकों की प्रियवस्तु प्राप्त करने में प्रयत्न करने वाले, देवताओं तथा ऋषियों से आदर प्राप्त करने वाले, शत्रुओं के विषय में भयङ्कर प्रयत्न करने में तत्पर; वह राजा दशरथ कुछ समय में वृद्धावस्था के धारण करने वाले हो गये अर्थात् वृद्ध हो गये।

पक्षे—देवर्षिकृतादरः देवर्षेर्नारदस्य कृतः आदरः सम्मानः येन तद्वचनमनुमान्येत्यर्थः, इष्टावाप्तिकृतोपायः इष्टस्य राजसूययज्ञस्य अवाप्तौ प्राप्तौ तद्यज्ञकरणे इति भावः, कृतः उपायः संभारसंघटनं येन सः, भीमोद्यमपरः भीमस्य भीमनामकस्य स्वकनिष्ठभ्रातुः उद्यमे गदायुद्धप्रयत्ने परः तत्परः निर्भरः इत्यर्थः, सः युधिष्ठिरः काले समये जरासन्धारिताम् जरासन्धस्य अरितां शत्रुत्वम् अगात् प्राप्तवान्, भीमेन जरासन्धं घातयामास इति भावः।

देवर्षि नारद का आदरकरने वाले अर्थात् उन का कथन मान कर राजसूययज्ञ करने को सामग्री संघटनकरने वाले, भीम नामक अपने भाई के गदायुद्ध रूपी उद्योग में निर्भर रहने|वाले, वह युधिष्ठिर मौके पर जरासन्ध राजा की शत्रुता प्राप्त किये। अर्थात् भीम के द्वारा उसे मरवा दिये।

वृद्धभावं गतस्यापि तस्य पृथ्वीपतेः परैः ।
दुःप्रधर्ष्यमभूत्तेजो नैदाघस्येव भास्वतः ॥६॥

वृद्धभावं प्रवयस्त्वं, पक्षे—विद्वत्त्वं गतस्यापि प्राप्तस्यापि 'वृद्धो जीर्णो प्रवृद्धे ज्ञे त्रिषु क्लीबं तु शैलजे' इति मेदिनी, पृथ्वीपतेः भूपालस्य तस्य दशरथस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य नैदाघस्य ग्रीष्मर्तुसम्बन्धिनः भास्वतः इव सूर्यस्य इव तेजः प्रतापः परैः शत्रुभिः, सूर्यपक्षे—सूर्यादन्यैः दुःप्रधर्ष्यम् धर्षयितुमशक्यम् अभूत् जातम् । अत्रानुष्टुप् छन्दः, उपमालङ्कारोऽपि ।

वृद्धावस्था, दूसरे पक्षमें—पण्डितत्व प्राप्त करने पर भी राजा दशरथ के, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठर के, ग्रीष्मर्तु-सम्बन्धी सूर्य के समान तेज शत्रुओं के द्वारा अनाक्रमणीय हो गये ।

यथाश्वमेधेन पुरा मरुत्तस्तथा परं यष्टुमियेष भूपः ।
स राजसूयेन यथा च पूर्वं राजा हरिश्चन्द्र उदारकीर्तिः ॥१०॥

यथा पुरा पूर्वस्मिन् काले मरुत्तः मरुत्तनामको राजा यथा च पूर्वं पूर्वकाले उदारकीर्तिः उदारा कीर्तिर्यस्य सः राजा हरिश्चन्द्रः राजसूयेन राजसूययज्ञेन अयष्ट तथा स भूपः राजा दशरथः परं श्रेष्ठं यथा स्यात्तथा अश्वमेधेन यष्टुम् इयेष इच्छति स्म । पक्षे—यथा पुरा मरुत्तः यथा च पूर्वं राजा हरिश्चन्द्रः अश्वमेधेन अश्वमेधनामकेन यज्ञेन अयष्ट तथा स भूपः युधिष्ठिरः परं श्रेष्ठं यज्ञं यथा स्यात्तथा राजसूयेन यष्टुम् इयेष इच्छति स्म । अत्राप्युपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारश्च ।

जैसे पूर्व में मरुत्तनामक राजा, जैसे कि पूर्व में उदारकीर्तिवाले हरिश्चन्द्र-नामक राजा राजसूय यज्ञ किये थे उसी प्रकार उस राजा दशरथ ने श्रेष्ठयज्ञ जैसे होता है उसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा की । दूसरे पक्षमें—जैसे पूर्व में मरुत्त नामक राजा जैसे कि पूर्व में उदारकीर्तिवाले राजा हरिश्चन्द्र अश्वमेध नामक यज्ञ से यज्ञ किये थे वैसे ही जैसे श्रेष्ठ यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार उस राजा युधिष्ठिर ने राजसूयनामक यज्ञविधान के द्वारा यज्ञ करने की इच्छा की ।

स चतुरङ्गयुतं व्यसृजद्द्विषामनुजवर्गमदश्यमुदायुधम् ।
क्षितिपरिक्रमणाय ततोऽमुना क इव नाम परो न पराजितः ॥११॥

स दशरथः चतुरङ्गयुतं हस्त्यश्वरथपादातियुक्तम् अथवा तुरङ्ग-युतं घोटकसहितम् उदायुधम् उद्यतशस्त्रं द्विषां शत्रूणाम् अदृश्यं तेजः-प्रभूतादनवलोकनीयम् अनुजवर्गम् अनुजानां भरतादीनां वर्गः समूहः यस्य तं भ्रातृत्रयवन्तं राममित्यर्थः क्षितिपरिक्रमणाय पृथ्वीभ्रमणाय दिग्विजयायेति भावः, व्यसृजत् प्रेषितवान् , ततः तस्माद्धेतोः क इव नाम परः कः शत्रुः अमुना रामेण न पराजितः न विजितः सर्वेऽपि शत्रवः अनेन पराजिता इत्यर्थः। अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तम् 'द्रुतविलम्बित-माह नभौ भरौ' इति लक्षणात्।

उस राजा दशरथ ने हाथी, घोड़े, रथ पैदल इन अङ्गोंवाली सेना से युक्त, अथवा घोड़ों से युक्त, उठाये हुए हथियार वाले, अधिक तेज के कारण शत्रुओं के लिये न देखने योग्य छोटे भाइयों का समूह है जिसका उस राम को, छोटे भाइयों के सहित राम को दिग्विजय करने के लिये भेज दिया। इस कारण से कौन सा शत्रु ऐसा था जो इस राम के द्वारा नहीं जीता गया। अर्थात् सभी शत्रु जीते गये।

पक्षे—स युधिष्ठिरः चतुरङ्गसेनायुतम् अथवा तुरङ्गसंयुक्तम् उदायुधम् उद्यतशस्त्रम् द्विषां शत्रूणाम् अदृश्यं तेजसामाधिक्यादव-लोकनाशक्यम् अनुजवर्गम् भ्रातृसमूहं भीमादिकमित्यर्थः, क्षितिपरि-क्रमणाय दिग्विजयार्थं पृथिवीभ्रमणाय व्यसृजत् प्रेषयामास। ततः तस्माद्धेतोः अमुना भ्रातृवर्गेण क इव नाम परः कः शत्रुः न पराभूतः। सर्वेऽपि विपक्षाः पराभूता एव।

उस युधिष्ठिर ने चतुरङ्गिणी सेना से युक्त अथवा घोड़ों से युक्त, शस्त्र से सुसज्जित, अधिक तेजस्वी होने के कारण शत्रुओं के लिये न देखने योग्य भाइयों को दिग्विजयार्थ पृथ्वी भ्रमण करने के लिये भेजा। अतः इन लोगों के द्वारा कौन सा शत्रु नहीं जीता गया? अर्थात् सभी विपक्षी विजित हुए।

आप्राच्याज्जह्नुकन्याजलभरजनिताडम्बरादम्बुराशे-
रा च प्रत्यग्रचैत्रानिलचलितलतास्पन्दिनश्चन्दनाद्रेः।
आपाश्चात्याच्च लक्ष्मीपतिरचितनिजावासमुद्रात्समुद्रा-
दा च स्वःस्वोदरेभ्यस्तमुदजुषत भूरुत्तरेभ्यः कुरुभ्यः ॥१२॥

जह्नुकन्याजलभरजनिताडम्बरात् जाह्नवीजलराशिपतनजनितौ-द्धत्यात् आ प्राच्यात् समुद्रात् पूर्वीयसमुद्रं यावत् , प्रत्यग्रचैत्रानिल-चलितलतास्पन्दिनः प्रत्यग्रः अभिनवः यः चैत्रानिलः वसन्तपवनः तेन

चलिताः याः लताः ताभिः स्यन्दिनः सञ्चरणशीलात् आ चन्दनाद्रेः आमलयपर्वतात् मलयपर्वतं यावदित्यर्थः, लक्ष्मीपतिरचितनिजावास-मुद्रात् लक्ष्मीपतिना विष्णुना रचितः यः निजावासः निवसनं तस्य मुद्रा चिह्नं यस्मिन् तस्मात् आ पाश्चात्यात् पश्चिमात् समुद्रात्, पश्चिमसमुद्रं यावत्, स्वःसोदरेभ्यः स्वर्गतुल्येभ्यः आ उत्तरेभ्यः कुरुभ्यः उत्तरकुरुदेशपर्यन्तमित्यर्थः, हिमालयादुत्तरस्यां कश्चिदुत्तरकुरु-देशः इति प्रसिद्धिः; भूः पृथ्वी तम् दशरथं, पक्षे—युधिष्ठिरम् उदजुषत उत्कर्षेण असेवत। स सर्वपृथ्वीश्वरोऽभवदिति भावः। अत्र स्रग्धरा-वृत्तम्।

गङ्गा के जल प्रवाह के गिरने से उद्धत पूर्व समुद्र तक तथा नवीन वसन्त पवन से सञ्चालित लताओं से सञ्चरणशील मलयाचलपहाड़ तक, और विष्णु भगवान के द्वारा बनाये गये अपने निवास के चिह्न से युक्त पश्चिम समुद्र तक इसी प्रकार स्वर्ग के सदृश हिमालय के उत्तर उत्तरकुरुदेशपर्यन्त पृथ्वी उस दशरथ की, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर की पूर्णरूप से सेवा करती थी।

कुमारशक्त्या करदीकृतायां क्षिताविपश्यन् स्वभुजेन साध्यम्।
अजातशत्रुर्नियमेन राजा यज्ञैर्दिवं जेतुमुवाह दीक्षाम्॥१३॥

कुमारशक्त्या कुमाराणां रामादीनां, पक्षे—भीमादीनां शक्त्या सामर्थ्येन करदीकृतायां राजग्राह्यद्रव्यदात्रीसंपादितायां क्षितौ पृथिव्यां स्वभुजेन साध्यं कर्त्तव्यम् अपश्यन् अनवलोकमानः अजात-शत्रुः न जातः न उत्पन्नः शत्रुर्यस्य सः राजा दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः यज्ञैः मखैः दिवं स्वर्गं जेतुं स्वाधीनीकर्तुं नियमेन भोजनादिसंयमेन दीक्षां यज्ञदीक्षां यज्ञार्थमन्त्रग्रहणम् उवाह धारयति स्म। इन्द्रवज्रो-पेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

राजकुमार रामादिकों के, दूसरे पक्षमें—भीमादिकों के शक्ति से ही राज-ग्राह्यभाग देनेवाली बनायी हुई पृथ्वी में अपनी भुजाओं का कर्त्तव्य न देख कर जिसका शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुआ है ऐसा वह राजा दशरथ, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर यज्ञों के द्वारा स्वर्ग जीतने के लिये अर्थात् इस शरीर के पश्चात् स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त करने के लिये भोजनादि संयम के द्वारा यज्ञ दीक्षा प्राप्त किये। अर्थात् यज्ञ के लिये मन्त्र ग्रहण किये।

विधिमनुचरन्प्राग्वंशस्थस्तथा स महीपति-
र्व्यतनुत हविर्धारावृष्टिं त्रिविष्टपितुष्टये।

सलिलममलं काले काले यथा विसृजन्नपि
ध्रुवमनृणतां प्राप्तो नाद्याप्यमुष्य पुरन्दरः ॥१४॥

महीपतिः राजा स दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः विधिं याज्ञिकनियमम् अनुचरन् सेवमानः प्राग्वंशस्थः हविर्गेहपूर्वभागस्थितसदस्यनिवासगृहे स्थितः, 'प्राग्वंशः प्राग्हविर्गेहात्' इत्यमरः, त्रिविष्टपितुष्टये स्वर्गवासिनां देवानां सन्तुष्टये हविर्धारावृष्टिं घृतधारावर्षणं तथा तेन प्रकारेण व्यतनुत कृतवान् यथा येन प्रकारेण काले-काले समये-समये अमलं स्वच्छं सलिलं जलं विसृजन्नपि ददद्पि पुरन्दरः इन्द्रः अमुष्य दशरथस्य, पक्षे--युधिष्ठिरस्य अनृणताम् ऋणशुद्धिम् अद्यापि इदानीं यावदपि न प्राप्तो न गतो नानुभूतवान्। अत्र हरिणीवृत्तम् 'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात्।

राजा दशरथ ने, पक्ष—युधिष्ठिर ने याज्ञिकनियम का पालन करते हुए घृतगृह के पूर्व भाग स्थित सदस्यनिवासगृह में रहते हुए देवताओं की सन्तुष्टि के लिये होमकुण्ड में घृतधारा की वर्षा उस प्रकार की, जिस प्रकार कि समय समय पर स्वच्छ पानी देते हुए भी इन्द्र इस राजा दशरथ की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की ऋणमुक्ति आज तक नहीं प्राप्त किये।

स तर्पयामास दिवं हविर्भिर्द्विजेन्द्रमुख्यानपि दक्षिणाभिः।
वसुप्रदानैर्वसुधामशेषां यशोभिरच्छैर्भुवनानि सप्त ॥१५॥

स दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः दिवं स्वर्गं स्वर्गवासिनो देवान् इति यावत् हविर्भिर्हवनीयघृतैः, द्विजेन्द्रमुख्यान् ब्राह्मणश्रेष्ठान् दक्षिणाभिः दक्षिणाद्रव्यैः, अशेषां सम्पूर्णां वसुधां पृथिवीं सम्पूर्णपृथिवीनिवासिनो जनानित्यर्थः वसुप्रदानैः धनदानैः, अच्छैः स्वच्छैः यशोभिः सप्तभुवनानि भूलोकादीन् सप्तलोकान् तर्पयामास तृप्तान् चकार। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् अनेकेषां प्रस्तुतानामेकतर्पणधर्मसम्बन्धात्तुल्ययोगितालङ्कारः।

उस राजा दशरथ ने, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर ने हवनीयघृत से स्वर्गवासी देवताओं को, दक्षिणाद्रव्य से श्रेष्ठ याज्ञिकब्राह्मणों को, धनदान से सम्पूर्णपृथ्वीवासियों को तथा स्वच्छ यश से सातों भुवनों को तृप्त किया।

निःस्पृहः स्वशरीरेऽपि तथानर्च स ऋत्विजः।
यथा ते धनसंपत्या कुबेरमवमेनिरे ॥१६॥

स्वशरीरेऽपि आत्मीयदेहेऽपि निःस्पृहः अनास्थावान् स दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः तथा तेन प्रकारेण ऋत्विजो याजकान् ब्राह्मणान् आनर्च पूजितवान् तेभ्यो दक्षिणाधनान्यददादिति भावः, यथा येन प्रकारेण ते धनपूजिताः ब्राह्मणाः धनसंपत्त्या प्राप्तधनसंपत्तिद्वारा कुबेरं धनाधिपमपि अवमेनिरे अवमानयामासुः, प्राप्तधनेन धनपतिमप्यधश्चक्रुरित्यर्थः। अत्रानुष्टुप् छन्दः। अत्र लोकातिगसम्पत्तिवर्णनादुदात्तमलङ्कारः, तादृशधनासम्बन्धेऽपि सम्बन्धवर्णनादतिशयोक्तिश्च, उभयोरेकाश्रयानुप्रवेशात्संकरः।

अपने शरीर में आस्था नहीं रखने वाले उस राजा दशरथ ने, पक्षे—युधिष्ठिर ने उस प्रकार से याजक ब्राह्मणों का धन से सत्कार किया, जैसे कि उनलोगों ने अपनी धनसंपत्ति के द्वारा धनपतिकुबेर को भी नीचा दिखा दिया।

आराधितस्तेन मखे पुरस्तान्मनुष्यमूर्त्या विहितावतारः।
जगत्त्रयस्याशिशुपालकत्वं समादधे स्वेन बलेन विष्णुः॥१७॥

तेन राज्ञा दशरथेन मनुष्यस्वरूपेण विहितावतारः विहितः धृतः अवतारः येन सः विष्णुः मखे यज्ञे पुरस्तात् प्रथमम् आराधितः पूजितः, यः विष्णुः स्वेन बलेन स्वशक्त्या आशिशु शिशुपर्यन्तस्य जगत्त्रयस्य त्रिभुवनस्य पालकत्वं पालनकर्तृत्वं समादधे धारयामास धारयतीत्यर्थः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

उस दशरथ के द्वारा मनुष्यरूप से अवतार ग्रहण करने वाले विष्णु यज्ञ में सब से पहले पूजा किये गये। जिस विष्णु ने अपने बल से शिशु पर्यन्त तीनों भुवनों का पालकत्व धारण किया है।

पक्षे—तेन युधिष्ठिरेण मखे यज्ञे पुरस्तात् प्रथमम् आराधितः पूजितः मनुष्यमूर्त्या मनुष्यशरीरेण विहितावतारः धृतावतारः विष्णुः कृष्णः जगत्त्रयस्य त्रिभुवनस्य अशिशुपालकत्वं शिशुपालरहितत्वं स्वेन बलेन आत्मीयशक्त्या समादधे धृतवान्। शिशुपालं मारयामास इति भावः।

उस राजा युधिष्ठिर के द्वारा यज्ञ में सर्वप्रथम सत्कार किये गये मनुष्यस्वरूप में अवतारग्रहण करनेवाले विष्णु अर्थात् कृष्ण ने तीनों भुवनों का शिशुपालाभाव कर्तृत्व अपने बल से धारण किया अर्थात् अपने बल से शिशुपाल का विनाश किया।

मखावसाने मघवत्समानो
यथोचितं योजितमानपूजान्।

विशांपति र्भूमिपतीन् विसृज्य
शान्तोपसर्गां धरणीं शशास ॥१८॥

मघवत्समानः इन्द्रतुल्यः विशांपतिः राजा दशरथः, पक्षे—युधिष्ठिरः मखावसाने यज्ञसमाप्तौ योजितमानपूजान् योजिता कृता मानपूजा आदरसत्कारः येभ्यः तान् भूमिपतीन् यज्ञागतान् नृपान् विसृज्य प्रस्थाप्य शान्तोपसर्गां यज्ञप्रभावात्शान्तोपद्रवां धरणीं पृथ्वीं शशास शासितवान्। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम्।

इन्द्र के तुल्य राजा दशरथ ने, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर ने यज्ञसमाप्त होने पर आदर सत्कार किये गये राजाओं को विदा कर के शान्त उपद्रव वाली पृथ्वी का शासन किया।

तस्य भूलोकचन्द्रस्य समृद्धिरतिवासवा।
ज्योत्स्नेव चक्रवाकाणामासीद् दुःखाय दुर्हृदाम् ॥१९॥

भूलोकचन्द्रस्य भूलोके चन्द्र इव भूलोकचन्द्रः तस्य भूलोकचन्द्रस्य तस्य राज्ञो दशरथस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य अतिवासवा वासवमतिक्रान्ता समृद्धिः उन्नतिः वैभव इतियावत् चक्रवाकाणां चक्रवाकपक्षिणां ज्योत्स्नेव चन्द्रिकेव दुर्हृदां शत्रूणां दुःखाय दुःखानुभवाय आसीत्। इत आरभ्य सप्तविंशतमं श्लोकं यावदनुष्टुप् छन्दः, अत्रोपमालङ्कारः।

भूलोक में चन्द्रमा के समान उस राजा दशरथ की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की इन्द्र का अतिक्रमणकरने वाली अर्थात् इन्द्र की सम्पत्ति से भी बढ़ी हुई समृद्धि, चन्द्रवाकपक्षियों के लिये चान्दनी के समान शत्रुओं के दुःख के लिये हुई।

अतर्क्ये कृतपातस्य पयसीव पराभवे।
तद्विपक्षजनस्याभूद्धृदि चिन्तामयो ज्वरः ॥२०॥

अतर्क्ये अतर्क्यगम्भीरे पयसीव जले इव पराभवे विपत्तौ कृतपातस्य पतितस्य तद्विपक्षजनस्य तस्य दशरथस्य विपक्षजनस्य शत्रुजनस्य हृदि हृदये चिन्तामयो ज्वरः चिन्तास्वरूपो रोगः अभूत्, तदरयः सततं चिन्तामग्नाः भूत्वैवातिष्ठन्नितिभावः। उपमालङ्कारः।

अनुमान से परे जल के समान विपत्ति में गिरे हुए उस दशरथ के शत्रुओं के हृदय में चिन्तारूपी ज्वर रहने लगा।

पक्षे—अतर्क्ये अतर्कणीये पयसीव जलसदृशे जलायमाने स्थले

इत्यर्थः कृतपातस्य पतितस्य तद्विपक्षजनस्य तदरेः दुर्योधनस्येत्यर्थः हृदि हृदये पराभवे स्वापमानविषये अथवा युधिष्ठिरादीनामप्यपमानकरणविषये चिन्तामयः चिन्तास्वरूपः ज्वरः रोगः अभूत्।

अनुमान न करने योग्य पानी के समान स्थल में गिरे हुए उस युधिष्ठिर के शत्रु दुर्योधन के हृदय में अपने अपमान के विषय में अथवा इनलोगों के अपमान करने के विषय में चिन्तारूपी ज्वर हो गया अर्थात् इस विषय में वह सतत चिन्तायुक्त रहने लगा।

अभिरामं प्रवृत्तापि कुलज्येष्ठमपोह्य तम्।
पृथुलाभरतं लक्ष्मी दुर्योधनमियेष सा ॥२१॥

कुलज्येष्ठं भ्रातृषु ज्येष्ठं रामम् अभि रामं लक्षीकृत्य प्रवृत्तापि उद्यतापि तम् अपोह्य तं त्यक्त्वा सा दशरथसम्बन्धिनी पृथुला महीयसी लक्ष्मीः राज्यलक्ष्मीः दुर्योधनम् शत्रुभिः दुःखेन योधयितुं शक्यं महावीरमित्यर्थः भरतं भरतनामानं कैकेयीपुत्रम् इयेष काङ्क्षते स्म।

सभी भाइयों में ज्येष्ठ राम के उद्देश्य से उद्यत हुई भी उस राम को छोड़ कर वह दशरथ की बहुत बड़ी राज्यलक्ष्मी दुःख से युद्ध करने योग्य महावीर भरत को चाहने लगी।

पक्षे—अभिरामं सुन्दरं कुलज्येष्ठं भ्रातृषु ज्येष्ठं युधिष्ठिरमित्यर्थः प्रवृत्तापि उपस्थितापि तमपोह्य तं त्यक्त्वा पृथुलाभरतं पृथुषु महत्सु लाभेषु प्राप्तव्येषु रतं लीनम् अतिलुब्धमित्यर्थः दुर्योधनं सा लक्ष्मीः सा सम्पत्तिः इयेष आचकाङ्क्ष।

सुन्दर तथा कुलज्येष्ठ युधिष्ठिर के पास पहुँची हुई वह राज्यलक्ष्मी उस युधिष्ठिर को छोड़ कर अत्यन्त लोभी दुर्योधन को चाहने लगी।

वर्तमानो वयस्यन्ते प्रज्ञादृगथ भूपतिः।
ज्येष्ठे निजसुते लक्ष्मीमाधातुं मतिमादधे ॥२२॥

अथ अनन्तरं प्रज्ञादृक् बुद्ध्यावलोककः, पक्षे-अन्धः, भूपतिः राजा दशरथः, पक्षे—धृतराष्ट्रः अन्ते वयसि वर्तमानः वृद्धावस्थायामुपस्थितः ज्येष्ठे श्रेष्ठे निजसुते स्वपुत्रे रामे, पक्षे—दुर्योधने लक्ष्मीं राज्यसम्पत्तिम् आधातुं स्थापितुं मतिमादधे विचारयामास।

इसके बाद वृद्धावस्था में उपस्थित बुद्धि से विचार करने वाले राजा दशरथ ने, दूसरे पक्ष में—अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने, अपने बड़े पुत्र राम के ऊपर, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के ऊपर राज्यलक्ष्मी स्थापित करने की इच्छा की।

सुधीरसौवलोद्योगाद्राजा देवनतः श्रियम् ।
धर्मपुत्रे स्थिरां व्याजैर्विना कर्तुं मनो दधे ॥२३॥

देवनतः देवेष्ववनम्रः सुधीः बुद्धिमान् असौ राजा दशरथः बलोद्योगात् बलानां सैनिकानाम् उद्योगात् प्रयत्नात् धर्मपुत्रे स्वौरससुते रामे श्रियं राजलक्ष्मीं स्थिरामचञ्चलां कर्तुं सम्पादयितुं व्याजैः कपटैर्विना निश्छलं यथा स्यात्तथा मनो दधे मनश्चकार ।

देवताओं के विषय में विनम्र रहने वाले बुद्धिमान् उस राजा दशरथ ने सैनिकों के प्रयत्न से अपने औरस पुत्र राम के ऊपर राजलक्ष्मी को स्थिर करने के लिये निश्छलभाव से विचार किया ।

पक्षे—राजा धृतराष्ट्रः सुधीरसौबलोद्योगात् सुधीरः द्यूतक्रीडायां धैर्यशाली यः सौबलः शकुनिः तत्प्रयत्नात् देवनतः अक्षतः अत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः अक्षद्वारेणेत्यर्थः, 'पणोऽक्षेषु ग्लहोऽक्षास्तु देवनाः पाशकाश्च ते' इत्यमरः, धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे स्थिरां सुप्रतिष्ठितां श्रियं राजलक्ष्मीं व्याजैः कपटैः विनाकर्तुम् अपाकर्तुं मनो दधे मतिं कृतवान् ।

राजा धृतराष्ट्र ने द्यूतक्रीड़ा में स्थिर शकुनि के प्रयत्न से द्यूत के द्वारा युधिष्ठिर के ऊपर सुप्रतिष्ठित राजलक्ष्मी को अपहरण करने का विचार किया ।

भरतज्यायसो दीप्ता दायादजननीतया ।
द्यूतकेल्या नलस्येव लक्ष्मीर्मन्थरया हृता ॥२४॥

भरतज्यायसः भरतज्येष्ठस्य रामस्येत्यर्थः, दीप्ता भास्वरा लक्ष्मीः राज्यसम्पत्तिः नलस्य एतन्नामकस्य राज्ञः द्यूतकेल्या इव अक्षक्रीडयेव दायादजननीतया दायादस्य बान्धवस्य भरतस्येत्यर्थः जननी माता इता प्रेरिता यया सा दायादजननीता तया मन्थरया एतन्नामिकया दास्या हृता अपहारितेत्यर्थः । अत्रोपमालङ्कारः ।

भरत के बड़ेभाई राम की देदीप्यमान राजलक्ष्मी द्यूतक्रीड़ा के द्वारा राजा नल की लक्ष्मी के समान बन्धु की माता को प्रेरणा देनेवाली मन्थरा दासी के द्वारा हरण कर ली गई ।

पक्षे—नलस्य इव नलसंज्ञकस्य राज्ञ इव भरतज्यायसः भरतकुलश्रेष्ठस्य युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, दीप्ता देदीप्यमाना लक्ष्मीः राज्यसम्पत् दायादजननीतया दायादस्य बान्धवस्य दुर्योधनस्य यः जनः शकुनिः तेन नीतया उपस्थापितया मन्थरया वक्रया द्यूतकेल्या अक्षक्रीडया हृता अपहृता । 'मन्थरः कोशफलयोर्बाधमन्थानयोः पुमान् । कुसुम्भ्यां न द्वयोर्मन्दे पृथौ वक्रेऽभिधेयवत्' इति मेदिनी ।

राजा नल के समान भरतकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर की देदीप्यमान राजलक्ष्मी बन्धु दुर्योधन के आदमी शकुनि के द्वारा उपस्थित की गई कुटिल द्यूतक्रीड़ा के द्वारा हर ली गई।

दुःशासनावलेपेन भरतानिष्टकारिणा।
तस्य लक्ष्मीर्विपक्षेण कृष्टा कान्ता कचेष्विव ॥२५॥

दुःशासनावलेपेन दुःशासनस्य मन्थराया दुरुपदेशस्य अवलेपः दर्पः यस्य तेन भरतानिष्टकारिणा भरतस्य रामवनगमनरूपम् अनिष्टं अप्रियं करोतीति तेन विपक्षेण शत्रुणा कैकेय्या इत्यर्थः, तस्य रामस्य लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः कचेषु केशेषु कान्तेव प्रियेव कृष्टा आकृष्टा। अत्रोपमालङ्कारः।

मन्थरा के दुष्ट उपदेश का दर्प रखने वाले रामवनगमन से भरत का अप्रिय आचरण करनेवाले शत्रु के द्वारा अर्थात् कैकेयी के द्वारा उस राम की राजलक्ष्मी केश पकड़ कर प्रिया के सदृश खींच ली गयी।

पक्षे—भरतानिष्टकारिणा भरतस्य भरतकुलस्य अनिष्टम् अप्रियं करोतीति तेन भरतकुलविनाशकेनेत्यर्थः, विपक्षेण शत्रुणा दुःशासनावलेपेन दुःशासनस्य दर्पेण तस्य युधिष्ठिरस्य लक्ष्मीरिव कान्ता प्रिया द्रौपदी कचेषु केशेषु कृष्टा आकृष्टा। अत्र लक्ष्मीरपि कृष्टा कान्तापि कृष्टेत्युभयोः प्रस्तुतयोरेवोपमानोपमेययोः उपमालङ्कारः।

भरतकुल का विनाशस्वरूप अनिष्ट करने वाले शत्रुभूत दुःशासन के दर्प ने उस युधिष्ठिर की लक्ष्मी के समान प्रिया द्रौपदी को केश पकड़ कर खींचा। जैसे युधिष्ठिर की लक्ष्मी खींची गयी उसी प्रकार दुःशासन के दर्प (घमण्ड) के द्वारा प्रिया द्रौपदी भी बाल पकड़ कर खींची गई।

नैव सभ्या न गुरवो न मित्रज्ञातिबान्धवाः।
तं निवारयितुं शेकुः क्रियमाणं महानयम् ॥२६॥

तं क्रियमाणं रामवनगमनरूपं, पक्षे—द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणरूपं महानयं महान्तमनयं निवारयितुं निषेद्धुं नैव सभ्याः सभासदः न गुरवः वशिष्ठादयः, पक्षे—द्रोणादयः, न मित्रज्ञातिबान्धवाः मित्राणि ज्ञातयः बान्धवाश्च न शेकुः समर्था बभूवुः।

उस किये जाते हुए रामवनगमनरूपी, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के केशाम्बराकर्षणरूपी महान् अन्याय को रोकने के लिये न तो सभासद वर्ग और न वशिष्ठ

आदि गुरु, दूसरे पक्ष में—द्रोण आदि गुरु तथा न मित्र, परिचित और बन्धु लोग ही समर्थ हुए।

गुरुभिः कल्पितं सोऽथ वत्सरादाचतुर्दशात्।
आरण्यकव्रतं धीरः सानुजः प्रत्यपद्यत ॥२७॥

अथ अनन्तरं सानुजः भ्रात्रा लक्ष्मणेन सहितः धीरः धैर्यशाली सः रामः आ चतुर्दशात् वत्सरात् चतुर्दशवत्सराणि अभिव्याप्य गुरुभिः पित्रा कल्पितम् अनुज्ञातम् आरण्यकव्रतं वनवासिनां नियमं वननिवासमित्यर्थः, प्रत्यपद्यत धारयामास।

इस के बाद भाई लक्ष्मण के साथ धैर्यशाली उस राम ने चौदह वर्षों तक पिता के द्वारा निश्चित किया गया जङ्गलियों का नियम धारण किया।

पक्षे—अथ अनन्तरम् आचतुर्दशात् वत्सरात् चतुर्दशमं वत्सरं यावत् त्रयोदशवर्षाणि अभिव्याप्येत्यर्थः, सानुजः भ्रातृभिः सहितः धीरः धैर्यशाली सः युधिष्ठिरः गुरुभिः धृतराष्ट्रादिभिः कल्पितं व्यवस्थापितम् आरण्यकव्रतं वनवासिनां नियमं वनवासमिति यावत्, प्रत्यपद्यत जग्राह।

इसके बाद चौदहवें वर्ष तक अर्थात् सम्पूर्ण तेरह वर्ष भाइयों के साथ धैर्यशाली उस युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र आदि गुरुओं के द्वारा व्यवस्थित किया हुआ वनवासियों का नियम अर्थात् वनवास ग्रहण किया।

स राज्यमैन्द्रेण पदेन तुल्यं गुरुप्रियार्थं तृणवद्विहाय।
अरण्यवासाय कृतप्रतिज्ञः प्रतस्थिवान्सावरजः सदारः ॥२८॥

स रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः ऐन्द्रेण पदेन तुल्यम् इन्द्रपदसदृशं राज्यं गुरुप्रियार्थं, गुरोः पितुः दशरथस्य प्रियार्थं वचनावितथकरणप्रियाचरणार्थं, पक्षे—गुरोः पितृव्यस्य धृतराष्ट्रस्य प्रियार्थं तत्सुतदुर्योधनार्थराज्यत्यागरूपप्रियकरणार्थं तृणवत् तृणसदृशं विहाय त्यक्त्वा अरण्यवासाय वनवासाय कृतप्रतिज्ञः प्रतिज्ञामारूढः सन् सावरजः अनुजलक्ष्मणसहितः सदारः पत्नीसीतासहितः, पक्षे—अनुजभीमादिसहितः, पत्नीद्रौपदीसहितः प्रतस्थिवान् प्रचलितवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्। उपमालङ्कारः।

वह राम, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर इन्द्रपद के तुल्य राज्य को पिता दशरथ के वचनपालनरूप प्रिय करने के लिये, दूसरे पक्ष में—चाचा धृतराष्ट्र के उसके

पुत्र दुर्योधन के लिये राज्यत्यागरूप प्रिय करने के लिये तिनके के समान छोड़कर वनवास के लिये प्रतिज्ञाकर के भाई लक्ष्मण के साथ तथा पत्नी सीता के साथ, दूसरे पक्ष में--भाई भीमादि के साथ तथा पत्नी द्रौपदी के साथ चल दिये।

अपोढरत्नाभरणं रथेन निर्यान्तमेतं नगरान्निरीक्ष्य।
विमोक्तुमश्रूणि चिरं जनानामासीन्न पर्याप्तमिवाक्षियुग्मम् ॥२९॥

अपोढरत्नाभरणं परित्यक्ताभूषणं रथेन स्यन्दनेन, पक्षे—शरीरावयवेन चरणेनेत्यर्थः 'रथः पुमानवयवे स्यन्दने वेतसेऽपि च' इति मेदिनी, नगरात् अयोध्यानगरात्, पक्षे--हस्तिनापुरात् निर्यान्तं निर्गच्छन्तम् एतं रामं, पक्षे--युधिष्ठिरं निरीक्ष्य अवलोक्य जनानाम् तत्र स्थितानां मनुष्याणां चिरं बहुकालं यावत् अश्रूणि विमोक्तुं शोकाश्रुजलं वाहयितुं अक्षियुग्मं लोचनयुगलं पर्याप्तम् अश्रुमोचनप्रयोजनपरिपूर्णं नासीदिव। तद्वियोगेन जनाः बहून्यश्रूणि मुमुचुरित्यर्थः। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

आभूषणों का परित्याग किये हुए, रथ के द्वारा अयोध्यापुरी से निकलते हुए इस रामको, दूसरे पक्ष में--चरणों के द्वारा हस्तिनापुरी से निकलते हुए इस युधिष्ठिर को देख कर लोगों के बहुत समय तक आँसू त्याग करने के लिये मानो दोनों आँखें पर्याप्त नहीं थीं। अर्थात् आँसू त्याग करने के लिये उन में से एक एक को दश-वीस आँखों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था।

राजेन्द्रवेषापगमेऽपि नैनं सौभाग्यलक्ष्मीः श्लथयाम्बभूव।
सुरासुरैः स्वीकृतरत्नराशिस्तथापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥३०॥

राजेन्द्रवेषापगमेऽपि राजेन्द्रवेषाः छत्रचामरमुकुटादयः तेषाम् अपगमेऽपि दूरीकरणेऽपि एनं रामं, पक्षे--युधिष्ठिरं सौभाग्यलक्ष्मीः भाग्यातिशयसूचिका शोभा राजलक्ष्मीरिति भावः, न श्लथयाम्बभूव नाल्पीभूता। अत्र दृष्टान्तयति–सुरासुरैः देवदानवैः स्वीकृतरत्नराशिः स्वीकृतः गृहीतः रत्नराशिः रत्नसमूहः यस्य सः तथापि तथा कृते सत्यपि सिन्धुः समुद्रः रत्नाकर एव, अर्थात् तस्य रत्नाकरत्वं नापगतम्। अत्राप्युपजातिवृत्तम् दृष्टान्तोऽलङ्कारः।

राजाओं के वेषभूषा छत्र चामर आदि के दूर होने पर भी इस राम की, दूसरे पक्ष में--युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी शिथिल नहीं हुई, अर्थात् राजकान्ति कम न हुई। इस विषय में कवि दृष्टान्त देता है कि देव-दानवों के द्वारा बहुत से रत्न निकाले जाने पर भी समुद्र रत्नाकर ही रह गया। उसकी रत्नाकरता कम न हुई।

स्थितेऽप्युदग्रे पुरि राजवंश्ये ज्यायांसमेनं न जहौ जनौघः।
द्वारोपकण्ठस्थितशङ्करोऽपि बाणः किमासीद् भुवनस्य पूज्यः ॥३१॥

पुरि नगरे उदग्रे श्रेष्ठे राजवंश्ये राजवंशीये दशरथे, पक्षे—धृतराष्ट्रे स्थितेऽपि सत्यपि जनौघः जनसमूहः ज्यायांसं श्रेष्ठम् एनं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं न जहौ न तत्याज। राजवंशीयत्वसौभाग्यसंयुक्तेऽपि दशरथे, पक्षे—धृतराष्ट्रे जनौघः एतस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य एव सत्कारं हृदयेन करोति स्म न तु तस्य दशरथस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य। अत्र दृष्टान्तः—द्वारोपकण्ठस्थितशङ्करोऽपि द्वारस्य उपकण्ठे समीपे स्थितः शङ्करः शिवः यस्य सः, एवंभूतः सन्नपि बाणः बाणासुरः किमिति प्रश्ने भुवनस्य संसारस्य पूज्यः सत्करणीयः आसीत्? नासीदेवेत्यर्थः। अत्राप्युपजातिवृत्तं दृष्टान्तोऽलङ्कारः।

अन्तर्मध्य

नगर में राजवंशीयों में श्रेष्ठ राजा दशरथ के, दूसरे पक्ष में—राजा धृतराष्ट्र के विद्यमान रहने पर भी इस श्रेष्ठ पुरुष राम का, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर का लोगों ने नहीं त्याग किया। अर्थात् राजवंशीयत्वगुण विद्यमान रहने पर भी लोगों ने राम को छोड़ कर दशरथ का, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर को छोड़ कर धृतराष्ट्र का आदर नहीं किया। इस में दृष्टान्त देता है कि—द्वार के समीप में शङ्कर भगवान् के विद्यमान रहने पर भी क्या बाणासुर संसार के लिये पूजनीय था? अर्थात् नहीं।

राष्ट्रादन्तःकलहकलुषान्मथ्यमानादिवाब्धे-
स्तन्वी बाला किसलयमृदुर्निर्गताप्युज्ज्वलाङ्गी।
भर्तृप्रेम्णा वनभुवमभि प्रस्थिता राजकन्या
शम्भोर्जूटं नवशशिकला संश्रयन्तीव रेजे ॥३२॥

मथ्यमानात् विलोड्यमानात् अब्धेः इव समुद्राद् इव अन्तःकलहकलुषात् आन्तरिकद्वेषमलिनात् राष्ट्रात् राज्यात् भर्तृप्रेम्णा पतिस्नेहेन निर्गता निर्याता, शशिकलापक्षे—भर्तृप्रेम्णा 'भृञ् धारणपोषणयोः' भर्तुः धारकस्य प्रेम्णा निर्गता किसलयमृदुः नवपल्लववत्कोमलाङ्गी तन्वी कृशाङ्गी उज्ज्वलाङ्गी देदीप्यमानशरीरा बाला नवयौवना, चन्द्रकलापक्षे—नवोद्गता राजकन्या राजकुमारी सीता, पक्षे—द्रौपदी, शम्भोर्जूटं शिवस्य जटाकलापं संश्रयन्ती आश्रयन्ती नवशशिकला इव बालचन्द्रलेखा इव वनभुवम् अभि अरण्यभूमिं

लक्ष्यीकृत्य प्रस्थिता प्रचचाल। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इतिलक्षणात्, उपमालङ्कारश्च।

मन्थन किये जाते हुए समुद्र के समान आन्तरिक कलह से क्षुब्ध राज्य से पति के प्रेम से, चन्द्रकलापक्ष में—धारण करने वाले शिवजी के प्रेम से निकली हुई नवकिसलय के समान कोमलाङ्गी दुबले-पतले शरीरवाली, देदीप्यमान अङ्गवाली नवयौवना, चन्द्रकलापक्ष में—नवीन पैदाहोनेवाली, राजकुमारी सीता ने, दूसरे पक्षमें—द्रौपदी ने, शिवजी के जटाजूट का आश्रयण करती हुई नवचन्द्रलेखा के समान जङ्गली भूमि का उद्देश्य कर के प्रस्थान किया।

निरस्तरत्नाभरणापि गेहाद्विनिर्गता सा निजयैव भासा।
विद्योतयामास नरेन्द्रमार्गं तडिल्लता मेघविनिर्गतेव ॥३३॥

निरस्तरत्नाभरणा परित्यक्तरत्नाभूषणापि गेहात् गृहात् विनिर्गता बहिरागता सा सीता, पक्षे—द्रौपदी मेघविनिर्गता वारिदाद् बहिरागत्य स्पष्टीभूता तडिल्लतेव विद्युल्लतेव निजयैव भासा स्वकीययैव कान्त्या नरेन्द्रमार्गं राजमार्गं विद्योतयामास भासयति स्म। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

रत्नाभूषणों का परित्याग किये हुए भी घर से निकली हुई उस सीता ने, दूसरे पक्षमें—द्रौपदी ने मेघ से निकली हुई विद्युल्लता के समान अपनी कान्ति से ही राजमार्ग को प्रकाशित किया।

बाष्पाम्बुजम्बालितराजमार्गैः सगद्गदव्याहृतसाधुवादैः।
व्यलोकि सा पौरजनैरसूर्यंपश्यापि मध्येनगरं व्रजन्ती ॥३४॥

असूर्यंपश्यापि सूर्यं न पश्यतीति सापि सततम् अन्तःप्रासादं तिष्ठन्ती अपि मध्येनगरं नगरस्य मध्ये व्रजन्ती गच्छन्ती सा सीता, पक्षे—द्रौपदी बाष्पाम्बुजम्बालितराजमार्गैः बाष्पाम्बुभिः अश्रुजलैः जम्बालिताः कर्दमिताः राजमार्गाः यैस्तैः, सगद्गदव्याहृतसाधुवादैः सगद्गदं रुद्धकण्ठं यथास्यात्तथा व्याहृतः कथितः साधुवादः प्रशंसाशब्दः यै स्तैः पौरजनैः नगरवासिभिः व्यलोकि अवलोकिता। अत्रपूर्ववदुपजातिवृत्तम्, असूर्यंपश्यापि मध्येनगरं व्रजन्तीत्यत्र द्रव्यक्रिययोर्विरोधो विधिदुर्विलसिताच्च परिहारः, अत एव विरोधाभासोऽलङ्कारः।

असूर्यपश्या अर्थात् सूर्य के न देखने वाली होने पर भी नगर के मध्य से जाती हुई वह सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी आँसू के जल से सड़क को कीचड़ बनाने

वाले, रुद्धकण्ठ से प्रशंसा के शब्द उच्चारण करने वाले नगरवासी लोगों के द्वारा देखी गयी।

कृतानुयातान् सह मित्रबन्धुभिर्निवर्त्य भूयो नगराय नैगमान्।
स धर्मजन्मा निजकीर्तिनिर्मलां सुरापगां प्राप सुमित्रसंगतः॥३५॥

मित्रबन्धुभिः सह मित्रैः बान्धवैश्च युक्तान् कृतानुयातान् अनुगमनकारिणः नैगमान् नागरिकान् 'नैगमं स्यादुपनिषद्वणिजोर्नागरेऽपि च' इति मेदिनी। भूयः पुनः नगराय निवर्त्य परावर्त्य सुमित्रसंगतः सुष्ठु मित्रं भ्राता लक्ष्मणः तेन संयुक्तः धर्मजन्मा धर्मस्य पुण्यस्य जन्म यस्मात् सः धर्मजन्मा, सः रामः निजकीर्तिनिर्मलां स्वकीर्तिवत् स्वच्छां सुरापगां गङ्गां प्राप। अत्र वंशस्थवृत्तम् 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात्। उपमालङ्कारः।

मित्र तथा बान्धवों के साथ अनुगमन करने वाले नागरिकों को फिर नगर को लौटा कर अच्छे मित्र भाई लक्ष्मण से युक्त होकर धर्म की उत्पत्ति है जिस से वह राम अपनी कीर्ति के समान निर्मल गङ्गा जी पहुँचे।

पक्षे—मित्रैः बन्धुभिः सह अनुगमनकारिणः नगरवासिनो जनान् नगराय परावर्त्य सुमित्रसंगतः शोभनैः मित्रैः भ्रातृभिरित्यर्थः, संयुक्तः धर्मजन्मा धर्मपुत्रः सः युधिष्ठिरः स्वकीर्तिवत् स्वच्छां गङ्गां प्राप्तवान्।

मित्र बन्धुओं से संयुक्त अनुगमन करनेवाले नगरवासियों को नगर के लिये लौटा कर अच्छे मित्रों से संयुक्त धर्मराज के पुत्र वह युधिष्ठिर अपनी कीर्ति के समान स्वच्छ गङ्गा जी पहुँचे।

तां यज्ञभूमिप्रभवां पुरन्ध्रीधुरं दधानां व्यसनाभिभूताम्।
आश्वासयन्तीव सहंसवाणी पस्पर्श गङ्गा लहरीसमीरैः॥३६॥

यज्ञभूमिप्रभवां यज्ञार्था या भूमिः पवित्रभूमिः ततः प्रादुर्भूतां, पक्षे—यज्ञभूमिः हवनकुण्डम् तस्मादुत्पन्नां पुरन्ध्रीणां सुचरित्रस्त्रीणां धुरम् अग्रभागं दधानां धारयन्तीम् अग्रेसरीभूतामित्यर्थः, 'पुरन्ध्री सुचरित्रा तु सती साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः, व्यसनाभिभूतां विपत्तिपीडितां तां सीतां, पक्षे—द्रौपदीं सहंसवाणी हंसरवसंयुक्ता गङ्गा आश्वासयन्तीव सन्तोषं ददतीव लहरीसमीरैः तरङ्गपवनैः पस्पर्श आममर्श। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

यज्ञ के लिये उपयुक्त पवित्र भूमि से, दूसरे पक्षमें—यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न सती स्त्रियों में अग्रगण्या विपत्ति से पीडित उस सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी

को हंस की वाणी से संयुक्त गङ्गा जी ने ढाढस बंधाती हुई के समान लहरों की हवा से स्पर्श किया।

गुहानुबन्धाद् गहनं वनं स प्रविश्य चीरी जटिलो जटालैः।
समीयिवान् सावरजो मुनीन्द्रैः सतां हि सङ्गो व्यसनार्णवे नौः ॥३७॥

चीरी वल्कलवस्त्रवान् जटिलः जटाधारी सावरजः सानुजः सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः गुहानुबन्धाद् निषादराजगुहानुगमनात् गुहेन मार्गनिदर्शनादित्यर्थः, पक्षे—गुहायाः पर्वतगुहायाः अनुबन्धात् अनुसरणात् पर्वतगह्वरमार्गेण गमनादित्यर्थः, गहनं वनं दुर्गमं काननं प्रविश्य जटालैः जटाधरैः मुनीन्द्रैः मुनिश्रेष्ठैः सह समीयिवान् सङ्गतवान्। हि यतः सतां सज्जनानां सङ्गः सङ्गतिः व्यसनार्णवे विपत्समुद्रे नौः तरिः अस्ति। अत्र उपेन्द्रवज्रावृत्तम् रूपकोपोद्वेलितार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

वल्कलवस्त्र धारण किये जटाधारी बन्धुसहित वह राम निषादराज गुह के अनुसरण करने से, दूसरे पक्ष में—वह युधिष्ठिर गुफाओं के रास्ते का अनुसरण करने से दुर्गम वन में प्रवेश कर के जटाधारी मुनियों से मिले। कारण यह है कि सज्जनों की सङ्गति विपत्तिरूपी समुद्र के लिये तरी (नाव) है।

वसञ्छून्य इवारण्ये नगरे तद्गुरुर्जनः।
तद्वियोगपरिक्लेशाच्छ्रेयो मृत्युममन्यत ॥३८॥

शून्ये अरण्ये इव निर्जने विपिने इव नगरे वसन् निवसन् तद्गुरुर्जनः तस्य रामस्य गुरुर्जनः पिता दशरथः तद्वियोगपरिक्लेशात् तद्विश्लेषकष्टात् मृत्युं मरणं श्रेयः कल्याणम् अमन्यत मृत्युं स्वीचकार इत्यर्थः, पक्षे—माता कुन्ती श्रेयः कल्याणं सुखमिति भावः, मृत्युम् अमन्यत मृत्युवदनुभूतवती। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः।

शून्यवन के समान नगर में निवास करते हुए उस राम के गुरुजन ने अर्थात् दशरथ ने उसके वियोग के क्लेश से मृत्यु को कल्याण समझा अर्थात् वे मर गये। दूसरे पक्षमें—उस युधिष्ठिर के गुरुजन माता कुन्ती ने उस युधिष्ठिर के वियोग के क्लेश से कल्याण को मृत्यु समझा, अर्थात् उस के लिये सुख भी मृत्यु के समान कष्ट-दायक ही था।

तदाशुभरतेनाथ पश्चात्कृतनृपश्रिया।
कुलश्रेष्ठो वने तिष्ठन्भेजे क्षत्त्रोचितक्रमम् ॥३९॥

अथ अनन्तरम् तदा तस्मिन् समये पश्चात्कृतनृपश्रिया पश्चात्कृता तिरस्कृता नृपश्रीः राजलक्ष्मीर्येन तेन भरतेन वने तिष्ठन् कुलश्रेष्ठः रामः क्षत्रोचितक्रमम् क्षत्रियोचितक्रमानुसारम् आशु शीघ्रं भेजे प्राप्तः। भरतोऽनुनयार्थं रामस्य समीपमाययावित्यर्थः। अनुष्टुपछन्दः।

इसके बाद उस समय राजलक्ष्मी का अपमान करने वाले भरत के द्वारा वन में रहनेवाले कुल के श्रेष्ठ राम क्षत्रियों के बड़ा भाई राजा होता है इस नियम के अनुसार प्राप्त किये गये, अर्थात् भरत राम के पास पहुँचे।

पक्षे—अथ अनन्तरम् तदा तस्मिन् समये पश्चात्कृतनृपश्रिया पश्चात्कृता अवहेलिता नृपश्रीः राजलक्ष्मीः येन तेन धृतराष्ट्रस्य भूपस्य अवहेलनां कृत्वेत्यर्थः, शुभरतेन तत्कल्याणासक्तेन क्षत्त्रा वर्णसङ्कर-शूद्रेण विदुरेणेत्यर्थः वने तिष्ठन् कुलश्रेष्ठः कुले ज्येष्ठः युधिष्ठिरः भेजे सेवितः। विदुरः तदवलोकनार्थं वनमागतः इत्यर्थः।

इसके बाद उस समय राजलक्ष्मी का अपमान करने वाले अर्थात् राजा धृत-राष्ट्र की अवहेलना कर के इन के कल्याण करने में तत्पर वर्णसङ्कर शूद्र विदुर के द्वारा वन में रहने वाले तथा कुल में श्रेष्ठ युधिष्ठिर की सेवा की गयी अर्थात् विदुर हस्तिनापुर से पाण्डवों से मिलने के लिये वन में आये।

उद्दामधीरतरलोभरतेन भीम-
सेनेन दूरमनुयातवता वनान्तम्।
रक्तप्रजामपि निजां नगरीमुपैतुं
स प्रार्थितोऽपि न मनः शिथिलं चकार ॥४०॥

वनान्तं वनमध्यं दूरमनुयातवता दूरं यावद् अन्वागतेन भीमसेनेन भीमा भयकारिणी सेना यस्य तेन भरतेन उद्दामधीः उद्दामा उत्कटा तीक्ष्णा इति यावत्, धीर्बुद्धिर्यस्य सः, अतरलः अचञ्चलः स्थिर इति यावत्, सः रामः रक्तप्रजामपि रक्ता अनुरक्ता प्रजा प्रकृतिः यस्या एवंभूतां निजां नगरीं स्वां पुरीम् उपैतुं गन्तुं प्रार्थितोऽपि याचितोऽपि मनः चित्तं शिथिलं वनवासप्रवृत्तौ श्लथं न चकार न कृतवान् वनवासात् निवर्तितुं न चकारेति भावः। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम्।

बन में दूर तक आये हुए, भयङ्कर सेना वाले भरत के द्वारा तेज बुद्धि वाले तथा स्थिर रहने बाले राम ने अनुरक्त प्रजावाली अपनी नगरी को चलने के लिये प्रार्थना किये जाने पर भी अपना मन ढीला नहीं किया अर्थात् वनवास के लिये वे दृढ रहे नगर को लौटने के लिये नहीं तैयार हुए।

पक्षे—वनान्तम् वनमध्यं दूरमनुयातवता दूरमनुगतवता उद्दामधीरतरलोभरतेन उद्दामा उद्धता धीर्बुद्धिर्यस्य स उद्दामधीः रतरः तीक्ष्णतरः यः लोभः तस्मिन् रतः आसक्तः, उद्दामधीश्चासौ रतरलोभरतः स उद्दामधीरतरलोभरतः तेन 'रः स्मृतः पावके तीक्ष्णे' इति मेदिनी, भीमसेनेन भीमनामकेन भ्रात्रा रक्तप्रजामपि अनुरक्तप्रकृतिमपि निजां नगरीमपैतुं स्वनगरीं चलितुं प्रार्थितोऽपि संबोधितोऽपि सः युधिष्ठिरः मनश्चित्तं शिथिलं न चकार श्लथं न कृतवान्। स्ववनवासनियमे दृढो भूत्वाऽतिष्ठदिति भावः।

वन में दूर तक साथ साथ आने वाले, उद्धत बुद्धि-वाले तथा अत्यन्तलोभी भीम के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी उस युधिष्ठिर ने अनुरक्त प्रजावाली भी अपनी नगरी में जाने के लिये अपना मन ढीला नहीं किया, अर्थात् वे अपने वनवास का निमम पालन में दृढ़ रहे।

तं राजाज्ञां दधानोऽपि विपुलांसं जयस्थिरम्।
वनान्निवर्तयामास कथञ्चिद्विदुरं सुधीः ॥४१॥

राजाज्ञां दशरथादेशं दधानोऽपि धारयन्नपि सुधीः बुद्धिमान् रामः विपुलांसं उच्चस्कन्धं जयस्थिरं शत्रुविजये सुस्थिरं विदुरं धीरं 'विदुरो नागरे धीरे कौरवाणां च मन्त्रिणि' इति मेदिनी, तं भरतं कथञ्चित् केनापि प्रकारेण वनात् काननात् निवर्तयामास परावर्तितवान्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

राजा दशरथ की आज्ञा धारण करने वाले बुद्धिमान् राम ने ऊँचे कन्धे वाले शत्रुओं के जीतने में स्थिर धैर्यशाली उस भरत को किसी प्रकार वन से लौटाया।

पक्षे—विपुलां महतीं राजाज्ञां धृतराष्ट्रादेशं दधानोऽपि धारयन्नपि सुधीः बुद्धिमान् युधिष्ठिरः सञ्जयस्थिरं सञ्जयेन कौरवमन्त्रिणा स्थिरं स्थिरीकृतं तं विदुरं विदुरनामकं कौरवमन्त्रिणं कथञ्चित् केनापि प्रकारेण निवर्तयामास परावर्तितवान्।

बहुत बड़ी राजाज्ञा धारण किये हुए बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने सञ्जय के द्वारा स्थिरबुद्धि बनाये हुए उस विदुर को किसी प्रकार लौटा दिया।

प्रभ्रंशं कथमपि लम्भितस्य दैवात्
सा भर्तुः समुपगमं प्रतीक्षमाणा।
दायादं तदनु तदीयमेव लक्ष्मी-
र्नाकश्रीरिव नहुषं निषेवते स्म ॥४२॥

दैवात् भागधेयात् कथमपि केनापि प्रकारेण, रामपक्षे—कैकेयीवरदानेन, युधिष्ठिरपक्षे—द्यूतक्रीडनेनेति भावः, प्रभ्रंशं पतनं बहिष्कारमित्यर्थः, लम्भितस्य प्रापितस्य भर्तुः पत्युः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य समुपगमम् आगमनम् प्रतीक्षमाणा तस्य प्रतीक्षां कुर्वन्ती सा रामसम्बन्धिनी पक्षे—युधिष्ठिरसम्बन्धिनी लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः, नाकश्रीः स्वर्गलक्ष्मीः नहुषमिव नहुषनामानं राजानमिव तदनु पश्चात् तदीयमेव तत्सम्बन्धिनमेव रामसम्बन्धिनं, पक्षे—युधिष्ठिरसम्बन्धिनमित्यर्थः, दायादं भ्रातरं भरतं, पक्षे—दुर्योधनं निषेवते स्म सिषेवे। अयं भावः—गौतमशापेन देवेन्द्रे स्वर्गात्पतिते सति तस्य स्वभर्तुरागमनं प्रतीक्षमाणा स्वर्गलक्ष्मीः यथा नहुषं सिषेवे तद्वत् रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य आगमनं प्रतीक्षमाणा राजलक्ष्मीः भ्रातरं भरतं, पक्षे—दुर्योधनं सिषेवे। अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम् 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात्, उपमालङ्कारः।

दैवयोग से किसी प्रकार पतन अर्थात् बहिष्कार प्राप्त कराये गये पति राम के, दूसरे पक्ष में-युधिष्ठिर के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई वह रामसम्बन्धिनी, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिरसम्बन्धिनी राजलक्ष्मी गौतम के शाप से इन्द्र के बहिष्कृत हो जाने पर उस की प्रतीक्षा करती हुई स्वर्ग की लक्ष्मी नहुष के समान इन के भाई भरत को, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन की सेवा करने लगी। अर्थात् स्वर्गलक्ष्मी ने जैसे नहुष की सेवा की उसी प्रकार इन की राजलक्ष्मी इन के दायाद भरत की, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन की सेवा करने लगी।

ते चित्रकूटाश्रितपादभाजां
मखश्रियालङ्कृतदण्डकानाम्।
क्रमेण भेजुः क्लमनाशनानि
तपस्विनामाश्रममण्डलानि ॥४३॥

ते रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः चित्रकूटाश्रितपादभाजां चित्रकूटः एतन्नामकः पर्वतः तस्य आश्रितं पादं प्रत्यन्तपर्वतं भजन्ते इति पादभाजः तेषां, पक्षे—चित्राणि विविधवर्णानि कूटानि शिखराणि यस्य तस्य पर्वतस्य आश्रितपादभाजां तत्पर्वताश्रितप्रत्यन्तपर्वतजुषां 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः, मखश्रिया यज्ञशोभया अलङ्कृतदण्डकानां सुशोभितदण्डकवनानां, पक्षे—यज्ञसंपदा अलङ्कृतः पर्याप्तं कृतः दण्डकः काम्यकर्म यैस्तेषां 'दण्डको दण्डकारण्ये

काम्यकर्मणि च स्मृतः' इति शब्दार्णवः, तपस्विनां मुनीनाम् क्लमनाशनानि ग्लानिनाशकानि आश्रममण्डलानि क्रमेण क्रमशः भेजुः प्रापुः। अत्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

वे राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि चित्रकूट पर्वत से संलग्न प्रत्यन्त पर्वतों का आश्रय लेने वाले, यज्ञ की शोभा से दण्डक वन को सुशोभित करने वाले, दूसरे पक्ष में—विविधरङ्ग के शिखर वाले पहाड़ से संलग्न प्रत्यन्त पर्वतों का आश्रय लेने वाले, यज्ञ की सम्पत्ति से पर्याप्त रूप से काम्य कर्म करने वाले मुनियों के कष्ट दूर करने वाले आश्रमसमूहों में क्रमशः पहुँचे।

अवरोहितराज्येऽपि भर्तर्येकरसा यतः।
तेन निन्ये परां शोभां तद्वधूरनसूयया ॥४४॥

यतः यस्माद्धेतोः अवरोहितराज्येऽपि अवरोहितम् अवतरितं राज्यात् येन तस्मिन् राज्यादधोभूतेऽपि इत्यर्थः भर्तरि पत्यौ एकरसा एकभावा अनन्यरागा इत्यर्थः, तेन तेन हेतुना तद्वधूः तत्पत्नी सीता, पक्षे—द्रौपदी अनसूयया अत्रिपत्न्या परां शोभां निन्ये, अमलिनाभूषणपरिधापनेन उत्कृष्टशोभां प्रापिता, पक्षे—गुणेषु दोषाविष्करणमसूया न असूया अनसूया तया असूयाराहित्येनेत्यर्थः, अतिमनोज्ञतां प्रापिता।

क्यों कि राज्य से उतर जाने पर भी पति में अनन्यराग वाली थी इसलिये उस राम की पत्नी सीता अत्रि की पत्नी अनसूया के द्वारा दिव्य आभूषणों से अत्यन्त सुशोभित की गयी, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी असूया (जलन) के न रहने के कारण अत्यन्त सुशोभित हुई।

क्षणेन तेषां क्षणदाचरः क्वचिद्विराधनामारचयन् महायुधः।
अरुन्ध पन्थानमरुन्तुदः सतां पुरा ग्रहाणामिव विन्ध्यभूधरः॥४५॥

क्वचित् कुत्रचिद्वने सतां सज्जनानाम् अरुन्तुदः मर्मव्यथाकरः विराधनामा विराधसंज्ञकः क्षणदाचरः निशाचरः राक्षस इत्यर्थः, महायुधः महायुद्धानि आरचयन् कुर्वन् अत्र युध् धातोः क्विप् प्रत्ययः, तेषां रामादीनां, पक्षे—महायुधः महास्त्रधारी क्षणदाचरः राक्षसः किर्मीरः इत्यर्थः, विराधनां विरोधम् आरचयन् कुर्वन् तेषां युधिष्ठिरादीनां क्षणेन तत्क्षणमेव पन्थानं मार्गं पुरा प्राचीनकाले ग्रहाणां सूर्यादीनां मार्गं पन्थानम् आकाशमित्यर्थः, विन्ध्यभूधर इव विन्ध्याचल इव अरुन्ध रुणद्धि स्म। अत्रवंशस्थवृत्तमुपमालङ्कारश्च।

किसी वन में सज्जनों को मर्मव्यथा देने वाले विराधनामवाले राक्षस ने बहुत बड़े युद्धों को करते हुए उन राम आदिकों का, दूसरे पक्ष में—बहुत बड़े हथियार

वाले राक्षस किर्मीर ने विरोध करते हुए उन युधिष्ठर आदिकों का मार्ग, प्राचीन काल में सूर्यादिग्रहों के मार्ग आकाश के विन्ध्याचल पहाड़ के समान रोक दिया।

युद्धारब्धश्चण्डदोर्दण्डघातैर्भिन्दन्सन्धिं द्राग्विनिक्षिप्य भूमौ।
संरम्भोद्यत्पांसु किर्मीरमेनं रक्षोनाथं राक्षसारिर्ममन्थ ॥४४॥

युद्धारब्धः आरब्धं युद्धम् येन सः 'वाहिताग्न्यादिषु' इति परनिपातः, चण्डदोर्दण्डघातैः प्रचण्डबाहुप्रहारैः सन्धिं शरीरसंस्थानं भिन्दन् विदारयन् द्विधाकुर्वन्नित्यर्थः, राक्षसारिः राक्षसशत्रुः रामः, पक्षे—भीमः संरम्भोद्यत्पांसुकिर्मीरम् संरम्भेण आवेगेन उद्यन् उच्छलन् यः पांसुः धूलिः तेन किर्मीरं चित्रं 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः, रक्षोनाथं राक्षसाधिपम् एनं विराधं, पक्षे—एनं रक्षोनाथं किर्मीरं किर्मीरनामानं राक्षसेश्वरं संरम्भोद्यत्पांसु संरम्भेण आवेगेन उद्यन् उत्तिष्ठन् पांसुः धूलिः यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा द्राक् शीघ्रं भूमौ निक्षिप्य पृथिव्यां निपात्य ममन्थ निष्पिपेष। अत्र शालिनीवृत्तं 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति लक्षणात्।

युद्ध प्रारम्भ करने वाले, प्रचण्ड भुजाओं के प्रहार से शरीरसन्धियों को तोड़ते हुए, राक्षसों के शत्रु राम ने युद्धावेग से उठी हुई धूलि से चित्रित्र राक्षसों के पति इस विराध को, दूसरे पक्ष में—भीम ने राक्षसों के पति किर्मीर को युद्धावेग से उठी है धूली जिस काम में वह जैसा होता है उस प्रकार कुचल डाला।

रक्षसां भयदानेन तैरलङ्कृतदण्डकैः।
सुतीक्ष्णशरभङ्गाढ्या सहसा वनभूरभूत् ॥४७॥

रक्षसां राक्षसानां भयदानेन भयोत्पादनेन अलङ्कृतदण्डकैः अलङ्कृतः सुशोभितः दण्डकः दण्डकारण्यं यैस्तैः, तैः रामादिभिः सहसा तत्क्षणं सुतीक्ष्णशरभङ्गाढ्या सुतीक्ष्णेन शरभङ्गेन च मुनिभ्याम् आढ्या सम्पत्तिशालिनी वनभूः वनभूमिः अभूत् अभवत्, पक्षे—अलङ्कृतदण्डकैः अलङ्कृतः पर्याप्तं कृतः दण्डकः काम्यं कर्म यैस्तैः 'दण्डको दण्डकारण्ये काम्ये कर्मणि च स्मृतः' इति शब्दार्णवः, रक्षसां भयदानेन सुतीक्ष्णशरभङ्गाढ्या सुतीक्ष्णानाम् अतितीव्राणां शराणां बाणानां भङ्गैः खण्डैः राक्षसानामिति शेषः, आढ्या परिपूर्णा वनभूरभूत् वनभूमिः अभवत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

राक्षसों के भय उत्पन्न करने से सुशोभित किया है दण्डकारण्य जिन्हों ने उन रामादि के द्वारा उसी समय सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग मुनियों से वह वनभूमि सम्पत्ति-

शालिनी हो गयी, अर्थात् उक्त मुनि लोग आकर इस वन में वस गये। दूसरे पक्ष में—पर्याप्त रूप से किया गया है काम्य कर्म जिन के द्वारा उन युधिष्ठिरादिकों के द्वारा राक्षसों के भय देने से राक्षसों के तेज बाणों के टुकड़ों से परिपूर्ण वन-भूमि हो गयी।

तं प्रत्यगृह्णन्नातिथ्यैर्मुनयो मनुजेश्वरम्।
स्वकालसंभवैः पुष्पैः कामदेवमिवर्त्तवः ॥४८॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कामदेवाङ्के रामयुधिष्ठिरवनप्रयाणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

मुनयः तद्वनवासिनः ऋषयः मनुजेश्वरम् राजानं तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरम् आतिथ्यैः अतिथिसत्कारैः प्रत्यगृह्णन् गृहीतवन्तः संभावयामासुरित्यर्थः, ऋतवः वसन्तादयः स्वकालसम्भवैः स्वसमयप्रादुर्भूतैः पुष्पैः कुसुमैः कामदेवमिव मन्मथमिव। यथा ऋतवः स्वपुष्पैः कामदेवं पूजयन्ति तथैव मुनयः अतिथिसत्कारैरेनं सत्कुर्वन्ति स्म। अथवा एतत्काव्यकारयितारं कामदेवनामानं राजानमिवेत्यपि व्यज्यते। अत्रानुष्टुपछन्दः उपमालङ्कारः।

इति राघवपाण्डवीये महाकव्ये मैथिलभूसुरसोदरपुरकुलोद्भूतश्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

वसन्तादि ऋतुएँ जैसे अपने अपने समय में पैदा होने वाले फूलों से कामदेव का सत्कार करती हैं उसी प्रकार उस वन के निवासी मुनियों ने महाराज राम का, दूसरे पक्षमें—युधिष्ठिर का अतिथि-सत्कारों से सत्कार किया। यहाँ इस काव्य की रचना कराने वाले महाराज कामदेव की भी सम्भावना व्यङ्ग्य है।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूतश्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचित सरला नाम की टीका में तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

—:०:—

चतुर्थः सर्गः

अथारिवर्गं नरदेवसंभवो निराकरिष्यन् परमास्त्रतेजसा ।
उदग्रधन्वा गुरुकार्यमुद्वहन् वनान्तरं प्राप शिवोपलब्धये ॥१॥

अथ अनन्तरम् उदग्रधन्वा उदग्रम् उग्रं धनुः यस्य सः, नरदेव-संभवः राजकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः परमास्त्रतेजसा महास्त्रप्रभावेण अरिवर्गं शत्रुसमूहं निराकरिष्यन् दूरीकर्तुमिच्छन् गुरुकार्यं महत्कार्यम् उद्वहन् धारयन्, पक्षे—गुरोः युधिष्ठिरस्य कार्यभारं धारयन् शिवो-पलब्धये कल्याणप्राप्त्यर्थं, पक्षे—शङ्करस्य दर्शनप्राप्त्यर्थं वनान्तरम् अन्यद्वनं प्राप गतवान् । अत्र वंशस्थवृत्तम्, 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात् ।

इसके बाद भयङ्कर धनुष वाले राजकुमार राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन महास्त्र के प्रभाव से शत्रुसमूह का निवारण करने की इच्छा से बहुत बड़ा कार्यभार धारण किये हुए, दूसरे पक्ष में--बड़े भाई का कार्यभार धारण किये हुए, कल्याण की प्राप्ति के लिये, दूसरे पक्ष में--शिवजी का साक्षात्कार प्राप्त करने के लिये दूसरे वन में पहुँचे ।

वराहवाधिरोपेण तपोभिर्भावितः पुरः ।
तेनागस्तिरयन्दृष्टो वनेचरवपुः प्रभुः ॥२॥

वराहवाधिरोपेण वरे श्रेष्ठे आहवे युद्धे अधिरोपः अधिरोपणं शरसन्धानमिति यावत्, यस्य तेन, तेन रामेण पुरः अग्रे तपोभिः तपश्चरणैः भावितः संभावितः अर्हणीय इत्यर्थः, प्रभुः प्रभाववान् अयन् गच्छन् वनेचरवपुः वनेचराणां वनवासिनां वपुः शरीरं यस्य सः जटावल्कलधारीत्यर्थः, अगस्तिः अगस्त्यो मुनिः दृष्टः अवलोकितः । स अगस्त्यस्य आश्रममाजगामेत्यर्थः । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

श्रेष्ठ युद्ध में धनुषारोपण करने वाले उस राम के द्वारा सामने में तपस्याओं से पूजनीय, प्रभावशाली, आते हुए, वनवासियों का स्वरूप धारण करने वाले अगस्त्य मुनि देखे गये । अर्थात् राम ने अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाकर उन का दर्शन किया ।

पक्षे—वराहवाधिरोपेण वराहस्य शूकरस्य बाधी बाधको रोपः बाणः यस्य तेन 'शररोपणयो रोपः' इति त्रिकाण्डशेषः, तेन अर्जुनेन तपोभिः तपस्याभिः पुरः अग्रे भावितः कृतः प्रकटीकृत इत्यर्थः, वनेचर-वपुः किरातशरीरधारी आगस्तिरयन् आगः अपराधं तिरयन् आच्छादयन् अर्जुनकृतं युद्धरूपमपराधम् अगणयन्नित्यर्थः, प्रभुः ईश्वरः शिवः दृष्टः अवलोकितः शिवोऽस्य दर्शनगोचरं गत इत्यर्थः।

शूकर को बाधा करने वाले अर्थात् मारने वाले बाण हैं जिस के उस अर्जुन के द्वारा तपस्याओं से प्रत्यक्ष किये गये, किरात शरीरधारी, अर्जुन के किये हुए युद्ध रूपी अपराध को न गिनने वाले प्रभु शिव जी देखे गये। अर्थात् अर्जुन को शिव जी का दर्शन हुआ।

निबद्धतूणः कवची धनुष्मान् महर्षिशस्यां समितिं प्रविष्टः।
असौ मृगव्याधवपुर्धरेण हरेण तुल्यो मुनिभिर्व्यलोकि ॥३॥

निबद्धतूणः कस्यां बद्धनिषङ्गः कवची कवचधारी धनुष्मान् चाप-धारी महर्षिशस्यां महर्षिभिः प्रशंसनीयां समितिं सभां, पक्षे—युद्धं 'समितिः संपराये स्यात्सभायां संगमेऽपि च' इति मेदिनी, प्रविष्टः समुपस्थितः, मृगव्याधवपुर्धरेण मृगानुसारिव्याधशरीरधारकेण 'पुरा काममोहितस्य स्वपुत्रीमनुसरतो ब्रह्मणः शिरः व्याधरूपं विधाय शिवश्चिच्छेद' इति पौराणिकी कथा, हरेण शिवेन तुल्यः सदृशः असौ रामः मुनिभिः ऋषिभिः व्यलोकि अवलोकितः। पक्षे—मुनिभिः तुल्यः तपश्चरणेन ऋषिभिः सदृशः असौ अर्जुनः मृगव्याधवपुर्धरेण मृगाणां व्याधः वेद्धा किरात इत्यर्थः तच्छरीरधारकेण हरेण शिवेन व्यलोकि दृष्टः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

तरकस बान्धे हुए, कवच पहने हुए धनुष धारण किये, महाऋषियों से प्रशंसित सभा में प्रवेश किये हुए, मृगरूपधारी ब्रह्मा के पीछे व्याध का शरीर धारण करने वाले शिव जी के समान यह राम मुनियों के द्वारा देखे गये। दूसरे पक्ष में—महाऋषियों से प्रशंसित युद्ध में प्रवेश किये हुए, तपस्या करने से मुनियों के समान यह अर्जुन मृग मारने वाले व्याध अर्थात् किरात का शरीर धारण करने वाले शिवजी के द्वारा देखे गये।

तमग्रतो दर्शितविग्रहं प्रभुं
कृतप्रसादं प्रणिपत्य मौलिना।

स कुम्भजन्मानमवाप्य शंकरात्
ततो धनुर्वेदमयं समादधे ॥४॥

स रामः अग्रतः अग्रे दर्शितविग्रहं दर्शितशरीरम् 'अथ विग्रहः। संग्रामे प्रविभागे च देहविस्तारयोरपि' इति त्रिकाण्डशेषः, प्रभुं प्रभावशालिनं कृतप्रसादं कृतः प्रसादः प्रसन्नता येन तं, तं कुम्भजन्मानम् अगस्त्यम् अवाप्य प्राप्य उपसृत्येत्यर्थः, मौलिना शिरसा प्रणिपत्य प्रणामं कृत्वा ततः तस्मात् शंकरात् कल्याणकारकाद् अयं रामः धनुर्वेदं बाणविद्याम् समादधे धारयामास शिक्षितवानित्यर्थः। अत्र वंशस्थवृत्तम्।

वह राम सामने में प्रत्यक्षदर्शन देने वाले, प्रभावशाली प्रसन्नता दिखलाने वाले उस अगस्त्य के पास पहुँच कर शिर के द्वारा प्रणाम कर के उस कल्याण करने वाले अगस्त्य से इस राम ने बाणविद्या ग्रहण की।

पक्षे--सः अर्जुनः अग्रतः पूर्वं दर्शितविग्रहं प्रकटितयुद्धं प्रभुं प्रभावशालिनं कृतप्रसादं कृतः प्रसादः प्रसन्नता येन तम्, तं सम् तं शङ्करं 'सः कोपे वरणे सः स्यात् तथा शूलिनि कीर्तितः' इति एकाक्षरकोशः, मौलिना कुं पृथ्वीं भजन् प्राप्नुवन् 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः, प्रणिपत्य प्रणामं कृत्वा ततः तस्मात् शंकरात् शिवात् मानं सम्मानम् अवाप्य प्राप्य अयम् अर्जुनः धनुर्वेदम् बाणविद्याम् आदधे गृहीतवान्।

उस अर्जुन ने पहले युद्ध करने वाले, प्रभावशाली, प्रसन्नता दिखलाने वाले उस शङ्कर जी को पृथ्वी पर पहुँच कर प्रणाम करके अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम कर के उस शंकर जी से सम्मान प्राप्त कर के इस अर्जुन ने बाणविद्या ग्रहण की।

इति स विबुधविद्विड्घस्मराद्ब्रह्मयोने-
रधिगतपरमास्त्रोद्भासितूणीकृपाणः।
अभिलषितजयश्रीर्नाकधाम्नां निकायै-
र्वनभुवि कृतवासः स्वस्थतां संप्रपेदे ॥५॥

स रामः इति एवंप्रकारेण विबुधविद्विड्घस्मरात् विबुधानां देवानां ये विद्विषः शत्रवः राक्षसा इत्यर्थः, तेषां घस्मरः भक्षकः आतापिवातापिदानवभक्षकः इत्यर्थः, पक्षे--नाशकः तस्मात्, ब्रह्मयोनेः वेदोत्पादकात् अगस्त्यात्, पक्षे—शंकरात् अधिगतपरमास्त्रोद्भासितूणी-कृपाणः अधिगतं प्राप्तं यत् परमास्त्रं महास्त्रं तेन उद्भासिनौ देदीप्यमानौ तूणीकृपाणौ निषङ्गकरवालौ यस्य सः, 'तूणी नील्यां निषङ्गे च' इति

मेदिनी, नाकधाम्नां स्वर्गवासिनां निकायैः समूहैः अभिलषितजयश्रीः अभिलषिता जयश्रीः जयलक्ष्मीः यस्य सः, वनभुवि काननभूमौ कृतवासः कृतनिवासः स्वस्थतां शान्तिं संप्रपेदे प्राप्तवान् । पक्षे—अभिलषितजयश्रीः अभिलषिता जयश्रीः शत्रुविजयलक्ष्मीः यस्य सः, नाकधाम्नां निकायैः स्वर्गवासिनां समूहैः स्वस्थतां स्वःस्थतां स्वर्गावस्थानं संप्रपेदे प्राप्तवान् । अस्मिन् पक्षे 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य लोपः, इन्द्रादिदेवैरयं स्वर्गमानीतः इति भावः । अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात् ।

इस प्रकार से देवों के शत्रु आतापि-वातापि दानव के खाने वाले, दूसरे पक्ष में—देवों के शत्रुओं का नाश करने वाले उस वेदों के उत्पन्न करने वाले, अगस्त्य से, दूसरे पक्ष में—शिवजी से प्राप्त किये हुए महास्त्रों से चमकते हुए निषङ्ग-तलवार वाले, स्वर्गवासी देवों के द्वारा अभिलषित है विजयलक्ष्मी जिसकी ऐसे वह राम वनभूमि में निवास करते हुए शान्ति प्राप्त किये । दूसरे पक्ष में—अभिलषित है शत्रु विजय-लक्ष्मी जिसकी वह अर्जुन वन में निवास करते हुए, स्वर्गवासी देवों के द्वारा स्वर्गवास प्राप्त कराये गये । अर्थात् निवातकवचों को मारने के लिये इन्द्रादिकों के द्वारा वह स्वर्ग लाये गये ।

अर्जुनेन यशसानुलिम्पता तच्चरित्रजनितेन दिक्तटीः ।
अध्यरोहि बलविद्विषः सभा विह्वलीकृतसुरारियोषिता ॥६॥

तच्चरित्रजनितेन तदुच्चचारित्रोत्पन्नेन अर्जुनेन श्वेतेन दिक्तटीः दिग्भित्तीः अनुलिम्पता स्वधवलिम्ना धवलयता विह्वलीकृतसुरारियोषिता विह्वलीकृताः व्याकुलीकृताः सुरारियोषितः दैत्यपत्न्यः येन तेन यशसा रामसम्बन्धिना यशसा बलविद्विषः इन्द्रस्य सभा अध्यरोहि आरूढा । पक्षे—तच्चरित्रजनितेन विह्वलीकृतसुरारियोषिता दिक्तटीः अनुलिम्पता यशसा अर्जुनेन पार्थेन बलविद्विषः सभा इन्द्रस्य सभा अध्यरोहि आरूढा । अर्जुनः स्वर्गं गतवानित्यर्थः । अत्र रथोद्धता वृत्तम् 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात् ।

इसके चरित्र से उत्पन्न हुए सफेदरङ्ग वाला अपनी सफेदी से दिग्भित्ति को सफेद करने वाला दैत्यों की पत्नियों को व्याकुल करने वाला इस राम का यश इन्द्र की सभा तक पहुँच गया । दूसरे पक्ष में—उसके चरित्र से पैदा होने वाले, दैत्यों की पत्नियों को व्याकुल करने वाले, दिग्भित्तियों की सफेदी करने वाले यश के कारण अर्जुन इन्द्र की सभा में पहुँचे ।

तस्मिन् दुरापे वसतः प्रदेशे लब्धास्त्रजातस्य मनोभवान्धा ।
तस्योर्वशीतुल्यविलासवेषा क्षपाचरी सन्निधिमाजगाम ॥७॥

लब्धास्त्रजातस्य प्राप्तशस्त्रस्य तस्मिन् प्रदेशे जनस्थाने, पक्षे—स्वर्गे वसतः निवसतः तस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य उर्वशीतुल्यविलासवेषा उर्वशीतुल्यौ उर्वशीसदृशौ विलासवेषौ विलासप्रसाधने यस्याः सा, क्षपाचरी निशाचरी राक्षसी, पक्षे–तुल्यविलासवेषा तुल्यः अनुरूपः विलासवेषः संभोगप्रसाधनम् यस्याः सा क्षपाचरी रात्रिचारिणी अभिसारिकेत्यर्थः उर्वशी उर्वश्याख्या अप्सराः सन्निधिं समीपम् आजगाम आगतवती। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिर्वृत्तम् एकस्मिन् पक्षे उपमालङ्कारः।

अगस्त्य ऋषि से अस्त्र प्राप्त किये हुए उस जनस्थान प्रदेश में वास करने वाले उस राम के समीप उर्वशी अप्सरा के समान विलास तथा वेष वाली राक्षसी शूर्पणखा आई। दूसरे पक्ष में—शङ्कर भगवान् से अस्त्र प्राप्त किये हुए उस स्वर्गप्रदेश में निवास करने वाले उस अर्जुन के समीप विलास के अनुरूप वेष धारण कर के रात में विचरण करने वाली अभिसरिका हो कर उर्वशी नाम की अप्सरा आई।

अकामं चकमे सा तं तरुणं ज्यायसी सती ।
वैषम्येण हि पुंनार्योर्घटना मृतजीविका ॥८॥

ज्यायसी सती आयुषा ज्येष्ठा भवन्ती सा शूर्पणखा, पक्षे—उर्वशी अकामं संभोगाभिलाषरहितं तरुणं युवानं तं रामं, पक्षे—अर्जुनं चकमे कामयते स्म। हि यतः वैषम्येण आयुषा जात्या वा अल्पाधिकक्रमेण पुंनार्योः पुरुषस्त्रियोः घटना संयोगः मृतजीविका भवति मृतस्य मृत्योः 'मृतं तु याचिते मृत्यौ क्लीबं मृत्युमति त्रिषु' इति मेदिनी, जीविका आजीवः, जीवनोपायः इति यावत्, मृत्योः समीपानयनकारिणीति तात्पर्यम् भवतीति शेषः। अत्रानुष्टुप्छन्दः, अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

उम्र में बहुत बड़ी होने पर भी उस शूर्पणखा ने उस के साथ उपभोग की अभिलाषा से रहित उस युवक राम के संभोग की कामना की, दूसरे पक्ष में—उस उर्वशी ने उसके साथ उपभोग की अभिलाषा से रहित उस युवक अर्जुन के संभोग की कामना की। कवि कहते हैं कि-उम्र में तथा जाति में विषमता रहने पर पुरुषस्त्रियों का संयोग मरण की जीविका है, अर्थात् 'वृद्धा तु प्राणहारिणी' के नियम से यह कार्य प्राण हरण करने वाला है।

चुकोप सा भृशं तस्मै प्रातिकूल्यान्निराकृता ।
कर्णनासापमोदोऽयं कर्णनापसानोदोऽयं स्त्रीणां यदवमानना ॥६॥

निराकृता प्रत्याख्याता सा शूर्पणखा प्रातिकूल्यात् प्रतिकूलाचरणात् तस्मै रामाय भृशम् अत्यन्तं चुकोप कुपिताभूत् स्त्रीणां वनितानां यदवमानना यः अपमानः कर्णनासापनोदः कर्णनासिकाछेदनम् अयम् तेन विहितः इति शेषः । अनुष्टुपछन्दः ।

अस्वीकृत हुई वह शूर्पणखा प्रतिकूलाचरण से उस राम के लिये अत्यन्त क्रुद्ध हुई । स्त्रियों का जो अपमान है नाक कान-काटना यह उनके द्वारा किया गया ।

पक्षे—प्रत्याख्याता सा उर्वशी प्रतिकूलाचरणात् तस्मै अर्जुनाय अत्यन्तं कुपिताऽभवत्, स्त्रीणां वनितानां यदवमानना यः अपमानः अयं कर्णनासापनोदः कर्णनासिकाच्छेदनमेव ।

अस्वीकृत हुई वह उर्वशी प्रतिकूल आचरण करने से उस अर्जुन के लिये अत्यन्त क्रुद्ध हुई, स्त्रियों का जो अपमान है वह कान-नाक काटना है अर्थात् स्त्रियों की संभोग-प्रार्थना का अस्वीकार करना, कान-नाक काटने के समान है ।

सा सर्वलोकैरपि दुष्प्रधर्षा विलक्ष्यतां प्राप्य तदातदर्हा ।
तत्पौरुषस्य प्रतिरोधकानि व्याहृत्य वाक्यानि विनिर्जगाम ॥१०॥

सर्वलोकैः सर्वजनैः अपि दुष्प्रधर्षा दुरभिभवनीया तदर्हा तदपमाननासिकाकर्णच्छेदनयोग्या सा शूर्पणखा तदा तस्मिन् समये विलक्ष्यतां सलज्जतां प्राप्य अनुभूय तत्पौरुषस्य तस्य रामस्य पराक्रमस्य प्रतिरोधकानि अवरोधकानि वाक्यानि वचनानि व्याहृत्य उक्त्वा खरदूषणाभ्यामिति शेषः, विनिर्जगाम अगच्छत् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिः ।

सभी लोगों के द्वारा भी नहीं धर्षण करने योग्य उस नाक-कान काटने के अपमान के योग्य वह शूर्पणखा लज्जा प्राप्त कर के उस राम के पराक्रम के रोकने वाले वचन खरदूषण को कह कर चली गई ।

पक्षे—सर्वलोकैः सर्वजनैः अपि दुष्प्रधर्षा दुःखेन धर्षणीया काठिन्येन प्रत्याख्यापनीयेति यावत्, अतदर्हा प्रत्याख्यानायोग्या सा उर्वशी तदा तस्मिन् समये विलक्ष्यतां लक्ष्यभ्रष्टतां मनोरथभङ्गमिति यावत्, प्राप्य लब्ध्वा तत्पौरुषस्य तत्पुरुषत्वस्य प्रतिरोधकानि विरो-

धीनि वाक्यानि वचनानि व्याहृत्य उक्त्वा नपुंसकत्वप्राप्तिरूपं शापं दत्त्वेत्यर्थः, विनिर्जगाम अगच्छत्।

सभी लोगों के द्वारा भी कठिन से तिरस्कार करने योग्य, उस प्रत्याख्यान-रूपी तिरस्कार के अयोग्य वह उर्वशी उस समय में लक्ष्यभ्रष्टता अर्थात् मनोरथ-भङ्ग प्राप्त कर के उस के पुरुषत्व के विरोधी वचन कह कर अर्थात् नपुंसक होने का शाप देकर चली गई।

कृतवैरास्ततस्तेन खरदूषणसंगताः।
निवातकवचास्तूर्णं तं जग्मुः शक्रविद्विषः ॥११॥

ततस्तदनन्तरं तेन रामेण कृतवैराः कृतशत्रुभावाः निवातकवचाः निवाताः दृढाः कवचाः सन्नाहाः येषां ते 'निवातो दृढसंनाहे वातशून्ये ऽपि चाश्रये' इति मेदिनी, खरदूषणसंगताः खरेण दूषणेन च सम्मिलिताः शक्रविद्विषः इन्द्रशत्रवः राक्षसा इत्यर्थः, तूर्णं शीघ्रं तं रामं जग्मुः प्रापुः। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

इस के बाद उस राम से शत्रुता करनेवाले मजबूत कवच वाले खर तथा दूषण से संयुक्त इन्द्र के शत्रु राक्षस गण शीघ्र ही उस राम के पास पहुँचे।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं तेन अर्जुनेन कृतवैराः शत्रुत्वं धारयन्तः, खरदूषणसंगताः खरेण तीक्ष्णेन दूषणेन दोषेण संगताः संयुक्ताः, शक्रविद्विषः इन्द्रशत्रवः निवातकवचाः निवातकवचसंज्ञकाः राक्षसाः तम् अर्जुनं तूर्णं शीघ्रं जग्मुः प्रापुः।

इसके बाद उस अर्जुन से शत्रुता करने वाले बड़े दोषों से संयुक्त, इन्द्र के शत्रु निवातकवच नाम के राक्षस उस अर्जुन के पास शीघ्र पहुँचे।

जनस्थानं विसृज्याथ ते चास्थाने कृतोद्यमाः।
रणस्थानं जवाज्जग्मुर्यमस्थानोपकण्ठगाः ॥१२॥

अथ अनन्तरम् अस्थाने अनुचितमेव कृतोद्यमाः कृतप्रयत्नाः 'स्थाने तु कारणार्थे स्याद् युक्तसादृश्ययोरपि' इति मेदिनी, यमस्थानोपकण्ठगाः यमनिलयसमीपगामिनः मुमूर्षव इत्यर्थः, ते राक्षसाः जनस्थानं विसृज्य दण्डकारण्यविभागं जनस्थानसंज्ञकं त्यक्त्वा, पक्षे—मूर्खाणां स्थानं स्वनगरम् त्यक्त्वा, 'जनो लोके महर्लोकात्परलोके च पामरे' इति मेदिनी, अथवा भूलोकात् पञ्चमं लोकं जनलोकं त्यक्त्वा जवात् वेगात् रणस्थानं युद्धभूमिं जग्मुः गतवन्तः। अनुष्टुप् छन्दः।

इसके बाद अनुचितरूप से प्रयत्न करने वाले, यमराज के घर के समीप जाने वाले अर्थात् मरने के इच्छुक वे राक्षस जनस्थान नामक वन-विभाग छोड़ कर,

दूसरे पक्षमें—मूर्खों का स्थान अपना नगर छोड़ कर अथवा भूलोक से पाँचवें लोक जनलोक को छोड़ कर बड़े वेग से युद्ध भूमि में पहुँचे।

सान्द्रस्यन्दनवंशसिन्धुरघटागन्धर्ववृन्दोज्ज्वले,
खड्गव्यग्रकराग्रपत्तिपृतनासंपत्तिविस्तारिणि ।
तं वीरं प्रतियाति वैरिनिकरे कल्पान्तकादम्बिनी-
गम्भीरैरुदजृम्भि भीरुभयदैः संग्रामभेरीरवैः ॥१३॥

सान्द्रस्यन्दनवंशसिन्धुरघटागन्धर्ववृन्दोज्ज्वले सान्द्राः निबिडा ये स्यन्दनवंशाः रथध्वजदण्डाः, सिन्धुरघटाः हस्तिसमूहाः, गन्धर्वाणाम् अश्वानां वृन्दानि 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः, तैः उज्ज्वले देदीप्यमाने, खड्गव्यग्रकराग्रपत्तिपृतनासंपत्तिविस्तारिणि खड्गे खड्गास्फालने व्यग्रा व्यापृताः कराग्राः हस्ताग्रभागाः यासाम् एवंभूताः पत्तयः पादचारिणः यस्याम् एवंभूता या पृतनासंपत्तिः सेनासंपत् तां विस्तारयतीति तस्मिन् वैरिनिकरे शत्रुसमूहे तं वीरं रामं, पक्षे—अर्जुनं प्रतियाति उपगच्छति सति कल्पान्तकादम्बिनीगम्भीरैः प्रलयकालमेघमालावन्मांसलैः भीरुभयदैः कातरभयोत्पादकैः संग्रामभेरीरवैः युद्धपटहशब्दैः उदजृम्भि उज्जृम्भितम् प्रवृद्धमिति यावत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

रथों के सघन ध्वजदण्डों से, हाथियों की घटाओं से, घोड़ों के समूहों से चमकते हुए, तलवार चलाने में व्यस्त हाथ के अग्रभागवाले पैदलों की सेना-संपत्ति के विस्तृत करने वाले शत्रुसमूह के उस वीर राम के पास, दूसरे पक्ष में—उस वीर अर्जुन के पास पहुँचने पर प्रलयकाल की मेघमाला के गर्जन के समान पुष्ट तथा कायरों को भय देने वाले युद्ध के भेरीनिनादों के द्वारा वृद्धि प्राप्त की गयी। अर्थात् जुझारू बाजों का शब्द अत्यन्त भयङ्कर रूप से बढ़ गया।

समन्ताच्छृण्वन्त्यः समरपटहध्वानमचिरा-
द्यथासन्नाः कल्पद्रुमविरचनाविभ्रमभृतः ।
नभोगर्भे चेरुर्मृधनिहतयोधग्रहपराः
कपोलोद्यत्स्वेदप्रकरकणिका दिव्यगणिकाः ॥१४॥

समरपटहध्वानम् युद्धभेरीनिनादं समन्तात् सर्वत्र शृण्वन्त्यः आकर्णयन्त्यः यथासन्नाः यथासमीपावस्थायिन्यः अचिरात् शीघ्रं

कल्पद्रुमविरचनाविभ्रमभृतः कल्पद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य विरचनया शृङ्गारप्रसाधनेन विभ्रमभृतः विलासधारिण्यः मृधनिहतयोधग्रहपराः युद्धमृतवीरग्रहणतत्पराः अहमहमिकया मृतवीराणां वरणकारिण्यः इत्यर्थः, कपोलोद्यत्स्वेदप्रकरकणिकाः सात्त्विकभावेन कपोलेषु गण्डस्थलेषु उद्यन्त्यः प्रादुर्भवन्त्यः स्वेदप्रकरकणिकाः घर्मजलनिचय-बिन्दवः यासां ताः, दिव्यगणिकाः स्वर्गीयवेश्याः अप्सरस इत्यर्थः नभोगर्भे आकाशमध्ये चेरुः बभ्रमुः। अयमर्थः, उभयत्र समान एव अत्र शिखरिणीवृत्तम्।

युद्ध के नगाड़ों का शब्द सब जगह सुनती हुई, जो जितने समीप में थीं उस क्रम से शीघ्र ही कल्पवृक्ष के दिये हुए प्रसाधनों से शृङ्गार धारण करने वाली, युद्ध में मरे हुए वीरों को पतिरूप में ग्रहण करने में तत्पर, सात्त्विक भाव से गालों पर प्रकट हुए पसीने के जल की बूंदों वाली अप्सराएँ आकाश में विचरण करने लगीं।

जवनपवनपातैर्दिक्षु विस्तारितायां
बहलसमरधूलीवागुरायां निमग्नः।
परिमलिनितवक्त्रः शोचनीयामवस्था-
मभजत परितूर्णं रुद्धपादः पतङ्गः ॥१५॥

उभयोः युद्धयोः जवनपवनपातैः वेगवद्वायुसञ्चारैः दिक्षु दिशासु विस्तारितायां प्रसारितायां बहलसमरधूलीवागुरायाम् अत्यधिक-युद्धधूलीजाले, वागुराजालविशेषः, 'वागुरा मृगबन्धनी' इत्यमरः, तत्र निमग्नः अन्तर्हितः, परिमलिनितवक्त्र मलीमसीकृतमुखः रुद्धपादः बाधितरश्मिः 'पादारश्म्यंघ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः, पतङ्गः सूर्यः परितूर्णं शीघ्रं शोचनीयामवस्थां करुणात्मिकां परिस्थितिम् अभजत धारयामास। युद्धोद्धतधूलीनिकरैरादित्योऽप्याच्छादितोऽभूदित्यर्थः। अत्र मालिनीवृत्तम्। 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इतिलक्षणात्। पतङ्ग इत्यत्र 'पक्षी' इत्यर्थकरणेन प्रस्तुतादप्रस्तुतार्थव्यक्तेः समासोक्तिरलङ्कारः।

राम तथा अर्जुन दोनो के युद्धों में तेज हवा के चलने से दिशाओं में फैलाये गये अतिसघन युद्धधूली के जाल में डूबे हुए मलिनमुखवाले, अवरुद्ध-किरण-वाले सूर्य शीघ्र ही शोचनीय अवस्था प्राप्त कर गये। युद्ध से उठी हुई सघन धूली समूह से आच्छादित किरण वाले सूर्य दयनीय दशा प्राप्त कर गये।

अथोच्चलत्कलकलघोषभीषणं
तदागतं बलमवलोक्य विद्विषाम् ।
उपाददे नरपतिनन्दनो धनु-
र्घनाघनः कुलिशवरायुधं यथा ॥१६॥

अथ अनन्तरम् उच्चलत् सञ्चलत् कलकलघोषभीषणं कलकल-घोषेण कोलाहलशब्देन भीषणं भयङ्करं विद्विषां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां तद् बलं तत्सैन्यम् आगतमवलोक्य समुपस्थितं दृष्ट्वा कुलिशवरायुधं श्रेष्ठवज्रास्त्रं घनाघनः यथा इन्द्र इव 'शक्रघातुक-मत्तेभवर्षुकाब्दा घनाघनाः' इति विश्वः, नरपतिनन्दनः राजकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः धनुरुपाददे चापं जग्राह इत आरभ्य सप्तविंशं श्लोकं यावत् रुचिरावृत्तम् । 'चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिरा जभौ स्जगा' इतिलक्षणात्, उपमालङ्कारः ।

इस के वाद चलती हुई तथा कोलाहलशब्द से भयङ्कर शत्रुओं की खरदूषण आदिकों की, पक्षे—निवातकवचों की उस सेना को आये हुए देख कर श्रेष्ठ हथियार वज्र जैसे इन्द्र धारण करते हैं, उसी प्रकार राजकुमार राम ने, दूसरे पक्ष में—अर्जुन ने धनुष धारण किया ।

विसारिणीमपि जगतीन्द्रनन्दनो
महारथाक्रमणसमग्रविक्रमः ।
रुरोध तां विबुधविरोधिवाहिनीं
महोदधेर्मलय इवोर्मिसन्ततिम् ॥१७॥

महारथाक्रमणसमग्रविक्रमः महारथानां महावीराणाम् 'आत्मानं सारथिञ्चाश्वान् रक्षन् युध्येत यो नरः । स महारथसंज्ञः स्यादित्याहु-र्नीतिकोविदाः' आक्रमणे समग्रः सम्पूर्णः विक्रमः पराक्रमः यस्य सः जगतीन्द्रनन्दनः भूपतिकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः महोदधेः समुद्रस्य ऊर्मिसन्ततिं तरङ्गपरम्पराम् मलय इव मलयाचल इव तां विबुधविरोधिवाहिनीं देवशत्रूणां सेनां रुरोध रुणद्धि स्म । अत्र उपमालङ्कारः ।

महावीरों के आक्रमण में सम्पूर्ण पराक्रम है जिस का उस राजकुमार राम ने, दूसरे पक्ष में—अर्जुन ने महासमुद्र की लहरों के समूह को मलय पर्वत के समान उस राक्षसी सेना को रोक दिया ।

तरस्विनां द्विरदरथाश्वचारिणां
सिसृक्षतां प्रहरणपङ्क्तिमुज्ज्वलाम् ।
विरोधिनामधिरणमेकलक्ष्यतां
चिरं दधौ नृपसुत एक एव सः ॥१८॥

तरस्विनां वेगवतां द्विरदरथाश्वचारिणां द्विरदरथाश्वेषु हस्तिस्यन्दनवाजिषु विचरताम् उज्ज्वलां देदीप्यमानां प्रहरणपङ्क्तिम् अस्त्रपरम्परां सिसृक्षतां स्रष्टुमिच्छतां विरोधिनां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानाम् अधिरणं युद्धे सः एक एव स एकल एव नृपसुतः राजकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः एकलक्ष्यताम् एकशरव्यतां चिरं बहुकालं यावत् दधौ धारयामास ।

वेग से सम्पन्न तथा हाथी रथ घोड़ों पर चढ़ कर विचरण करने वाले, चमकते हुए अस्त्रों की वर्षा करने के इच्छुक शत्रुओं का, युद्ध में वह अकेले ही राजकुमार राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन बहुत समय तक एक लक्ष्य बने रहे ।

नियन्तृभिर्युधि पुरतः प्रधाविता
रथाः पुरःपवनपराङ्मुखीकृतैः ।
व्यदर्शयन्दिशमिव केतनांशुकैः
पराजये झटिति पलायनोचिताम् ॥१९॥

युधि युद्धे नियन्तृभिः सारथिभिः पुरतः अग्रे प्रधाविताः वेगेन चालिताः रथाः स्यन्दनाः पुरःपवनपराङ्मुखीकृतैः पुरःपवनेन अग्रतः समागतवायुना अशुभसूचकपवनेनेत्यर्थः, पराङ् मुखीकृतैः पृष्ठमुखीकृतैः केतनांशुकैः ध्वजाञ्चलवस्त्रैः करणभूतैः पराजये सति पराभवे सति झटिति शीघ्रं पलायनोचितां पलायनयोग्यां दिशं व्यदर्शयन्निव दर्शयामासुरिव तान् राक्षसानिति शेषः अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

युद्ध में सारथियों के द्वारा आगे को ओर दौड़ाए गये रथों ने सामने से आते हुए अशुभ पवन से विमुख किये गये ध्वजाञ्चलवस्त्रों के द्वारा, पराजय होने पर शीघ्र पलायन करने के योग्य दिशा मानो राक्षसों को दिखलायी ।

अथापतन्नृपतनयस्य सर्वतः
पतिष्यतः शरनिकरस्य दूतिकाः ।

अनादरादरिपृतनासु दृष्टयः
सरोजिनीष्विव रजनीपतेस्त्विषः ॥२०॥

अथ अनन्तरं नृपतनयस्य राजकुमारस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य सर्वतः सर्वत्र पतिष्यतः निपतिष्यमाणस्य शरनिकरस्य बाणसमूहस्य दूतिकाः दूतीस्वरूपाः दृष्टयः दृष्टिपाताः अरिपृतनासु शत्रुसेनासु, सरोजिनीषु कमलिनीषु रजनीपतेः चन्द्रस्य त्विषः इव अंशवः इव अनादरात् अवहेलाबुद्धया अपतन् न्यपतन्। उपमालङ्कारः।

इसके पश्चात् राजकुमार राम की, दूसरे पक्ष में—अर्जुन की सब जगह भविष्य में गिरने वाले बाणसमूह की दूती के स्वरूप दृष्टियाँ शत्रुओं की सेना के ऊपर, कमलिनियों के ऊपर चन्द्रमा की किरणों के समान अवहेलाबुद्धि से गिरीं।

उदश्रयन्ध्वजमिव विक्रमश्रियो
विजृम्भयन् फणमिव रोषभोगिनः।
प्ररोहयन्विजयतरोरिवाङ्कुरं
व्यभाव्यत भ्रुकुटिमता मुखेन सः ॥२१॥

भ्रुकुटिमता भ्रूभङ्गयुक्तेन मुखेन आननेन सः रामः, पक्षे—अर्जुनः विक्रमश्रियः पराक्रमलक्ष्म्याः ध्वजं पताकादण्डम् उदश्रयन्निव उत्तोलयन्निव, रोषभोगिनः क्रोधस्वरूपसर्पस्य फणमिव फटामिव विजृम्भयन् विस्तारयन्, विजयतरोः विजयवृक्षस्य अङ्कुरं नूतनप्ररोहं प्ररोहयन्निव उद्भावयन्निव व्यभाव्यत विलोकितोऽभूत्। उत्प्रेक्षात्रयमलङ्कारः।

भ्रूभङ्ग वाले मुख से वह राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन पराक्रम-लक्ष्मी के ध्वज उठाते हुए के समान, क्रोधरूपी सर्प का फणा फैलाते हुए के समान, विजय वृक्ष के नवीन अङ्कुर को बढ़ाते हुए के समान मालूम हुए।

भुजेन तद्भुजगनिभेन भूभृत-
स्तनुत्रिणा विहितविधूननं धनुः।
अबूबुधच्छरधिगुहान्तशायिनः
स्वनिःस्वनैरिव समराय सायकान् ॥२२॥

भूभृतः भुवं पृथ्वीं बिभर्ति पुष्णाति इति भूभृत् तस्य वनभूरक्षकस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य तद्भुजगनिभेन सः प्रसिद्धः, शेषनाग

इत्यर्थः, स चासौ भुजगः तद्भुजगः तत्सदृशेन, तनुत्रिणा कवचयुक्तेन भुजेन बाहुना विहितविधूनं कृतकम्पनं धनुः चापः, स्वनिःस्वनैः स्वशब्दैः शरधिगुहान्तशायिनः निषङ्गस्वरूपगुहायाम् अन्तशायिनः समीपे सुप्तान् 'अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति मेदिनी, सायकान् बाणान् सायकरूपान् सर्पानिति भावः, समराय युद्धाय अबूबुधदिव अबोधयदिव । उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

वन-भूमि की रक्षा करने वाले उस राम की, दूसरे पक्ष में—अर्जुन की कवच से युक्त उस प्रसिद्ध सर्प शेषनाग के समान भुजा के द्वारा कम्पित किये गये धनुष ने अपने शब्दों से तरकसरूपी गुफा में समीप सोने वाले बाणरूपी साँपों को युद्ध के लिये मानो जगा दिया ।

विधीयतां किमधिमृधं विरोधिनां
परासुता किमु परिभाव एव वा ।
इतीव तं विभुमनुयोक्तुमुद्यता
शरावलिः श्रवणसमीपमाश्रयत् ॥२२॥

शरावलिः बाणपरम्परा किम् किमत्र प्रश्ने अधिमृधं युद्धे "युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम् । मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं सांपरायिकम्' इत्यमरः, विरोधिनां शत्रूणां परासुता प्राणराहित्यं मृत्युरित्यर्थः, विधीयतां क्रियताम् वा आहोस्वित् किमु इत्यपि प्रश्ने परिभाव एव पराभवमात्रं क्रियताम् ? 'पराभवः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया' इत्यमरः, इति इमं प्रश्नम् तं विभुं राममित्यर्थः, पक्षे—अर्जुनम् 'विभुः प्रभौ सर्वगते शङ्करब्रह्मणोस्तु ना' इति मेदिनी 'अनुयोक्तुं प्रष्टुम् 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः, उद्यता इव उद्युक्ता इव श्रवणसमीपं कर्णनिकटम् आश्रयत् आश्रयति स्म । बाणप्रक्षेपणसमये बाणपुङ्खाः कर्णसमीपमागच्छन्त्येव तत्रेयमुत्प्रेक्षा क्रियते ।

बाणसमूह 'क्या ? युद्ध में शत्रुओं की मृत्यु ही कर दी जाय अथवा केवल पराजय' यह प्रश्न उस प्रभु से पूछने के लिये उद्यत होकर ही मानों कानों के समीप आ गया । बाण फेंकने के समय बाण के पुङ्ख कान के समीप आते ही हैं उसमें कवि उक्त प्रश्न पूछने की उत्प्रेक्षा करता है ।

अथ स्फुरद्गुरुगुणनादमेदुरा-
च्छरासनादुपहितमण्डलाकृतेः ।

विनिर्ययुर्निशितमुखाः शिलीमुखाः
क्षयार्णवादिव वडवाग्निहेतयः ॥२४॥

अथ अनन्तरं स्फुरद्गुरुगुणनादमेदुरात् स्फुरन् चञ्चलीभवन् यः गुरुगुणः विशालमौर्वी तस्य नादेन शब्देन मेदुरं सान्द्रं यद् धनुः तस्मात् उपहितमण्डलाकृतेः उपहिता धृता मण्डलाकृतिः वर्तुलाकृतिः येन तस्मात् शरासनात् धनुषः रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य इति शेषः, क्षयार्णवात् प्रलयकालसमुद्रात् वडवाग्निहेतयः इव वडवानलज्वाला इव निशितमुखाः तीक्ष्णाग्रभागाः शिलीमुखाः बाणाः विनिर्ययुः विनिर्जग्मुः। अत्रोपमालङ्कारः।

इसके बाद राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के काँपते हुए विशाल गुण के शब्द से भरे हुए, गुण खींचने से गोलाई का रूप धारण करने वाले धनुष से प्रलय काल के समुद्र से बडवानल की लपटों के समान तेज धार वाले बाण निकल पड़े।

शरोरगाः सुररिपुसागरं जवा-
ज्जगाहिरे नृपसुतचापनोदिताः।
विघट्टनस्फुरिततनुत्रनिष्पत-
त्स्फुलिङ्गकप्रकरविषानलाकुलाः ॥२५॥

नृपसुतचापनोदिताः नृपसुतस्य राजकुमारस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य चापनोदिताः शरासनप्रेरिताः विघट्टनस्फुरिततनुत्र-निष्पतत्स्फुलिङ्गकप्रकरविषानलाकुलाः विघट्टनेन संघर्षणेन स्फुरितानि कम्पितानि यानि तनुत्राणि वर्माणि रिपूणामिति भावः, तेभ्यः निष्पतन् बहिर्भवन् यः स्फुलिङ्गकप्रकरः वह्निकणसमूहः स एव विषानलः विषवह्निः तेन आकुलाः पर्याकुलाः परिपूर्णा इत्यर्थः, शरोरगाः बाणसर्पाः सुररिपुसागरं सुररिपूणाम् खरदूषणसैनिकानाम्, पक्षे—निवातकवचसैनिकानां सागरं सैन्यं समुद्रं जगाहिरे विलोडयामासुः। अत्र रूपकमलङ्कारः।

राजकुमार राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के धनुष से प्रेरित टक्कर लगने से काँपने वाले सन्नाहों से निकले हुए अग्निस्फुलिङ्गसमूहरूप विष-पावक से भरे हुए बाण रूपी सर्प देवशत्रु खरदूषण के सैनिकों के, दूसरे पक्ष में—देवशत्रु निवातकवचसैनिकों के सैन्यसमुद्र को मथने लगे। बाणों की वृष्टि से शत्रुओं की सेना जर्जर हो गयी, यह तात्पर्य है।

परोज्झिताः प्रहरणपङ्क्तयोऽपत-
नृपात्मजे हिमततिवद्विनाश्य ताः ।
अनेकधा विसस्रुपुरस्य ते ततो
रवेरिव प्रतिदिशमंशवः शराः ॥२६॥

ततस्तदनन्तरं परोज्झिताः शत्रुप्रेरिताः प्रहरणपङ्क्तयः आयुधश्रेणयः नृपात्मजे राजकुमारस्य रामस्योपरि, पक्षे—अर्जुनस्योपरि अपतन् पतिताः। अस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य ते प्रसिद्धाः शराः बाणाः रवेः सूर्यस्य अंशवः इव किरणाः इव हिमततिवत् तुहिनश्रेणिवत् ताः प्रहरणपङ्क्तीः विनाश्य नाशयित्वा प्रतिदिशं सर्वासु दिक्षु अनेकधा बहुमुखीभूय विसस्रुपुः सञ्चरन्ति स्म। अत्रोपमालङ्कारः।

इसके बाद शत्रुओं से प्रेरित आयुधों की श्रेणियाँ राजकुमार राम के ऊपर, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के ऊपर आकर गिरीं। सूर्य की किरणों के समान इस राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाण हिमश्रेणी की तरह उन प्रहरण-पङ्क्तियों को नष्ट करके चारों दिशाओं में बहुमुखी होकर गिरने लगे।

रणोद्यतं प्रथममुदायुधावलि
व्यलोक्यत त्रिदशजनैर्द्विषां बलम् ।
अनन्तरं कलितकबन्धबन्धुरं
ततः क्षणात्क्षितितलसंस्तरायितम् ॥२७॥

त्रिदशजनैः देवैः समरावलोकनार्थमागतैरिति भावः, द्विषां बलं शत्रुसैन्यं खरदूषणसैन्यं, पक्षे—निवातकवचसैन्यं प्रथमं पूर्वम् उदायुधावलि उद्यतास्त्रसमूहं रणोद्यतं युद्धार्थसन्नद्धं व्यलोक्यत दृष्टमभूत्, अनन्तरं तदनन्तरं कलितकबन्धबन्धुरं कलिताः कृताः ये कबन्धा अपमूर्धकलेवराः तैः बन्धुरं रमणीयं 'बन्धुरं रम्यनम्रयोः' इति त्रिकाण्डशेषः। व्यलोक्यत, ततः क्षणात् क्षणानन्तरं क्षितितलसंस्तरायितम् भूतलास्तरणवदाचरितम् अवालोक्यत। संस्तरायितमित्यत्रोपमालङ्कारः।

युद्ध देखने के लिये आये हुए देवताओं के द्वारा शत्रुओं की सेना (खरदूषण की सेना, दूसरे पक्ष में—निवातकवचों की सेना) पहले हथियार उठाई हुई युद्ध के लिये उद्यत देखी गई, इसके बाद बनाये गये कबन्धों से (विना शिर

के शरीरों से) सुन्दर देखी गयी, इसके बाद कुछ ही क्षण के अनन्तर भूतल पर विस्तरे के समान फैल कर पड़ी हुई देखी गयी ।

कबन्धभावात्पिशिताशनानां प्रनृत्यतां कुक्षिमनुप्रविष्टाः ।
विनिर्ययुः कण्ठपथेन तेषां मूर्ता इव प्राणगणाः खगेन्द्राः ॥२८॥

पिशिताशनानां मांसभक्षकाणां राक्षसानां कबन्धभावात् शिरोहीनशरीरत्वप्राप्तेः प्रनृत्यतां नृत्यं कुर्वतां शिरश्छेदेऽपि युद्धावेगादितस्ततः प्रधावतामित्यर्थः, तेषां खरदूषणसैनिकानां, पक्षे—निवातकवचसैनिकानां कण्ठपथेन कण्ठबिलमार्गेण कुक्षिम् उदरम् अनुप्रविष्टाः प्रवेशं कृतवन्तः खगेन्द्राः मांसाहारिणः पक्षिणः, मूर्त्ताः मूर्त्तिमन्तः रूपवन्त इत्यर्थः, प्राणगणा इव असुगणा इव विनिर्ययुः तेषां शरीरेभ्यो विनिश्चक्रुः । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

शिर कट जाने से कबन्ध होने पर भी पूर्व युद्धावेग से इधर-उधर दौड़ने वाले उन खरदूषण के सैनिक राक्षसों के, दूसरे पक्ष में—निवातकवच के सैनिक राक्षसों के कण्ठबिल मार्ग से पेट में प्रवेश किये हुए मासांहारी पक्षी मूर्त्तिमान् अर्थात् रूपधारी प्राणों की तरह उनके शरीर से निकल गये ।

उत्कृत्ता अपि विशिखैः सजीवशेषा
मूर्धानः शितदशनोत्कटाः परेषाम् ।
संस्कारादभिनरवीरमापतन्तः
खे गृध्रैः कलितकचैरपाह्रियन्त ॥२९॥

परेषां शत्रूणां खरदूषणसैनिकानां, पक्षे—निवातकवचसैनिकानां विशिखैः रामबाणैः, पक्षे—अर्जुनबाणैः उत्कृत्ता अपि छिन्ना अपि सजीवशेषाः अल्पशेषजीवनसञ्चारसहिताः शितदशनोत्कटाः तीक्ष्णदन्तैर्विकरालाः मूर्धानः शिरांसि संस्कारात् पूर्वाभ्यासात् जीवितदशाभ्यासादित्यर्थः, नरवीरम् अभि मनुष्यवीरं रामं, पक्षे—अर्जुनं लक्ष्यीकृत्य आपतन्तः आगच्छन्तः खे आकाशे कलितकचैः गृहीतकेशैः गृध्रैः दाक्षाय्यैः गृद्धैरित्यर्थः, 'आतायिचिल्लौ दाक्षाय्यगृध्रौ कीरशुकौ समौ' इत्यमरः, अपाह्रियन्त उत्क्षिप्य अनीयन्त । अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम् 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात् । विभावना विशेषोक्त्योः सन्देहसङ्करोऽलङ्कारश्च ।

खरदूषण-सैनिकों के राम के बाणों से, दूसरे पक्ष में—निवातकवचसैनिकों के अर्जुन के बाणों से कट जाने पर भी अल्पशेष जीवन-सञ्चारसहित तेज

दांतों से विकराल शिर जीवितदशा के अभ्यास के कारण उस मनुष्यवीर राम को, दूसरे पक्षमें—अर्जुन को लक्ष्य बना कर आते हुए आकाश में केश पकड़ लेने वाले गिद्धों के द्वारा हरण किये गये।

शिरांसि तद्विशिखमुखार्पितान्यलं
निषादिनां नभसि निगृह्य चञ्चुभिः।
पतत्त्रिणः क्षणकृतमण्डलभ्रमाः
पदं दधुः परबलकेतुमूर्धसु ॥३२॥

निषादिनां हस्तिपकानां तद्विशिखमुखार्पितानि तस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य विशिखमुखेन बाणाग्रभागेन अर्पितानि दत्तानि शिरांसि मुण्डानि चञ्चुभिः तुण्डैः अलं निगृह्य पर्याप्तरूपेण धृत्वा नभसि आकाशे क्षणकृतमण्डलभ्रमाः क्षणं कञ्चित् कालं कृतः मण्डलभ्रमः मण्डलाकारं भ्रमणं यैस्ते पतत्त्रिणः मांसादाः पक्षिणः परबलकेतुमूर्धसु परेषां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां यानि बलानि सैन्यानि तेषां ये केतवः ध्वजदण्डाः तेषां मूर्धसु अग्रभागेषु पदं चरणं दधुः धारयामासुः तत्रोपविष्टा इत्यर्थः। रुचिरावृत्तम्—तथा मांसाहारि पक्षिस्वभाववर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः।

उस राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाणों की नोकों के द्वारा अर्पण किये गये हाथीवानों के मुण्डों को चोंचों से पर्याप्त रूप से ग्रहण कर के आकाश में कुछ क्षण मण्डलाकार भ्रमण करने वाले मांसाहारी पक्षी शत्रुओं के ध्वजदण्डों की चोटियों पर बैठ गये।

रणक्षितौ परकरिणां शरक्षतै-
श्चिरं करैरभिलुलुठे भयङ्करैः।
द्रुतोत्पतत्खगपतितुण्डखण्डित-
भ्रमन्महाविषधरभोगभङ्गिभिः ॥३१॥

रणक्षितौ युद्धभूमौ परकरिणां परेषां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां ये करिणः हस्तिनः तेषां शरक्षतैः बाणकृत्तैः रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य इति शेषः, द्रुतोत्पतत्खगपतितुण्डखण्डित-भ्रमन्महाविषधरभोगभङ्गिभिः द्रुतं शीघ्रम् उत्पतन् समाक्रामन् यः खगपतिः गरुडः तस्य तुण्डेन चञ्चुना खण्डिताः द्विधाकृताः अत एव भ्रमन्तः इतस्ततो लुठन्तो ये महाविषधरभोगाः महासर्पशरीराणि

'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः, तेषां भङ्गिः छटा येषां तैः, अत एव भयङ्करैः भयजनकैः करैः शुण्डादण्डैः चिरं बहुकालं यावत् अभिलुलुठे लुठितम्। अत्रापि रुचिरावृत्तम् भङ्गिभिरित्यत्र तत्सदृशीभङ्गिकल्पनान्निदर्शनालङ्कारः।

युद्ध भूमि में शत्रुओं के, खरदूषणादिकों के, दूसरे पक्ष में—निवातकवचों के हाथियों के, राम के बाणों से, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाणों से कटे हुए, शीघ्र आक्रमण करने वाले गरुड़ की चोंच से काटे गये इधर उधर लोट पोट करते हुए महासर्पों के शरीरों की छटा धारण करने वाले, अत एव भयङ्कर शुण्डादण्डों द्वारा बहुत देर तक लुढका गया। अर्थात् उन के हाथियों की कटी हुई शूढें बहुर देर तक युद्धभूमि में उछलती लुढकती रहीं।

शरावलीविदलितकुम्भिकुम्भजा
विरेजिरे रणभुवि मौक्तिकोत्कराः।
प्रवर्तिताः प्रतिमुखमस्य संपदां
जयश्रिया स्वयमिव लाजवृष्टयः ॥३२॥

रणभुवि युद्धभूमौ शरावलीविदलितकुम्भिकुम्भजाः रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य शरावलीभिः बाणश्रेणीभिः विदलिताः त्रोटिताः ये कुम्भिकुम्भाः हस्तिमस्तकपिण्डाः तदुद्भवाः मौक्तिकोत्कराः मुक्तानिचयाः, अस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य संपदां प्रापयिष्यमाणानां सम्पत्तीनां प्रतिमुखं सम्मुखं तत्स्वागतार्थं ता उद्दिश्येत्यर्थः स्वयमात्मनैव जयश्रिया विजयलक्ष्या प्रवर्तिताः कृताः लाजवृष्टयः इव भृष्टधान्यवृष्टयः इव विरेजिरे शोभन्ते स्म रुचिरावृत्तमुत्प्रेक्षालङ्कारः।

युद्ध भूमि में राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाणों के समूह से तोड़े गये हाथियों की मस्तकों से निकले हुए गजमुक्ताओं के समूह, इस राम की, दूसरे पक्ष में—अर्जुन की भविष्य सम्पत्तियों के सम्मुख स्वागत के लिये स्वयं जयश्री के द्वारा की गई लाजा (लावा) की वृष्टि के समान सुशोभित हुए।

हतं शरैर्विजविभिरुष्णवारणं
दिवि भ्रमत्पवनवशादशोभत।
मनस्विनां मन इव विक्रमोर्जितं
सविभ्रमं भुवनपरिभ्रमोद्यतम् ॥३३॥

रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य इति शेषः विजविभिः वेगशालिभिः शरैः बाणैः हृतम् अपहृतं छिन्नमित्यर्थः पवनवशात् वायुसञ्चारकारणात् दिवि आकाशे भ्रमत् सञ्चरत् उष्णवारणं छत्रं मनस्विनां बुद्धिमतां विक्रमोर्जितं पराक्रमोद्वेलितं सविभ्रमं सविलासं यथा स्यात्तथा भुवनपरिभ्रमोद्यतं भुवनानां परिभ्रमणायोद्युक्तं मन इव चित्तमिव अशोभत शुशुभे। अत्रापि रुचिरावृत्तम् उपमालङ्कारश्च।

राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के वेगशाली बाणों के द्वारा काट कर अपहरण किया गया, वायुवेग से आकाश में घूमता हुआ छाता, बुद्धिमानों के पराक्रम के कारण बढ़े हुए, इसलिये खिलवाड़ में ही भुवनों का परिभ्रमण करने के लिये उद्यत मन के समान सुशोभित हुआ।

तमीक्षितुं प्रतिमुखमाहतोद्यमा
विरोधिनः क्षतशिरसः क्षणाच्छरैः।
नभोगताः सपदि सुराङ्गनासखा
व्यलोकयन्सुखमनिमेषदृष्टयः ॥३४॥

तम् रामं, पक्षे—अर्जुनं प्रतिमुखं संमुखम् ईक्षितुं द्रष्टुम् आहतोद्यमाः भग्नप्रयत्नाः, क्षणात् क्षणानन्तरमेव शरैः बाणैः रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य इति शेषः, क्षतशिरसः खण्डितमूर्धानः विरोधिनः वैरिणः राक्षसाः सपदि तत्कालमेव सुराङ्गनासखाः देवयोषित्सहचारिणः नभोगताः आकाशे स्थिताः अनिमेषदृष्टयः निमेषरहितलोचनवन्तः सन्तः देवा भूत्वा इत्यर्थः, संमुखसमरमरणात् स्वर्गीयाः देवा भूत्वा देवाङ्गनालिङ्गितशरीराः निमेषरहिताः सन्तः, देवानां लोचनेषु निमेषाभावात् इति भावः सुखं निर्बाधं यथास्यात्तथा व्यकोकयन् अवलोकनमकुर्वन् रुचिरावृत्तम्।

उस राम को, दूसरे पक्ष में—अर्जुन को सामने से देखने में भग्नप्रयत्न वाले, क्षणभर में ही राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाणों से कटे हुए शिरवाले शत्रुगण (खरदूषण के सैनिक, दूसरे पक्ष में—निवातकवच के सैनिक) उसी समय अप्सराओं से युक्त, आकाश में स्थित, निमेषहीनलोचन वाले देवता होकर निर्बाध रूप से उन्हें देखने लगे। संमुख युद्ध में मरने से स्वर्गीय बन कर देवयुवतियों से युक्त निमेषबाधामुक्त आकाश मे स्थित हो कर देखने लगे। यह तात्पर्य है

दृष्टा विशन्तश्च विनिर्गताश्च प्रकाशयन्तो बलमप्रकाशाः ।
सतोयदे व्योमनि दृष्टनष्टाश्चेरुर्महोल्का इव तस्य बाणाः ॥३५॥

तस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य बाणाः शराः विशन्तश्च शत्रुसैन्यं प्रविशन्तश्च दृष्टाः अवलोकिताः जनैरिति शेषः, विनिर्गताश्च दृष्टाः शत्रुसैन्याद् बहिर्गताश्चावलोकिताः अप्रकाशाः वेगकारणात् स्वयमप्रकटाः, बलं सामर्थ्यं प्रकाशयन्तः प्रकटयन्तः, अत एव सतोयदे व्योमनि सवारिदे आकाशे दृष्टनष्टाः पूर्वं दृष्टाः पश्चान्नष्टाः महोल्का इव आकाशान्निर्गता महाज्वाला इव चेरुः विचरन्ति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

उस राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के बाण शत्रुओं की सेना में प्रवेश करते हुए देखे गये, फिर उस सेना से निकले हुए देखे गये, वेग के कारण स्वयम् अप्रकट होकर अपना सामार्थ्य प्रकट करते हुए देखे गये, अत एव मेघ युक्त आकाश में पहले देखी गई फिर अदृष्ट हुई महाउल्का के समान विचरण करने लगे ।

एकेषुणा ये रिपवोऽस्य भिन्ना
न ते द्वितीयस्य शरव्यमासन् ।
भिन्दन्ति भानोः प्रथमे तमांसि
शेषाः करा लोकविलोकनाय ॥३६॥

अस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य एकेषुणा एकेन बाणेन ये रिपवः शत्रवः भिन्ना विदारिताः ते द्वितीयस्य अन्यस्य बाणस्य शरव्यं लक्ष्यं न आसन् न अभूवन् । प्रथमेन तेनैव बाणेन ते मृता इत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तमाह भानोः सूर्यस्य प्रथमे कराः उदयकालिका एवांशवः तमांसि अन्धकारान् भिन्दन्ति नाशयन्ति शेषाः कराः अन्ये किरणाः लोकविलोकनाय लोकानामवलोकनार्थमेव भवन्ति । अत्रापि तदेवेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् दृष्टान्तोऽलङ्कारः ।

इस राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के एक बाण से जो शत्रु (राक्षस) मारे गये वे दूसरे बाण के लक्ष्य नहीं हुए । अर्थात् उसी प्रथम बाण से वे मर गये । सूर्य की पहली किरणें ही अन्धकार को नष्ट कर देती हैं, शेष किरणें तो लोगों के देखनेमात्र प्रयोजन की रहती हैं ।

च्युतानकप्रकटितमानडम्बरा
समन्ततो भृतबहुरत्नभूषणा ।

असुक्षयक्षणिककृतान्तकल्पिता
रणावनिर्विपणिरिव व्यभाव्यत ॥३७॥

च्युतानकप्रकटितमानडम्बरा च्युताः पतिताः ये आनकाः पटहाः तैः प्रकटितः मानानां तुलानां डम्बरः आडम्बरः यस्यां सा 'मानं तुलाङ्गुलिप्रस्थौ' इत्यमरः, समन्ततः सर्वतः भृतबहुरत्नभूषणा भृतानि धृतानि बहूनि रत्नानि भूषणानि च यस्यां सा राक्षसानामङ्गपतितरत्नभूषणादियुक्तेत्यर्थः, रणावनिः युद्धभूमिः असुक्षयक्षणिककृतान्तकल्पिता असुक्षयः प्राणनाशः तस्मिन् क्षणिकः उत्सवी यः कृतान्तः यमः तेन कल्पिता व्यवस्थापिता विपणिरिव पण्यवीथीव व्यभाव्यत तर्किताभूत्। 'अथ क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः' इत्यमरः। रुचिरावृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

गिरे हुए पटहों से प्रकट किया गया है तराजू का आडम्बर (बाहरी रूप रेखा) जिस में, सब जगह पड़े हुए हैं रत्न और आभूषण जिस में इस प्रकार की युद्धभूमि, प्राणनाश करने में उत्सवी यमराज के द्वारा सजायी गई बाजार की गली की तरह मालूम हुई।

दानाम्भोभिः कुम्भिनां पङ्किलान्ता
धावद्रथ्यानेमिसीमन्तदुर्गा ।
पादातानां सा जघानाजिभूमि-
र्जङ्घालत्वं रक्तजम्बालसादा ॥३८॥

कुम्भिनां गजानां दानाम्भोभिः मदजलैः पङ्किलान्ता कर्दमितस्वरूपा 'अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति मेदिनी, धावद्रथ्यानेमिसीमन्तदुर्गा धावन्ती वेगेन चलन्ती या रथ्या रथसमूहः, 'रथ्या रथकट्या रथव्रजे' इत्यमरः, तस्या या नेमयः चक्रपरिधयः तासां ये सीमन्ताः केशवेषाकारा रेखाः चक्रजनितभूमिखातानीत्यर्थः, तैः दुर्गा दुर्गम्या, रक्तजम्बालसादा रक्तैः शोणितैः यः जम्बालः कर्दमः तेन सादः अवसादः कष्टमित्यर्थः यस्यां सा, 'निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः, सा आजिभूमिः खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां युद्धभूमिः पादातानां पादचारिणां सैनिकानां जङ्घालत्वम् अतिवेगशालित्वं 'जङ्घालोऽ

तिजवस्तुल्यौ' इत्यमरः जघान नाशयामास। अत्र शालिनीवृत्तम् 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इतिलक्षणात्।

हाथियों के मदजलों से पङ्किल स्वरूप वाली, दौड़ते हुए रथ समूह के पहियों की परिधियों की गहरी रेखाओं से दुर्गम्य, शोणित की कीचड़ों से कष्ट देने वाली उस युद्धभूमि ने खरदूषणादिकों के, दूसरे पक्ष में--निवातकवचों के पैदल चलने वाले सैनिकों का अतिवेग से चलना नष्ट कर दिया।

समधिकतरमाजौ राजसूनुर्विरेजे
त्रुटितसुभटकण्ठग्रन्थियन्त्रप्रणुन्नैः।
रुधिरघुसृणधाराचक्रवालैर्वितन्व-
न्नभिनवजलकेलीविभ्रमं दिग्वधूभ्यः ॥३९॥

त्रुटितसुभटकण्ठग्रन्थियन्त्रप्रणुन्नैः त्रुटिताः विभक्ताः ये सुभटानां राक्षसवीराणां कण्ठग्रन्थयः गलबन्धाः त एव यन्त्राणि जलप्रक्षेपण-नलिकानि तैः प्रणुन्नैः प्रेरितैः प्रक्षिप्तैरित्यर्थः रुधिरघुसृणधाराचक्रवालैः रुधिराण्येव घुसृणानि कुङ्कुमानि तेषां धाराचक्रवालैः धारामण्डलैः, दिग्वधूभ्यः दिगङ्गनाभ्यः अभिनवजलकेलीविभ्रमं नवीनतमजलक्रीडा-विलासं वितन्वन् अर्पयन् राजसूनुः राजकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः आजौ युद्धे समधिकतरम् अत्यर्थं विरेजे शुशुभे। अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्' रूपकमलङ्कारः।

राक्षस वीरों के टूटे हुए कण्ठबन्ध रूपी यन्त्रों से प्रेरित शोणित रूपी कुङ्कुमधारामण्डलों के द्वारा दिशा वधुओं को नवीनतमजलक्रीड़ा विहार अर्पण करते हुए राजकुमार राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन युद्ध में अत्यन्त सुशोभित हुए।

सुरद्विषां तुङ्गतरैः कबन्धैः पतद्भिरुर्वी सुचिरं चकम्पे।
प्राक्खण्डिताग्रैरनुकृत्तमूलैर्महाद्रुमाणामिव मध्यकाण्डैः ॥४०॥

महाद्रुमाणां विशालवृक्षाणां प्राक्खण्डिताग्रैः पूर्वं कृत्तोपरितन-भागैः अनुकृत्तमूलैः पश्चात्खण्डितमूलदेशैः मध्यकाण्डैरिव मध्यम-दण्डैरिव सुरद्विषां राक्षसानां खरदूषणसैन्यस्थितानां, पक्षे—निवात-कवचसैनिकानां तुङ्गतरैः अत्युच्चैः पतद्भिः महीं गच्छद्भिः कबन्धैः अपमूर्धकलेवरैः उर्वी पृथ्वी सुचिरं बहुकालं यावत् चकम्पे कम्पिताभूत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

विशाल वृक्षों के पहले अग्रभाग काटे हुए पश्चात् जड़ काटे हुए मध्यदण्डों के समान खरदूषणसैनिकराक्षसों के, दूसरे पक्ष में--निवातकवचसैनिक राक्षसों के अत्यन्त ऊँचे तथा गिरते हुए कबन्धों से पृथ्वी बहुत देर तक काँपती रही।

बाणव्रातव्रणितवपुषां पेतुषां कुञ्जराणा-
मङ्गादग्रात्कुलिशदलितोत्तुङ्गभूभृन्निभानाम् ।
सद्यः प्रोहुः प्रतिदिशमसृक्सिन्धवो मेरुमूल-
भ्रश्यज्जम्बूफलरससरित्पूरसौभाग्यभाजः ॥४१॥

बाणव्रातव्रणितवपुषां शरसमूहखण्डितशरीराणाम् पेतुषां पतयालूनां कुलिशदलितोत्तुङ्गभूभृन्निभानां वज्रत्रोटितोन्नतपर्वतसदृशानां कुञ्जराणां गजानां अग्राद् पराध्यांद् विशालादीत्यर्थः 'पराध्यांग्रप्राग्रहरप्राग्र्यथाग्र्याग्रीयमग्रियम्' इत्यमरः, अङ्गात् शरीरात् सद्यः तत्कालमेव मेरुमूलभ्रश्यज्जम्बूफलरससरित्पूरसौभाग्यभाजः मेरुः सुमेरुपर्वतः एव मूलम् आद्यस्थानं 'मूलं शिफाद्ययोः' इति मेदिनी, तस्माद् भ्रश्यन्ती पतन्ती या जम्बूफलरससरित् जम्बूफलरसस्य नदी तस्याः यः पूरः प्रवाहः तस्य सौभाग्यभाजः सौन्दर्यधारिण्यः असृक्सिन्धवः शोणितनद्यः 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः, प्रतिदिशं चतुर्दिक्षु प्रोहुः वहन्ति स्म। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् 'मन्दाक्रान्ताजलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इति लक्षणात्। उपमाद्वयमलङ्कारः।

बाणसमूह से खण्डितशरीरवाले अत एव वज्र से टूटे हुए ऊँचे पहाड़ के समान हाथियों के विशाल शरीर से तत्क्षण सुमेरुपहाड़रूपी उत्पत्तिस्थान से गिरती हुई जामुन के फल के रस की नदी का सौन्दर्य धारण करने वाली शोणित की नदियाँ सभी दिशाओं में वहने लगीं।

नीहारसंसिक्तमिवाब्जषण्डं कल्पानलालीढमिवार्णवाम्भः।
शरन्मरुन्नुन्नमिवाभ्रवृन्दं बलं कथाशेषमभूत्परेषाम् ॥४२॥

नीहारसंसिक्तं हिमप्लावितम् अब्जषण्डमिव कमलसमुदाय इव कल्पानलालीढं प्रलयकालाग्निदग्धम् अर्णवाम्भ इव समुद्रजलमिव शरन्मरुन्नुन्नम् शरत्कालिकवायुप्रेरितम् अभ्रवृन्दमिव मेघसमूह इव परेषां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां बलं सैन्यं कथाशेषं वार्तावशेषं प्रणष्टमित्यर्थः अभूत्। अत्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् मालोपमालङ्कारः।

बर्फ से प्लावित कमलसमुदाय के समान, प्रलयकाल की आग से जले हुए समुद्रजल के समान, शरत्काल के वायु से उड़ाये गये मेघसमूह के समान शत्रुओं की (खरदूषण आदिकों की, दूसरे पक्ष में—निवात कवचों की) सेना कथावशेष हो गई अर्थात् बिलकुल नष्ट हो गयी।

इति स सुभटदर्शं विद्विषां संप्रमाथा-
द्विरचितगुरुतुष्टिर्भूर्भुवःस्वस्त्रयस्य ।
विबुधमुनिनुतश्रीर्वर्धयन्धर्मधाराः
कृतसुरपतितोषः सोदराभ्यर्णमागात् ॥४३॥

इति एवं प्रकारेण सुभटदर्शं यान् यान् सुभटान् अपश्यत् तेषां सकलनाम् अत्र 'कर्मणि दृशि विदोः साकल्ये' इति पाणिनिसूत्रेण णमुल् प्रत्ययः विद्विषां शत्रूणां खरदूषणादीनां, पक्षे—निवातकवचानां संप्रमाथात् मर्दनात् नाशनादित्यर्थः, भूर्भुवःस्वस्त्रयस्य भूर्भुवः-स्वरिति-लोकत्रयस्य विरचितगुरुतुष्टिः विरचिता कृता गुर्वी तुष्टिः सन्तोषो येन सः धर्मधाराः धर्मपरम्पराः वर्धयन् प्रवर्तयन् विबुध-मुनिनुतश्रीः विबुधैः देवैः मुनिभिः ऋषिभिः नुता स्तुता श्रीः पराक्रम-सम्पत्तिर्यस्य सः, कृतसुरपतितोषः राक्षसानां वधेन कृतः सुरपते-रिन्द्रस्य तोषः सन्तुष्टिः येन सः, सः रामः, पक्षे—अर्जुनः सोदरा-भ्यर्णम् भ्रातृसमीपं लक्ष्मणसमीपं, पक्षे—युधिष्ठिरादिसमीपम् आगात् आगच्छत् । अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगि-लोकैः' इति लक्षणात्

इस प्रकार जिन जिन को वीर देखा उन शत्रुओं के खरदूषणादिकों के, दूसरे पक्ष में—निवातकवचों के मारने से भूर्भुवः स्वर् इन तीनों भुवनों का अतिसन्तोष करनेवाले धर्म की परम्परा प्रवर्तित करने वाले देवता और मुनियों के द्वारा पराक्रमसम्पत्ति की प्रशंसा किये हुए, राक्षसों के वध से इन्द्र को सन्तुष्ट करने वाले वह राम भाई लक्ष्मण के समीप, दूसरे पक्ष में—अर्जुन भाई युधिष्ठिरादि के समीप आ गये।

सोऽथ तीव्रविरहव्यथाहरैः सन्मनःसुखकरैः सुविस्तरैः ।
आत्मवृत्तकथनैः समादधे दारसोदरमनःप्रहर्षणम् ॥४४॥

अथ अनन्तरं सः रामः, पक्षे—अर्जुनः तीव्रविरहव्यथाहरैः तीव्रा अत्युग्रा या विरहव्यथा वियोगकष्टम् तद्धरैः तद्दूरकारिभिः,

सन्मनःसुखकरैः सतां सज्जनानां मनःसु सुखोत्पादकैः सुविस्तृतैः अतिविस्तृतविवरणयुक्तैः आत्मवृत्तकथनैः स्ववृत्तान्तवर्णनैः दारसोदरमनःप्रहर्षणम् दाराणां सीतायाः सोदरस्य लक्ष्मणस्य च, पक्षे—दाराणाम् द्रौपद्याः सोदराणाम् युधिष्ठिरादीनाञ्च मनःप्रहर्षणं मानसिकप्रमोदं समादधे कृतवान्। अत्र रथोद्धतावृत्तम् 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्।

इस के बाद वह राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तीव्रवियोगकष्ट के दूर करने वाले, सज्जनों के मन में सुख पहुँचाने वाले अतिविस्तृत विवरणयुक्त अपना-वृत्तान्त कहने से पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के, दूसरे पक्ष में—पत्नी द्रौपदी तथा भाई युधिष्ठिर आदि के मन को आनन्दित किये।

सोत्कण्ठया तीव्रवियोगखेदाद्भुजोपपीडं प्रिययोपगूढः।
नरेन्द्रसूनुः सुतरां बभासे रत्येव युक्तो भुवि कामदेवः ॥४५॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कामदेवाङ्के खरदूषणनिवातकवचवधो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

तीव्रवियोगखेदात् अत्यधिकविरहवेदनाकारणात् सोत्कण्ठया उत्सुकया प्रियया सीतया, पक्षे—द्रौपद्या भुजोपपीडं भुजाभ्यामुपपीड्य उपगूढः आलिङ्गितः, नरेन्द्रसूनुः राजकुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः भुवि पृथिव्यां रत्या एतन्नामिकया स्वपत्न्या युक्तः संमिलितः कामदेव इव मकरकेतन इव कामदेवसंज्ञकभूप इव इत्यपि व्यज्यते, सुतराम् अत्यन्तम् बभासे शोभते स्म।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अत्यधिक विरह वेदना के कारण उत्कण्ठित पत्नी सीता के द्वारा, दूसरे पक्ष में—पत्नी द्रौपदी के द्वारा दोनो भुजाओं से दबाकर आलिङ्गित हुए राजकुमार राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन पृथ्वी में रति से युक्त कामदेव के समान सुशोभित हुए। 'कामदेवराजा के समान सुशोभित हुए यह भी व्यङ्ग्य है।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्री दामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में चतुर्थ सर्ग ॥४॥

—:०:—

पञ्चमः सर्गः

तीर्थानामथ गमनादघं नुदन्तः
शृण्वन्तो मुनिगदिताः कथाश्च दिव्याः ।
पश्यन्तो नगवननिम्नगाश्च कालं
द्राघिष्ठं दिनमिव ते सुखेन निन्युः ॥१॥

अथ अनन्तरं ते रामादयः, पक्षे—युधिष्ठिरादयः तीर्थानां पुण्य-क्षेत्राणां गमनाद् गमनकारणाद् अघं पापं नुदन्तः प्रेरयन्तः दूरीकुर्वन्त इत्यर्थः, मुनिगदिताः ऋषिभिः कथिताः दिव्याः अतिश्रेष्ठाः कथाः आख्यायिकाः शृण्वन्तः आकर्णयन्तः, नगवननिम्नगाः पर्वतकानन-सरितः पश्यन्तश्च अवलोकयन्तश्च द्राघिष्ठम् अतिदीर्घं कालं समयं दिनमिव एकवासरवत् सुखेन अनायासेन निन्युः यापयामासुः । अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम् 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात् । उपमालङ्कारः ।

इसके बाद वे राम आदि, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर आदि पुण्यक्षेत्रों के गमन से पाप दूर करते हुए, मुनियों के द्वारा कही गई दिव्य कथाएँ सुनते हुए, तथा पर्वत, जङ्गल और नदियों को देखते हुए बहुत बड़ा समय एक दिन के समान सुखपूर्वक बिता दिये ।

स्वाध्यायैरतिथिजनार्चनैः सहोमै-
र्भूतानां बलिहरणैः स्वधाभरैश्च ।
संवासेष्वथ महतां च सत्कथाभि-
स्ते नैकं दिनमपि वन्ध्यतामनैषुः ॥ २ ॥

अथ अनन्तरं ते रामादयः, पक्षे--युधिष्ठिरादयः स्वाध्यायैः अध्ययनैः, अतिथिजनार्चनैः आगन्तुकातिथिसत्कारैः, भूतानां प्राणिनां बलिहरणैः उपहारदानैः भोजनदानैरित्यर्थः, 'बलिर्दैत्यप्रभेदे च करचामरदण्डयोः । उपहारे पुमान् स्त्री तु जरया श्लथचर्मणि' इति

मेदिनी, सहोमैः हवनसहितैः स्वधाभरैश्च स्वधाकर्मभिः पितृतर्पणै-रित्यर्थः, महतां श्रेष्ठजनानां संवासेषु अतिथिरूपेण निवासेषु सत्सु सत्कथाभिः श्रेष्ठवार्तालापैः एकमपि दिनं अद्वितीयमपि वासरं वन्ध्यतां निष्फलत्वं न अनैषुः न प्रापयामासुः। एकमपि निष्फलं दिनं न व्यतीयुः सर्वाणि दिनानि सफलान्येव गमयामासुरिति भावः। अत्रापि प्रहर्षिणीवृत्तम्।

इसके बाद वे राम आदि, दूसरे पक्ष में--युधिष्ठिर आदि अध्ययन करने से, अतिथि लोगों का सत्कार करने से, प्राणियों को भोजनोपहार देने से, हवन सहित पितृश्राद्ध करने से महान् ऋषि आदि के अतिथि रूप में निवास करने पर श्रेष्ठवार्तालापों से एक भी दिन निष्फल बना कर नहीं व्यतीत किये। अर्थात् सभी दिन उनके सफल ही बीतते थे।

महाजगरसंनद्धभीमसेनाभयङ्करात्।
राज्ञः प्रभावाद्दधिरे रोमहर्षं महर्षयः ॥३॥

राज्ञः रामस्य महाजगरसंनद्धभीमसेनाभयङ्करात् महान्तो ये जगराः कवचाः 'उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, तैः संनद्धाः वर्मिताः 'संनद्धो वर्मितः सज्जो दंशितो व्यूढकङ्कटः' इत्यमरः, याः भीमाः भयकारिण्यः सेनाः राक्षससेनाः तासां भयङ्करात् भयदायकात् अथवा ताभ्यः अभयङ्करात् अभयदायकात् प्रभावात् प्रतापात् महर्षयः तद्वनवासिनो मुनयः रोमहर्षम् आनन्दातिरेकाद्रोमाञ्चं दधिरे धारयामासुः। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

महाराज राम के बहुत बड़े कवच से वर्मित भयङ्करराक्षसीसेनाओं को भय देने वाले, अथवा राक्षसी-सेनाओं से अभय देने वाले प्रताप से उस वन के रहने वाले मुनियों ने आनन्दातिशय से रोमाञ्च धारण किया।

पक्षे—राज्ञः युधिष्ठिरस्य महाजगरसन्नद्धभीमसेनाभयङ्करात् महान् यः अजगरः वाहसः 'स्यादजगरे शयुर्वाहस इत्युभौ' तेन सन्नद्धः निबद्धः 'णह्' बन्धने इति क्तः, यः भीमसेनः वृकोदरः तस्य अभयङ्करात् मोचकात् प्रभावात् प्रतापात् महर्षयः तद्वनवासिनो मुनयः रोमहर्षम् आश्चर्यातिरेकात् रोमाञ्चं दधिरे धारयामासुः। अगस्त्यमुनेः शापान्नहुषोऽजगरो बभूव, तेन वने भीमसेनो निबद्धः, युधिष्ठिरसंवादेन स तममुञ्चदिति पौराणिकी कथा।

राजा युधिष्ठिर के बहुत बड़े अजगर से निबद्ध भीमसेन को मुक्त करने वाले प्रभाव से उस वन के निवासी मुनियों ने आश्चर्य से रोमाञ्च धारण किया।

स रक्षसां क्रोधवशेन सद्यो
गणेन युद्धे यमसात्कृतेन ।
श्रुतिं प्रयातेन पुलस्त्यनप्तु-
र्दुर्मानसं क्षोभयति स्म भीमः ॥४॥

भीमः भयङ्करः राक्षसानामिति शेषः, सः रामः क्रोधवशेन क्रोधयुक्तेन सद्यः तत्क्षणं युद्धे समरे यमसात्कृतेन यमाधीनकृतेन मारितेनेत्यर्थः श्रुतिं प्रयातेन श्रवणं गतेन श्रुतेनेत्यर्थः रक्षसां गणेन राक्षससमूहेन पुलस्त्यनप्तुः पुलस्त्यपौत्रस्य रावणस्य दुर्मानसं दुष्टं मनः क्षोभयति स्म क्षुब्धम् चञ्चलं कृतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

राक्षसों के लिये भयङ्कर उस राम ने क्रोध के वशीभूत, उसी समय युद्ध में मारे हुए सुने गये राक्षससमूहखरदूषणादिकों के द्वारा रावण के दुष्ट मन को चंचल कर दिया।

पक्षे—स भीमः भीमनामकः मध्यमपाण्डवः रक्षसां रक्षोजातीनां क्रोधवशेन गणेन क्रोधवशाः यक्षाः यक्ष समूहेन मानससरोरक्षकेणेत्यर्थः श्रुतिं प्रयातेन विश्रुतिं प्रसिद्धिं प्राप्तेन सद्यः तत्कालं युद्धे रणे यमसात्कृतेन विनाशितेन सता तद्विनाशद्वारा पुलस्त्यनप्तुः पुलस्त्यपौत्रस्य कुबेरस्य मानसं मानससरोवरं दुःक्षोभयति स्म दूषितरूपेण क्षुब्धम् निर्मथितं चकार। भीमः रक्षकान् यक्षान् विनाश्य मानसं सरोवरं निर्मथ्य पुष्पाहरणं कृतवानिति पौराणिकी कथानुसन्धेया।

उस भीम ने, मानस सरोवर के रक्षक प्रसिद्धि प्राप्तकरने वाले राक्षस जाति के यक्षगण को युद्ध में तत्काल यमपुरी भेजकर कुबेर के मानस सरोवर को दूषित रूप से क्षुब्ध कर दिया। वन में रहते हुए किसी दिन भीम ने मानस सरोवर के रक्षक यक्षगण का युद्ध में विनाश कर के मानस सरोवर को संक्षुब्ध कर के फूलों का अपहरण किया था, यह पौराणिकी कथा है।

निशाचरेषु क्षयितेषु तत्र प्रवृत्तयज्ञोत्सवपुण्यघोषे।
मुदा मुनीन्द्रैः सुखमध्युवास प्रहृष्टदारावरजः स राजा ॥५॥

निशाचरेषु राक्षसेषु खरदूषणादिषु, पक्षे—किर्मीरादिषु क्षयितेषु मृतेषु सत्सु प्रवृत्तयज्ञोत्सवपुण्यघोषे प्रवृत्ताः प्रारब्धाः ये यज्ञोत्सवाः तेषां पुण्यः पवित्रः घोषः शब्दः वेदध्वनिरिति यावत् यत्र, तत्र तस्मिन् प्रदेशे प्रहृष्टदारावरजः प्रहृष्टाः दाराः पत्नी सीता अवरजः भ्राता

लक्ष्मणः यस्य सः, पक्षे—प्रहृष्टाः दाराः द्रौपदी अवरजाः भ्रातरो भीमादयः यस्य सः, स राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः, मुनीन्द्रैः ऋषिगणैः सह मुदा आनन्देन सुखम् सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा अध्युवास निवसति स्म । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

खरदूषणादि राक्षसों के, दूसरे पक्ष में—किर्मीरादि राक्षसों के मारे जाने पर प्रारम्भ हो गया है यज्ञोत्सव की पवित्र वेदध्वनि जिस में उस प्रदेश में प्रसन्न हैं पत्नी सीता भाई लक्ष्मण जिस के वह राजा राम, दूसरे पक्ष में—प्रसन्न हैं पत्नी द्रौपदी भाई भीम आदि जिसके वह राजा युधिष्ठिर मुनियों के साथ आनन्द से सुखपूर्वक निवास करने लगे ।

वनेऽपि सा संगतसत्यभामा संभाव्यमाना मुनिदारवर्गैः ।
पुष्पैरपूर्वैर्दयितोपनीतैः कृतावतंसा विरराज राज्ञी ॥६॥

वनेऽपि काननेऽपि संगतसत्यभामा संगताः मिलिताः सत्यं तथ्यं भा कान्तिः मा लक्ष्मीः यया सा, पक्षे—संगता मिलिता सत्यभामा कृष्णेन सह तत्रागता सत्यभामानाम्नी कृष्णपत्नी यया सा, मुनिदारवर्गैः मुनिपत्नीसमूहैः संभाव्यमाना कृतसत्कारा दयितोपनीतैः अपूर्वैः पुष्पैः दयितेन प्रियेण रामेण उपनीतैः आनीतैः अपूर्वैः दिव्यैः पुष्पैः कुसुमैः, पक्षे—प्रियेण भीमेन आनीतैः अपूर्वैः दिव्यैः कुबेरोद्यानानीतैरिति भावः, पुष्पैः कृतावतंसा कृतकर्णभूषणा राज्ञी राजपत्नी सा सीता, पक्षे—द्रौपदी विरराज शुशुभे । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

वन में भी सचाई कान्ति तथा शोभा से संयुक्त होकर, दूसरे पक्ष में—श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा से मिलकर मुनियों की पत्नियों के द्वारा सत्कृत हुई अपने प्रियतम राम के द्वारा लाये हुए दिव्य फूलों से, दूसरे पक्ष में—प्रियतम भीम के द्वारा लाये हुए कुबेर के बगीचे के दिव्य फूलों से कर्णभूषण बनाने वाली राजपत्नी वह सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी सुशोभित हुई ।

ततो रथव्यावृतघोषयात्रः सुरेन्द्रसेनाकृतरोषबन्धः ।
अजातशत्रूद्यमरक्षितात्मा मायी रिपुस्तद्वनगोचरोऽभूत् ॥७॥

ततस्तदनन्तरं रथव्यावृतघोषयात्रः रथस्य व्यावृतः आच्छादितः रुद्धः इत्यर्थः यः घोषः शब्दः तेन रथव्यावृतघोषेण यात्रा यस्य सः, सुरेन्द्रसेनाकृतरोषबन्धः सुरेन्द्रस्य इन्द्रस्य सेनया कृतः रोषबन्धः रोषेण बन्धनं यस्य सः, इन्द्रस्य युद्धे पराजितो भूत्वा रावणो

निबद्धोऽभूत् पश्चान्मेघनादस्तमिन्द्रं पराजयदिति पौराणिकी कथा। अजातशत्रूद्यमरक्षितात्मा न जातः भूतः शत्रुर्यस्य सः अजातशत्रुः रामः तस्माद् उद्यमेन प्रयत्नेन कृतकपटसाधुवेषेण इत्यर्थः रक्षितः गुप्तीकृतः आत्मा स्वं येन सः, मायी कपटी रिपुः शत्रुः रावण इत्यर्थः, तद्वनगोचरोऽभूत् तस्य रामस्य वने निवासकानने गोचरः, इन्द्रिय-विषयः दृष्ट इति यावत् अभूत् अभवत्। तद्वनाभ्यन्तरमागच्छदित्यर्थः। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् -

इस के बाद रथ के बन्द किये गये शब्द से अर्थात् निःशब्दरथ से यात्रा करने वाले, देवेन्द्र की सेना के द्वारा क्रोध से बन्धन किया गया था जिसका, अजात-शत्रु राम से साधु वेष के कपटरूपी उद्योग के द्वारा अपनी रक्षा करने वाला, कपटी शत्रु रावण उस राम के निवासवन में इन्द्रियविषय हुआ अर्थात् देखा गया।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं रथव्यावृतघोषयात्रः रथैः व्यावृता कृता घोष-यात्रा आभीरपल्लीप्रस्थानं येन सः, 'घोष आभीरपल्ली स्याद्' इत्यमरः, [सुरेन्द्रसेनाकृतरोषबन्धः सुरेन्द्रसेनया चित्रसेनगन्धर्वा-धिष्ठितदेवसैन्येन कृतः विहितः रोषबन्धः क्रोधेन बन्धनं यस्य सः, घोषयात्राप्रसङ्गे दुर्योधनहस्तिसैन्येन चित्रसेनगन्धर्वस्य वनं भग्नं ततः क्रुद्धेन ससैन्येन चित्रसेनेनागत्य युद्धे दुर्योधनो बद्धः, पश्चात् युधिष्ठिरप्रेरितेनार्जुनेन नियुध्य तस्मान्मोचितः इति महाभारत-कथानुसन्ध्येया, अजातशत्रूद्यमरक्षितात्मा अजातशत्रोः युधिष्ठिरस्य उद्यमेन उद्योगेन रक्षितः आत्मा यस्य सः, मायी कपटी रिपुः शत्रुः दुर्योधनः तद्वनगोचरः तेषां युधिष्ठिरादीनां यद् वनं निवासवनं तत्र गोचरः इन्द्रियविषयः, दृष्टः इत्यर्थः अभूत् अभवत्।

इसके बाद रथों के द्वारा आभीरपल्ली की यात्रा करने वाले, चित्रसेन गन्धर्व से अधिष्ठित देवसैन्यों के द्वारा क्रोध से बन्धन किया गया है जिस का वह, युधिष्ठिर के उद्योग से सुरक्षित हुई आत्मा जिस की वह कपटी शत्रु दुर्योधन उस वन में पहुँचा।

जिस समय युधिष्ठिरादि वन में थे उसी समय दुर्योधन आभीरपल्ली-यात्रा के कपट से इन लोगों को अपना वैभव दिखलाने के लिये उस वन में पहुँचे। यहाँ इसकी गजसेना ने चित्रसेन गन्धर्व का वन विध्वस्त कर दिया। इस से क्रुद्ध होकर चित्रसेन ने सेनासहित आकर कर्णादिकों को जीत कर दुर्योधन को बाँध लिया। फिर युधिष्ठिर के कहने पर अर्जुन ने युद्ध में चित्रसेन को जीतकर दुर्योधन को मुक्त किया। यह महाभारत की कथा है।

अथ स्फुरच्चित्रमृगोपलब्ध्यै दूरं गते सावरजे नरेन्द्रे ।
तदाश्रमोपान्तमवाप लोभाज्जयद्रथस्तीव्रतरादशास्यः ॥८॥

अथ अनन्तरं स्फुरच्चित्रमृगोपलब्ध्यै स्फुरन् दीप्यमानः यः चित्रमृगः मारीचकपटनिर्मितचित्रसुवर्णमृगः तस्य उपलब्ध्यै प्राप्त्यै सावरजे अनुजलक्ष्मणसहिते नरेन्द्रे रामे दूरं दवीयःक्षेत्रं गते प्रयाते सति, लोभात् सीताहरणलोभात् जयद्रथः जयन् विजयशीलो रथः स्यन्दनः यस्य सः, तीव्रतरादशास्यः तीव्रतराणि अत्युग्राणि आदशास्यानि दश दशमम् अभिव्याप्य आस्यानि आननानि यस्य सः रावण इत्यर्थः, अत्र दशन् शब्दान्निर्धारणेऽर्थे डट् प्रत्ययः । तदाश्रमोपान्तं तस्य आश्रमस्य समीपम् अवाप प्राप्तवान् । अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम् ।

इसके बाद इधर उधर चमकते हुए सुवर्ण के चित्र रङ्ग वाले हरिण की प्राप्ति के लिये भाई सहित राम के दूर चले जाने पर सीता के हरने के लोभ से विजयी रथ वाला, दशवें मुख तक उग्रतर सभी मुख वाला रावण उनके आश्रम के समीप आया ।

पक्षे--अथ अनन्तरं स्फुरच्चित्रमृगोपलब्ध्यै स्फुरन्तः इतस्ततश्चलन्तः ये चित्रमृगाः चित्रवर्णाः हरिणाः तेषामुपलब्ध्यै प्राप्त्यर्थम् अतिथिब्राह्मणजनानां भोजनार्थमिति भावः, सावरजे अनुजभीमादिसहिते नरेन्द्रे राज्ञि युधिष्ठिरे दूरं दवीयोवनं गते प्रयाते सति, तीव्रतरात् अत्युत्कटात् लोभात् द्रौपद्याः लिप्सातः अशास्यः अशासनीयः उपदेशानर्हः इत्यर्थः जयद्रथः एतन्नामको दुर्योधनावुत्तः सिन्धुदेशपतिः तदाश्रमोपान्तम् तेषां युधिष्ठिरादीनाम् आश्रमसमीपम् अवाप प्राप्तवान् आगच्छदित्यर्थः ।

इस के बाद इधर उधर दौड़ने वाले जो चित्र वर्ण के हरिण उन्हें प्राप्त करने के लिये, अर्थात् शिकार खेलने के लिये भाई भीमादि सहित राजा युधिष्ठिर के दूर चले जाने पर द्रौपदी के प्राप्त करने के अत्युत्कट लोभ से उपदेश देने के अयोग्य, जयद्रथ नाम के दुर्योधन के बहनोई सिन्धु देश के राजा युधिष्ठिरादिकों के आश्रम के समीप पहुँचे ।

स तत्र कृष्णाञ्जितमीनलोचनां
निरीक्ष्य मूर्तिं जनकान्वयश्रियः ।

वशं प्रपेदे वशिभिर्विगर्हितं
कामस्य मृत्योरथ वा दुरत्ययम् ॥६॥

अथ अनन्तरं तत्र तस्मिन् वने सः रावणः जनकान्वयश्रियः भूपजनकवंशशोभास्वरूपायाः सीताया इत्यर्थः, कृष्णाञ्जितमीनलोचनां कृष्णे कृष्णवर्णे अञ्जिते कज्जलयुक्ते मीनौ मत्स्यौ इव लोचने यस्याः तां मूर्त्तिं स्वरूपं निरीक्ष्य अवलोक्य वशिभिर्जितेन्द्रियैः विगर्हितं विशेषेण निन्दितं दुरत्ययं दुर् दुःखदः अत्ययः मृत्युः यस्मिन् तम् 'स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः' इत्यमरः, मृत्यो र्वा यमस्येव 'व वा यथा तथैवैवं साम्ये' इत्यमरः, कामस्य मदनस्य वशं वशीभूतत्वं प्रपेदे प्राप्तवान् कामपरवशोऽभूदित्यर्थः। अत्र मृत्योरपि प्रकृतत्वे उपमानोपमेययोर्द्वयोः प्रकृतत्वे एवोपमालङ्कारः। यथायं कामस्य वशोऽभूत्तथैव मृत्योरपि वशोऽभूदिति तात्पर्यम्। अत्रेन्द्रवंशा-वंशस्थयोरुपजातिवृत्तम् 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। स्यादिन्द्र-वंशा ततजै रसंयुतैः' इति लक्षणात्।

इसके बाद उस वन में वह रावण जनक वंश की शोभा उस सीता की काले और कज्जल युक्त तथा मछली के समान लोचन हैं जिसके उस मूर्ति को देखकर जितेन्द्रियों के द्वारा निन्दित दुखद मृत्यु वाले यमराज की तरह कामदेव का वशीभूतत्व प्राप्त किया अर्थात् काम परवश हो गया।

पक्षे—तत्र तस्मिन् वने सः जयद्रथः जनकान्वयश्रियः जनकस्य पितुर्द्रुपदस्य अन्वयश्रियः वंशशोभास्वरूपायाः द्रौपद्या इत्यर्थः, कृष्णा-ञ्जितमीनलोचनां कृष्णा कृष्णवर्णा अञ्जितमीनलोचना अञ्जिते कज्जल-युक्ते मीनौ मत्स्यौ इव लोचने यस्याः सा अञ्जितमीनलोचना, कृष्णा चासौ अञ्जितमीनलोचना, कृष्णाञ्जितमीनलोचना तां कृष्णाञ्जित-मीनलोचनां मूर्तिं स्वरूपं निरीक्ष्य अवलोक्य वशिभिर्जितेन्द्रियैः विगर्हितं विशेषेण निन्दितं दुरत्ययं दुर् दूषितः अत्ययः कृच्छ्रं काठिन्यमिति यावत् यस्मिन् तं 'अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेऽपि' इत्यमरः, कामस्य मदनस्य अथवा मृत्योः यमस्य वशं वशीभूतत्वं प्रपेदे प्राप्तवान्। अर्थाद् यदेव कामवशीभूतत्वं तदेव मृत्युवशीभूतत्वम् एतदंशे रूपकमलङ्कारः। द्रौपद्या उपरि कामासक्तिरेव पश्चात् तन्मृत्यु-कारणमभूदिति तात्पर्यम्।

उस वन में वह जयद्रथ अपने पिता द्रुपद के वंश की शोभा के स्वरूप उस द्रौपदी के काले रङ्ग के तथा कज्जल से रङ्गी हुई और मछली के समान आंखों

वाले स्वरूप को देखकर जितेन्द्रियों के द्वारा निन्दित, दूषित कठिनाई है जिस में ऐसे कामदेव का अथवा मृत्यु का वशीभूतत्व प्राप्त किया। अर्थात् इसका कामपरवश होना मृत्युपरवश होना ही था। यहीं की यह कामपरवशता इस की मृत्यु का कारण बन गयी, यह तात्पर्य है।

अलोकसंभाव्यमसौ विलोक्य
तदङ्गसौन्दर्यमनङ्गनुन्नः ।
एवं वितर्कं मनसा चकार
सहेन्द्रियैस्तन्मयतां गतेन ॥१०॥

असौ रावणः, पक्षे—जयद्रथः, अलोकसम्भाव्यं लोके संसारे असम्भवनीयं तदङ्गसौन्दर्यं तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः अङ्गानां मुखादीनां सौन्दर्यं रामणीयकम् विलोक्य दृष्ट्वा अनङ्गनुन्नः कामप्रेरितः सन् इन्द्रियैः सह चक्षुरादिभिः सह तन्मयतां गतेन एकीभूतेन, यत्र यत्र चक्षुः पतति श्रवणं वा समुपैति तत्र तत्र मनोऽपि गच्छतीत्येकीभवनं, मनसा चित्तेन एवमेवं प्रकारेण अधोनिर्दिष्टप्रकारेणेत्यर्थः, वितर्कं विशेषेणाध्याहारम् 'अध्याहारस्तर्क ऊहः' इत्यमरः, चकार कृतवान्। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

यह रावण, दूसरे पक्ष में—जयद्रथ संसार में असंभाव्य उस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के शरीरावयवों का सौन्दर्य देख कर काम से प्रेरित होकर चक्षुरादि इन्द्रियों के साथ एकता प्राप्त किये हुए मन के द्वारा इस प्रकार वितर्क करने लगा।

तमेव वितर्कमाह—

धाता ध्याननिमीलिताक्षनिकरः कैश्चित्पदार्थैर्नवैः
सृष्ट्वेमां तदवस्थ एव नियतं यज्ञक्षमायामधात्।
यद्युन्मीलितदृष्टिदृष्टममुना क्वाप्येतदीयं वपुः
क्व ध्यानं क्व तपः क्वचास्य नियमः क्व ब्रह्मवादे रतिः ॥११॥

धाता ब्रह्मा ध्याननिमीलिताक्षनिकरः ध्याने निमिलितः मुद्रितः अक्षनिकरः इन्द्रियसमूहो यस्य एवंभूतः सन् नवैः नूतनैः कैश्चित् पदार्थैः रूपादिभिः इमां सीतां, पक्षे—द्रौपदीं सृष्ट्वा निर्माय तदवस्थ एव मुद्रितेन्द्रिय एव नियतं निश्चितं यज्ञक्षमायां यज्ञभूमौ जनकसीरकृष्टभूमौ, पक्षे—द्रुपदयज्ञकुण्डे अधात् अस्थापयत्। यदि अमुना

ब्रह्मणा एतदीयम् एतस्याः सम्बन्धि सीतासम्बन्धि, पक्षे--द्रौपदीसम्बन्धि वपुः शरीरं कापि कस्मिन्नप्यङ्गे उन्मीलितदृष्टि अमुद्रितलोचनं यथा स्यात्तथा दृष्टम् अवलोकितं भवेत् तर्हि अस्य ब्रह्मणः ध्यानं क तपश्चर्या कुत्र, नियमः क व्रतपालनं कुत्र, ब्रह्मवादे वेदाभ्यासे रतिः अनुरागः क कुत्र स्यात् ? न स्यादित्यर्थः। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् अनुमानम् अलङ्कारः।

ब्रह्मा ने परमात्मा के ध्यान में मुद्रितेन्द्रिय होकर नवीन रूपादि किन्ही पदार्थों से इस सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी को बना कर उसी अवस्था में अर्थात् मुद्रितेन्द्रिय रह कर ही अवश्य इसे (सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी को) यज्ञ भूमि में (जनक के हल से जोती हुई भूमि में, दूसरे पक्ष में—द्रुपद के यज्ञ कुण्ड में) रख दिया। यदि ब्रह्मा इसके (सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के) शरीर को कहीं भी खुली हुई आँखों से देखे होते तो इस ब्रह्मा का ध्यान कहाँ रहता, तपस्या कहाँ होती, व्रतपालन कहाँ रहता और वेदाभ्यास का प्रेम कहाँ रहता ? तब ये सब कुछ भी नहीं होते।

अभियोक्तुमात्मविशिखेन शिवं
यदि रूपमेतदवलम्ब्य पुरा।
अयतिष्यत ध्रुवमयुग्मशरो
ननु नाभविष्यदशरीर इति ॥१२॥

ननु अनुजानामि, 'प्रश्नावधारणानुज्ञाऽनुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः, पुरा प्राचीनकाले यदि चेत् अयुग्मशरः कामः एतत् सीतासम्बन्धि, पक्षे—द्रौपदीसम्बन्धि रूपं सौन्दर्यम् अवलम्ब्य धारयित्वा स्वायत्तीकृत्येत्यर्थः आत्मविशिखेन स्वनाराचेन शिवं शम्भुम् अभियोक्तुम् अभिग्रहीतुम् युद्धार्थमुत्तेजयितुमित्यर्थः, अयतिष्यत प्रयत्नमकरिष्यत, तर्हि अशरीरः शरीररहितः अनङ्ग इति यावत् न अभविष्यत् इति ध्रुवम् निश्चितमेव। अत्र प्रमिताक्षरावृत्तम् प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता' इतिलक्षणात्। ध्रुवमित्यनेनोत्प्रेक्षालङ्कारः।

यह जानता हूँ कि—प्राचीनकाल में यदि कामदेव इस सीता के सम्बन्धी, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के सम्बन्धी सौन्दर्य को लेकर अपने बाणों से शङ्कर भगवान को ललकारने का प्रयत्न करते तो शरीर रहित नहीं होते, यह निश्चित है।

सकामः कामोऽस्यां ननु निजवधूकोपचकितः
प्रवृत्तानां स्वैरं सरसजनचित्तप्रमथने ।
स्वयं लक्ष्यीभावं किल निजशराणां परिहर-
न्ननङ्गत्वं गत्वा मम हृदयदुर्गं निविशते ॥१३॥

ननु निश्चयं कामः स्वयं मदनः अस्यां सीतायां, पक्षे—द्रौपद्यां सकामः साभिलाषः सन् अनङ्गत्वं शरीररहितत्वं गत्वा प्राप्य सरसजनचित्तप्रमथने सरसजनानां शृङ्गारिलोकानां 'रसः शृङ्गार-संज्ञकः' इति कोषः, चित्तप्रमथने मनोमर्दने स्वैरं निर्बाधं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तानां संलग्नानां निजशराणां स्वबाणानां लक्ष्यीभावं शरव्यत्वं परिहरन् वञ्चयन् निजवधूकोपचकितः स्वपत्न्याः रत्याः क्रोधात् त्रस्तः सन् मम रावणस्य, पक्षे—जयद्रथस्य हृदयदुर्गं हृदयस्वरूपदुर्गम-स्थानं तत् निविशते प्रविशति इति तर्कयामि। अत्र शिखरिणी-वृत्तम्—'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति लक्षणात्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

यह निश्चित है कि स्वयं कामदेव इस सीता के ऊपर, दूसरे पक्ष में—इस द्रौपदी के ऊपर साभिलाष अर्थात् मोहित होने के कारण, अपने को शरीर-रहित बनाकर शृङ्गारी लोगों के मनोमर्दन करने में निर्बाध गति से लगे हुए अपने बाणों के लक्ष्य बनने से अपने को बचाकर अपनी पत्नी रति के क्रोध से भयभीत होकर मुझ रावण के, दूसरे पक्ष में—मुझ जयद्रथ के हृदयरूपी दुर्ग (किला) में प्रवेश किया है। यह मैं वितर्क करता हूँ।

भवतु शतमखस्य स्वर्गलोकाधिपत्यं
भवतु तदुपभोग्या नन्दनोद्यानलक्ष्मीः ।
भवतु सततफुल्लं दृक्सहस्रं तदीयं
सकलमफलमस्याः प्रेक्ष्यतां यो न जातः ॥१४॥

शतमखस्य इन्द्रस्य स्वर्गलोकाधिपत्यं स्वर्गलोकेश्वरत्वं भवतु तिष्ठतु। तदुपभोग्या तस्य इन्द्रस्य उपभोगार्हा नन्दनोद्यानलक्ष्मीः नन्दनवाटिकाशोभा भवतु तिष्ठतु। तदीयम् इन्द्रसम्बन्धि दृक्सहस्रं सहस्रसंख्याकलोचनानि सततफुल्लं सन्ततविकसितानि भवतु तिष्ठन्तु। किन्तु यः इन्द्रः अस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः प्रेक्ष्यतां नयन-

गोचरत्वं न यातः न प्राप्तः तस्येन्द्रस्येति शेषः, सकलम् एतत्सर्वम् अफलं निष्प्रयोजनम् अस्ति। अस्या अवलोकनेनैव सर्वं सफलमभविष्यदिति भावः। अत्र मालिनीवृत्तम्।

इन्द्र का स्वर्गलोक का आधिपत्य भले ही होवे, इसका उपभोग्य नन्दनवन की शोभा भले ही होवे तथा इसकी एक हजार आँखें सतत विकसित भले ही रहें, किन्तु जो इन्द्र इस सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी की आँखों के सामने नहीं गये उस इन्द्र के ये सभी निष्फल हैं। इसी के देखने से इन्द्र की इन सभी वस्तुओं की सफलता हो सकती थी, यह तात्पर्य है।

अविरतमखदीक्षाजातसंस्कारजाड्यं
स्फुटतरमरसज्ञं मन्महे नाकनाथम्।
भवति यदि स तादृग्रूपवेषान्तरज्ञ-
श्चिरतरमकलत्रः स्यात्कथं गौतमोऽसौ ॥१५॥

नाकनाथम् इन्द्रम् अविरतमखदीक्षाजातसंस्कारजाड्यम् अविरतं सततं या मखदीक्षा यज्ञे सनियममन्त्रग्रहणं तेन जातं संस्कारे मानसिकाभ्यासे जाड्यं मौर्ख्यं यस्य तम्, स्फुटतरम् स्पष्टरूपेण अरसज्ञं शृङ्गाररसज्ञानशून्यं 'रसो ज्ञानं रसो हर्षो रसः शृङ्गार एव च' इति कोशः। मन्महे स्वीकुर्मः। यदि सः चेदिन्द्रः तादृग्रूपवेषान्तरज्ञः तद्वद्रूपवेषयोः मर्मज्ञः भवति अभविष्यत् तर्हि असौ गौतमः अयं गौतममुनिः चिरतरं बहुकालं यावत्, अकलत्रः पत्नीरहितः कथं स्यात्? नाभविष्यदित्यर्थः। यदि सः एतस्याः सौन्दर्यस्य मर्मज्ञोऽभविष्यत् तर्हि साधारणसौन्दर्यवतीमहिल्यां नाकामयिष्यत, इति भावः। अत्रापि मालिनीवृत्तम्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

इन्द्र को सतत यज्ञ की मन्त्रदीक्षा से जड़ स्वभाववाले, इसलिये स्पष्ट रूप से शृङ्गार-रसज्ञान से शून्य हम मानते हैं, यदि वह इन्द्र इस सौन्दर्य तथा प्रसाधन के मर्मज्ञ होते तो वह गौतम ऋषि बहुत समय तक पत्नीरहित होकर कैसे रहते? अर्थात् नहीं रहते। यदि वह इन्द्र इसके रूप तथा प्रसाधन का ज्ञान रखते तो एक साधारण रूपवाली अहिल्या के ऊपर आसक्त नहीं होते, यह तात्पर्य है।

अस्याः स्फुटं माल्यकदामशोभि-
वेणीगुणोत्कर्षमलिम्लुचानाम्।

कलापिनां कल्पयतीव दण्डं
शिखण्डभारक्षपणाद्घनान्तः ॥१६॥

घनान्तः शरत्कालः अस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः माल्यकदामशोभिवेणीगुणोत्कर्षमलिम्लुचानाम् माल्यकानां पुष्पमालानां दामभिः संदानैः शोभी यः वेणीगुणः सज्जितबालप्रवेणिरज्जुः तस्य यः उत्कर्षः शोभाधिक्यं तस्य मलिम्लुचानां चौराणाम् 'चौरैकागारिकस्तेनदस्युतस्करमोषकाः । प्रतिरोधिपरास्कन्दिपाटच्चरमलिम्लुचाः' इत्यमरः। कलापिनां मयूराणां शिखण्डभारक्षपणाद् बर्हसमूहहरणात् स्फुटं स्पष्टरूपेण दण्डं कल्पयतीव दमनं करोतीव। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारश्च।

शरद् ऋतु का समय इस सीता के, दूसरे पक्ष में--द्रौपदी के मालाओं की लरी से सुशोभित गूंथे हुए बालों की श्रेष्ठता चुरानेवाले मयूरों का बर्हसमूह काट देने से मानो स्पष्टरूप से दण्ड करता है।

ईदृग्रूपप्रचयरचनारम्भपाण्डित्ययोगा-
द्यातो दैवाज्जगति निपुणैः श्लाघनीयो विरञ्चिः।
किं चैतस्याः प्रसवविधिना योगकोटीनिविष्टं
युक्तं भूमेर्बहु मनुमहे रत्नगर्भाभिधानम् ॥१७॥

जगति संसारे दैवात् दैवसंयोगाद् अकस्मादित्यर्थः। ईदृग्रूपप्रचयरचनारम्भपाण्डित्ययोगात् ईदृक् सीतासदृशं, पक्षे—द्रौपदीसदृशं यद् रूपं सौन्दर्यं तस्य यः प्रचयः समूहः तस्य यः रचनारम्भः निर्माणकार्यं तस्मिन् पाण्डित्ययोगात् नैपुण्यप्राप्तेः विरञ्चिः ब्रह्मा निपुणैः मर्मज्ञजनैः श्लाघनीयः प्रशंसनीयः यातः अभूत्। किञ्च अन्यदपि एतस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः प्रसवविधिना उत्पत्तिविधानेन भूमेः पृथिव्याः योगकोटीनिविष्टं योगकोट्या यौगिकपरिपाट्या निविष्टं कृतं रत्नगर्भाभिधानम्, रत्नं मणिः स्वजातिश्रेष्ठं वा गर्भे यस्याः सा रत्नगर्भा, रत्नगर्भानामकरणं बहु युक्तम् अत्यन्तोचितमेव मनुमहे स्वीकुर्मः। 'रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि' इत्यमरः, 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते' इति कोषः। अत्र मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

संसार में दैवसंयोग से जो सीता के समान, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के समान सौन्दर्य का समुदाय, उसके निर्माण कार्य में जो निपुणता का संयोग उससे

ब्रह्मा जी मर्मज्ञ लोगों के द्वारा प्रशंसनीय हो गये। दूसरी बात यह है कि—इस सीता को, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी को उत्पन्न करने से पृथिवी का 'रत्न है गर्भ में जिसके' इस यौगिक प्रक्रिया द्वारा किया गया 'रत्नगर्भा' यह नाम अत्यन्त उचित है, यह हम मानते हैं।

अनुदिनमपि गर्भं गाहतामम्बुराशे-
र्मुहुरपि रविबिम्बे स्वं वपुः प्रक्षिणोतु।
अतिविपुलकलङ्कं मण्डलं प्राप्य चन्द्र-
स्तुलयितुमलमस्या नैव वक्त्रारविन्दम् ॥१८॥

चन्द्रः चन्द्रमाः अतिविपुलकलङ्कम् अतिविपुलम् अतिविस्तृतं कलङ्कं लाञ्छनं यस्मिन् तद् मण्डलं चक्रवालं प्राप्य धारयित्वा अनुदिनं प्रतिदिवसम् अम्बुराशेः समुद्रस्य गर्भम् अभ्यन्तरं गाहतां प्रविशतु, कलङ्कप्रक्षालनायेतिभावः। मुहुरपि वारं वारं स्वं वपुः आत्मीयं शरीरं रविबिम्बे सूर्यमण्डले प्रक्षिणोतु क्षीणं करोतु, तपस्यया कलङ्कमार्जनार्थमिति भावः। तथापि अस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः वक्त्रारविन्दं वदनसरोजं तुलयितुं सदृशीकर्तुम् अलं न समर्थः न भवितुमर्हतीति शेषः। अत्र मालिनीवृत्तम्-व्यतिरेकोऽलङ्कारः।

चन्द्रमा बहुत बड़े कलङ्क वाले मण्डल को पाकर भले ही कलङ्क धोने के लिये प्रतिदिन समुद्र के अन्दर प्रवेश करें, भले ही तपस्या के द्वारा उसे दूर करने के लिये सूर्य मण्डल में अपने शरीर को क्षीण करें, तथापि इस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के मुखकमल की तुलना प्राप्त करने के लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं।

वनान्तरे स्तोकविभूषणाऽपि पर्याप्तशोभा निजयैव कान्त्या।
दृष्टा मया भाग्यवशेन सैषा मेघोपरुद्धेव मृगाङ्कलेखा ॥१६॥

वनान्तरे वनमध्ये 'अथान्तरेऽन्तरा, अन्तरे च मध्ये स्युः' इत्यमरः, स्तोकविभूषणापि अल्पाभरणाऽपि निजयैव स्वकीययैव कान्त्या द्युत्या पर्याप्तशोभा पर्याप्ता परिपूर्णा शोभा यस्याः सा, सा प्रसिद्धा एषा सीता, पक्षे—द्रौपदी मेघोपरुद्धा वारिदच्छन्ना मृगाङ्कलेखा इव चन्द्रकला इव भाग्यवशेन पूर्वोपार्जितशुभकर्मसंपद्बलेन मया रावणेन, पक्षे—जयद्रथेन दृष्टा अवलोकिता। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

वन में थोड़े आभूषण पहने हुए भी अपनी ही कान्ति से पर्याप्त शोभावाली वही यह सीता, दूसरे पक्ष में द्रौपदी मेघ से उपरुद्ध चन्द्रकला के समान पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के वश मुभ रावण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—मुझ जयद्रथ के द्वारा देखी गयी।

आलोकमात्रादखिलोऽप्यमुष्या मा भूज्जनो मन्मथबाणवध्यः ।
इतीव नूनं नगरीमपोह्य वनान्तमेषा गमिता विधात्रा ॥२०॥

अखिलोऽपि सर्वोऽपि जनः लोकः अमुष्याः अस्याः सीतायाः, पक्षे--द्रौपद्याः आलोकमात्रात् केवलमवलोकनात् मन्मथबाणवध्यः कामसायकमारणीयः मा भूत् न भवतु नूनं निश्चितम् इतीव एतद्धेतोरिव विधात्रा ब्रह्मणा नगरीं जननिवासस्थानम् अपोह्य हापयित्वा एषा सीता, पक्षे—द्रौपदी वनान्तं काननान्तिकम्, 'अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति मेदिनी, गमिता प्रापिता। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

सभी मनुष्य इस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के केवल देखने से ही कामबाणों से मारने योग्य न हो जाँय, निश्चित ही मानो इसी कारण से विधाता के द्वारा जननिवासस्थान नगरी से दूर कर के यह सीता, दूसरे पक्ष में—प्रौपदी वन को भेज दी गई।

न खलु जलदगर्भाद्विद्यतेऽन्यत्र विद्युत्-
स्फटिकजठरमग्नो दृश्यते पद्मरागः ।
इयमपि वनभूमौ वर्तते हन्त बाला
न हि जगति निधानं सर्वलोकप्रकाशे ॥२१॥

जलदगर्भाद् वारिदान्तरालाद् अन्यत्र बहिः विद्युत् विद्युल्लता न विद्यते न तिष्ठति खल्विति निश्चयेन, पद्मरागः पद्मरागो नाम रक्तो मणिः स्फटिकजठरमग्नः स्फटिकः श्वेतमणिः तस्य जठरे उदरे मग्नः खचितः दृश्यते अवलोक्यते, सोऽपि बहिर्न दृश्यते इत्यर्थः, बाला नवयौवना इयमपि, सीताऽपि, पक्षे—द्रौपदी अपि वनभूमौ काननावनौ वर्तते अस्ति, अनाच्छन्न-प्रदेशे नास्तीत्यर्थः, हन्त इति खेदे, जगति संसारे निधानं सौन्दर्यादीनां केषामपि विशिष्टवस्तूनां निधिः सर्वलोक प्रकाशे सर्वजनप्रकटे स्थाने नहि नहि तिष्ठतीत्यर्थः। अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्। अत्र प्रति-वस्तूपमार्थान्तरन्यासयोरङ्गाङ्गिभावः सङ्करोऽलङ्कारः।

बादल के पेट से बाहर विद्युल्लता नहीं रहती है, पद्मरागमणि स्फटिकमणि के अन्दर जड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, नवीन यौवनवाली यह सीता भी, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी भी जङ्गली भूमि में है। खेद है कि किसी भी विशिष्ट वस्तु की निधि संसार में सभी लोगों के प्रकट-स्थान में नहीं रहती है।

यावन्नरेन्द्रसुतसायकदक्षिणारुः-
सारङ्गरक्तकपिशं न वनान्तमासीत्।
तामीक्षमीक्षमिति तर्कपरः स राजा
तावद्बभूव मदनायुधदक्षिणेर्मा ॥२२॥

यावत् यावन्तं कालं नरेन्द्रसुतसायकदक्षिणारुःसारङ्गरक्तकपिशं नरेन्द्रसुतस्य रामस्य, पक्षे—नरेन्द्रसुतानां युधिष्ठिरादीनां सायकेन बाणेन दक्षिणारुः दक्षिणाङ्गे व्रणितः यः सारङ्गः मृगः तस्य रक्तेन शोणितेन कपिशं श्याववर्णं वनान्तं वनमध्यं नासीत् न बभूव, 'व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः' इत्यमरः, 'श्यावः स्यात्कपिशः' इत्यप्यमरः। तावत् तावन्तं कालम् इतितर्कपरः इत्युक्तप्रकारेण तर्कपरः वितर्कसंलग्नः स राजा स नरेन्द्रः रावणः, पक्षे—जयद्रथः ताम् सीतां, पक्षे—द्रौपदीम् ईक्षमीक्षं दृष्ट्वा दृष्ट्वा मदनायुधदक्षिणेर्मा मदनायुधेन कामबाणेन दक्षिणेर्मा दक्षिणाङ्गे व्रणितो मृगः बभूव अभूत् कामपरवशोऽभूदित्यर्थः। 'दक्षिणारुलुब्धयोगादक्षिणेर्मा कुरङ्गकः' इत्यमरः। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम्—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात्, पर्यायोक्तमलङ्कारः।

जब तक राजकुमार राम के, दूसरे पक्ष में—राजकुमार युधिष्ठिरादि के बाण से दक्षिण अङ्ग में घालय मृग के शोणित से फीके रङ्गवाली वनभूमि नहीं हुई थी तब तक ऊपर कहे गये प्रकार से वितर्क में संलग्न वह राजा रावण, उस सीता को देख-देख कर, दूसरे पक्ष में—वह राजा जयद्रथ उस द्रौपदी को देख-देख कर कामदेव के बाणों से घायल मृग हो गये। कामपरवश हो गये, यह तात्पर्य है।

गाम्भीर्यादिव रथतोऽवतीर्य रागी
सोऽजानन्निव निजगाद तां तपस्वी।
कासि त्वं कलभकरोरु कस्य दाराः
को वा ते कथय वनान्तवासहेतुः ॥२३॥

रागी अनुरागवान् सः रावणः, पक्षे जयद्रथः गाम्भीर्यादिव मनस्वित्वादिव रथतः स्यन्दनात् अवतीर्य भूमिमागत्य, अत्रोपमानोपमेययोर्द्वयोः प्राकरणिकयोरेवोपमा, यथायं रथादवातरत् तथैव मनस्वित्वादप्यवातरदित्यर्थः, तपस्वी मुनिस्वरूपधारी, पक्षे—तपस्वी धर्मात्मरूपः तां सीताम् , पक्षे—द्रौपदीम् अजानन्निव अपरिचिन्वन्निव निजगाद अपृच्छत्—हे कलभकरोरु कलभस्य गजशावकस्य करवत् शुण्डादण्डवत् ऊरू यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ 'कलभः करिशावकः' इत्यमरः, कथय बोधय त्वं कासि किंजातीयासि कस्य दाराः पत्न्यसि वा वाशब्दोऽत्र समुच्चये 'वा स्याद्विकल्पोपमयोर्वितर्के पादपूरणे। समुच्चये च विश्रम्भे नानार्थातीतयोरपि' इति मेदिनी, ते तव सीतायाः, पक्षे--द्रौपद्याः वनान्तवासहेतुः कः वनप्रान्तनिवासकारणं किम् इति अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम् उपमाद्वयमलङ्कारः।

अनुरागासक्त वह रावण, दूसरे पक्ष में—जयद्रथ गम्भीरता के समान रथ से उतर कर (जिस प्रकार वह रथ से उतर गया उसी प्रकार वह गम्भीरता से भी उतर गया, यह तात्पर्य है) तपस्वी का वेष बना कर, दूसरे पक्ष में—तपस्वी की तरह आचरण दिखा कर उस सीता को, दूसरे-पक्ष में--द्रौपदी को न जानते हुए के समान पूछा—हे हाथी के बच्चे की सूँड़ के समान जाँघ वाली! कहो तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? तथा तुम्हारे वननिवास का क्या कारण है?।

सा तेन पृष्टा चलचेतसापि
विस्पष्टमाचष्ट यथार्थमेव।
तस्यापि हृत्स्थं दशनांशुजालैः
शान्तिं नयन्तीव तमःसमूहम् ॥२४॥

चलचेतसापि चञ्चलचित्तेनापि तेन रावणेन, पक्षे—जयद्रथेन पृष्टा कृतप्रश्ना सा सीता, पक्षे—द्रौपदी दशनांशुजालैः रदनकिरणसमूहैः तस्यापि रावणस्यापि, पक्षे--जयद्रथस्यापि हृत्स्थं हृदयस्थितं तमःसमूहम् अज्ञानसमूहं शान्तिं प्रशमनं नयन्तीव प्रापयन्तीव यथार्थमेव स्वरूपमेव विस्पष्टं स्पष्टरूपेण आचष्ट कथयामास। अत्र इन्द्रवज्रावृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

चञ्चलचित्तवाले उस रावण के भी द्वारा, दूसरे पक्ष में--उस जयद्रथ के भी द्वारा पूछी गयी उस सीता ने, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी ने दाँतों की किरणों

से उस रावण के भी, दूसरे पक्ष में—उस जयद्रथ के भी हृदय में स्थित अज्ञानसमूह का विनाश करती हुई की तरह सही-सही स्पष्ट रूप से कह दिया।

योऽसौ वितानाहितसोमकार्यः
क्षोणीभृताहं जनकेन तेन।
लब्धायि कृष्णाजिनशोभितायां
क्षितौ कलत्रे तनयेव सीता ॥२५॥

अयि अयीति सम्बोधने, यः असौ राजा वितानाहितसोमकार्यः वितानेे यज्ञे आहितं कृतं सोमकार्यं सोमरसपानं येन तेन, क्षोणीभृता राज्ञा जनकेन जनकसंज्ञकेन कलत्रे तनयेव पत्न्यां पुत्रीव कृष्णाजिन-शोभितायां कृष्णसारमृगचर्ममण्डितायां क्षितौ भूमौ यज्ञभूम्यामित्यर्थः, लब्धा प्राप्ता अहं सीता अहं सीतास्मि। इत आरभ्य अष्टाविंशतितमं श्लोकं यावदिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, अत्र उपमालङ्कारः।

हे ! जो यह राजा यज्ञ में सोमरस पान करने वाले हैं उस राजा जनक के द्वारा पत्नी में पुत्री के समान कृष्ण मृगचर्म से सुशोभित भूमि में प्राप्त हुई मैं सीता हूँ।

पक्षे—अयि! अयीति सम्बोधने योऽसौ राजा वितानाहित-सोमकार्यो यज्ञे कृतसोमपानकार्यः तेन क्षोणीभृता राज्ञा जनकेन पित्रा द्रुपदेनेत्यर्थः, कलत्रे कलत्रे सत्यपि कृष्णाजिनशोभितायां क्षितौ यज्ञभूमौ जनकेन जनकभूभृता तनया सीतेव पुत्री सीतासदृशी अजिनशोभितायां क्षितौ मृगचर्ममण्डितायां भूमौ यज्ञभुवीत्यर्थः, लब्धा प्राप्ता अहं कृष्णा अहं द्रौपदी अस्मि। अत्राप्युपमालङ्कारः।

हे ! जो यह यज्ञ में सोमरस पान करने वाला है उस पिता द्रुपद राजा के द्वारा पत्नी के रहने पर भी यज्ञभूमि में राजा जनक के द्वारा पुत्री सीता के समान मृगचर्म से शोभित यज्ञभूमि में प्राप्त की गयी मैं द्रौपदी हूँ।

पतिर्मम क्षत्रमशेषभूभृत्प्रभाविरामोऽयमजातशत्रुः।
भीमश्च भीमावरजश्च जिष्णुर्नासत्यजाताभिरता च साहम् ॥२६॥

मम सीतायाः पतिः भर्ता अयम् क्षत्रं क्षत्रियविशेषः अजातशत्रुः अजातः न उत्पन्नः शत्रुः अरिः यस्य सः, भीमश्च शत्रूणां कृते भयङ्करश्च भीमावरजश्च भीमः शत्रूणां भयङ्करः अवरजः अनुजः लक्ष्मणः यस्य सः जिष्णुः जयनशीलः अशेषभूभृत्प्रभाविरामः अशेषान् सर्वान्

भूभृतः राज्ञः प्रभावयतीति अशेषभूभृत्प्रभावी स चासौ रामः दाशरथिः अशेषभूभृत्प्रभाविरामः अस्तीति शेषः, नासत्यजाताभिरता च न असत्यजातं मिथ्यासमूहो यस्मिन् तस्मिन् रामे अभिरता अनुरक्ता च सा एवंभूता अहम् अस्मीति शेषः।

मुझ सीता के पति क्षत्री तथा नहीं उत्पन्न हुए हैं शत्रु जिस के, शत्रुओं के लिये भयङ्कर, और शत्रुओं के लिये भयङ्कर छोटा भाई लक्ष्मण है जिसका तथा शत्रुओं के जीतने वाले, सभी राजाओं के ऊपर प्रभाव डालने वाले राम हैं। असत्य समूह जिस में नहीं है उस राम में अनुरक्त हुई, इस प्रकार की मैं हूँ।

पक्षे—मम द्रौपद्याः पतिः भर्ता अयं क्षत्त्रं क्षत्रियः अजातशत्रुः युधिष्ठिरः, अशेषभूभृत्प्रभाविरामः अशेषाणां सर्वेषां भूभृतां राज्ञां प्रभाणां कान्तीनां विरामः समाप्तिः यस्मिन् सः, भीमश्च भीमनामकोऽपि भीमावरजश्च भीमस्य अनुजश्च जिष्णुः अर्जुनः, नासत्यजाताभिरता च नासत्यौ अश्विनीकुमारौ तयोः जातौ उत्पन्नौ नकुलसहदेवौ तयोः अभिरता अनुरक्ता च सा एवंभूता अहम् अस्मीति शेषः।

मुझ द्रौपदी के पति यह क्षत्रिय सभी राजाओं की कान्तियों की समाप्ति है जिस में ऐसे युधिष्ठिर हैं, और भीम भी तथा भीम के छोटे भाई अर्जुन भी हैं तथा अश्विनीकुमार के पुत्र नकुल सहदेव में अनुरक्त, इस प्रकार की मैं हूँ।

पितुर्निकेतं श्वशुरश्रियं च विहाय साहं समयप्रतीक्षा।
दायादसंक्रामितराज्यभारस्वभर्तृभक्त्या विपिने वसामि ॥२७॥

पितुर्जनकस्य, पक्षे—द्रुपदस्य निकेतं गृहं, श्वशुरश्रियंच श्वशुरस्य दशरथस्य, पक्षे—पाण्डोः श्रियं राजलक्ष्मीं विहाय त्यक्त्वा समयप्रतीक्षा समयस्य कालावधेः प्रतीक्षा प्रतीक्षणं यस्याः सा, सा एवंभूता अहं सीता, पक्षे—द्रौपदी दायादसंक्रामितराज्यभारस्वभर्तृभक्त्या दायादे भ्रातरि भरते, पक्षे—भ्रातरि दुर्योधने संक्रामितः दत्तः राज्यभारः राज्यसंरक्षणं येन एवंभूतस्य स्वभर्तुः रामस्य, पक्षे—एवंभूतानां स्वभर्तॄणां युधिष्ठिरादीनां भक्त्या प्रेम्णा विपिने कानने वसामि निवसामि।

पिता जनक के, दूसरे पक्ष में—द्रुपद के घर को तथा श्वशुर दशरथ की, दूसरे पक्ष में—पाण्डु की राजलक्ष्मी को छोड़ कर समय की अवधि की प्रतीक्षा

करने वाली, इस प्रकार की मैं सीता, दूसरे पक्ष में—मैं द्रौपदी, भाई भरत के ऊपर, दूसरे पक्ष में—भाई दुर्योधन के ऊपर सौंप दिया है राज्यभार जिस ने ऐसे अपने पति राम के, दूसरे पक्ष में—ऐसे अपने पति युधिष्ठिरादिकों के प्रेम से वन में निवास कर रही हूँ।

इयं हि पूर्वैः पदवी प्रदिष्टा स्त्रीणां त्रिवर्गाधिगमस्य मूलम्।
सुखेषु दुःखेष्वथ वा स्थितोऽयं यदेकभावेन पतिर्निषेव्यः ॥२८॥

हि यतः सुखेषु उपभोगेषु अथवा दुःखेषु विपत्सु स्थितः सन्नपि पतिः स्वामी एकभावेन एकाग्रचित्तेन यन्निषेव्यः सेवनीयः, स्त्रीणां प्रमदानां त्रिवर्गाधिगमस्य धर्मार्थकामानां प्राप्तेः मूलम् आदिकारणम् इयं पदवी अयं मार्गः पूर्वैः पूर्वजैः प्रदिष्टा निर्दिष्टा अस्तीति शेषः।

क्यों कि सुख में अथवा दुःख में रहने पर भी स्वामी जो एकाग्रमन से सेवनीय है, स्त्रियों के लिये धर्म अर्थ तथा काम प्राप्त करने का मूल कारण यह मार्ग पूर्वजों के द्वारा बताया गया है।

इतिब्रुवाणां स्मरबाणभिन्नः स निःसपत्नो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
मनोज्ञहासां कृतहासमेनां पुनर्बभाषे प्रतिषिद्धभाषी ॥२९॥

इति एतद्वचनं ब्रुवाणां कथयन्तीं मनोज्ञहासां रमणीयहासयुक्तां मनुजेन्द्रपत्नीम् एनां रामपत्नीं जानकीं, पक्षे—युधिष्ठिरपत्नीं द्रौपदीं स्मरबाणभिन्नः कामबाणेन विदीर्णः निःसपत्नः सन् तत्कालं रोधकशत्रुरहितः सन् प्रतिषिद्धभाषी अनुचितभाषणशीलः सः रावणः, पक्षे—जयद्रथः पुनर्बभाषे पुनरप्यकथयत्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

यह वचन कहने वाली, सुन्दरहासवाली उस रामपत्नी सीता को, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी को कामबाण से बींधा हुआ, उस समय निरोधक शत्रु से रहित, अनुचित वचन बोलने वाले उस रावण ने, दूसरे पक्ष में—जयद्रथ ने फिर कहा।

अयं पुराविद्भिरुदीर्यमाणः स्फुटो भवन् सम्प्रति लोकवादः।
तृणे महानीलशिलेव सक्तिं करोत्यपात्रे खलु कामिनीति ॥३०॥

पुराविद्भिः प्राचीनकालाभिज्ञैः उदीर्यमाणः कथ्यमानः अयं लोकवादः असौ जनप्रवादः सम्प्रति अस्मिन् समये स्फुटो भवन् स्पष्टो भवन् अस्तीति शेषः, तृणे शष्पे महानीलशिलेव इन्द्रनीलमणिरिव अपात्रे अयोग्ये जने कामिनी प्रमदा सक्तिम् आसञ्जनं करोति

विदधाति इति। यथा इन्द्रनीलमणिः तृणे अनुचितमासञ्जनं कुर्यात्तथैव प्रमदापि अनुचिते आसक्तिं करोतीति तात्पर्यम्। अत्राप्युपेन्द्रवज्रावृत्तमुपमालङ्कारः।

प्राचीन काल के जानने वालों के द्वारा कहा गया यह जनप्रवाद स्पष्ट हो रहा है कि--तिनके में जैसे इन्द्रनील मणि अनुचित रूप से जड़ जाय (चिपक जाय) उसी प्रकार कामिनी अनुचित व्यक्ति में आसक्त हो जाती है।

इदं तु ते भर्तृजनस्य भाग्यं तवाथवा प्राक्तनजन्मपक्तिः।
त्वया विचारोज्झितया स एव न मुच्यते यद् बत दुर्गतोऽपि ॥३१॥

इदं तु एतत्कर्तव्यं तु ते भर्तृजनस्य तव सीतायाः भर्तृजनस्य पतिमनुष्यस्य रामस्य, पक्षे—तव द्रौपद्याः भर्तृजनस्य पतिजनस्य युधिष्ठिरादिकस्य भाग्यं प्राक्तनशुभकर्मफलम् अथवा पक्षान्तरे तव सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः प्राक्तनजन्मपक्तिः पूर्वजन्माशुभकर्मपरिपाकः अस्ति यद् बत इति खेदे विचारोज्झितया विचारविहीनया त्वया सीतया, पक्षे—द्रौपद्या दुर्गतोऽपि दुरवस्थायुक्तोऽपि स एव राम एव, पक्षे—युधिष्ठिरादिक एव न मुच्यते न त्यज्यते। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

यह तो तुझ सीता के पति राम का, दूसरे पक्ष में—तुझ द्रौपदी के पति युधिष्ठिरादि का भाग्य है अथवा तुझ सीता का, दूसरे पक्ष में—तुझ द्रौपदी का पूर्वजन्मार्जित-अशुभकर्म-परिपाक है। दुःख है, जो कि विचार से रहित तुझ सीता के द्वारा, दूसरे पक्ष में—तुझ द्रौपदी के द्वारा दुरवस्था युक्त होने पर भी वही राम, दूसरे पक्ष में—वही युधिष्ठिरादि नहीं त्याग किये जाते हैं।

अनात्मसंभारसमर्थमेनं सा त्वं विहायात्महिते यतस्व।
अप्यस्ति कृत्यं तृणकाष्ठलोष्टैर्न राज्यहीनैर्नरदेववंश्यैः ॥३२॥

सा त्वं सीता, पक्षे—द्रौपदी अनात्मसंभारसमर्थम् आत्मसंभारे स्वभरणपोषणे न समर्थम् एनं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरादिकं विहाय त्यक्त्वा आत्महिते स्वकल्याणे यतस्व प्रयत्नं कुरु। यतो हि तृणकाष्ठलोष्टैरपि तृणादिभिरपि कृत्यमस्ति प्रयोजनं भवति, किन्तु राज्यहीनैः राज्यरहितैः नरदेववंश्यैः राजवंशीयैः मनुष्यैर्न किमपि प्रयोजनं न भवतीत्यर्थः। अत्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् व्यतिरेकोऽलङ्कारश्च।

उस प्रकार की तुम सीता, पक्षे—द्रौपदी अपने भरण-पोषण में भी असमर्थ इस राम को, दूसरे पक्ष में—इस युधिष्ठिरादि को छोड़ कर अपने कल्याण के

लिये प्रयत्न करो। क्यों कि—तिनके काठ तथा ढेलों से भी कुछ न कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है किन्तु राज्य से हीन राजवंशीय मनुष्यों से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, अर्थात् ये तृण आदि से भी निम्नस्तर के हैं।

भिक्षावृत्तिं हरमपि जहौ जाह्नवी सिन्धुनम्रा
हित्वा नागानुपरतमदान् पङ्कजं याति भृङ्गी।
वीर्योदग्रं भजति नृपतिं प्राक्तनान्प्रोह्य पृथ्वी
सारापेताः सरसिजदृशस्तूलतुल्या भवन्ति ॥३३॥

सिन्धुनम्रा सिन्धौ समुद्रे नम्रा अवनता भावाविष्टा इत्यपि भावः, जाह्नवी गङ्गा भिक्षावृतिं भिक्षा याचना एव वृत्तिर्जीवनोपायो यस्य तं निर्धनमिति भावः, हरमपि शिवमपि जहौ तत्याज। भृङ्गी मधुकरी उपरतमदान् दानजलरहितान् नागान् गजान् हित्वा त्यक्त्वा पङ्कजं कमलं याति गच्छति। पृथ्वी भूमिः राजलक्ष्मीरिति भावः प्राक्तनान् पूर्वाश्रितान् वीर्यरहितानिति भावः, भूपान् प्रोह्य परित्यज्य वीर्योदग्रम् अधिकबलशालिनं नृपतिं राजानं भजति सेवते। एतेन सिध्यति यत् सरसिजदृशः कमलनयनायाः योषितः कृते इत्यर्थः, सारापेताः धनरहिताः बलरहिताश्च 'सारो बले स्थिरांशे च मज्जिन पुंसि जले धने' इति मेदिनी, तूलतुल्याः पिचुसदृशाः 'अथ पिचुस्तूलः' इत्यमरः, भवन्ति जायन्ते, तूलवत् तुच्छाः भवन्तीति भावः। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारश्च।

समुद्र की ओर झुकी हुई गङ्गा जी ने भीख माग कर जीविका चलाने वाले शङ्करजी को छोड़ दिया। भ्रमरी भी मद से हीन होने पर हाथियों को छोड़ देती है। पृथ्वी अर्थात् राजलक्ष्मी प्राचीन कमजोर राजाओं को छोड़ कर अधिक बलशाली राजा की सेवा करती है। इस से सिद्ध होता है कि स्त्री के लिये बलहीन तथा धनहीन पुरुष रूई के समान तुच्छ तथा उपेक्षणीय हो जाते हैं।

अहं युवा सुन्दरि सिन्धुराजः कुबेरसंपत्प्रतियोगिलक्ष्मीः।
यो रावणो विद्विषतामसाध्यस्तमागतं मां भज भर्तृभावात् ॥३४॥

सुन्दरि हे सौन्दर्यशालिनि सीते, पक्षे—द्रौपदि अहं प्रत्यक्षो जनः युवा तरुणः सिन्धुराजः समुद्राधिपतिः, पक्षे—सिन्धुदेशस्वामी कुबेरसंपत्प्रतियोगिलक्ष्मीः कुबेरस्य धनदस्य या संपत् सम्पत्तिः तस्याः प्रतियोगिनी प्रतिस्पर्धिनी लक्ष्मीः सम्पत्तिः यस्य सः सम कुबेरपत्ति-

सदृशसम्पत्तिशालीत्यर्थः, यः योऽहं विद्विषतां शत्रूणाम् असाध्यः सन् साधयितुमशक्यः सन् अजेयः इत्यर्थः, रावणः रावणसंज्ञकः, पक्षे—रावयतीति रावणः रोदनकारयिता तम् आगतम् उपस्थितं मां रावणं, पक्षे—जयद्रथं भर्तृभावात् पतिप्रेमतः भज सेवस्व। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् प्रतियोगीत्यत्रोपमालङ्कारः।

हे सुन्दरी सीता, ! दूसरे पक्ष में—द्रौपदी ! मैं तरुण हूँ तथा समुद्र का राजा हूँ, दूसरे पक्ष में—सिन्धु देश का राजा हूँ, कुबेर की सम्पत्ति के समान सम्पत्ति वाला हूँ जो कि शत्रुओं का अजेय बना हुआ रावण नाम वाला हूँ, दूसरे पक्ष में—शत्रुओं को रुलाने वाला हूँ उस मुझ रावण को, दूसरे पक्ष में—मुझ जयद्रथ को पति के रूप में सेवन करो।

सा त्यक्तशोका जटिलामशोकैरुद्यानलक्ष्मीमुपशोभयन्ती।
मत्पाणिलूनप्रसवावतंसा साकं मया संचर सिन्धुदेशान् ॥३५॥

सा तथाभूता मामाश्रयन्तीत्यर्थः त्वम् सीता, पक्षे—द्रौपदी त्यक्तशोका दुर्गतपतिजनितदुःखरहिता आनन्दितेत्यर्थः, अशोकैः अशोककुसुमैः जटिलामावृताम् उद्यानलक्ष्मीं वाटिकाशोभाम् उपशोभयन्ती अधिकशोभमानां कुर्वती मत्पाणिलूनप्रसवावतंसा मम रावणस्य, पक्षे—जयद्रथस्य पाणिना करेण लूनैः चितैः प्रसवैः पुष्पैः अवतंसः कर्णभूषणं यस्याः तथाभूता सती 'प्रसवो गर्भमोचने। उत्पादे स्यादपत्येऽपि फलेऽपि कुसुमेऽपि च' इति मेदिनी, मया रावणेन साकं सह सिन्धुदेशान् समुद्रप्रदेशान् संचर विहर, पक्षे—मया जयद्रथेन सह सिन्धुदेशान् सिन्धुदेशविभागान् संचर विचर। अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस प्रकार की मेरे आश्रय में रहने वाली तुम सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी दुःखी पति होने के शोक से दूर होकर, अशोक के फूलों से भरे हुए बगीचे की शोभा को अधिक सुशोभित करती हुई, मुझ रावण के, दूसरे पक्ष में—मुझ जयद्रथ के हाथ से तोड़े गये फूलों से कान का भूषण वनाने वाली, मुझ रावण के साथ समुद्र के प्रदेशों का विचरण करो, दूसरे पक्ष में—मुझ जयद्रथ के साथ सिन्धु देश के प्रदेशों में विचरण करो।

सा तेन वाक्यैरभिसान्त्वितापि वाताहता विद्युदिव स्फुरन्ती।
अलं प्रलापैरपयाहि पापेत्युक्त्वा परावृत्तमुखी बभूव ॥३६॥

सा सीता, पक्षे—द्रौपदी तेन रावणेन, पक्षे—जयद्रथेन वाक्यैः पूर्वोक्तैः वचनैः अभिसान्त्विताऽपि सान्त्वनां प्रापिताऽपि वाताहता वायुप्रेरिता विद्युदिव विद्युल्लतेव स्फुरन्ती चमत्कृता क्रोधाविष्टेतिभावः पाप हे पापिन् प्रलापैः अलम् अनर्थकवचनानि व्यर्थानि अपयाहि निर्गच्छ, इत्युक्त्वा एतदभिधाय परावृत्तमुखी पराङ्मुखवदना बभूव अभवत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

वह सीता उस रावण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—वह द्रौपदी उस जयद्रथ के द्वारा वचनों से सान्त्वना दिये जाने पर भी हवा से प्रेरित विद्युल्लता के समान चौंकती हुई 'हे पापी तुम्हारा बकबाद करना व्यर्थ है यहाँ से निकल जाओ' यह कह कर दूसरी ओर मुह फेर लिया।

यदा तया प्रार्थितयापि भूयः श्रीरेवया शोण इवापविद्धः।
विकारमासाद्य तदा स तीव्रं बलेन तां हर्तुमियेष बालाम्॥३७॥

यदा यस्मिन् काले भूयः वारं वारं प्रार्थितया मां भजस्व इति प्रार्थनापूर्वं कथितयापि तया सीतया, पक्षे—द्रौपद्या श्रीरेवया नर्मदया शोण इव शोणभद्रनद इव अपविद्धः प्रक्षिप्तः प्रत्याख्यात इत्यर्थः, तदा तस्मिन् काले स रावणः, पक्षे—जयद्रथः तीव्रम् उग्रं विकारं विकृतिं क्रोधमित्यर्थः आसाद्य प्राप्य क्रुद्धो भूत्वेत्यर्थः, तां बालां सीतां, पक्षे—द्रौपदीं बलेन बलप्रयोगेण हर्तुम् अपहर्तुम् इयेष चकाङ्क्ष यत्नपरो बभूवेत्यर्थः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारश्च।

जब वार वार प्रार्थना किये जाने पर भी उस सीता के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस द्रौपदी के द्वारा, नर्मदा नदी के द्वारा शोणभद्रनद के समान प्रक्षिप्त हो गया अर्थात् फटकार दिया गया तब उस रावण ने, दूसरे पक्ष में—इस जयद्रथ ने तीव्र क्रोध करके उस सीता को, दूसरे पक्ष में--उस द्रौपदी को बल प्रयोग से हरण करने की इच्छा की, अर्थात् प्रयत्न किया।

पुरातिदर्पादिव दानवस्त्रयीं विधुन्तुदः पर्वणि चन्द्रिकामिव।
नदीरयस्तीरलतामिवोत्प्लवे स तां जहार प्रसभेन भामिनीम्॥३८॥

पुरा प्राचीनकाले अतिदर्पात् अहंकारात् त्रयीं वेदं दानव इव हयग्रीव इव, पर्वणि पूर्णिमातिथौ चन्द्रिकां चन्द्रज्योत्स्नां विधुन्तुद इव राहुरिव उत्प्लवे स्फातौ वृद्धौ सत्यामित्यर्थः तीरलतां तटव्रततिं

नदीरय इव नदीप्रवाहवेग इव भामिनीं सुन्दरीं तां सीतां, पक्षे—द्रौपदीं स रावणः पक्षे—जयद्रथः प्रसभेन हठात् बलप्रयोगेणेत्यर्थः जहार अपहृतवान्। अत्र वंशस्थवृत्तम् 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात्। मालोपमालङ्कारः।

प्राचीन काल में अत्यन्त अहंकार के कारण जैसे हयग्रीव दानव ने वेद का अपहरण किया था पूर्णिमा के दिन जैसे राहु चन्द्रिका का अपहरण करता है, बाढ के समय जैसे नदी प्रवाह का वेग तीरलताओं का अपहरण करता है उसी प्रकार बलप्रयोग से इस रावण ने सीता का; दूसरे पक्ष में—इस जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया।

तथागतां तामवलोक्य विह्वलां तदार्तनादप्रतिनादमेदुरैः।
गुहामुखै निर्झरबाष्पवर्षिणी स्वयं नु चक्रन्द वनान्तमेदिनी॥३९॥

तथागतां तथाभूतां रावणेन हृतां, पक्षे—जयद्रथेन हृतां तां सीतां, पक्षे—द्रौपदीं विह्वलां विवशाम् अवलोक्य निरीक्ष्य निर्झरबाष्पवर्षिणी निर्झरा एव बाष्पाणि अश्रूणि तानि वर्षतीति निर्झरबाष्पवर्षिणी वनान्तमेदिनी वनप्रान्तभूमिः तदार्तनादप्रतिनादमेदुरैः तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः यः आर्तनादः पीडितशब्दः तस्य यः प्रतिनादः प्रतिध्वनिः तेन मेदुरैः सान्द्रैः गुहामुखैः गिरिकन्दरमुखैः स्वयम् आत्मनापि चक्रन्द नु अक्रन्ददिव। अत्रापि वंशस्थं वृत्तम् रूपकानुप्राणितोत्प्रेक्षालङ्कारश्च।

उस प्रकार रावण के द्वारा हरण की गयी सीता को, दूसरे पक्ष में—जयद्रथ के द्वारा हरण की गयी द्रौपदी को विवश देखकर झरना रूपी आँसू बरसने वाली वनप्रान्तभूमि उस सीता के, दूसरे पक्ष में— उस द्रौपदी के पीड़ा से भरे हुए रोने के शब्द की प्रतिध्वनि से भरे हुए गुफा रूपी मुख से मानो स्वयं रोने लगी।

चलज्जटायौवनसीम्नि तिष्ठता विलोक्य चौर्येण हृतां परेण ताम्।
तदीयकेलीहरिणीगणैः समं चिराय चुक्रोश वने द्विजावलिः॥४०॥

चलज्जटायौ चलन् सञ्चरमाणः जटायुः एतन्नामकः गृध्रराजः यस्मिन् तस्मिन् वनसीम्नि काननसीम्नि तिष्ठता स्थितेन परेण अन्येन रावणेनेत्यर्थः चौर्येण चौर्यक्रियया ताम् सीतां हृताम् अपहृतां विलोक्य दृष्ट्वा वने कानने तदीयकेलीहरिणीगणैः तदीया सीतासम्बन्धिनी या केली क्रीडा तदर्थाः ये हरिणीगणाः मृगीसमूहाः तैः समं साकं

द्विजावलिः पक्षिपरम्परा चिराय बहुकालं यावत् चुक्रोश क्रन्दति स्म। वंशस्थवृत्तं सहोक्तिरलङ्कारः।

इधर उधर विचरण करने वाले जटायु पक्षी हैं जिस में उस वनसीमा में स्थित अन्य व्यक्ति रावण के द्वारा चोरी से हरण की गयी सीता को देख कर वन में उसकी क्रीड़ा के काम में आने वाली हरिणियों के साथ पक्षियों का समूह बहुत देर तक चिल्लाता रह गया।

पक्षे—यौवनसीम्नि यौवने वयसि तिष्ठता स्थितेन परेण शत्रुणा जयद्रथेन चौर्येण चौर्यक्रियया ताम् द्रौपदीम् हृताम् आकृष्टां विलोक्य दृष्ट्वा वने विपिने तदीयकेलीहरिणीगणैः समं द्रौपदीसम्बन्धिनीक्रीडा-मृगीसमूहैः सह चलज्जटा चलन्ती प्रसर्पन्ती जटा संसक्तकेशकलापः यस्याः सा द्विजावलिः ब्राह्मणपरम्परा चिराय चिरकालं यावत् चुक्रोश उच्चैः शब्दं चकार।

युवावस्था की सीमा में रहने वाले शत्रु जयद्रथ के द्वारा चोरी से हरण की गयी उस द्रौपदी को देखकर वन में उसकी क्रीड़ा के सम्बन्धी हरिणीगणों के साथ चञ्चलजटावाले ब्राह्मणों के समूह ने बहुत समय तक चिल्लाने का शब्द किया।

आकृष्यमाणः प्रसभादिवोच्चैस्तदार्तनादैर्निजया रुषा च।
त्वरावतस्तस्य रुरोध मार्गं जवेन भीमः खगराट् समानः ॥४१॥

उच्चैस्तदार्तनादैः तस्याः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः उच्चैः आर्तनादैः दीर्घदुःखार्द्रशब्दैः निजया स्वकीयया रुषा च क्रोधेन च प्रसभात् वेगाद् आकृष्यमाण इव आकृष्ट इव समानः बलदर्पितः भीमः भयङ्करः खगराट् पक्षिराजः जटायुः, पक्षे—खगराट्समानः गरुडतुल्यः भीमः भीमसेनः त्वरावतः वेगेन पलायमानस्य तस्य रावणस्य, पक्षे—जयद्रथस्य मार्गं वर्त्म जवेन अतित्वरया रुरोध रुणद्धि स्म। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः पक्षे उपमापि।

उस सीता के, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी के ऊँचे आर्तनाद से तथा अपने क्रोध से खींचे हुए के समान अहङ्कारवाला भयङ्कर पक्षिराज जटायु ने तेजी से भागते हुए उस रावण का, दूसरे पक्ष में—गरुड़ के समान भीमसेन ने तेजी से भागते हुए जयद्रथ का रास्ता अत्यन्त शीघ्रता से रोक लिया।

परस्पराक्षेपविवृद्धरंहसोः प्रहाररेखाङ्कितगात्रयोर्मिथः।
प्रकर्षविस्मापितसिद्धचारणं तयोरभूत्संगरकर्म दारुणम् ॥४२॥

परस्पराक्षेपविवृद्धरंहसोः परस्परस्य अन्योन्यस्य आक्षेपेण कटूक्त्या विवृद्धं प्रवर्धितं रंहः वेगो ययोः तयोः, मिथः परस्परस्य प्रहाररेखाङ्कितगात्रयोः आघातव्रणचिह्नितशरीरयोः तयोः रावण-जटायुषोः, पक्षे—जयद्रथभीमसेनयोः प्रकर्षविस्मापितसिद्धचारणं प्रकर्षेण युद्धातिशयेन विस्मापिताः विस्मयान्विताः कृताः सिद्धाः देवजातिविशेषाः चारणाः गन्धर्वाश्च यस्मिन् तत् दारुणम् भयङ्करं संगरकर्म युद्धक्रिया अभूत् अभवत्। वंशस्थं वृत्तम्।

एक दूसरे की कटूक्ति से बढ़े हुए वेग वाले, एक दूसरे के प्रहार के व्रण से अङ्कित शरीर वाले, उन रावण जटायु का, दूसरे पक्ष में—उन जयद्रथ भीमसेन का युद्धकला की विशेषता से सिद्धों तथा गन्धर्वों को आश्चर्यित करने वाला भयङ्कर युद्ध हुआ।

चिरप्रहारक्षतपक्षमेनं निगृह्य कण्ठस्थितजीवशेषम्।
स भीमसेनः स्वबलेन निन्ये तां धर्मराजाश्रितदिङ्मुखान्तम्॥४३॥

भीमसेनो भीमा भयकारिणी सेना यस्य सः, सः रावणः स्वबलेन निजपराक्रमेण चिरप्रहारक्षतपक्षं चिरं बहुकालं यावत् यः प्रहारः अस्त्राघातः तेन क्षतौ खण्डितौ पक्षौ पक्षती यस्य तं कण्ठस्थित-जीवशेषं कण्ठे गले स्थितः अवलम्बितः जीवशेषः शेषजीवनभागः यस्य तं मरणासन्नमित्यर्थः, एनं जटायुं निगृह्य दण्डयित्वा पराभूयेत्यर्थः, तां सीतां धर्मराजाश्रितदिङ्मुखान्तं यमराजाधिष्ठितदिगभिमुखं दक्षिणदिगभिमुखमित्यर्थः, निन्ये नयति स्म। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुप-जातिवृत्तम्।

भयङ्कर सेना वाला वह रावण अपने पराक्रम से बहुत देर तक प्रहार करने से कटे हुए पङ्खवाले कण्ठगत शेषजीवनवाले इस जटायु को दण्डित कर के उस सीता को यमराज से अधिष्ठित दिशा के अभिमुख अर्थात् दक्षिण दिशा की ओर ले गया।

पक्षे—स भीमसेनः स वृकोदरः चिरप्रहारक्षतपक्षं चिरप्रहारेण बहुकालाघातेन क्षतः खण्डितः पक्षः सहायः अस्त्ररथादिः यस्य तं कण्ठस्थितजीवशेषं कण्ठगतप्राणम् स्वबलेन स्वपराक्रमेण निगृह्य बद्ध्वा एनं जयद्रथं तां द्रौपदीं च धर्मराजाश्रितदिङ्मुखान्तं युधिष्ठिराधिष्ठितदिगभिमुखं निन्ये नयति स्म।

वह भीम बहुत देर तक प्रहार करने से कटे हुए अस्त्रादिसहायवाले कण्ठगत बचे हुए प्राण वाले इस जयद्रथ को अपने पराक्रम से बान्ध कर तथा

द्रौपदी को भी युधिष्ठिर से युक्त दिशा को ओर ले गये। जिधर युधिष्ठिर थे उधर ही इन दोनों को ले गये।

निशाचराणामुपरोधकर्त्रा पत्या प्रकामं कृतसान्त्वनापि।
निनाय साशोकवनेषु कालं न मृत्युना नाप्यथ जीवितेन ॥४४॥

उपरोधकर्त्रा अवरोधकेन निशाचराणां पत्या राक्षसाधिपेन रावणेन प्रकामं पर्याप्तं कृतसान्त्वनापि साम्ना परिबोधितापि सा सीता अशोकवनेषु अशोकवृक्षवाटिकासु न मृत्युना मरणेन अथ जीवितेन अपि न, रामविरहेण मृतवद्भूता इत्यर्थः, कालं समयं निनाय क्षपितवती। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

रोकरखने वाले राक्षसाधिपति रावण के द्वारा पर्याप्त सान्त्वना देने पर भी वह सीता अशोकवाटिका में न मर कर और न जीवित रह कर अर्थात् अर्धमृतावस्था में समय विताने लगी।

पक्षे—निशाचराणां राक्षसानां वकहिडिम्बकिर्मीरादीनाम् उपरोधकर्त्रा विनाशकेन पत्या भीमसेनेन प्रकामं पर्याप्तं कृतसान्त्वनापि सा द्रौपदी शोकवनेषु शोकप्रधानेषु वनेषु न मृत्युना अथ जीवितेन अपि न कष्टां दशामापन्नेत्यर्थः, कालं समयं निनाय अतिवाहितवती।

वकहिड़िम्ब किर्मीर आदि राक्षसों के विनाश करने वाले अपने पति भीम के द्वारा पर्याप्त सान्त्वना देने पर भी वह द्रौपदी शोक से भरे हुए उस वन में न मर कर और न जीवित रह कर अर्थात् कष्टमय दशा प्राप्त कर के समय विताने लगी।

ततो वनेषु भ्रमते शशंस भर्त्रे प्रजानामरणिं प्रियां स्वाम्।
द्विजोत्तमः कृच्छ्रगतः श्रमेण परेण विभ्यद्धरिणापनीताम् ॥४५॥

ततस्तदनन्तरं वनेषु काननेषु भ्रमते भ्रममाणाय प्रजानां जनानां भर्त्रे पत्ये रामायेत्यर्थः श्रमेण युद्धजनितपरिश्रमेण कृच्छ्रगतः कष्टं प्राप्तः द्विजोत्तमः पक्षिराजः जटायुः विभ्यद्धरिणा विभ्यद् त्रस्यन् हरिः इन्द्रः यस्मात् तेन परेण शत्रुणा रावणेनेत्यर्थः, अपनीताम् हृताम् अरणिं क्रोधानलोत्पादिकां स्वां स्वकीयां प्रियां वल्लभां शशंस कथयामास। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इसके बाद वन में सीता के अन्वेषण के लिये भ्रमण करने वाले, प्रजाओं के पति राम को युद्धश्रम से विपत्ति दशा प्राप्त करने वाले पक्षिश्रेष्ठ जटायु ने,

डरते हैं इन्द्र जिससे ऐसे शत्रु रावण के द्वारा क्रोधानल उत्पन्न करने वाली अपनी प्रिया सीता को कह दिया। अर्थात् 'सीता को रावण ने हर लिया' यह कह दिया।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं वनेषु भ्रमते प्रजानां भर्त्रे युधिष्ठिराय परेण श्रमेण अतिपरिश्रमेण कृच्छ्रगतः विपद्ग्रस्तः बिभ्यद् अरणेरनासादनभयात् त्रस्यन् द्विजोत्तमः ब्राह्मणश्रेष्ठः स्वपुरोहितः धौम्यः स्वां स्वकीयां प्रियां प्रेमपात्रम् अरणिं अग्न्युत्पादनकाष्ठं हरिणापनीतां हरिणरूपधारिणा धर्मेणापहृतां शशंस कथयामास।

इसके बाद वन में भ्रमण करने वाले प्रजाओं के पोषक युधिष्ठिर को अति परिश्रम से विपद्ग्रस्त अरणि खो जाने के डर से डरे हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ अपने पुरोहित धौम्य ने अपनी प्रिय अरणि (अग्नि-उत्पादनकाष्ठ) हरिणरूपधारी धर्मराज के द्वारा हरण की गयी बता दिया। अपनी अरणि हरण किये जाने का समाचार कह दिया।

वने पुनस्तत्पदवीं विचिन्वन्निजानुजप्राणभयोद्यतेन।
कबन्धभूतेन परिश्रमार्तः केनापि भूतेन स संगतोऽभूत् ॥४६॥

पुनस्तदनन्तरं वने कानने तत्पदवीं तस्याः सीतायाः पदवीं मार्गं तद्धरणमार्गमित्यर्थः। विचिन्वन् अन्वेषयन् परिश्रमार्तः श्रमपीडितः स रामः निजानुजप्राणभयोद्यतेन निजानुजस्य स्वकनिष्ठभ्रातुर्लक्ष्मणस्य प्राणभये मारणे उद्यतेन तत्परेण कबन्धभूतेन शिरोहीनशरीरस्वरूपेण केनापि भूतेन केनापि प्राणिना दनुसंज्ञककबन्धराक्षसेनेत्यर्थः। संगतोऽभूत् संमिलितोऽभवत्। अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम्।

इसके बाद वन में सीता के हरने के मार्ग का अन्वेषण करनेवाले परिश्रम से पीडित वह राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के प्राण लेने के लिये उद्यत कबन्ध रूपी किसी जीव से अर्थात् दनुनामक राक्षस से मिले। उस से संघर्ष हो गया, यह तात्पर्य है।

पक्षे—पुनस्तदनन्तरं वने कानने तत्पदवीं तस्याः अरणेः पदवीं हरणमार्गं विचिन्वन् अन्वेषयन् परिश्रमार्तः परिश्रमेण पीडितः स युधिष्ठिरः निजानुजप्राणभयोद्यतेन निजानां स्वकीयानाम् अनुजानां भ्रातॄणां भीमादीनां प्राणभये मारणे उद्यतेन उद्युक्तेन कबन्धभूतेन कस्य जलस्य बन्धभूतेन प्रतिबन्धीभूतेन 'कं शिरो जलमाख्यातं कं

सुखं च प्रकीर्तितम्' इत्येकाक्षरी कोशः, केनापि भूतेन केनापि प्राणिना यक्षेणेत्यर्थः संगतोऽभूत् संमिलितोऽभवत् ।

इसके बाद वन में उस अरणि के हरण करने का मार्ग खोजनेवाले परिश्रम से थके हुए वह युधिष्ठिर अपने भाई भीमादिकों के प्राण लेने के लिये उद्यत पानी लेने के प्रतिबन्धस्वरूप किसी प्राणी अर्थात् यक्ष से मिले ।

स तेन पूर्वं कृतविग्रहोऽपि
तद्व्याहृतार्थप्रतिवाक्यदानैः ।
भृशं धिनोति स्म मनस्तदीयं
न याति को नाम वशं गुणानाम् ॥४७॥

स विराधः तेन रामेण पूर्वं प्रथमं कृतविग्रहोऽपि युद्धं कृत्वापि तद्व्याहृतार्थप्रतिवाक्यदानैः तस्य रामस्य व्याहृतार्थस्य कथितप्रयोजनस्य प्रतिवाक्यदानैः समुचितोत्तरप्रदानैः तदीयं रामसम्बन्धि मनः चित्तं भृशम् अत्यन्तं धिनोति स्म प्रीणयति स्म, को नाम कः प्राणी गुणानाम् शोभनकर्तव्यानां वशं न याति वशीभूतो न भवति सर्वे भवन्तीत्यर्थः । अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारश्च ।

उस विराध ने पहले उनसे युद्ध करने पर भी पश्चात् उनके अपने प्रयोजन के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का समुचित उत्तर देने से उस राम का मन प्रसन्न किया. यहाँ अर्थान्तरन्यास से कवि कहता है कि कौन ऐसा प्राणी है जो गुणों का वशीभूत न हो जाय ।

पक्षे—स यक्षः तेन युधिष्ठिरेण पूर्वं प्रथमं कृतविग्रहोऽपि भ्रातॄणां मारणात् कृतकलहोऽपि तद्व्याहृतार्थप्रतिवाक्यदानैः तस्य यक्षस्य व्याहृतार्थस्य पृष्टोद्देश्यस्य प्रतिवाक्यदानैः समुचितोत्तरप्रदानैः युधिष्ठिरद्वारेत्यर्थः, तदीयं तस्य यक्षस्य सम्बन्धि मनः मानसं भृशमत्यन्तं धिनोति स्म प्रीणाति स्म, प्रसन्नमभूदित्यर्थः, को नाम कः प्राणी गुणानाम् सद्व्यवहाराणां वशं न याति न गच्छति, सर्वेऽपि गच्छन्त्येव । पश्चात्स एव यक्षो भीमादीनजीवयदित्यवधेयम् ।

वह यक्ष पहले भीमादिकों के मारने से झगड़ा कर लेने पर भी पश्चात् उसके पूछे गये प्रश्नों के युधिष्ठिर के द्वारा समुचित उत्तर देने से उसका मन प्रसन्न हो गया । (जिससे उस ने युधिष्ठिर के भाइयों को जिला दिया) कवि कहता है कि कौन ऐसा प्राणी है कि गुणों के वशीभूत न हो जाय ?

ततो वधाविष्कृतदिव्यदेहतो
हितोपदेशं प्रतिपद्य धर्मतः ।
निजानुजापत्प्रतिमोक्षणादसौ
विपत्पयोधिं मनुते स्म गोष्पदम् ॥४८॥

ततस्तदनन्तरं वधाविष्कृतदिव्यदेहतः वधेन रामहस्तजनित-मृत्युना आविष्कृतः प्रकटितः दिव्यः स्वर्गीयः देहः शरीरं यस्य तस्मात् कबन्धदानवात् धर्मतः धर्मेण शुद्धभावेनेत्यर्थः, हितोपदेशं सुग्रीव-मित्रताकर्तव्यरूपम् उपदेशं प्रतिपद्य गृहीत्वा निजानुजापत्प्रति-मोक्षणात् निजानुजस्य स्वभ्रातुर्लक्ष्मणस्य आपत्प्रतिमोक्षणात् कबन्धजनितविपत्परित्राणात् असौ रामः विपत्पयोधिं वननिवासरूप-विपत्तिसमुद्रं गोष्पदं गोखुरगर्तजलं तद्वत्सुतरमित्यर्थः, मनुते स्म जानाति स्म । अत्र वंशस्थवृत्तम् ।

इसके बाद राम के पवित्र हाथों से वध होने के कारण प्रकटित स्वर्गीयशरीर वाले उस कबन्ध से शुद्धभावना के द्वारा सुग्रीव की मित्रतारूपी उपदेश ग्रहण कर के अपने भाई लक्ष्मण का कबन्ध की आपत्ति से परित्राण करने से उस राम ने वनवासरूपी विपत्समुद्र को गाय के खुर के गड्ढे के पानी के समान सुतर समझ लिया ।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं वधाविष्कृतदिव्यदेहतः वधात् भीमा-दीनां वधात् वधानन्तरमित्यर्थः, आविष्कृतः प्रकटितः दिव्यदेहः स्वर्गीयशरीरं येन तस्मात् धर्मात् धर्मराजात् हितोपदेशं भाविहितफल-दायकमुपदेशं प्रतिपद्य गृहीत्वा, निजानुजापत्प्रतिमोक्षणात् निजानु-जानां स्वभ्रातॄणां भीमादीनाम् आपत्प्रतिमोक्षणात् मरणरूपविपदो मोचनात् धर्मराजेनैव पुनर्जीवनदानादित्यर्थः, असौ युधिष्ठिरः विपत्पयोधिं वनवासरूपं विपत्समुद्रं गोष्पदं गोखुरगर्तजलम् तद्वत्सुतरमित्यर्थः, मनुते स्म अवधारयामास ।

इस के बाद भीमादिकों के वध करने के पश्चात् अपना स्वर्गीय शरीर प्रकट करनेवाले उस धर्मराज से भावि हितफल देनेवाले उपदेश ग्रहण कर के अपने भाइयों के मरणरूपी विपत्ति से वचाने के कारण उस युधिष्ठिर ने वनवास रूपी विपत्समुद्र को गाय के खुर के गड्ढे का पानी समझ लिया । अर्थात् गोखुर के पानी के समान ही इसे भी सुतर समझ लिया ।

ततः समुद्दीपितमत्स्यमण्डलं समुन्नमत्कीचकवंशदुर्गमम् ।
परैरचिन्त्याचरितं समुच्चलन्नराधिपम्पावनमाससाद सः ॥४९॥

ततस्तदनन्तरं सः रामः समुद्दीपितमत्स्यमण्डलं समुद्दीपितं प्रकटितं मत्स्यमण्डलं मत्स्यसमूहो यस्मिन् तत् समुन्नमत्कीचकवंशदुर्गमम् समुन्नमन्तः उन्नतीभूताः ये कीचकवंशाः सच्छिद्रवेणवः तैर्दुर्गमम् दुःसञ्चरम् पम्पावनं पम्पासरःप्रान्तकाननं परैरचिन्त्याचरितं परैः अन्यैः अचिन्त्यम् अननुगमनीयम् आचरितं शरभङ्गशवर्यादिमोक्षरूपं कार्यं यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा समुत् सहर्षमेतदपि क्रियाविशेषणम्, चलन्नराधि चलन् अपगच्छन् दूरीभवन्नित्यर्थः, नराधिः नराणां मानसी व्यथा यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा आससाद प्राप्तवान् । अत्र वंशस्थं वृत्तम् ।

इसके बाद राम उछलने से प्रकट हुए हैं मछली के समूह जिस में, ऊँचे ऊँचे खड़े छेदयुक्त बाँसों से दुर्गमनीय पम्पा सरोवर के प्रान्त के वन में दूसरों के द्वारा न सोचनेयोग्य शरभङ्गशबरीमोक्ष आदि आचरण है जिस कर्म में उस प्रकार, हर्षयुक्त होकर, दूर होती है लोगों की मानसिक व्यथा जिस कर्म में उस तरह पहुँचे ।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं परैः शत्रुभिः दुर्योधनादिभिरित्यर्थः, अचिन्त्याचरितम् अचिन्त्यं चारादिभिरप्यनाकलनीयम् आचरितं कार्यं यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा अतिगूढरूपेणेत्यर्थः, समुच्चलन् तस्माद् वनान्निर्गच्छन् सः युधिष्ठिरः, समुद्दीपितमत्स्यमण्डलं समुद्दीपितं प्रख्यापितं मत्स्यमण्डलं मत्स्यदेशः येन तम्, समुन्नमत्कीचकवंशदुर्गमम् समुत् सहर्षं नमन् नम्रीभवन् प्रणमन्नित्यर्थः, यः कीचकवंशः शतसोदरसमूहयुक्तः कीचकः तेन दुर्गमम् शत्रुभिर्दुराक्रमणीयम् पावनं पवित्रं नराधिपं राजानं विराटमित्यर्थः, आससाद प्राप्तवान् ।

इसके बाद शत्रुओं के द्वारा न पता लगाने योग्य आचरण हैं जिस कार्य में उस प्रकार अतिगुप्तरूप से उस वन से निकल कर बाहर हो जानेवाले युधिष्ठिर अपने मत्स्यदेश को प्रसिद्ध करने वाले, प्रणाम करने वाले सौ भाई कीचक के समूह के कारण शत्रुओं से अनभिभवनीय पवित्र राजा विराट के पास पहुँचे ।

मातङ्गतेजःक्षयितारिशक्तौ स वानरेन्द्रं विषये वसन्तम् ।
समीरपुत्रेण कृतानुकूल्यः संप्राप राजाविदितः सखायम् ॥५०॥

विदितः प्रसिद्धः स राजा रामः समीरपुत्रेण वायुसुतेन हनूमता कृतानुकूल्यः कृतम् आनुकूल्यम् सुग्रीवसमीपनयनरूपमनुकूलाचरणं यस्य सः एवं भूतः सन् मातङ्गतेजःक्षयितारिशक्तौ मतङ्गमुनेः पुत्रो मुनिः मातङ्गः तस्य तेजसा तपोबलेन शापदानेनेत्यर्थः, क्षयिता विनष्टा अरेः शक्तिः वालिनः बलं तत्रागमनरूपमित्यर्थः, यत्र तस्मिन् विषये देशे वसन्तम् निवसन्तं वानरेन्द्रं कपिपतिं सुग्रीवं सखायं मित्रं संप्राप प्राप्तवान् तेन संमिलितोऽभूदित्यर्थः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति-वृत्तम् ।

वायु के पुत्र हनुमान् के द्वारा वहाँ तक ले जाने का अनुकूल आचरण किये हुए, संसार में प्रसिद्ध वह राजा राम मातङ्ग मुनि के शाप से जहाँ वालि की आगमन-शक्ति नष्ट हो गयी है उस स्थान में निवास करने वाले मित्र बने हुए वानरों के पति सुग्रीव के पास पहुँचे।

पक्षे—समीरपुत्रेण वायुसुतेन भीमेन कृतानुकूल्यः कृतम् आनुकूल्यं मार्गान्वेषणरूपमनुकूलाचरणं यस्य सः अत एव राजाविदितः राज्ञा दुर्योधनेन अविदितः अज्ञातः सन् सः युधिष्ठिरः मातङ्गतेजः-क्षयितारिशक्तौ मातङ्गानां हस्तिनां तेजोभिः बलैः क्षयिता विनष्टा अरीणां शत्रूणां शक्तिः पराक्रमः यत्र तस्मिन् विषये देशे मत्स्यदेशे इत्यर्थः, वसन्तं निवसन्तं नरेन्द्रं राजानं विराटं वा अथवा सखायं मित्रं मित्रभूतमित्यर्थः, संप्राप सम्यक् प्राप्तवान् ।

वायुपुत्र भीम के द्वारा मार्ग-अन्वेषण आदि अनुकूल आचरण किये हुए, इसलिये राजा दुर्योधन से अज्ञात रह कर वह युधिष्ठिर हाथियों के बल से नष्ट हो गयी हैं शत्रुओं की शक्ति जिस में उस मत्स्य देश में निवास करने वाले राजा विराट के पास अथवा यों कहिये कि मित्र के पास पहुँचे।

सोऽथ रन्धनसंगीतहरिगोत्रावलम्बनैः ।
तत्कर्मभिः स्वं कृतिनं विभावस्वन्वयोऽस्मरत् ॥५१॥

विभावस्वन्वयः विभावसोः सूर्यस्य अन्वयः सन्ततिः सूर्यपुत्र इत्यर्थः, 'विभावसुर्ग्रहपतिस्त्विषां पतिरहर्पतिः' इत्यमरः, सः सुग्रीवः, धनसंगीतहरिगोत्रावलम्बनैः धनसंगिनी धनसंयुक्ता इता गता 'इण गतौ' वालिहस्तगता इत्यर्थः, या हरिगोत्रा वानरमही 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः, तस्या अवलम्बनैः आश्रयीभूतैः राज्यदापना-

श्रयीभूतैरित्यर्थः, तत्कर्मभिः तस्य रामस्य कर्मभिः क्रियाभिः, स्वम् आत्मानम् अक्षरम् अविनश्वरं वालिभयरक्षितमित्यर्थः, कृतिनं सफलं च अस्मरत् अमन्यत। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

सूर्य के पुत्र उस सुग्रीव ने धन से संयुक्त वालि के हाथ में गयी हुई जो वानरों की भूमि अर्थात् राज्य उसके सम्बन्ध में उस राम के कृत्यों से अपने को सुरक्षित तथा सफल माना।

पक्षे—विभावस्वन्वयः सूर्यवंशीयः सः विराटः अक्षरन्धनसंगीतहरिगोत्रावलम्बनैः अक्षः द्यूतक्रीडा, रन्धनं भोजनवस्तुपचनं, संगीतं गानविद्या नृत्यकलापि, हरयः अश्वाः, गोत्रा गवां समूहः तेषाम् अवलम्बनैः आश्रयीभूतैः तत्कर्मभिः तेषां युधिष्ठिरादीनां कार्यैः 'गव्या गोत्रा गवां वत्सधेन्वोर्वात्सकधैनुके' इत्यमरः, स्वम् आत्मानं कृतिनं सफलम् अस्मरत् अमन्यत।

सूर्यवंशीय उस विराट राजा ने उन के द्यूत-खेलना, रसोई-पकाना, संगीत-नृत्यकला, घोड़ों का प्रबन्ध तथा गाय-समूह का प्रबन्ध, इन कार्यों से अपने को सफल माना।

स व्यञ्जयन्नात्मभुजस्य तेजः संहृष्टविद्विड्बललोपिमल्लान्।
रणेषु भीमो रघुवीरवर्यस्तालान्वने वायुरिवोन्ममाथ ॥५२॥

रणेषु भीमः युद्धेषु भयङ्करः रघुवीरवर्यः रघुवंशीयवीरेषु श्रेष्ठः सः रामः आत्मभुजस्य स्वबाहोः संहृष्टविद्विड्बललोपि संहृष्टाः प्रसन्नाः ये विद्विषः शत्रवः तेषां बलं लोपयितुं शीलं यस्य तत् तेजः पराक्रमं 'तेजो दीप्तौ प्रभावे च स्यात्पराक्रमरेतसोः' इति मेदिनी, व्यञ्जयन् प्रकटयन् वने कानने वायुरिव प्रभञ्जन इव मल्लान् बलीयसः तालान् तालवृक्षान् 'मल्लः पात्रे कपोले च मत्स्यभेदे बलीयसि' इति मेदिनी, उन्ममाथ चिच्छेद। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

युद्ध में भयङ्कर रघुवंशीय वीरों में श्रेष्ठ उस राम ने अपनी भुजाओं का, प्रसन्न शत्रुओं का बल नष्ट करनेवाला पराक्रम प्रकट करते हुए वन में वायु के समान बड़े मजबूत ताड़ के पेड़ों को काट कर गिरा दिया।

पक्षे—रघुवीरवर्यः रघुवीरवत् रामवत् वर्यः श्रेष्ठः स भीमः वृकोदरः आत्मभुजस्य स्वबाहोः तेजः पराक्रमं व्यञ्जयन् प्रकटयन् वने कानने वायुः पवनः तालानिव तालवृक्षानिव रणेषु युद्धेषु संहृष्ट-

विद्विड्बललोपिमल्लान् संहृष्टाश्च प्रसन्नाश्च ये विद्विड्बललोपिनः शत्रुसैन्यविनाशकाः मल्लाः योधाः कीचकसहोदराः तान् उन्ममाथ मर्दयति स्म, तान् संजहारेत्यर्थः। अत्राप्युपमालङ्कारः।

राम के समान श्रेष्ठ उस भीम ने अपनी भुजाओं का पराक्रम प्रकट करते हुए, वन में वायु जैसे तालवृक्षों को तोड़ता है उसी प्रकार युद्ध में प्रसन्न तथा शत्रुसेना का विनाश करनेवाले पहलवान कीचक के भाइयों को विनष्ट कर दिया।

दारोपरोधेन कृतापराधं रणोद्यतं भ्रातृजनेन सार्धम्।
मूर्छद्यशोदुन्दुभिशत्रुमेनं स कीचकं दावमिव व्यमथ्नात् ॥५३॥

स रामः दारोपरोधेन दाराणां सुग्रीवस्य पत्न्याः उपरोधेन उपरुध्य रक्षणेन कृतापराधम् अपराधिनम् अत एव भ्रातृजनेन सार्धं भ्रात्रा सुग्रीवेण सह रणोद्यतं युद्धाय सन्नद्धं दुन्दुभिशत्रुं दुन्दुभिनामकस्य दानवस्य संहारकम् एनं वालिनं दावम् आरण्यकं कीचकमिव सच्छिद्रवंशमिव, यथा कश्चित्सच्छिद्रं वंशं त्रोटयति तद्वदित्यर्थः, मूर्च्छद्यशः मूर्छत् प्रवर्धमानं यशः यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा व्यमथ्नात् मर्दयति स्म, मारयामास इत्यर्थः। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस राम ने सुग्रीव की पत्नी के रोक रखने से अपराधी तथा भाई सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत दुन्दुभि-राक्षस के शत्रु इस वालि को, जैसे कोई छेद से युक्त जङ्गली बाँस को तोड़ डाले उसी प्रकार अपने यश को बढ़ाते हुए मथ डाला अर्थात् मार डाला।

पक्षे—स भीमः दारोपरोधेन दाराणां पत्न्याः द्रौपद्याः उपरोधेन पादप्रहाररूपोपद्रवकरणेन कृतापराधम् अपराधिनं रणोद्यतं युद्धतत्परं भ्रातृजनेन सार्धम् अनुजैः सहितं कीचकं कीचकनामानं विराटश्यालकं दावमिव वनमिव मूर्च्छद्यशोदुन्दुभि मूर्छद् यशः वर्धमाना कीर्तिरेव दुन्दुभिः वाद्यविशेषः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा व्यमथ्नात् मर्दयति स्म। सभ्रातृकं कीचकममारयदित्यर्थः।

उस भीम ने पत्नी द्रौपदी के पादप्रहाररूपी उपद्रव करने से अपराधी तथा युद्ध करने के लिये उद्यत उस के भाइयों के सहित कीचक को अपने यशरूपी दुन्दुभि का आघोष करते हुए अर्थात् यश फैलाते हुए मार डाला।

भावान्तरं प्राप्य सुरेन्द्रसूनौ स्वस्थानमासेदुषि वीरवर्ये।
राजानमुज्जृम्भितमत्स्यकेतुं सुग्रीवमृद्धाङ्गदमाप लक्ष्मीः ॥५४॥

वीरवर्ये वीरश्रेष्ठे सुरेन्द्रसूनौ इन्द्रपुत्रे वालिनि भावान्तरं अन्यद् जन्म प्राप्य रामबाणेन मरणाद् देवशरीरं प्राप्येत्यर्थः 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इत्यमरः, स्वस्थानम् स्वः स्थानं स्वर्गरूपं स्थानम् अत्र 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति विसर्गलोपोऽस्ति, आसेदुषि प्राप्तवति सति, वालिनि मृते सतीति यावत्, उज्जृम्भितमत्स्यकेतुम् उज्जृम्भितः उद्दीपितः मत्स्यकेतुः कामः यस्य तम् कामक्रीडासक्तीभवन्तमित्यर्थः ऋद्धाङ्गदम् ऋद्धः युवराजत्वेन समृद्धः अङ्गदः अङ्गदसंज्ञकः भ्रातृजः यस्य तम्, राजानं वानराधिपतिभूतं सुग्रीवम् लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः आप प्राप्तवती। अत्र इन्द्रवज्रावृत्तम्।

वीरश्रेष्ठ वालि के मर कर स्वर्ग चले जाने पर कामक्रीड़ा में उद्दीप्त मन वाले, युवराज होने से समृद्ध अङ्गद से युक्त राजा सुग्रीव के पास राजलक्ष्मी पहुँच गई।

पक्षे—वीरवर्ये वीरश्रेष्ठे सुरेन्द्रसूनौ इन्द्रपुत्रे अर्जुने भावान्तरं स्वभावान्तरं उर्वशीशापात् नपुंसकस्वभावं प्राप्य उपगत्य 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इत्यमरः, स्वस्थानं विराटस्य आत्मीयं स्थानं भवनमित्यर्थः, आसेदुषि प्राप्तवति सति बृहन्नलारूपेण तद्भवने निवसति सतीत्यर्थः, उज्जृम्भितमत्स्यकेतुम् उज्जृम्भितः ऊर्ध्वं नीतः मत्स्यदेशस्य केतुः ध्वजः येन तं, 'ग्रहभेदे ध्वजे केतुः' इत्यमरः, ऋद्धाङ्गदम् ऋद्धं बहुमूल्यत्वात्समृद्धम् अङ्गदं बाहुभूषणं यस्य तम् सुग्रीवं शोभना ग्रीवा यस्य तं राजानं विराटं लक्ष्मीः शोभा आप प्राप्तवती। तेन राजा विराटः सुशोभितोऽभवदिति तात्पर्यम्।

वीरों में श्रेष्ठ इन्द्रपुत्र अर्जुन के नपुसकस्वभाव धारण कर के बृहन्नला नाम से उस के घर में निवास करने पर मत्स्य देश का झण्डा ऊँचा करने वाले, बहुमूल्य बाहुभूषण वाले, तथा सुन्दर ग्रीवा (गरदन) वाले उस राजा विराट की बहुत बड़ी शोभा हुई।

महीभृतो माल्यवतस्तदा तं बृहन्नलाढ्ये कटके वसन्तम्।
परप्रणीता स्वकलत्रपीडा कङ्कं न सा लम्भयदार्तियोगम् ॥५५॥

तदा तस्मिन् काले माल्यवतः माल्यवन्नाम्नः महीभृतः पर्वतस्य बृहन्नलाढ्ये बृहन्ति महान्ति यानि नलानि वीरणानि तृणविशेषाः तैः आढ्ये पूरिते कटके नितम्बे मध्यभागे इति यावत्, वसन्तं निवसन्तं रामं सा परप्रणीता शत्रुणोपस्थापिता स्वकलत्रपीडा स्वपत्नीवियोग-

दुःखं कं कं कथंभूतं कथंभूतम् आर्तियोगम् पीडासंयोगं न अलम्भयत् न प्रापयत् ? सर्वप्रकारकमपि पीडासंयोगमकारयदेवेत्यर्थः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

उस समय माल्यवान् नामक पहाड़ के बड़े बड़े सरपत (नल) नामक तृण से भरे हुए नितम्ब प्रदेश में निवास करने वाले राम को शत्रु के द्वारा उपस्थित की गई पत्नीवियोग पीडा ने कौन कौन सा कष्ट योग (कष्ट का भोग) नहीं कराया। सभी प्रकार का कष्ट भोग कराया, यह भाव है।

पक्षे—तदा तस्मिन् काले माल्यवतः पुष्पमाल्यं धारयतः तस्य विराटस्य बृहन्नलाढ्ये बृहन्नलायुक्ते कटके राजधान्यां 'राजधान्यां नितम्बेऽद्रेः वलये कटकोऽस्त्रियाम' इति त्रिकाण्डशेषः, वसन्तं तिष्ठन्तं कङ्कं कङ्कब्राह्मणरूपिणं युधिष्ठिरं सा परप्रणीता परेण अन्येन कीचकेनेत्यर्थः, प्रणीता कृता स्वकलत्रपीडा स्वपत्न्याः पीडा उपद्रवरूपकष्टम् आर्तियोगं पीडासंयोगं न अलम्भयत् न प्रापयत्, भीमेन कीचकं हत्वा तद्वैरप्रतिशोधनादिति भावः।

उस समय पुष्पमाला से युक्त उस विराट की बृहन्नला से अर्थात् अर्जुन से युक्त राजधानी में निवास करने वाले कङ्क को अर्थात् युधिष्ठिर को दूसरे के द्वारा अर्थात् कीचक के द्वारा किये गये पत्नी द्रौपदी के उस कष्ट ने भीम के द्वारा कीचक संहाररूपी वैरशोधन हो जाने के कारण पीडा का संयोग न कराया।

अथ घननिकुरम्बैरम्बुसंभारलम्बैः
स्थगितगगनगर्भा विद्युदुद्द्योतहृद्या।
नृपकुलजययात्राकेलिदीर्घान्तराया
पथिकमिथुनमृत्युः प्रावृडुज्जृम्भते स्म ॥५६॥

अथ अनन्तरम् अम्बुसंभारलम्बैः अम्बूनां जलानां यः संभारः बाहुल्यं तेन लम्बैः अवनम्रैः घननिकुरम्बैः मेघगणैः 'समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः। स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः, स्थगितगगनगर्भा स्थगितः निबिडीकृतः गगनगर्भः आकाशमध्यभागः यया सा, विद्युदुद्द्योतहृद्या विद्युतां सौदामनीनाम् उद्द्योतेन स्फुरणेन हृद्या मनोहरा, नृपकुलजययात्राकेलिदीर्घान्तराया नृपकुलस्य राजसमूहस्य या जययात्राकेलिः शत्रुविजयप्रस्थानक्रीडा तस्याः दीर्घः

महान् अन्तरायः विघ्नः यया सा, पथिकमिथुनमृत्युः पथिकस्य प्रवासस्थितस्य यद् मिथुनं स्त्रीपुरुषयुग्मं तस्य मृत्युः यस्यां सा, अत्र पथिकस्य गृहे तत्पत्न्याश्च प्रावृषा मरणतुल्यं कष्टं भवतीति भावः, प्रावृट् वर्षर्तुः उज्जृम्भते स्म स्वाडम्बरयुक्ता बभूव। अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्।

इसके बाद पानी के भार से झुके हुए बादलों के समूह से आकाश को निबिड़ कर देने वाली, बिजली के चमकने से रमणीय, राजाओं के समूह की शत्रुविजययात्रा-क्रीड़ा में महान् विघ्न करने वाली, परदेशी के जोड़े को (परदेश में परदेशी को तथा घर पर उसकी पत्नी को) मृत्यु देनेवाली वर्षा ऋतु अपने आडम्बर के साथ प्रकट हो गई।

शीकरक्षरणशीतमारुताश्चातकप्रकरकौतुकावहाः ।
बभ्रमुः कृतवियोगिविभ्रमा वारिवाहनिवहा विहायसि ॥५७॥

ततः शीकरक्षरणशीतमारुताः शीकराणां जलकणानां क्षरणेन मोचनेन शीताः शीतलाः मारुताः वायवः यैस्ते, चातकप्रकरकौतुकावहाः चातकप्रकराणां स्तोककसमूहानां कौतुकं मानसाह्लादम् आवहन्तीति ते, कृतवियोगिविभ्रमाः कृतः विहितः वियोगिनाम् प्रियतमवियुक्तानां विभ्रमः दिनेऽपि रात्रिभ्रमादिको भ्रमः यैस्ते, वारिवाहनिवहाः मेघसमूहाः विहायसि आकाशे बभ्रमुः भ्रमन्ति स्म। इत आरभ्य सप्ततितमं श्लोकं यावद् रथोद्धता वृत्तम् 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्।

पानी के शीकर बरसाने से हवा को शीतल बनाने वाले, चातकों के समूह को मानसिक आह्लाद देने वाले, वियोगियों को दिन में रात का भ्रम, मेघाडम्बर में राक्षस या यमराज का भ्रम, इत्यादि भ्रम पैदा करनेवाले बादलों के समूह आकाश में घूमने लगे।

द्राक्तडित्कनककोणताडितैर्दध्वने घनघटामहानकैः ।
ताण्डवं तदनुवृत्तिपेशलं मण्डलेन विदधे शिखण्डिनाम् ॥५८॥

तडित्कनककोणताडितैः तडिद्विद्युल्लता एव कनककोणः सुवर्णवादनदण्डः 'कोणो वीणादिवादनम्' इत्यमरः, तेन ताडितैः प्रहतैः, घनघटामहानकैः घनघटा मेघाडम्बराः एव महानकाः महापटहाः तैः

द्राक् तूर्णमेव दध्वने ध्वनितम्, शिखण्डिनां मयूराणां 'शिखा चूडा शिखण्डस्तु पिच्छवर्हे नपुंसके' इत्यमरः, मण्डलेन समूहेन तदनुवृत्तिपेशलं तदनुवृत्त्या मेघध्वनेरनुसरणेन पेशलं सुन्दरं 'चारौ दक्षे च पेशलः' इत्यमरः, ताण्डवम् उद्धतनृत्तं विदधे कृतम्। अत्र रूपकमलङ्कारः।

विद्युल्लता रूपी दण्ड से ताडित होकर मेघघटारूपी नगाड़ों ने अति शीघ्र महान् शब्द किया, इसके पश्चात् मयूर के समूह ने उस मेघशब्द के अनुसरण करने के कारण सुन्दर ताण्डव नृत्य किया।

याचितेन बहुचातकद्विजैरम्बुदेन जलदानपूर्वकम्।
हेममुष्टिरिव दूरमीरिता संचचार रुचिराचिरप्रभा ॥५९॥

चातकद्विजैः स्तोककपक्षिभिरेव ब्राह्मणैः बहु वारं वारं याचितेन प्रार्थितेन अम्बुदेन मेघेन जलदानपूर्वकं तोयप्रदानपूर्वं पूर्वं जलं दत्त्वेति यावत्, जलेन विधिपूर्वकदानसंकल्पसहितमित्यपि भावः, दूरमीरिता दूरात् प्रक्षिप्ता हेममुष्टिरिव मुष्टिपरिमितसुवर्णमिव रुचिरा शोभना अचिरप्रभा तडिल्लता 'शम्पा शतह्रदाह्रादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभा। तडित्सौदामनी विद्युद्' इत्यमरः, संचचार आकाशे विचरति स्म। अत्रोपमालङ्कारः।

चातक पक्षीरूपी ब्राह्मणों के द्वारा वार वार याचना करने पर मेघ के द्वारा जलदानपूर्वक दूर से फेंके गये मुट्ठी भर सोने के समान सुन्दर विद्युल्लता आकाश में चमकने लगी।

प्रावृषा जलदपङ्क्तिबाहुना चण्डधाम्नि विहितोपगूहने।
केलिभिन्नमिव रत्नकङ्कणं खण्डमिन्द्रधनुषः स्म शोभते ॥६०॥

प्रावृषा वर्षर्तुनायिकया जलदपङ्क्तिबाहुना जलदपङ्क्तिः मेघपरम्परा एव बाहुः भुजः तेन चण्डधाम्नि सूर्ये विहितोपगूहने कृतालिङ्गने आलिङ्गिते सतीति यावत् केलिभिन्नं रभसक्रीडाभग्नं रत्नकङ्कणमिव मणिवलयमिव इन्द्रधनुषः इन्द्रचापमण्डलस्य खण्डं शकलं शोभते स्म शुशुभे। अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः।

वर्षाऋतुरूपी नायिका के द्वारा मेघपङ्क्तिरूपी भुजा के द्वारा सूर्य के आलिङ्गित होने पर, उद्धत क्रीड़ा से टूटे हुए रत्न के कङ्गन के समान इन्द्र धनुष का टुकड़ा शोभित होने लगा।

केकिनां कलितकेकमुच्चकैर्बर्हभारमवतत्य नृत्यताम् ।
चन्द्रकैर्विचकसेऽभ्रमण्डलं द्रष्टुमक्षिनिकरैरिवाच्छकैः ॥६१॥

उच्चकैः उन्नतं बर्हभारं पिच्छसमूहम् अवतत्य विस्तार्य कलितकेकं कलिता गृहीता केका स्ववाणी यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा 'केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः, नृत्यतां नृत्यं कुर्वतां केकिनां मयूराणाम् चन्द्रकैः मेचकैः पिच्छस्थितखण्डचन्द्राकारचिह्नैरित्यर्थः 'समौ चन्द्रक-मेचकौ' इत्यमरः अभ्रमण्डलं मेघसमूहं द्रष्टुम् अवलोकितुम् अच्छकैः स्वच्छैः अक्षिनिकरैरिव लोचनसमूहैरिव विचकसे विकसितम् शुशुभे इत्यर्थः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

ऊंचे पिच्छसमूहों को फैलाकर अपनी बोली बोलते हुए नाचने वाले मयूरों के चन्द्रक मेघमण्डल को देखने के लिए स्वच्छ आँखों के समूह के समान सुशोभित हुए ।

व्योम्नि खेलदचिरांशुनर्त्तकीहारयष्टिनिभयाम्बुधारया ।
पर्यगालि निपतद्घनोपलव्याजनायकमणिप्रकीर्णया ॥६२॥

व्योम्नि आकाशे निपतद्घनोपलव्याजनायकमणिप्रकीर्णया निपतन् नीचैरागच्छन् यः घनः मेघः एव उपलः मणिः नीलमणिरित्यर्थः, तद्व्याजेन तत्कपटेन नायकमणिना मध्यरत्नेन 'मध्यरत्ने नेतरि नायकः' प्रकीर्णया गुम्फितया अत एव खेलदचिरांशुनर्तकीहारयष्टि-निभया खेलन्ती क्रीडन्ती या अचिरांशुनर्तकी विद्युल्लता एव नृत्यकारिणी तस्याः हारयष्टिनिभया हारलतातुल्यया अम्बुधारया जलासारेण पर्यगालि परिगलितम् । अत्र रूपकोपमापह्नुतीनां सङ्करोऽलङ्कारः ।

आकाश में लटकने वाले बादलरूपी नीलमणि के कपट से मध्यरत्न (सुमेरु) से गुम्फित, अत एव खेलती हुई विद्युल्लता रूपी नर्तकी के हार की लरी के समान वर्षा के पानी की धारा गिरने लगी ।

लोकमुन्मदयितुं प्रसाधिता चूर्णमुष्टिरिव मीनकेतुना ।
दिङ्मुखेषु नवनीपजं रजो वार्षिकेण मरुता विचिक्षिपे ॥६३॥

वार्षिकेण वर्षासु भवेन मरुता वायुना दिङ्मुखेषु दिक्षु मीनकेतुना कामेन लोकमुन्मदयितुं लोकं जनम् अत्र जातावेकवचनं जनानित्यर्थः उन्मदयितुं उन्मदान् कर्तुं प्रसाधिता मन्त्रेण सिद्धीकृता चूर्णमुष्टिरिव

वासयोगमुष्टिरिव मुष्टिनोत्थापितो वासयोग इव 'चूर्णानि वासयोगाः स्युः' इत्यमरः, नवनीपजं रजः नवीनकदम्बपुष्पोद्भवः परागः 'नीप-प्रियककदम्बास्तु हलिप्रियः' इत्यमरः, विचिक्षिपे क्षिप्तम्। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

वर्षा ऋतु के पवन के द्वारा दिशाओं में नवीन कदम्बफूल के पराग बिखेर दिये गये। ऐसा मालूम होता था कि मानो कामदेव ने लोगों को काममद से उन्मत्त बनाने के लिये मन्त्र द्वारा सिद्ध की गई किसी सुगन्धित चूर्ण की मुट्ठी उठाकर बिखेर दी है।

स्पर्शसौख्यमनिलेन लम्भिताः कामिनेव वनराजियोषितः।
उच्छ्वसन्नवकदम्बकेसरा रेजिरे सपुलकोद्गमा इव ॥६४॥

कामिना इव कामुकपुरुषेण इव अनिलेन पवनेन स्पर्शसौख्यम् स्पर्शजनितसुखम् लम्भिताः प्रापिताः वनराजियोषितः वनराजयः योषितः इव उच्छ्वसन्नवकदम्बकेसराः उच्छ्वसन्तः विकसन्तः नवाः कदम्बस्य नीपस्य केसराः किञ्जल्काः यासां ताः अत एव सपुलकोद्गमा इव पुलकोद्गमसहिता इव रोमाञ्चिता इवेत्यर्थः, रेजिरे शोभन्ते स्म। अत्र सपुलकोद्गमा योषितः इव उच्छ्वसन्नवकदम्बकेसरा वनराजयः रेजिरे इति उपमालङ्कारः।

कामुक पुरुष के समान वायु के द्वारा स्पर्श-सुख पहुँचाये जाने पर रोमाञ्च से युक्त स्त्री के समान नवीन कदम्ब के केसर विकसित करनेवाली वनश्रेणियाँ सुशोभित हुईं।

मारुतेन निजवाहनोचितं नूनमिन्दुहरिणं जिघृक्षता।
आततैर्जलदवागुराशतैर्ऋक्षमण्डलमपि न्यरुध्यत ॥६५॥

नूनं निश्चितमेतद् यद् मारुतेन पवनेन निजवाहनोचितम् आत्मयानयोग्यम् इन्दुहरिणं चन्द्रमण्डलस्थितं मृगं जिघृक्षया ग्रहीतुमिच्छया आततैः प्रसारितैः जलदवागुराशतैः जलदाः मेघा एव वागुराः मृगबन्धकजालानि 'वागुरा मृगबन्धनी' इत्यमरः, तासां शतैः बहुभिः बहुवागुराभिरिति स्पष्टार्थः, ऋक्षमण्डलमपि ताराकदम्बकमेव भल्लूकवृन्दं तदपि न्यरुध्यत। अवरुद्धमभूत् 'नक्षत्रमृक्षं भं तारा' इति 'ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः' इत्यप्यमरः। अत्र रूपकमलङ्कारः।

यह निश्चित है कि पवन के द्वारा अपने वाहन के योग्य चन्द्रमण्डलस्थित हिरण को पकड़ने की इच्छा से बादलरूपी फैलाये गये सैकड़ों जाल के द्वारा

ऋक्षमण्डल अर्थात् ताराओं का समूहरूपी जो ऋक्षमण्डल भालुओं का समूह, वह भी निरुद्ध हो गया अर्थात् जाल में फँस गया।

शाद्वलेषु निचिताः परिस्फुरद्वारिबिन्दुषु सुरेन्द्रगोपकाः।
मौक्तिकव्यतिकरातिसुन्दरैः पद्मरागमणिभिः समं बभुः ॥६६॥

परिस्फुरद्वारिबिन्दुषु द्योत्यमानजलबिन्दुयुक्तेषु शाद्वलेषु हरिततृणेषु निचिताः संलग्नाः सुरेन्द्रगोपकाः रक्तकीटविशेषाः, मौक्तिकव्यतिकरातिसुन्दरैः मौक्तिकव्यतिकरेण मुक्तामणिसम्पर्केण अतिसुन्दरैः अतिशोभमानैः पद्मरागमणिभिः समं लोहितकरत्नैः सदृशं यथा स्यात्तथा बभुः शुशुभिरे। अत्रोपमालङ्कारः।

चमकती हुई जलबूंदों वाली घासों पर सटे हुए इन्द्रगोप किरौने, मोती के सम्पर्क होने से अत्यन्त सुन्दर पद्मरागमणियों के समान सुशोभित हुए।

उत्तरीयमिव केतकावलिः केसरौघमनिले विधुन्वति।
भृङ्गलोलसुमनोदलच्छलात् प्राहिणोदिव कटाक्षमायतम् ॥६७॥

केतकावलिः केतकपुष्पपरम्परा अनिले वायौ उत्तरीयमिव उत्तरीयवस्त्रमिव केसरौघं किञ्जल्कसमूहं विधुन्वति कम्पयति सति भृङ्गलोलसुमनोदलच्छलात् भृङ्गेण भ्रमरेण चञ्चलं यद् सुमनोदलं पुष्पच्छदं तस्य च्छलाद् व्याजाद् आयतं दीर्घं कटाक्षम् अपाङ्गदर्शनं प्राहिणोदिव अक्षिपदिव। अत्रापह्नुत्युपबृंहितोत्प्रेक्षालङ्कारः।

केतकीफूल की श्रेणी हवा के द्वारा उत्तरीयाञ्चलवस्त्र के समान केसरसमूह के हिलाये जाने पर भौंरे से हिलते हुए पुष्पपंखुरियों के बहाने से लम्बी कटाक्ष फेंकने लगी।

चञ्चुचुम्बितमनोज्ञमालतीकुड्मलाः प्रतिपदं मधुव्रताः।
दध्रिरे रजतसूचिकोटिभिः सीव्यमानहरिनीलविभ्रमम् ॥६८॥

प्रतिपदं प्रतिस्थानं सर्वत्रेत्यर्थः, चञ्चुचुम्बितमनोज्ञमालतीकुड्मलाः चञ्चुभिः तुण्डैः चुम्बितानि संस्पृष्टानि मनोज्ञानि सुन्दराणि मालतीकुड्मलानि मालतीपुष्पकोरकाणि यैस्ते मधुव्रताः भ्रमराः, रजतसूचिकोटिभिः रजतस्य रूप्यद्रव्यस्य याः सूचयः सलाकाः तासां कोटिभिः अग्रभागैः सीव्यमानहरिनीलविभ्रमम् सीव्यमानाः संस्यूताः ये हरिनीलाः इन्द्रनीलाः मणयः तेषां विभ्रमं विलासं तत्सौन्दर्यमित्यर्थः दध्रिरे धारयामासुः। अत्र कथमन्येषां विभ्रममन्ये धारयन्त्विति

तद्विभ्रमसदृशो विभ्रमः कल्प्यते। अथ च चञ्चुचुम्बितमनोज्ञमालती-कुड्मलानां मधुव्रतानां तथा रजतसूचिकोटिसीव्यमानेन्द्रनीलमणीनां च बिम्बप्रतिबिम्बभावे पर्यवसानं तेनात्र निदर्शनालङ्कारः।

सब जगह अपने मुख के अग्र भाग से सुन्दरमालतीकुड्मलों के स्पर्श करने वाले भौंरे, चान्दी को सलाकाओं की नोकों में जड़े हुए इन्द्रनीलमणि की छटा धारण करने लगे।

अप्रकाशित-निशाकरानना मेघनीलवसनावगुण्ठिताः।
रागिणां रजनयो वितेनिरे चित्ततोषमभिसारिका इव ॥६९॥

अप्रकाशितनिशाकराननाः अप्रकाशितः अप्रकटितः निशाकरः चन्द्र एव आननम् उपक्रमः यस्याः सा, मेघनीलवसनावगुण्ठिताः मेघाः घना एव नीलवसनानि तैः अवगुण्ठिताः आच्छादिताः रजनयः रात्रयः, अप्रकाशितनिशाकराननाः अप्रकाशितम् ईषत्प्रकाशितम्, अत्र ईषदर्थे नञ्, निशाकरः इव आननं यासां ताः, आननमित्यत्र जातावेकवचनम्, मेघनीलवसनावगुण्ठिता मेघवन्नीलैः वस्त्रैः कृतशिरोऽवगुण्ठनाः, एवंभूताः अभिसारिका इव अभिसारिकासदृश्यः 'अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाभिसरत्येव कथ्यते साऽभिसारिका' इति दर्पणः, रागिणाम् अनुरागवतां चित्ततोषं मनःसन्तोषं वितेनिरे चक्रुः। अत्रोपमालङ्कारः।

चन्द्रमा रूपी प्रारम्भिक अवयव अप्रकट रखने वाली, मेघरूपी नीलवस्त्रों से आच्छादित रात्रियों ने, थोड़ा सा प्रकट है चन्द्रमा के समान मुख जिन का, तथा मेघ के समान नीले वस्त्रों से सिरोऽवगुण्ठन करने वाली अभिसारिकाओं के समान अनुरागी पुरुषों के मन में अत्यन्त सन्तोष प्राप्त कराया।

उच्छ्वसत्कुटजगुच्छपाण्डुरा भृङ्गसंगतशिलीन्ध्रबन्धुराः।
कन्दलीदलसमुज्ज्वला बभुः प्रावृषेव ककुभः प्रसाधिताः ॥७०॥

उच्छ्वसत्कुटजगुच्छपाण्डुराः उच्छ्वसन्ति विकसन्ति यानि कुटजगुच्छानि वत्सकपुष्पस्तवकानि तैः पाण्डुराः ईषच्छ्वेतवर्णाः, भृङ्गसंगतशिलीन्ध्रबन्धुराः भृङ्गसंगतं भ्रमरमिलितं यत् शिलीन्ध्रं कदलीपुष्पं तेन बन्धुराः शोभमानाः 'शिलीन्ध्रं कदलीपुष्पे कबरे ना झषान्तरे' इति 'बन्धुरः शोभने नम्रे वरत्रारज्जुकन्धयोः' इति च मेदिनी, कन्दलीदलसमुज्ज्वलाः कन्दलीदलैः गुल्मविशेषपत्रैः समुज्ज्वलाः दीप्यमानाः 'कन्दली तु मृगगुल्मप्रभेदयोः' इति मेदिनी, ककुभः

दिशः, प्रावृषा वर्षर्तुना प्रसाधिता इव शृङ्गारिता इव बभुः शुशुभिरे। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

विकसित कुटज (कोरैया) फूल के गुच्छों से कुछ श्वेत वर्णवाली, भौंरों से मिले हुए जो केले के फूल उन से सुशोभित, कन्दली नामक गुल्म के पत्तों से चमकीली दिशाएँ वर्षा ऋतु के द्वारा सजाई हुई के समान सुशोभित होने लगीं।

ततस्तडिच्चञ्चलसंपदस्ते वियोगिरामाशयदत्तशोकाः।
दशाविशेषा इव शात्रवाणां क्रमेण वर्षादिवसाः प्रशेमुः ॥७१॥

ततस्तदनन्तरं तडिच्चञ्चलसंपदः तडितां चञ्चला अस्थिरा संपद् येषु ते, पक्षे—तडिदिव चञ्चला संपद् येषां ते, वियोगिरामाशयदत्तशोकाः वियोगिनां वियुक्तनां याः रामाः ललनाः तासामाशयेऽन्तःकरणे दत्तः शोकः यैस्ते, पक्षे—वियोगी सीतावियुक्तः यः रामः दाशरथिः तस्य आशये हृदये दत्तः शोकः यैस्ते, अन्यस्मिन्पक्षे—वियोगी पक्षिसंयोगी कृष्णः गरुडसंयोगीत्यर्थः रामः बलरामः तयोः आशये हृदये दत्तः शोकः यैस्ते, पाण्डवानामनुपलब्धेरिति भावः, शात्रवाणां शत्रूणां रावणादीनां, पक्षे—दुर्योधनादीनां दशाविशेषा इव अभ्युदयदशा इव वर्षादिवसाः वर्षावासराः क्रमेण शनैः शनैः प्रशेमुः शान्ताः बभूवुः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्। श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारश्च।

इस के बाद बिजली की चञ्चल सम्पत्ति वाले, वियोगीपुरुषों की पत्नी के हृदय में शोक पैदा करने वाले वर्षा ऋतु के दिन, बिजली के समान चञ्चल सम्पत्तिवाली सीतावियोगी राम के हृदय में शोक पैदा करने वाली शत्रु रावणादिकों की अभ्युदयदशा के समान, दूसरे पक्ष में—बिजली के समान चञ्चल सम्पत्ति वाली, गरुडपक्षी के संयोगी कृष्ण तथा बलराम के हृदय में पाण्डवों के न मिलने से शोक पैदा करने वाली, शत्रु दुर्योधनादिकों की अभ्युदयदशा के समान धीरे धीरे शान्त हो गये। जैसे रावण के, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के अच्छे दिन समाप्त हो गये उसी प्रकार वर्षा ऋतु के भी दिन समाप्त हो गये।

अथोडुमालोज्ज्वलतारहारा
ज्योत्स्नास्मितोल्लासिशशाङ्कवक्त्रा।
उदूढफुल्लाम्बुरुहा शरच्छ्रीः
प्रावृट्पयोधेरुदियाय रम्या ॥७२॥

अथ अनन्तरम् उडुमालोज्ज्वलतारहारा उडुमाला तारकापङ्क्तिरेव उज्ज्वलदीप्यमानः तारः निर्दोषः 'मुक्ता शुद्धौ तु तारः स्याद्'

इत्यमरः, हारः मुक्तावली यस्याः सा, पक्षे—तारकापङ्क्तिरिव दीप्यमाननिर्दोषमुक्तावली यस्याः सा, ज्योत्स्नास्मितोल्लासिशशाङ्कवक्त्रा ज्योत्स्ना चन्द्रिका एव स्मितं मन्दहासः तेन उल्लासी प्रसन्नः शशाङ्कः चन्द्रमाः एव वक्त्रं मुखं यस्याः सा, पक्षे—ज्योत्स्नेव यः मन्दहासः तेन प्रसन्नं शशाङ्कः इव वक्त्रं मुखं यस्याः सा, उदूढफुल्लाम्बुरुहा उदूढानि धृतानि फुल्लानि विकसितानि अम्बुरुहाणि कमलानि यया सा, पक्षे—धृतं विकसितं कमलं यया सा, रम्या मनोहरा शरच्छ्रीः शरदृतुशोभा, पक्षे—शरदिव लक्ष्मीः विष्णुप्रिया रमा इति यावत्, प्रावृट्पयोधेः प्रावृडेव वर्षर्तुरेव पयोधिः समुद्रः, पक्षे—प्रावृडिव समुद्रः तस्माद् उदियाय प्रादुरभवत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। अत्र रूपकमलङ्कारः, अथ च शरच्छ्रियो व्यवहारे रमायाः व्यवहारसमारोपात्समासोक्तिः, यदि चात्र विशेष्यस्यापि श्लिष्टत्वान्न समासोक्तिरनुमन्यते तर्हि श्लेषध्वनिः।

इस के बाद ताराओं की पङ्क्तिरूपी सुन्दरमुक्तावली वाली, चान्दिनीरूपी मन्दहास से प्रसन्न चन्द्रमारूपी मुख वाली, खिलेहुए कमलों को धारण करने वाली, रमणीय, शरद् ऋतु की शोभा वर्षाऋतु रूपी समुद्र से निकल पड़ी। समासोक्ति-अलङ्कार के पक्ष में—ताराओं की पङ्क्ति के समान चमकीले मुक्ताहार वाली, चान्दनी के समान जो मन्दहास उस से प्रसन्न तथा चन्द्रमा के समान मुखवाली, खिलाहुआ कमल का फूल धारण करने वाली, मनोहर, शरद् ऋतु के समान लक्ष्मी वर्षाऋतु के समान समुद्र से निकलीं।

पद्मेषु हंसानसनेषु भृङ्गान् मनःसु रागं मृगलोचनानाम्।
प्रायुङ्क्त पाथःसु च संप्रसादं स्थानेष्वनेकेषु गुणान् घनान्तः॥७३॥

घनान्तः शरत्समयः पद्मेषु कमलेषु हंसान् चक्राङ्गान् 'हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राङ्गा मानसौकसः' इत्यमरः, असनेषु बन्धूकपुष्पेषु 'सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः' इत्यमरः, भृङ्गान् भ्रमरान्, मृगलोचनानां हरिणाक्षीणां मनःसु मानसेषु रागम् अनुरागं, पाथःसु जलेषु संप्रसादं प्रसन्नताम् एवंप्रकारेण अनेकेषु बहुषु स्थानेषु गुणान् प्रायुङ्क्त प्रयोजयति स्म। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम्। अनेकेषां प्रस्तुतानामेकक्रियारूपधर्माभिसम्बन्धात्तुल्ययोगितालङ्कारः।

शरत्समय ने कमलों में हंसों को, बन्धूकफूल में भ्रमरों को, युवतियों के मन में अनुराग को जल में निर्मलता को, इस प्रकार अनेक स्थानों में गुणों को संयुक्त करा दिया।

कुबेरगुप्तात्सरसं सरस्तः सरोजरेणूत्करगौरपक्षाः ।
गताम्बुवाहं गगनान्तरालं जगाहिरे राजमरालमालाः ॥७४॥

सरोजरेणूत्करगौरपक्षाः सरोजानां कमलानां ये रेणवः परागाः तेषां यः उत्करः समूहः तेन गौराः गौरवर्णाः पक्षाः पक्षतयः यासां ताः, राजमरालमालाः राजहंसश्रेणयः, कुबेरगुप्तात् कुबेरसंरक्षितात् सरस्तः सरोवरात् मानससरस इत्यर्थः, गताम्बुवाहं विगतमेघं गगनान्तरालम् आकाशमध्यभागं सरसं सहर्षं यथा स्यात्तथा 'रसो जलं रसो हर्षो रसः शृङ्गारपूर्वकः। रसः सालद्रुनिर्यासः पारदोऽपि रसो विषम्' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, जगाहिरे प्रविविशुः। अत्रो-पेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

कमल के पराग के समूह से गोरे पङ्खवाली राजहंसों की श्रेणियां कुबेर के द्वारा सुरक्षित मानससरोवर से उड़ कर मेघ से रहित आकाश के मध्य भाग में हर्ष के साथ विचरण करने लगीं।

निरस्य धाराधरशैवलौघं सलीलमालम्बितरश्मिसूत्रम् ।
भूषामणिं भ्रष्टमिवार्कबिम्बं प्रावृट् सरस्तः शरदुज्जहार ॥७५॥

शरत् शरदृतुः धाराधरशैवलौघं धाराधरः वारिदः शैवलौघः इव जलनीलीसमूह इव तम् 'जलनीली तु शैवलं शैवालोऽथ' इत्यमरः, निरस्य अपसार्य प्रावृट्सरस्तः प्रावृट् वर्षर्तुः सर इव सरोवर इव तस्मात् भ्रष्टं पतितं, पक्षे—विघटितं भूषामणिमिव भूषणरत्नमिव अर्कबिम्बं सूर्यमण्डलं सलीलं लीलया सहितं विलासेन सहितमिति यावत् आलम्बितरश्मिसूत्रम् आलम्बितः अधोऽवलम्बितः अथवा गृहीतः किरणः रश्मिसूत्रमिव प्रग्रहसूत्रमिव यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा उज्जहार निःसारयति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुप-जातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

शरदृतु ने सेंवार के समान बादलों को हटाकर सरोवर के समान वर्षाऋतु में से खोये हुए भूषण मणि के समान सूर्य बिम्ब को खेलवाड़ में ही रस्सी के समान किरणों को लटका कर अथवा पकड़ कर निकाल लिया।

प्रबोधभाजः परमस्य पुंसो विलोचने द्वे किल मुक्तनिद्रे ।
व्यपेतपाथोधरपक्ष्मरोधं व्यराजतां व्योमनि पुष्पवन्तौ ॥७६॥

प्रबोधभाजः प्रबुद्धस्य परमस्य पुंसः नारायणस्य मुक्तनिद्रे त्यक्तनिद्रे द्वे उभे विलोचने चक्षुषी किलेतिवार्तायाम् 'वार्ता

संभाव्ययोः किल' इत्यमरः, व्योमनि आकाशे पुष्पवन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ 'एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ' इत्यमरः, व्यपेतपाथोधरपक्ष्मरोधं पाथोधरा एव पक्ष्माणि अक्षिलोमानि तेषां रोधः निरोधः, व्यपेतः अपगतः पाथोधरपक्ष्मरोधः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा व्यराजताम् अशोभेताम् । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् । पक्ष्मेत्यत्ररूपकमलङ्कारः । यदि च किलेत्यस्य संभावनार्थः क्रियेत तर्ह्युत्प्रेक्षापि।

शरद्ऋतु के कारण क्षीरसमुद्र में निद्रात्याग करने वाले नारायण की दोनो आँखे सूर्य और चन्द्रमा आकाश में बादल रूपी बरौनी (पक्ष्म) के निरोध से रहित होकर सुशोभित हुए ।

मौनं मयूरीषु नदीषु कार्श्यं विपाण्डुरत्वं च बलाकिनीषु ।
शरद्यभीष्टागमनिर्वृताभि र्न्यासीकृतानीव वियोगिनीभिः ॥७७॥

शरदि शरदृतौ अभीष्टागमनिर्वृताभिः प्रियतमागमनसुखिताभिः वियोगिनीभिः इतः पूर्वं वियुक्ताभिः योषिद्भिः मयूरीषु मयूराङ्गनासु मौनमभाषणं नदीषु सरित्सु कार्श्यं दौर्बल्यं बलाकिनीषु बलाका वकपङ्क्तिः, तद्युक्तासु मेघमालाष्वित्यर्थः विपाण्डुरत्वं विशेषपाण्डुरत्वं न्यासीकृतानीव निःक्षेपीकृतानीव, कालं प्रतीक्षमाणाभिः तासु स्थापितानीव । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

शरद् ऋतु में प्रियतम के आ जाने से सुखी इस समय से पूर्व वियोगिनियों के द्वारा मयूरियों में अपना मौनधारण, नदियों में अपनी दुर्बलता, मेघमालाओं में अपनी पाण्डुरता ये चीजें धरोहर (निःक्षेप) के रूप में रख दी गईं ।

आसाद्य वर्षारजनीविरामं प्रबोधहेतोर्मकरध्वजस्य ।
पठद्भिरुच्चैरिव मङ्गलानि कुलैः शुकानामुदकूजि हृद्यम् ॥७८॥

वर्षारजनीविरामं वर्षाः वर्षर्तुरेव रजनी रात्रिः तस्या विरामं समाप्तिम् आसाद्य प्राप्य मकरध्वजस्य कामस्य प्रबोधहेतोः जागरणार्थम् मङ्गलानि माङ्गलिकपद्यानि उच्चैः उच्चस्वरेण पठद्भिरिव उच्चारयद्भिरिव शुकानां कुलैः शुकपक्षिणां व्रातैः हृद्यम् मनोहरं यथा स्यात्तथा उदकुजि शब्दितम् । अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

वर्षा ऋतु रूपी रात्रि की समाप्ति (प्रातःकाल) प्राप्त करके कामदेव को

जगाने के लिये ऊँचे स्वर से माङ्गलिक पद्य पढ़ते हुए के समान शुग्गों के समूह मनोहर शब्द करने लगे।

विशीर्णसंक्रन्दनचापलेशच्छवीनि कीर्णानि वनस्थलीषु।
सलीलमादाय मयूरबर्हाण्युत्तंसयन्ति स्म किरातनार्यः ॥७९॥

किरातनार्यः शबराणां योषितः विशीर्णसंक्रन्दनचापलेशच्छवीनि विशीर्णम् गलितं शकलीभूय पतितमित्यर्थः, यत् संक्रन्दनचापम् इन्द्रधनुः, 'संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः। आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षा' इत्यमरः, तस्य लेशः लवः 'लवलेशकणाणवः' इत्यमरः, तद्वच्छवीनि तद्वत्कान्तिमन्ति, वनस्थलीषु काननभूमिषु कीर्णानि गलित्वेतस्ततः पतितानि मयूरबर्हाणि केकिनां पिच्छानि आदाय गृहीत्वा सलीलं सविलासं यथा स्यात्तथा उत्तंसयन्ति स्म उत्तंसान् कर्णभूषणानि कुर्वन्ति स्म। अत्रापि तदेव उपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

किरातों की स्त्रियां टूटकरगिरे हुए इन्द्रधनुष के टुकड़ों के समान वनभूमि में जहाँ तहाँ गिर गिर कर बिखरे हुए मयूर के पिच्छों को लेकर विलास के साथ उन्हें कर्णभूषण बना रही हैं।

पयोदकालेन समुद्रगानां कालुष्यमुत्पाद्य समुज्झितानाम्।
नवा नखाङ्का इव रेजुरुक्ष्णां शृङ्गाग्ररेखास्तटसीम्नि लग्नाः ॥८०॥

पयोदकालेन घनसमयेन कर्त्रा समुद्रगानां समुद्रपर्यन्तं गच्छन्तीनां नदीनामिति शेषः, पक्षे—मुद्रया रूप्यकेण सहितः समुद्रः धनवानित्यर्थः (मुद्रा=सिक्का इति भाषा) तं गच्छन्ति धनलोभात्तं भजन्ते इति समुद्रगाः तासां स्त्रीणाम् अत एव कालुष्यं मालिन्यम्, पक्षे-वैमनस्यम् उत्पाद्य उत्पन्नं कृत्वा समुज्झितानाम् परित्यक्तानां तटसीम्नि तीरभूमौ लग्नाः संलग्नाः उक्ष्णां वृषभाणाम् 'उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः' इत्यमरः शृङ्गाग्ररेखाः शृङ्गाग्रभागेन दर्पात्तटविदारणरेखाः तटसीम्नि लग्नाः, स्तनतटभागे कृताः नवाः नूतना नखाङ्काः इव नखक्षतचिह्नानि इव रेजुः शुशुभिरे। पूर्ववदुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

वर्षा ऋतु के समय के द्वारा मलिनता उत्पन्न कर के त्याग की गयी समुद्र तक जाने वाली नदियों के तटप्रदेश में लगी हुई वृषभों की सीङ की नोक की रेखाएँ, रुपयों वाले पुरुष के पास जाने वाली अत एव वैमनस्य (कलह) उत्पन्न कर के त्याग की गई स्त्री के स्तन-तट में लगी हुई नवीन नखक्षतरेखाओं के समान सुशोभित हुईं।

समुद्रपानोत्थितवक्त्रजाड्यनिवृत्तये कुम्भभवेन सद्यः ।
उद्गच्छता पीतजला इवाच्छाः पत्न्यः पयोधेः कृशतामुदूहुः ॥८१॥

समुद्रपानोत्थितवक्त्रजाड्यनिवृत्तये समुद्रपानेन सागरस्य निगलनेन मुखमार्गेणोदरस्थीकरणेनेति यावत् उत्थितम् उत्पन्नं यद् वक्त्रजाड्यं मुखशैत्यं मुखकालुष्यमिति भावः, 'सुषीमः शिशिरो जडः, तुषारः शीतलः शीतः' इत्यमरः, तन्निवृत्तये दूरीकरणाय उद्गच्छता ऊर्ध्वं समुद्राद्उपरिभूमण्डलं गच्छता प्राप्नुवता कुम्भभवेन अगस्त्यमुनिना सद्यः तत्क्षणमेव पीतजला इव आपीतोदका इव अच्छाः स्वच्छाः, तं स्वपतिं प्रति शुद्धहृदया इति भावः, पयोधेः पत्न्यः समुद्रस्य योषितः नद्य इत्यर्थः कृशतां कार्श्यं दौर्बल्यमिति यावद् उदूहुः धारयामासुः। तदेवोपजातिवृत्तमुत्प्रेक्षालङ्कारः ।

समुद्रपीने से उत्पन्न मुख के शैत्य (खारापन) को दूर करने के लिये समुद्र की खाई से ऊपर भूमि पर आने वाले अगस्त्य ऋषि के द्वारा जल पीये हुए के समान स्वच्छ (स्वच्छ हृदय वाली) समुद्र की पत्नियाँ (नदियाँ) कृशता प्राप्त कर गईं ।

व्यपेतनृत्याः परिमन्दनादा निरस्तबर्हाः शिखिनो न रेजुः ।
लयं गते लास्यगुरौ पयोदे तत्कालदीक्षामिव धारयन्तः ॥८२॥

लास्यगुरौ नृत्योपदेष्टरि पयोदे मेघे लयं गते सति विनाशं प्राप्ते सति तत्कालदीक्षाम् तद्विलयकालनियमम् गुरौ मृते तदशौचकालीनशोकनियममित्यर्थः धारयन्तः इव व्यपेतनृत्याः लास्यरहिताः परिमन्दनादाः अल्पशब्दकारिणः निरस्तबर्हाः परित्यक्तपिच्छाः शिखिनः मयूराः न रेजुः न शोभन्ते स्म । पूर्ववदुपजातिवृत्तमुत्प्रेक्षालङ्कारश्च ।

नृत्य के गुरु मेघ के विनष्ट हो जाने पर मृतगुरु के अशौचकालिकनियम धारण करते हुए के समान नर्तनत्यागकरने वाले, अत्यल्पशब्द करनेवाले, अपने आभूषण स्वरूप पिच्छों को त्याग कर देने वाले मयूर सुशोभित नहीं होते थे ।

विनिद्रनीलोत्पललोचनानि प्रबुद्धबन्धूकललामभाञ्जि ।
मुखानि रम्याणि दिगङ्गनानां भान्ति स्म हासैरिव हंसयूथैः ॥८३॥

दिगङ्गनानां दिशः एव अङ्गनाः योषितः तासाम् विनिद्रनीलोत्पललोचनानि विनिद्राणि विकसितानि नीलोत्पलान्येव लोचनानि येषु तानि, प्रबुद्धबन्धूकललामभाञ्जि प्रबुद्धाः विकसिताः ये बन्धूकाः

बन्धुजीवकाः त एव ललामानि भूषणानि तानि भजन्ते धारयन्ति इति तद्भाञ्जि, 'हयपुच्छे ध्वजे पुण्ड्रे शैले पुंसि गुणाधिके। विषे धामनि भूषायां ललामेति बुधैर्मतम्' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, रम्याणि मनोहराणि मुखानि उपक्रमाः, त एव वदनानि तानि 'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इति मेदिनी, हंसयूथैः हंससमूहैः हासैरिव हास्यैरिव भान्ति स्म शुशुभिरे। अत्र पूर्ववदुपजातिवृत्तम् रूपकमुपमा चेत्यलङ्कारद्वयोः सङ्करः।

दिशा रूपी स्त्रियों के खिले हुए दुपहरिया फूल रूपी आभूषणवाले सुन्दर मुख हास्य के समान हंससमूहों से शोभित होने लगे।

निशानिशीथिनीकान्तकान्तिसन्ततिसन्तताः।
विरेजुः कामदेवस्य यशोभिरिव शोभिताः ॥८४॥

इति हरधरणीप्रसूत-कादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूप-कामदेव प्रोत्साहित-कविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कामदेवाङ्के रामयुधिष्ठिरयोः माल्यवद्गिरिविराटनगरनिवासो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

निशीथिनीकान्तकान्तिसन्ततिसन्तताः। निशीथिनी रात्रिः तस्याः कान्तः पतिः चन्द्रमाः तस्य कान्तिसन्ततिभिः द्युतिसमूहैः सन्तताः निविडाः निशाः रात्रयः कामदेवस्य मदनस्य वा कामदेवभूपस्य यशोभिः कीर्तिभिः शोभिता इव उद्दीप्ता इव विरेजुः शुशुभिरे। अत्रानुष्टुप् छन्दः, उत्प्रेक्षालङ्कारः।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुर-कुलोद्भूत-श्री दामोदर झा साहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

रजनीपति चन्द्रमा की कान्ति के समूह से भरी हुई रात्रियाँ रतिपति कामदेव के अथवा कामदेव नामक राजा के यशों से उद्दीप्त हुई के समान सुशोभित होने लगीं।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुर-कुलोद्भूत श्री दामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥



षष्ठः सर्गः

समग्रवैकर्तनशक्तिरग्रे प्रोद्यत्सुशर्माथ स धार्तराष्ट्रः ।
तदा शरत्काल इवैत्य राज्ञो विनिष्पतज्जीवधनं रुरोध ॥१॥

अथ तदा तस्मिन् समये समग्रवैकर्तनशक्तिः समग्रा सम्पूर्णा वैकर्तनस्य सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य शक्तिः प्रभावमन्त्रोत्साहजा शक्तिः यस्मिन् सः, अथ च मेघोपरोधराहित्यात्समग्रा सम्पूर्णा वैकतर्नशक्तिः सूर्यसम्बन्धिनी कान्तिः यस्मिन् सः सधार्तराष्ट्रः धार्तराष्ट्रैः हंसैः सहितः, शरत्कालः शरत्समयः एत्य आगत्य उपस्थायेति यावत्, राज्ञः रामस्य विनिष्पतज्जीवधनं विनिष्पतत् सीतावियोगेन निर्गच्छत् जीवधनं जीवनमेव धनम् अग्रे भविष्यत्काले प्रोद्यत्सुशर्म प्रोद्यत् प्रकृष्टेनोत्पद्यमानं सुशर्म शोभनं सुखं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा रुरोध इव अवारुणदिव । सीतान्वेषणावसरयोग्यत्वात् शरत्कालः तस्य जीवननिबन्धनमभूदिति भावः । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

इसके बाद उस समय सुग्रीव की सम्पूर्ण प्रभावमन्त्रोत्साह शक्ति है जिस में, मेघ हट जाने से सूर्य की सम्पूर्ण प्रभा है जिस में, हंसों से युक्त शरदृतु के समय ने आ कर राम के सीता-वियोग से निकलते हुए जीवन को भविष्य में सुख उत्पन्न करते हुए मानो रोक दिया ।

पक्षे—अथ तदा तस्मिन् समये समग्रवैकर्तनशक्तिः मेघापसरणेन सम्पूर्णा सूर्यसम्बन्धिनी शक्तिः प्रभेति भावः यस्मिन् सः सधार्तराष्ट्रः हंससहितः अग्रे प्रोद्यत्सुशर्म भविष्यत्काले उत्पद्यमानं सुखं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा एत्य आगत्य शरत्काल इव शरदृतुसमय इव समग्रवैकर्तनशक्तिः समग्रा सम्पूर्णा वैकर्तनस्य सूर्यपुत्रस्य कर्णस्य शक्तिः सामर्थ्यं यस्य सः अग्रे किञ्चित्पूर्वकाले प्रोद्यत्सुशर्मा प्रोद्यन् आक्रमितुं गच्छन् सुशर्मा सुशर्मनामा राजा यस्य सः, धार्तराष्ट्रः धृतराष्ट्रपुत्रः सः दुर्योधनः एत्य विराटनगरमागत्य राज्ञो भूपस्य विराटस्य विनिष्पतज्जीवधनं विनिष्पतत् नगरान्निष्क्रामद् जीवधनं जीववद्धनं

गोधनमित्यर्थः रुरोध अवरुणद्धि स्म। नगराद्दक्षिणे सुशर्मा राजा तथा उत्तरे दुर्योधनः गोव्रजं हर्तुमाक्रमणमकुरुताम् इति तात्पर्यम्। उपमालङ्कारः।

उस समय में मेघ हटने से सूर्य की सम्पूर्ण-कान्ति वाले, हंसों से युक्त, भविष्यकाल में सुख उत्पन्न करते हुए आ कर शरदृतु के समय के समान सूर्य के पुत्र कर्ण की सम्पूर्ण शक्ति रखने वाले, इस से आगे गोहरण के लिये गया है सुशर्मा राजा जिस के, इस प्रकार के धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने आ कर राजा विराट के नगर से निकलते हुए उसके जीवनवत् प्रिय गायों के समूह को घेर लिया।

द्विषा तदागोग्रहणे निबद्धे राज्ञा प्रतीकारपरेण नुन्नम्।
सद्यः प्रसर्पद्धरिसैन्यमुद्यद्गजप्रचारोज्ज्वलमुच्चचाल ॥२॥

तदा तस्मिन् समये द्विषा शत्रुणा रावणेन आगः अपराधः, तस्य ग्रहणं धारणं, तस्मिन् निबद्धे बद्धमूले सति 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः, प्रतीकारपरेण तत्प्रतिशोधतत्परेण राज्ञा कपिराजेन सुग्रीवेण नुन्नं प्रेरितम् उद्यद्गजप्रचारोज्ज्वलम् उद्यन् उद्गच्छन् यः गजः गजनामा कपिः तस्य प्रचारेण सञ्चारेण उज्ज्वलम् उद्दीप्तम्, प्रसर्पद् प्रसरत् हरिसैन्यम् वानरसेना सद्यः तत्कालमेव, उच्चचाल अग्रे चलति स्म।

उस समय शत्रु रावण के द्वारा अपराध के बद्धमूल करने पर, उस का प्रतिशोध करने में तत्पर कपिराज सुग्रीव से प्रेरित आगे चलने वाले गज नामक वन्दर के सञ्चार से उद्दीप्त, फैलने वाली वानरी सेना उसी समय चल पड़ी।

पक्षे—तदा तस्मिन् काले द्विषा शत्रुणा सुशर्मणा गोग्रहणे गृह्यते अनेनेति ग्रहणं गवां ग्रहणं गोग्रहणं गोष्ठमित्यर्थः तस्मिन् निबद्धे अवरुद्धे सति प्रतीकारपरेण तत्प्रतिशोधतत्परेण राज्ञा विराटेन नुन्नं प्रेरितम् उद्यद्गजप्रचारोज्ज्वलम् उद्यन्तः उपरिदृश्यमानाः ये गजाः हस्तिनः तेषां प्रचारेण सञ्चलनेन उज्ज्वलम् उत्कटम्, प्रसर्पत् प्रसरत् हरिसैन्यम् अश्वसेना 'हरिः सिंहो हरि र्भेको हरि र्वाजी हरिः कपिः' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, सद्यः तत्कालमेव उच्चचाल उच्चलति स्म।

उस समय शत्रु सुशर्मा के द्वारा गोष्ठ का अवरोध कर लेने पर उस के प्रतिशोध करने में तत्पर राजा विराट के द्वारा प्रेरित ऊँचे दिखाई देने वाले हाथियों के सञ्चार से उत्कट, फैलती हुई घोड़ों की सेना उसी समय चल पड़ी।

गतेषु सैन्येषु सुशर्महेतोः स्वलब्धचिह्नः सुनयोत्तरश्रीः ।
हरेस्तनूजः प्रतिपन्नकालं नृपप्रियान्वेषणतत्परोऽभूत् ॥३॥

सुशर्महेतोः सुशर्म शोभनं यत् कल्याणं तस्य हेतोः कारणात् सैन्येषु वानरसैन्येषु गतेषु सत्सु स्वलब्धचिह्नः स्वेन आत्मना लब्धं प्राप्तं चिह्नम् अभिज्ञानं मुद्रिकारूपं येन सः, सुनयोत्तरश्रीः सुनयोत्तरा शोभननीतियुक्ता श्रीः शोभा यस्य सः, हरेस्तनूजः पवनपुत्रो हनुमान् 'हरिरिन्द्रो हरिर्भानु र्हरिर्विष्णु र्हरिर्मरुत्' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, नृपप्रियान्वेषणतत्परः नृपप्रियायाः राजपत्न्याः सीतायाः अन्वेषण-तत्परः अनुसन्धानसंलग्नः, प्रतिपन्नकालं प्रतिपन्नःप्राप्तः कालः अवसरः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा अभूत् अभवत् । अत्रोपेन्द्रवज्रा-वृत्तम् ।

अच्छे कल्याण के लिये सेना के चले जाने पर स्वयं प्राप्त किया है अभिज्ञान-स्वरूप मुद्रिका जिस ने, अच्छी नीति से युक्त शोभा है जिसकी वह पवन पुत्र हनुमान् यथावसर राजा राम की पत्नी के अन्वेषण करने में तत्पर हुए ।

पक्षे—सुशर्महेतोः राज्ञः सुशर्मणः कारणात् सैन्येषु गतेषु सत्सु सुनयोत्तरश्रीः सुनयेन शोभनेन नीत्या उत्तरश्रीः विराटपुत्रेण उत्तरेण सारथिरूपेण श्रीः शोभा यस्य सः, स्वलब्धचिह्नः स्वस्य आत्मनः लब्धं प्राप्तं चिह्नं कपिध्वजादिकं येन सः, हरेस्तनूजः इन्द्रपुत्रः अर्जुनः प्रतिपन्नकालं प्रतिपन्नः पूर्णीकृतः कालः गुप्तवाससमयः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा नृपप्रियान्वेषणतत्परोऽभूत् नृपप्रियाणां विराट-प्रियगोधनानाम् अन्वेषणतत्परः अनुसन्धानक्रियासंलग्नः अभवत् ।

राजा सुशर्मा के कारण सैनिकों के चले जाने पर सुन्दर नीति के अनुसार सारथीभूत विराटपुत्र उत्तर से शोभा है जिस की, अपने कपिध्वज आदि चिह्नों को प्राप्त कर के इन्द्र के पुत्र अर्जुन अपना गुप्तवास का समय पूरा करते हुए विराट के प्रिय गोधन का अन्वेषण करने में तत्पर हुए ।

समृद्धतेजाः स गृहीतहेतिः शमीं समासाद्य यथा कृशानुः ।
नरेन्द्रसूनोरवधूय शङ्कां कुर्वन्प्रतस्थे विजयप्रतीतिम् ॥४॥

शमीं शमीवृक्षं समासाद्य प्राप्य गृहीतहेतिः गृहीता धृता हेतिः ज्वालः येन सः 'वह्नेर्द्वयो र्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' इत्यमरः कृशानुः यथा अग्निरिव समृद्धतेजाः समुद्धतपराक्रमः सः सुग्रीवः

नरेन्द्रसूनोः राजकुमारस्य रामस्य शङ्कां सन्देहम् अवधूय निरस्य विजयप्रतीतिं शत्रुविजयविश्वासं कुर्वन् कारयन् प्रतस्थे प्रस्थितवान्। उपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

शमीवृक्ष को प्राप्त करके ज्वाला धारण करनेवाली आग के समान बढ़े हुए पराक्रमवाला सुग्रीव राजकुमार राम का सन्देह दूर कर के विजय की प्रतीति कराते हुए चल पड़े।

पक्षे—कृशानुः इव अग्निरिव समृद्धतेजाः समुद्धतपराक्रमः सः अर्जुनः शमीं शमीवृक्षं समासाद्य प्राप्य गृहीतहेतिः धृतशस्त्रः 'रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः, नरेन्द्रसूनोः राजकुमारस्य उत्तरस्य शङ्कां कोऽयमितिसन्देहम् अवधूय स्वनामेतिवृत्तकथनेन निराकृत्य विजयप्रतीतिम् अर्जुनेतिविश्वासं विजय इति अर्जुनस्य नाम अथवा शत्रुविजयस्य विश्वासं कुर्वन् कारयन् प्रतस्थे गोधन-मोचनार्थं चलितवान्।

अग्नि के समान बढ़े हुए तेजवाले वह अर्जुन शमीवृक्ष के पास पहुँच कर शस्त्रधारण कर के राजकुमार उत्तर की 'यह कौन है ?' इस प्रकार के सन्देह को अपना नाम तथा वृत्तान्त कहने से दूर कर के 'यह विजय (अर्जुन) है' इस प्रकार विश्वास कराते हुए अथवा शत्रुविजय का विश्वास कराते हुए गायों को छुड़ाने के लिये चल दिये।

गच्छन् विलङ्घ्य नगरोपवनान्तराणि
संपातिपत्ररथसूचितकार्यसिद्धिः।
धीरो ददर्श करिनक्रकरालमग्रे
घोषोद्धतं सलिलराशिमिवारिसैन्यम् ॥५॥

नगरोपवनान्तराणि नगराणि जननिवासस्थानानि उपवनानि उद्यानानि अन्तराणि तन्मध्यप्रदेशांश्च 'अन्तरमवकाशावधि-परिधानान्तर्द्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्यात्मसदृशेषु' इति मेदिनी, विलङ्घ्य अतिक्रम्य गच्छन् व्रजन् संपातिपत्ररथ-सूचितकार्यसिद्धिः संपाती संपातिनामा यः पत्त्ररथः पक्षी जटायुभ्राता तेन सूचिता कथिता कार्यसिद्धिः कार्यसाफल्यं रावणहृतसीतायाः लङ्काशोकवाटिकानिवासकथनादिति भावः, यस्य सः, धीरः धैर्यशाली स हनुमान् अग्रे अग्रतः करिनक्रकरालम् करिणः इव ये नक्राः कुम्भीराः तैः करालं भयङ्करं घोषोद्धतं घोषैः शब्दैः उद्धतम् उत्कटम् अरि-

सैन्यमिव शत्रुवरूथिनीमिव सलिलराशिं समुद्रं ददर्श अवलोकते स्म। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात्, उपमालङ्कारः।

नगर उपवन तथा उन के मध्य भागों को पार कर के जाते हुए, संपाति नामक जटायु के भाई पक्षी के द्वारा कार्य की सफलता की सूचना प्राप्त कर के धैर्यशाली उस हनुमान् ने आगे में हाथियों के समान नाकों से भयङ्कर आघोषों से विकराल शत्रुसेना के समान समुद्र को देखा।

पक्षे—नगरोपवनान्तराणि नगराणि उपवनानि अन्तराणि तन्मध्यप्रदेशांश्च विलङ्घ्य अतिक्रम्य गच्छन् व्रजन्, संपातिपत्त्ररथ-सूचितकार्यसिद्धिः संपातीनि उद्धतगामीनि पत्त्राणि वाहनानि अश्वा इति यावत् 'पत्त्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः, यस्मिन् एवंभूतः यः रथः स्यन्दनः तेन सूचिता कार्यसिद्धिः कार्यसाफल्यं यस्य सः, धीरः धैर्यवान् अर्जुनः अग्रे अग्रतः करिनक्रकरालं करिणः नक्राः इव तैः करालं भयङ्करं घोषोद्धतं घोषैः शब्दैः उद्धतम् उत्कटं सलिलराशिमिव समुद्र-मिव अरिसैन्यं शत्रुबलं दुर्योधनवाहिनीमिति यावत् ददर्श अवलोकयमास। अत्राप्युपमालङ्कारः।

नगर उपवन तथा दोनों के मध्यभागों को पार कर के जाते हुए, तेज दौड़ने वाले वाहन से युक्त रथ के द्वारा कार्यसफलता की सूचना प्राप्त करने वाले धैर्यशाली उस अर्जुन ने आगे मे नाकों के समान हाथियों से भयङ्कर उत्साहघोषों से उद्धत समुद्र के समान शत्रु की सेना को अर्थात् दुर्योधन की सेना को देखा।

पुरा समाक्रान्तमहेन्द्रभूभृत् स सिन्धुराजं गुरुभीष्मदुर्गम्।
व्यलङ्घयत्तं मनसा समानप्रवृत्तिरभ्रान्तगतिः परौघम् ॥६॥

पुरा प्रथमं समाक्रान्तमहेन्द्रभूभृत् समाक्रान्तः आक्रमणकर्मीकृतः महेन्द्रभूभृत् महेन्द्रनामा पर्वतः येन सः, प्रथमं महेन्द्रपर्वतमारुह्ये-त्यर्थः, मनसा चित्तेन समानप्रवृत्तिः समाना तुल्या प्रवृत्तिः प्रवर्तनं यस्य सः, अभ्रान्तगतिः अभ्रान्ता भ्रमरहिता गतिर्गमनं यस्य सः, सः हनूमान् गुरुभीष्मदुर्गं गुरुः विशालः भीष्मः भयङ्करः अत एव दुर्गः दुर्गमनीयः तम्, परौघं परः श्रेष्ठः ओघः सलसमूहः यस्य तं, तं सिन्धुराजं समुद्रं व्यलङ्घयत् लङ्घितवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

पहले महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर मन के समान वेगवाला, भ्रमरहितगमनवाला,

हनुमान् विशाल भयङ्कर अत एव दुर्गम्य, श्रेष्ठ जलसमूह वाले उस नदीपति समुद्र को लाङ्घ गये ।

पक्षे—पुरा समाक्रान्तमहेन्द्रभूभृत् पुरा प्रथमं समाक्रान्ताः आक्रमणकर्मीकृताः महेन्द्रः खाण्डवदहनप्रसङ्गे देवराज इन्द्रः भूभृतः राजसूययज्ञप्रसङ्गे राजानश्च येन सः, समानप्रवृत्तिः समाना साभिमाना प्रवृत्तिः प्रवर्तनं यस्य सः, अभ्रान्तगतिः अभ्रान्ता भ्रमरहिता गतिर्गमनं यस्य सः अर्जुनः, ससिन्धुराजं सिन्धुराजेन जयद्रथेन सहितं गुरुभीष्मदुर्गं गुरुणा द्रोणेन भीष्मेण देवव्रतेन च दुर्गं दुरधिगम्यं तं परौघं शत्रुसमूहं मनसा चित्तेन व्यलङ्घयत् लङ्घितवान् । प्रथमं मनसा शत्रून् पराजयदिति भावः ।

पूर्वकाल में इन्द्र तथा राजाओं पर आक्रमण करने वाले अभिमान से युक्त प्रवृत्ति वाले भ्रमरहित-गति वाले उस अर्जुन ने जयद्रथ से युक्त द्रोण तथा भीष्म के कारण दुःसाध्य उस शत्रु समूह को मन ही मन जीत लिया । अर्थात् मन ही मन उस शत्रुसमूह के जीत लेने की कल्पना कर के उस ने अपना रथ बढ़ाया ।

शैलेष्वसावस्खलितप्रवृत्तिर्गच्छन्नदीनोत्प्लवनप्रगल्भः ।
प्राप्योपकण्ठं परमण्डलस्य ददर्श संस्थानविशेषशोभाम् ॥७॥

शैलेषु मैनाकादिपर्वतेषु अस्खलितप्रवृतिः अस्खलिता अविहता प्रवृत्तिः प्रवर्तनं यस्य सः, नदीनोत्प्लवनप्रगल्भः नदीनाम् इनः प्रभुः समुद्रः तस्य उत्प्लवने उल्लङ्घने प्रगल्भः धृष्टः, 'इनः सूर्ये नृपे पत्यौ' इति विश्वः, गच्छन् उत्प्लवमानः असौ हनुमान् परमण्डलस्य शत्रुदेशस्य उपकण्ठं समीपं प्राप्य गत्वा, 'मण्डलं परिधौ कोष्ठे देशे द्वादशराजसु । क्लीवेऽथ निवहे बिम्बे त्रिषु पुंसि तु कुक्कुरे' इति मेदिनी, संस्थानविशेषशोभां नगरसन्निवेशविशेषच्छटां ददर्श अवलोकयामास । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

मैनाक आदि पहाड़ों में अविघ्नितगतिवाले, समुद्र के उल्लङ्घन करने में ढीठ, उछल कर जाते हुए इस हनुमान् ने शत्रु के देश के समीप में पहुँच कर नगर के सन्निवेश-विशेष की छटा देखी ।

पक्षे—शैलेषु पर्वतेषु अस्खलितप्रवृत्तिः अविहतप्रवर्तनः अदीनोत्प्लवनप्रगल्भः अदीनं सोत्साहं यत् उत्प्लवनं सोद्वातगमनं तस्मिन् प्रगल्भः धृष्टः गच्छन् रथेन अग्रे सरन् असौ अर्जुनः, परमण्डलस्य शत्रुनिवहस्य उपकण्ठं समीपं प्राप्य गत्वा संस्थानविशेषशोभां संस्थान-

विशेषस्य सैन्यसन्निवेशविशेषस्य व्यूहरचनाविशेषस्येति यावत् शोभां छटां ददर्श अवलोकितवान् ।

पर्वतों में अविघटितप्रवृत्तिवाले, सोत्साह रथ के उत्प्लवन में ढ़ीठ रथ के द्वारा आगे बढ़ते हुए उस अर्जुन ने शत्रु-समूह के निकट पहुँच कर सैनिक सन्निवेश-विशेष (व्यूह-रचना) की शोभा देखी ।

परचक्रं परिक्रामन्नशोकं गहनं गतः ।
क्षणादिव कृतार्थोऽभून्माहेयीदर्शनेन सः ॥८॥

सः हनूमान् परचक्रं शत्रुसमूहं 'चक्रः कोके पुमान् क्लीवं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः' इति मेदिनी, परिक्रामन् अतिक्रामन् अशोकं गहनं अशोकवनं गतः प्राप्तः तत्र क्षणादिव किञ्चित्कालानन्तरमेव माहेयीदर्शनेन मह्याः इयं माहेयी महीपुत्री जानकी तस्याः दर्शनेन अवलोकनेन कृतार्थः सम्पादितप्रयोजनः अभूत् । अत्रानुष्टुपछन्दः ।

वह हनुमान् शत्रु-समूह को पार करते हुए अशोक वन में पहुँचे, वहाँ कुछ ही देर में सीता का दर्शन प्राप्त कर के कृतकार्य हो गये ।

पक्षे—सः अर्जुनः परचक्रं शत्रुसैन्यं परिक्रामन् आक्रामन् गहनं घनम् अत्यधिकमित्यर्थः अशोकं शोकभिन्नं हर्षमित्यर्थः, गतः प्राप्तवान्, क्षणादिव अल्पकालानन्तरं माहेयीदर्शनेन माहेयीनाम् गवां 'माहेयी गवि सीताया'मिति विश्वः, 'माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च शृङ्गिणी' इत्यमरश्च, दर्शनेन निरीक्षणेन कृतार्थः कृतप्रयोजनः अभूत् जातः ।

वह अर्जुन शत्रु की सेना के ऊपर आक्रमण करते हुए अत्यन्त हर्ष प्राप्त किये, कुछ ही देर में गायों के देखने से कृतकृत्य हो गये ।

दृष्ट्वैव तां भास्वरराजगोत्रां दीनामनाथां क्षितिरेणुकीर्णाम् ।
परोपरोधव्यसनातिभारादशोचयल्लङ्घितगोप्रचारः ॥९॥

लङ्घितगोप्रचारः लङ्घितः परित्यक्तः गवि पृथिव्यां प्रचारः सञ्चलनं येन सः, वृक्षस्थित इत्यर्थः, सः हनुमान् भास्वरराजगोत्रां भास्वरं दीप्यमानं राजगोत्रं राजवंशः यस्याः तां, दीनां दुःखिताम् अनाथाम् असहायां क्षितिरेणुकीर्णां पृथिवीधूलिव्याप्तां तां सीतां दृष्ट्वैव अवलोक्यैव परोपरोधव्यसनातिभारात् परस्य पतीतरस्य यः उपरोधः अवरुध्य स्थापनं तदेव व्यसनं विपत्तिः तस्य अतिभाराद् आधिक्याद् अशोचयत् दुःखाकरोति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

पृथ्वी पर न चलने वाले अर्थात् वृक्ष पर रहने वाले उस हनुमान् ने चमकते हुए राजवंश वाली, दुःखी, असहाय तथा भूमि की धूली से भरी हुई उस सीता को देख कर ही परकीय अवरोधरूपी विपत्ति की अधिकता के कारण उसके लिये शोच किया।

पक्षे—लङ्घितगोप्रचारः लङ्घितेन सेनापरिधित्रोटितेन गोप्रचारः गोनिःसरणमार्गः येन सः, भास्वरराजगोत्रां भास्वरां दीप्यमानां राजगोत्रां राज्ञो विराटस्य गोसमूहं 'उक्ष्णां संहतिरौक्षकं, गव्या गोत्रा गवाम्' इत्यमरः, दीनां दुःखिताम् अनाथाम् असहायां क्षितिरेणुकीर्णां धूलिधूसरितां तां गोत्रां गोसमूहमिति यावत् दृष्ट्वैव विलोक्यैव परोपरोधव्यसनाभिरात् परेषां शत्रूणां यः उपरोधः अवरुध्य स्थापनं तदेव व्यसनं विपत्तिः तस्य अतिभाराद् आधिक्यात् अशोचयत् तां प्रति शोकं चकार।

सेना का घेरा तोड़ कर गायों के निकलने का रास्ता बनाने वाले वह अर्जुन चमकते हुए राजा विराट के गोसमूह को दुखी असहाय तथा धूलिधूसरित देख कर ही शत्रुओं का रोक रखना रूपी विपत्ति के आधिक्य से उस के लिये शोक करने लगे।

तस्याश्च गोपालसमागमाशां संपाद्य संदर्शितराजचिह्नः।
स व्यञ्जयामास हरेस्तनूजमात्मानमर्कात्मजशासनस्थम् ॥१०॥

संदर्शितराजचिह्नः संदर्शितं प्रकटितं राज्ञो रामस्य चिह्नम् अभिज्ञानं मुद्रिकास्वरूपं येन सः, सः हनूमान् तस्याः सीतायाः गोपालसमागमाशां गोपालस्य पृथ्वीपालकस्य रामस्य समागमाशां मिलनाशां संपाद्य कृत्वा आत्मानं स्वं हरेः वानरस्य केसरिणः तनूजं पुत्रम् अर्कात्मजशासनस्थम् अर्कात्मजस्य सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य शासने आदेशे स्थितं व्यञ्जयामास प्रकटयति स्म कथितवानिति यावत्। अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्।

राम के चिह्न मुद्रिका दिखलाने वाले उस हनुमान् ने सीता की राम के संगम की आशा उत्पन्न कर के अपने को केसरी बन्दर का पुत्र तथा सुग्रीव की आज्ञा का वहन करने वाला इस रूप में सूचित किया।

पक्षे—संदर्शितराजचिह्नः प्रकटितकिरीटध्वजादिः सः अर्जुनः तस्याः गोत्रायाः गवां समूहस्येति यावद् गोपालसमागमाशां गोरक्षकसंमिलनदिशं संपाद्य कृत्वा तन्मार्गेण तां प्रेर्येत्यर्थः हरेरिन्द्रस्य तनूजं पुत्रम् आत्मानं स्वम् अर्कात्मजशासनस्थम् अर्कात्मजस्य सूर्यपुत्रस्य

कर्णस्य शासने शास्तिकरणे दण्डविधाने इति यावत्, तिष्ठन्तम् अथवा कृतप्रतिज्ञं 'स्थितं भवेद्गत्यभावे सुप्रतिज्ञे सुनिश्चिते' इति विश्वप्रकाशः, व्यञ्जयामास प्रकटितवान्; क्रियर्येति भावः।

प्रकटितकिरीटध्वज आदि राजचिह्नवाले उस अर्जुन ने उन गायों की गोरक्षक से मिलने की दिशा बना कर अर्थात् उस ओर का मार्ग साफ कर के इन्द्र के पुत्र अपने को सूर्यपुत्र कर्ण के दण्ड विधानकरने में कृतप्रतिज्ञ सूचित किया अर्थात् क्रिया के द्वारा इन्हों ने यह बात प्रकट कर दी।

प्रयत्नवानुत्तरकार्यसिद्धये प्रदर्शयिष्यन् बहुशक्तिसंपदम्।
सतालबाणासनकर्षणं द्विषां परिस्फुरत्केतुवनं बभञ्ज सः ॥११॥

बहुशक्तिसम्पदम् अतिशयसामर्थ्यं प्रदर्शयिष्यन् अवलोकयिष्यमाणः उत्तरकार्यसिद्धये अग्रिमकार्यस्य शत्रुदमनरूपस्य सिद्धये सिद्ध्यर्थं प्रयत्नवान् उद्यमपरः सः हनुमान् द्विषां शत्रूणां सतालबाणासनकर्षणं सतालबाणासनानां तालवृक्षबाणवृक्षसहितानाम् असनवृक्षाणां कर्षणं मर्दनं यस्मिन् तत् परिस्फुरत्केतु परिस्फुरन्तः दीप्यमानाः केतवः ध्वजाः यस्मिन् तत् वनम् अशोकवनं बभञ्ज त्रोटयति स्म। अत्र वंशस्थवृत्तम् 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात्।

अपनी अतिशय शक्ति दिखलाते हुए, शत्रुदमनरूपी अग्रिमकार्य की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने वाले उस हनुमान् ने शत्रु का, तालवृक्ष, बाणवृक्ष तथा असनवृक्ष का मर्दन किया जा रहा है जिस में तथा चमकते हुए ध्वज हैं जिस में इस प्रकार का अशोक-वन तोड़ डाला।

पक्षे—बहुशक्तिसंपदम् अतिशयसामर्थ्यं प्रदर्शयिष्यन् अवलोकयिष्यमाणः उत्तरकार्यसिद्धये विराटपुत्रस्य उत्तरस्य उष्णीषग्रहणरूपस्य कार्यस्य पूर्त्यर्थं प्रयत्नवान् उद्यमशीलः सः अर्जुनः द्विषां शत्रूणां सतालबाणासनकर्षणं सतालं तालवृक्षचिह्नसहितं बाणासनकर्षणं शरासनकर्षणचिह्नसहितञ्च परिस्फुरत् दीप्यमानं केतुवनं ध्वजसमूहं बभञ्ज बाणैः खण्डयति स्म।

अपनी अतिशय शक्ति दिखलाते हुए विराटपुत्र उत्तर के कौरवों के दुपट्टे ग्रहणरूपी कार्य की सिद्धि के लिये (उस की बहन उत्तरा ने कहा था कि दिल्ली प्रान्त के दुपट्टे बहुत अच्छे होते हैं गुड़िया बनाने के लिये लेते आइयेगा)

प्रयत्न करने वाले उस अर्जुन ने शत्रुओं का तालवृक्ष शरासनाकर्षण आदि चिह्न-सहित चमकते हुए ध्वजसमूह को काट कर गिरा दिया।

संभ्रान्तद्रोणमुद्यच्छकुनिकलकलं विह्वलोलूकसार्थं
सद्योविक्षिप्तगुल्मं क्षपितनृपतरुक्षुण्णपुंनागपूगम्।
अद्धा नुन्नाश्वकर्णं प्रमथितविपुलश्रीफलं धूतधात्री-
चक्रं चक्रे स शोकास्पदमरिगहनं प्रागशोकाभिरामम् ॥१२॥

प्राक् हनुमदागमनात् पूर्वं अशोकाभिरामम् अशोकपादपैः सुशोभितम् अरिगहनं शत्रोः अशोकवनम् निश्चयेन सः हनुमान् संभ्रान्तद्रोणं संभ्रान्ताः भयविप्लुताः द्रोणाः काकाः यस्मिन् तद् 'द्रोणः कृपीपतौ कृष्णकाके स्यादाढकेऽपि च' इति विश्वप्रकाशः, उद्यच्छकुनिकलकलम् उद्यन् उत्पद्यमानः शकुनीनां पक्षिणां कलकलः कलकलशब्दः यस्मिन् तत्, विह्वलोलूकसार्थं विह्वलाः व्याकुलाः उलूकसार्थाः उलूकसमूहाः यस्मिन् तत्, सद्योविक्षिप्तगुल्मं सद्यस्तत्कालं विक्षिप्ताः उपद्रुताः गुल्माः तरुस्तम्बाः यस्मिन् तत्, 'गुल्मा रुक्स्तम्बसेनाश्च' इत्यमरः, क्षपितनृपतरु क्षपिताः मर्दिताः नृपतरवः शंपाकवृक्षाः यस्मिन् तत्, 'आरग्वधो राजवृक्ष-शंपाकचतुरङ्गुलाः' इत्यमरः, क्षुण्णपुंनागपूगं क्षुण्णाः विनाशिताः पुंनागाः केसरवृक्षाः पूगाः क्रमुकवृक्षाश्च यस्मिन् तत्, नुन्नाश्वकर्णं नुन्नाः विक्षिप्ताः अश्वकर्णाः अश्वकर्णवृक्षाः यस्मिन् तत्, प्रमथितविपुलश्रीफलं प्रमथिताः मर्दिताः विपुलाः महान्तः श्रीफलाः बिल्ववृक्षाः यस्मिन् तत्, धूतधात्रीचक्रं धूतं कम्पितं धात्रीचक्रम् आमलकीवृक्षसमूहो यस्मिन् तत्, 'धात्री स्यादुपमातापि क्षितिरप्यामलक्यपि' इत्यमरः, अत एव शोकास्पदं शोकस्थानं शोचनीयमिति यावत्, चक्रे कृतवान्।

हनुमान् जी के आने से पूर्व अशोक वृक्षों से सुशोभित शत्रु के उपवन को निश्चित रूप से हनुमान् जी ने घबड़ा कर उड़ते हुए कौओंवाला, उठे हुए पक्षियों के शब्दवाला, व्याकुल उलूकसमूह वाला, उसी समय उजाड़े हुए वृक्ष स्तम्बवाला, नष्ट किये गये अमलतास वृक्षवाला, विनाशित केसरवृक्ष तथा सुपारी के वृक्षवाला, उजाड़े गये अश्वकर्णवृक्षवाला, तोड़े गये बेल के वृक्षवाला, मरोड़े गये आमले के वृक्षसमूहवाला, इसलिये शोचनीय बना दिया।

पक्षे—प्राक् अर्जुनयुद्धात्पूर्वम् अशोकाभिरामम् अशोकेन शोकभिन्नेन हर्षेण अभिरामं सुन्दरम् अरिगहनं शत्रुकाननं शत्रुसमूह-

मित्यर्थः, अद्धा निश्चयेन सः अर्जुनः संभ्रान्तद्रोणं संभ्रान्तः चकितः द्रोणाचार्यः यस्मिन् तद्, उद्यच्छकुनिकलकलम् उद्यन् उत्पद्यमानः शकुनेः दुर्योधनमातुलस्य कलकलः भयकृतशब्दः यस्मिन् तद्, विह्वलोलूकसार्थं विह्वलः व्याकुलः उलूकः एतन्नामा दुर्योधनानुजः तत्सार्थः सहायश्च यस्मिन् तत्, सद्योविक्षिप्तगुल्मं सद्यस्तत्कालं विक्षिप्तः मथितः गुल्मः सेनामुखं यस्मिन् तत्, 'सेनामुखं गुल्मगणौ' इत्यमरः, क्षपितनृपतरु क्षपिताः विनाशिताः नृपाः राजान एव तरवः वृक्षाः यस्मिन् तत्, क्षुण्णपुंनागपूगं क्षुण्णः मर्दितः पुंनागानां पुरुषगजानां पूगः समूहः यस्मिन् तत्, 'पूगः क्रमुकवृन्दयोः' इत्यमरः, नुन्नाश्वकर्णं नुन्नाः विक्षिप्ताः अश्वाः वाजिनः यस्य एवंभूतः कर्णः राधेयः यस्मिन् तत्, प्रमथितविपुलश्रीफलं प्रमथिता विनाशिता विपुला महती श्रीरेव सम्पत्तिरेव फलं परिणामः यस्मिन् तत्, धूतधात्रीचक्रं धूतं कम्पितं धात्रीचक्रं पृथ्वीमण्डलं यस्मिन् तद् अत एव शोकास्पदं शोकस्थानं शोकयुक्तमित्यर्थः, चक्रे कृतवान्।

अर्जुन के युद्ध से पूर्व हर्ष से सुन्दर शत्रुसमूह को निश्चितरूप से उस अर्जुन ने चकितद्रोणाचार्यवाला, शकुनि के भयभीतशब्दवाला, व्याकुल उलूक तथा उस के साथीवाला, उसी समय मर्दितसेनामुखवाला, विनाश किये गये राजगण रूपी वृक्षवाला, मर्दनकियेगये पुरुष हाथियों के समूहवाला, विनष्टघोड़ावाले कर्ण-से युक्त, विनाश की गयी बहुत बड़ीसम्पत्ति ही फल है जिस में, कम्पित किये गये पृथ्वीमण्डलवाला अत एव शोक का स्थान बना दिया।

पराभवात् परिकुपितेन भूभृता
प्रचोदिताः प्रचुरबला बलाधिपाः।
समुद्ययुस्तमुपरितोरणस्थितं
शरावली-विरचित-दूरदुर्दिनाः ॥१३॥

पराभवात् वनभङ्गरूपापमानात् परिकुपितेन क्रुद्धेन भूभृता राज्ञा रावणेन प्रचोदिताः प्रेरिताः प्रचुराणि समधिकानि बलानि सैन्यानि येषां ते, शरावलीविरचितदूरदुर्दिनाः शरावलीभिः बाणसमूहैः विरचितं कृतं दूरम् अत्यर्थं दुर्दिनं सवृष्टिकदिनं यैस्ते, बलाधिपाः सेनानायकाः उपरितोरणस्थितम् उपरितोरणं तोरणस्य बहिर्द्वारस्य उपरि स्थितं वर्तमानं तं हनुमन्तं समुद्ययुः आक्रामयामासुः। अत्र रुचिरावृत्तम् 'चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिरा जभौ स्जगाः' इति लक्षणात्।

वनभङ्ग रूपी अपमान से क्रोधित राजा रावण के द्वारा प्रेरित प्रचुरसेना से युक्त, बाणों की वर्षा से दुर्दिन बनानेवाले सेनानायक गण बहिर्द्वार के ऊपर वर्तमान उस हनुमान् के ऊपर आक्रमण करने लगे

पक्षे—पराभवात् गोमोचनरूपापमानात् परिकुपितेन क्रुद्धेन राज्ञा दुर्योधनेन प्रचोदिताः प्रेरिताः प्रचुरबलाः अतिबलवन्तः, शरावली-विरचितदूरदुर्दिनाः बाणवृष्टिनिर्मितसवृष्टिकवासराः बलाधिपाः सेनापतयः, रणस्थितं युद्धे वर्तमानं तम् अर्जुनं परितश्चतुर्दिक्षु उ रोषोक्त्या सह 'उ सम्बोधनरोषोक्त्योरनुकम्पानियोगयोः' इति मेदिनी, समुद्ययुः समाचक्रमुः।

गोमोचण रूपी अपमान से क्रोधित राजा दुर्योधन के द्वारा प्रेरित महाबल-शाली, बाणों की वर्षा से दुर्दिन बनानेवाले सेनापतिगण युद्ध में स्थित उस अर्जुन के ऊपर चारों तरफ से घेर कर रोषभाषण करते हुए आक्रमण करने लगे।

उदायुधैर्व्यरुचदसौ पताकिभि-
र्विरोधिभिर्मृधभुवि कोष्ठकीकृतः।
तडिच्छटा-द्युति-जटिलैर्बलाहकै-
र्बलाकिभिर्वृत इव विन्ध्यभूधरः ॥१४॥

उदायुधैः उद्यतशस्त्रैः, पताकिभिः ध्वजपताकायुक्तैः विरोधिभिः शत्रुभिः मृधभुवि युद्धभूमौ कोष्ठकीकृतः मण्डलीकृतः मण्डलाकारेण परिवृत इति यावद्, असौ हनूमान्, पक्षे—अर्जुनः तडिच्छटाद्युति-जटिलैः विद्युल्लतास्फुरणकान्तियुक्तैः, बलाकिभिः वकपङ्क्तियुक्तैः बलाहकैः मेघैः वृतः वेष्टितः विन्ध्यभूधर इव विन्ध्यपर्वत इव व्यरुचद् अशोभत। अत्रापि रुचिरावृत्तम्, उपमालङ्कारः।

उठाए हुए हथियारवाले, पताकाओं से युक्त शत्रुओं के द्वारा युद्धभूमि में घेरे गये वह हनुमान्, दूसरे पक्ष में—अर्जुन विद्युल्लता के चमकने की कान्ति से युक्त तथा वकपङ्क्ति से युक्त बादलों के द्वारा घेरे गए विन्ध्य पहाड़ के समान सुशोभित हुए।

परोज्झितानपि परमर्मभेदिनः
स पत्त्रिणस्तृणवदचिन्तयत् क्षणात्।

व्यलोडयद्रणभुवि वैरिमण्डलं
मदोत्कटो गज इव पल्वलं बली ॥१५॥

बली बलवान् स हनुमान्, पक्षे—अर्जुनः परोज्झितान् शत्रुप्रेरितान् परमर्मभेदिनः अपि उत्कृष्टहृदयमर्मस्थलच्छेदिनः अपि पत्त्रिणः बाणान् तृणवत् तिन्दुकानीव अचिन्तयत् जानाति स्म। क्षणात् अल्पकालेनैव रणभुवि युद्धभूमौ वैरिमण्डलं शत्रुसमूहं पल्वलम् अल्पजलाशयं मदोत्कटो मदस्रावी गज इव हस्तीव व्यलोडयत् मथ्नाति स्म। अत्रापि रुचिरावृत्तम्, उपमालङ्कारः।

बलवान् उस हनुमान् ने, दूसरे पक्ष में—अर्जुन ने शत्रुओं के द्वारा प्रेरित मर्मस्थलभेदन करने वाले भी बाणों को तिनके के समान समझा तथा थोड़े ही समय में युद्धस्थल में शत्रुसमूह को छोटे जलाशय को मतवाले हाथी के समान मथ डाला।

निरन्तर-शरव्रात-तिरोहितदिगन्तरः।
ससैन्यपूरः परितः प्रापदक्षस्तमाहवे ॥१६॥

आहवे युद्धे निरन्तर-शरव्रात-तिरोहितदिगन्तरः निरन्तरः निश्छिद्रः सघन इति यावत्, यः शरव्रातः बाणसमूहः तेन तिरोहितम् आच्छादितं दिशामन्तरम् अवकाशो येन सः, परितः चतुर्दिक्षु ससैन्यपूरः सैन्यप्रवाहसहितः अक्षः अक्षकुमारः तम् हनुमन्तं, पक्षे—अक्षः ज्ञानवान् युद्धकलानिपुण इति यावत्, 'अक्षो ज्ञानात्मशकटे व्यवहारे च पाशके' इति मेदिनीकरः, तम् अर्जुनं प्रापत् प्राप्तवान्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

युद्ध में सघनबाण समूह से दिशाओं को आच्छादित करनेवाला, चारों तरफ सैन्य-प्रवाह से युक्त अक्षकुमार उस हनुमान् के पास, दूसरे पक्ष में—युद्ध कला में निपुण उस अर्जुन के पास पहुँचा।

विकलितरथवंशं मङ्क्षु भग्नाक्षभावात्
प्रमथितबलनाथं रुद्ध-भीष्म-प्रभावम्।
क्षपित-कृप-कृपाणं तत्तदाकर्ण-कृष्ट-
स्फुरित-विपुलचापं स स्म सैन्यं धुनोति ॥१७॥

स हनुमान् तदा तस्मिन् समये विकलितरथवंशं विकलितः

खण्डितः रथवंशः रथध्वजदण्डः यस्मिन् तत्, भग्नाक्षभावात् भग्नः मर्दितः यः अक्षः अक्षकुमारः तद्भावात् तत्सत्त्वात् प्रमथितबलनाथं प्रमथितः मर्दितः बलनाथः सेनाधिपः यस्मिन्ः तत्, रुद्ध-भीष्म-प्रभावं रुद्धः निवारितः भीष्मः भयङ्करः प्रभावः अक्षकुमार-प्रतापः यस्मिन् तत्, क्षपितकृपकृपाणं क्षपिता विनष्टा कृपा दया येषां ते कृपाणा असयः यस्मिन् [तत्, आकर्णकृष्टस्फुरित-विपुलचापम् आकर्णं कर्णपर्यन्तं कृष्टानि अवमृष्टानि स्फुरितानि कम्पितानि विपुलानि विशालानि चापानि धनूंषि यस्मिन् तत्, तत्सैन्यं राक्षसवाहिनीं मङ्क्षु शीघ्रं धुनोति स्म कम्पयते स्म मथ्नाति स्मेति यावत्। अत्र मालिनीवृत्तं 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्।

उस हनुमान् ने उस समय टूटे हुए रथ के ध्वजदण्डवाले, अक्षकुमार के मरने से विनष्ट सेनापतिवाले, रोके गये भयङ्कर प्रभाववाले, दयारहित तलवार-वाले, कान तक खींचे गये अत एव कांपते हुए धनुषवाले, उस राक्षस-सैन्य को शीघ्र ही मथ डाला।

पक्षे—सः अर्जुनः तदा तस्मिन् समये विकलितरथवंशं त्रुटितरथ-ध्वजदण्डं भग्नाक्षभावात् भग्नकूवरत्वाद् अथवा मर्दितयुद्धकलाभिज्ञ-त्वात् प्रमथितबलनाथं मर्दितसेनाधिपं रुद्धभीष्मप्रभावं रुद्धः निवारितः भीष्मस्य गाङ्गेयस्य प्रभावः प्रतापः यस्मिन् तत्, क्षपितकृपकृपाणं क्षपितः विनष्टः कृपस्य कृपाचार्यस्य कृपाणः खड्गः यस्मिन् तत्, कर्णकृष्टस्फुरितविपुलचापं कर्णेन राधेयेन कृष्टम् अवमृष्टम् अत एव स्फुरितं कम्पितं विपुलं विशालं चापं धनुः यस्मिन् तत्, तत् दुर्यो-धनाधिष्ठितं सैन्यं बलं मङ्क्षु शीघ्रं धुनोति स्म प्रकम्पितं चकार।

उस अर्जुन ने उस समय टूटे हुए रथध्वजदण्डवाले, पहिये के कूवर टूट जाने से अथवा युद्ध-कला-कुशल के मारे जाने से विनष्ट सेनानायकवाले, रोके गये भीष्म के प्रभाववाले कृपाचार्य के टूटे हुए कृपाणवाले, कर्ण के द्वारा खींचे गये अत एव कम्पित विशाल धनुषवाले दुर्योधन के उस सैन्य को शीघ्र ही कम्पित कर दिया।

निबद्धवैरं सृजता शिलीमुखान् प्रवर्तितानल्पतरास्त्रतेजसा।
स राजपुत्रेण जितेन्द्रतेजसा न्यरोधि दुर्योधन उद्यतोऽपि सन्॥१८॥

दुर्योधनः दुःखेन योधयितुं शक्यः सः हनुमान्, पक्षे—दुर्योधनः धृतराष्ट्रजः उद्यतोऽपि सन् रणाय उद्युक्तोऽपि सन् निबद्धवैरं निबद्धं

कृतं वैरं शत्रुत्वं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा शिलीमुखान् बाणान् सृजता प्रक्षिपता, प्रवर्तितानल्पतरास्त्रतेजसा प्रवर्तितम् प्रकटीकृतम् अनल्पतरम् अत्यधिकम् अस्त्रतेजः अस्त्रप्रक्षेपेण पराक्रमः येन तेन, जितेन्द्रतेजसा जितं पराजितं, पक्षे—अधः कृतम् इन्द्रतेजः इन्द्रस्य पराक्रमो येन तेन, राजपुत्रेण राजकुमारेण मेघनादेन, पक्षे—अर्जुनेन न्यरोधि अवरुद्धः, निबद्धः, पक्षे—व्याकुलीकृतः। अत्र वंशस्थवृत्तम्।

कष्ट से युद्ध करने योग्य वह हनुमान्, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्ध में तत्पर रहने पर भी वैर धारण करके बाणों को फेंकनेवाले, अत्यधिक अस्त्रतेज प्रकट करनेवाले, इन्द्र के पराक्रम को जीतनेवाले, दूसरे पक्ष में—इन्द्र के पराक्रम को नीचा दिखानेवाले राजकुमार मेघनाद के द्वारा बाँध लिये गये, दूसरे पक्ष में—राजकुमार अर्जुन के द्वारा व्याकुल कर दिये गये।

विपक्षवीरैः समितिं प्रवेशितः समीक्ष्य राजानमसौ सुखद्विषाम्।
धरात्मजा-निग्रहणप्रतिक्रिया-निवेदितार्थैर्वचनैरकोपयत् ॥१६॥

विपक्षवीरैः शत्रुपक्षीययोधैः समितिं सभां, पक्षे—युद्धं प्रवेशितः नीतः असौ हनुमान्, पक्षे—अर्जुनः, सुखद्विषां सुखद्वेषिणां शत्रूणामित्यर्थः, राजानं नृपं रावणं, पक्षे—दुर्योधनं समीक्ष्य दृष्ट्वा धरात्मजानिग्रहणप्रतिक्रियानिवेदितार्थैः धरात्मजा पृथ्वीपुत्री जानकी, पक्षे—धरतीति धरः, पृथ्वीं धरतीति भावः, धरः राजा, तस्य पुत्री द्रौपदी तस्याः यद् निग्रहणं चौर्येणानयनं, पक्षे—निग्रहणं भर्त्सनं दुर्वचनकथनमित्यर्थः, 'निग्रहो भर्त्सनेऽपि स्यान्मर्यादायां च बन्धने' इति मेदिनी, तस्य या प्रतिक्रिया वैरशोधनं सा एव निवेदितः कथितः अर्थः अभिधेयः येषु तैः वचनैः उक्तिभिः अकोपयत् कुपितं कृतवान्। अत्रापि वंशस्थं वृत्तम्।

शत्रुपक्षीय वीरों के द्वारा सभा में प्रवेश कराये गये इस हनुमान् ने, दूसरे पक्ष में—युद्ध में प्रवेश कराये गये इस अर्जुन ने सुखद्वेषियों के अर्थात् शत्रुओं के राजा रावण को, दूसरे पक्षमें—दुर्योधन को देखकर पृथ्वी की पुत्री जानकी के ग्रहण करने का प्रतिशोध निवेदन किये हुए अर्थवाले, दूसरे पक्ष में—राजा की पुत्री द्रौपदी के दुर्वचन कहने का प्रतिशोध निवेदन किये हुए अर्थ वाले वचनों से क्रोधित कर दिया।

ततो हनूमान् विजयाङ्कभूतस्वरेण घोरेण नदन् परेषाम्।
लाङ्गूललग्नेन हुताशनेन ददाह लङ्कामिव चित्तवृत्तिम् ॥२०॥

ततस्तदनन्तरं हनुमान् घोरेण भयङ्करेण विजयाङ्कभूतस्वरेण विजयस्य शत्रुपराजयस्य अङ्कभूतेन चिह्नस्वरूपेण स्वरेण शब्देन नदन् गर्जन् परेषां शत्रूणां चित्तवृत्तिमिव मानसमिव लाङ्गूललग्नेन पुच्छसंलग्नेन हुताशनेन अग्निना लङ्कां रावणनगरीं ददाह ज्वालयामास। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उपमानोपमेययोरुभयोः प्रस्तुतयोरेवोपमालङ्कारः।

इसके बाद हनुमान् भयङ्कर तथा शत्रु-पराजय के चिह्न स्वरूप शब्द से गरजते हुए शत्रुओं के मन के समान पोंछ में लगी आग के द्वारा लङ्का को जला दिये।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं हनुमान् अर्जुन-ध्वजोपविष्टो मारुतिः घोरेण भयङ्करेण विजयाङ्कभूतस्वरेण विजयस्य अर्जुनस्य अङ्कभूतस्वरेण ध्वजचिह्नस्वरूपशब्देन नदन् गर्जन् लाङ्गूलग्नेन हुताशनेन पुच्छस्थितेन अग्निना पुरा लङ्कामिव लङ्कापुरीमिव परेषां शत्रूणां दुर्योधनादीनामित्यर्थः, चित्तवृत्तिं मानसं ददाह व्यथयाञ्चकार।

इस के बाद अर्जुन की ध्वजा पर बैठे हुए हनुमान् ने अर्जुन के ध्वजचिह्नस्वरूप शब्द से गरजते हुए पोंछ में लगी आग से लङ्का के समान शत्रुओं के मन को जला डाला, अर्थात् दुर्योधनादिकों के मन को व्यथित कर दिया।

एवं प्रकाशीकृतवीर्यसंप-
द्धरेः कुमारो हरिदश्वकल्पः।
विरोधिनां मूर्ध्नि निधाय पादं
यशोऽच्छमुष्णीषमिव व्यमुष्णात् ॥२१॥

एवम् उक्तप्रकारेण प्रकाशीकृतवीर्यसंपत् प्रकाशीकृता प्रकटिता वीर्यसंपद् बलसंपत्तिः येन सः, हरिदश्वकल्पः सूर्यसदृशः 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः, हरेः कुमारः वानरस्य केसरिणः पुत्रः हनुमान्, पक्षे—हरेः कुमारः इन्द्रस्य पुत्रः अर्जुनः विरोधिनां शत्रूणां रावणादि-राक्षसानां, पक्षे—दुर्योधनादीनां मूर्ध्नि शिरसि पादं निधाय चरणं स्थापयित्वा तेषामवमानं कृत्वेत्यर्थः, उष्णीषमिव शिरोवेष्टनमिव अच्छं यशः स्वच्छां कीर्तिं, पक्षे—अच्छं यश इव स्वच्छां कीर्तिमिव उष्णीषं शिरोवेष्टनं व्यमुष्णात् अपाहरत्। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारद्वयम्।

इस प्रकार अपना बल प्रकट करनेवाले सूर्य के समान केसरीवन्दर के पुत्र हनुमान् जी ने अपने विरोधी राक्षसों के शिर पर पैर रख कर अर्थात् उन का अपमान कर के उन के शिर की पगड़ी के समान उन के यश को हर लिया। दूसरे पक्ष में—इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने अपने विरोधी दुर्योधनादिकों के शिर पर पैर रख कर अर्थात् उन का अपमान कर के उन के यश के समान उनकी पगड़ी छीन ली। संमोहनास्त्र से सभी को बेहोश करके सबों की पगड़ियाँ छीन लिये।

प्रभाविनोदी प्रबलाम्बुराशे-र्विलङ्घनाल्लब्धजयोत्तरश्रीः।
नृपप्रियोपायनरत्नहारी पुनः समीयाय तदात्मवर्गैः ॥२२॥

प्रभाविनोदी लाङ्गूललग्नवह्निज्वालानिर्वापकः प्रबलाम्बुराशेः प्रबलस्य प्रकृष्टशक्तः विशालस्येत्यर्थः, अम्बुराशेः समुद्रस्य विलङ्घनात् पारगमनाद् लब्धजयोत्तरश्रीः लब्धा प्राप्ता जयोत्तरा जयशब्दस्य पश्चात् स्थिता श्रीः शोभा जयश्रीरिति तात्पर्यम् येन सः, नृपप्रियोपायनरत्नहारी नृपप्रियायाः राजपत्न्याः सीतायाः यदुपायनरत्नं यः उपहारस्वरूपो मणिः तदानयिता हनूमान् पुनः पुनरपि तदात्मवर्गैः तैः स्वजनैः अङ्गदादिभिः समीयाय मिलितवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

पोंछ में लगी आग की ज्वाला बुझानेवाले, विशालसमुद्र के लाङ्घने से जयश्री प्राप्त करनेवाले, राजपत्नी सीता का उपहारमणि ले जानेवाले हनुमान् फिर अपने आत्मीयवर्ग अङ्गदादि से मिल गये।

पक्षे—प्रभाविनः प्रभावयुक्तस्य दीप्रबलाम्बुराशेः दीप्रस्य तेजस्विनः सेनासमुद्रस्य विलङ्घनात् पारगमनाद् पराभवकरणादित्यर्थः लब्धजयोत्तरश्रीः लब्धजया प्राप्तविजयवती उत्तरश्रीः विराटपुत्रस्य उत्तरस्य श्रीः प्रसन्नमुखशोभा येन सः, नृपप्रियोपायनरत्नहारी नृपस्य विराटस्य या प्रिया प्रेमास्पदं पुत्री उत्तरा तस्याः उपायनरत्नम् उपहारश्रेष्ठम् उष्णीषं तस्य हारी आनयिता अर्जुनः पुनः पुनरपि तदात्मवर्गैः तस्याः उत्तरायाः आत्मवर्गैः स्वजनैः पित्रादिभिः समीयाय मिलितवान्। अस्मिन् पक्षे बलाम्बुराशेरित्यत्र रूपकमलङ्कारः।

प्रभाव से युक्त तेजस्वी सेनारूपी समुद्र के लङ्घन करने से अर्थात् पराभव करने से प्राप्त विजयवाली विराटपुत्र उत्तर की शोभा है जिस से वह, राजा विराट की प्रिय पुत्री उत्तरा का श्रेष्ठ उपहार दुपट्टा लाने वाले अर्जुन फिर उस उत्तरा के स्वजन-पिता आदि से मिल गये।

ततः समृद्धाङ्गदहेमकुण्डलाः समेत्य सर्वे कृतमन्त्रनिश्चयाः ।
कृतार्थभावान्मधुरोचितश्रियः क्षमापतेस्ते पुरतोऽवतस्थिरे ॥२३॥

ततस्तदनन्तरं समृद्धाङ्गदहेमकुण्डलाः समृद्धः सीतावृत्तान्तप्राप्तेः समृद्धिमान् अङ्गदो वालिकुमारः हेमकुण्डलः एतन्नामा वानरविशेषो येषां ते समेत्य मिलित्वा कृतमन्त्रनिश्चयाः कृताग्रिमकर्तव्यविचार-विमर्शवन्तः, कृतार्थभावात् कृतप्रयोजनत्वात् मधुरोचितश्रियः मधुना दधिबलरक्षितमधुवनस्य मधुपानेन रोचितश्रियः उद्दीप्तकान्तिमन्तः, ते सर्वे हनूमदादयः क्षमापतेः राज्ञः सुग्रीवस्य अथवा रामस्य पुरतः अग्रे अवतस्थिरे उपस्थिताः बभूवुः । अत्र वंशस्थवृत्तम् ।

इसके बाद सीता के वृत्तान्त की प्राप्ति से समृद्धिमान् अङ्गद तथा हेम-कुण्डल नामक बन्दर हैं जिन के वे मिलकर अग्रिमकृत्य का मन्त्रणा द्वारा निश्चय कर के प्रयोजनसिद्धि होने से प्रसन्नता के कारण मधुवन के मधुपान से उद्दीप्त शोभावाले वे हनुमान् आदि सभी बन्दर राजा सुग्रीव अथवा राम के सामने उपस्थित हुए ।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं ते सर्वे युधिष्ठिरादयः समेत्य मिलित्वा कृत-मन्त्रनिश्चयाः कृतः मन्त्रः मन्त्रणा निश्चयः कर्तव्यनिर्णयश्च यैस्ते कृतार्थभावात् पूरितोद्देश्यत्वात् वनवासगुप्तवासयोस्त्रयोदशवर्षसमा-पनादित्यर्थः, समृद्धाङ्गदहेमकुण्डलाः समृद्धानि ऋद्धिमन्ति बहुमूल्या-नीत्यर्थः, अङ्गदानि केयूराणि हेमकुण्डलानि सुवर्णकर्णवेष्टनानि च येषां ते, अत एव मधुरोचितश्रियः मधुरा मनोहरा उचिता समञ्जसा श्रीः शोभा येषां ते, 'उचितं तु भुवि न्यस्ते मिते ज्ञाते समञ्जसे' इति मेदिनी, क्षमापतेः राज्ञो विराटस्य पुरतः अग्रे अवतस्थिरे अवस्थित-वन्तः स्वस्वरूपेण प्रकटीबभूवुरित्यर्थः ।

इसके बाद मिलकर मन्त्रणा के द्वारा अग्रिमकर्तव्यनिर्णय करके वनवास तथा गुप्तवास के उद्देश्यस्वरूप तेरह वर्ष पूर्ण हो जाने से बहुमूल्य केयूर तथा कुण्डल धारण किये हुए, अत एव मनोहर तथा उचित शोभावाले वे युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डव राजा विराट के सामने उपस्थित हुए अर्थात् अपने स्वरूप में विराट के सामने प्रकट हो गये ।

उपकारगुणज्ञेन राज्ञा तद्विहितस्तदा ।
केलीकलहसंवृत्तः प्रहारोऽपि स चक्षमे ॥२४॥

तदा तस्मिन् काले उपकारगुणज्ञेन उपकारगुणविजानता राज्ञा

रामेण तद्विहितः तेन सुग्रीवेण विहितः कृतः केलीकलहसंवृत्तः केल्यां प्रियया सह क्रीडायां यः कलहः मानधारणं तेन संवृत्तः भूतः सः प्रसिद्धः प्रहारः प्रकृष्टो हारः हरणम् अतिकालयापनमित्यर्थः, क्रीडासक्तेन सुग्रीवेण रामकार्यविलम्बनमिति भावः, चक्षमे क्षान्तः। अत्रानुष्टुप्छन्दः।

उस समय उपकार का गुण जानने वाले राजा राम के द्वारा सुग्रीव के द्वारा स्त्री-केलिकलह में आसक्त होकर किया गया विलम्ब क्षमा कर दिया गया।

पक्षे—उपकारगुणज्ञेन गुप्तवासाश्रयदानोपकारगुणविजानता राज्ञा युधिष्ठिरेण तदा तस्मिन् काले तद्विहितः तेन विराटेन विहितः कृतः केलीकलहसंवृत्तः केल्यां द्यूतक्रीडायां यः कलहः वाद-विग्रहः तत्र संवृत्तः सञ्जातः प्रहारः शिरसि पाशकताडनं सः प्रहाररूपापराधः चक्षमे क्षान्तः।

गुप्तवास के समय आश्रय-दानरूपी उपकार का गुण जानने वाले राजा युधिष्ठिर के द्वारा उस समय उस विराट के द्वारा किया गया द्यूतक्रीड़ा के वाद-विग्रह में हुआ जो शिर पर पाशक का प्रहार वह क्षमा कर दिया गया।

दृष्ट्वैव चूडामणिशोभिनस्तांस्तच्छक्तिसंपादितभूरिकार्यः।
संभावयामास चिरं नरेन्द्रः श्रुतप्रियोदन्तनितान्तहृष्टः ॥२५॥

श्रुतप्रियोदन्तनितान्तहृष्टः श्रुतः आकर्णितः यः प्रियायाः पत्न्याः सीतायाः उदन्तः वृत्तान्तः तेन नितान्तम् अत्यन्तं हृष्टः प्रसन्नः, तच्छक्तिसंपादितभूरिकार्यः तच्छक्त्या तेषां हनुमदादीनां शक्त्या सामर्थ्येन संपादितं कृतं भूरिकार्यं सीताप्रवृत्त्युपलब्धिरूपं महत्प्रयोजनं यस्य सः, नरेन्द्रः रामः, चूडामणिशोभिनः चूडामणिना सीताभिज्ञानरूपशीर्षरत्नेन शोभिनः शोभितान् तान् हनुमदादीन् चिरं बहुकालं यावत् दृष्ट्वैव अवलोक्यैव संभावयामास आदरयति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

अपनी पत्नी सीता की समाचार-प्राप्ति से अत्यन्त प्रसन्न, उन हनुमदादि की शक्ति से बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है जिस का उस रामचन्द्रजी ने सीता के चिह्न स्वरूप चूड़ामणि से सुशोभित उन हनुमदादि को बहुत देर तक देखकर ही उन का सम्मान किया।

पक्षे—तच्छक्तिसंपादितभूरिकार्यः तच्छक्त्या तेषाम् अर्जुनादीनां सामर्थ्येन संपादितभूरिकार्यः संपादितं कृतं भूरि कार्यं गोमोचनरूपं महत्कार्यं यस्य सः, श्रुतप्रियोदन्तनितान्तहृष्टः श्रुतः आकर्णितः यः

प्रियः उदन्तः युधिष्ठिरादीनां वृत्तान्तः तेन नितान्तम् अत्यन्तं हृष्टः प्रसन्नः सन् नरेन्द्रः राजा विराटः चूडामणिशोभिनः किरीटरत्नसुशोभितान् तान् युधिष्ठिरादीन् चिरं बहुकालं यावद् दृष्ट्वैव अवलोक्यैव संभावयामास सत्कृतवान् ।

उन अर्जुनादिकों को शक्ति से किये गये गोमोचनरूपी बहुत बड़े कार्य-वाले, युधिष्ठिरादिकों के प्रियवृत्तान्त सुन कर अत्यन्त प्रसन्न होनेवाले राजा विराट ने किरीट के रत्नों से सुशोभित उन युधिष्ठिरादिकों को बहुत देर तक देख कर ही उन का सम्मान किया ।

प्रभञ्जनस्य द्विषतां जिष्णोरात्मोद्भवस्तदा ।
सत्कृत्य सुहृदां मध्ये राज्ञा दत्तोत्तरो बभौ ॥२६॥

तदा तस्मिन् काले द्विषतां विरोधिनां वृत्रादीनां जिष्णोः जयनशीलस्य प्रभनञ्जस्य वायोः 'नभस्वद्वातपवनाः पवमानः प्रभञ्जनः' इत्यमरः, आत्मोद्भवः पुत्रः हनुमान् राज्ञा रामेण सुहृदां मध्ये मित्राणामङ्गदादीनां मध्ये सत्कृत्य संमान्य दत्तोत्तरः दत्तं वितरितम् उत्तरं प्रतिवचनं यस्मै सः, एवंभूतः सन् बभौ शुशुभे । अत्रानुष्टुप्छन्दः ।

उस समय अपने विरोधी वृत्रादिकों के विजयी वायु के पुत्र हनुमान् राजा राम के द्वारा अङ्गदादि मित्रों के बीच सत्कार कर के दिया गया है प्रत्युत्तर जिस को इस प्रकार के हो कर सुशोभित हुए ।

पक्षे—तदा तस्मिन् काले द्विषतां शत्रूणां प्रभञ्जनस्य प्रकृष्टेनावमर्दकस्य जिष्णोरर्जुनस्य आत्मोद्भवः पुत्रः अभिमन्युः राज्ञा विराटेन सुहृदां मध्ये मित्राणां समक्षं सत्कृत्य संमान्य दत्तोत्तरः दत्ता वितरिता विवाहितेत्यर्थः उत्तरा एतन्नाम्नी स्वपुत्री यस्मै सः एवंभूतः सन् बभौ शुशुभे ।

उस समय शत्रुओं के मर्दन करने वाले अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु राजा विराट के द्वारा मित्रों के बीच में सत्कार करके अपनी पुत्री उत्तरा का दान देने से अर्थात् उत्तरा से विवाह करा देने से सुशोभित हुए ।

सद्वृत्तरोदारगुणः सन्तोषितहरीश्वरः ।
राजासौ भद्रताविष्टः कामदेव इव श्रिया ॥२७॥

इति हरधरणीप्रसूत-कादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूप-कामदेव प्रोत्साहित-कविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कामदेवाङ्के लङ्कादहनोत्तारगोग्रहो नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

सदुत्तरोदारगुणः सद्भिः शोभनैः उत्तरैः प्रतिवचनैः उदारः अनुकूलः गुणः दाक्षिण्यादिः यस्य सः, सन्तोषितहरीश्वरः सन्तोषितः कृतज्ञतासूचकवचनैः सन्तुष्टीकृतः हरीश्वरः वानरपतिः सुग्रीवः येन सः, भद्रताविष्टः भद्रतया सज्जनतया आविष्टः संयुक्तः असौ राजा रामः सदुत्तरः सन्ति शोभनानि उत्तराणि प्रतिवचनानि यस्य सः, दारगुणः दाराणां पत्नीनां गुणाः दाक्षिण्यादयः यस्य सः, सन्तोषितहरीश्वरः सन्तोषितः भक्त्या सन्तुष्टीकृतः हरिः विष्णुः ईश्वरः शिवश्च येन सः, भद्रताविष्टः सज्जनतासंयुक्तः कामदेव इव एतद्ग्रन्थकारयिता कामदेवसंज्ञकः राजेव श्रिया शोभया बभाविति शेषः। अत्राप्यनुष्टुपूछन्दः, उपमालङ्कारः।

कोमल प्रत्युत्तर के द्वारा उदार गुणवाले, कृतज्ञतासूचकवचनों से कपीश्वर सुग्रीव को सन्तुष्ट करने वाले, सज्जनता से संयुक्त यह राजा राम मृदुपूर्व बोलने वाले, पत्नियों के दयादाक्षिण्यादिगुणवाले, अपनी भक्ति से विष्णु तथा शिव को सन्तुष्ट करनेवाले, सज्जनता से संयुक्त इस ग्रन्थ की रचना कराने वाले कामदेव नामक राजा के समान कान्ति से सुशोभित हुए।

पक्षे—सदुत्तरोदारगुणः सदुत्तरः सती शोभना उत्तरा एतन्नाम्नी पत्नी यस्य सः अभिमन्युः, सदुत्तरस्य अभिमन्योः उदाराः शोभनाः गुणाः दयादाक्षिण्यादयः यस्मै सः, सन्तोषितहरीश्वरः सन्तोषितः प्रसन्नीकृतः हरिः कृष्णः ईश्वरः राजा विराटश्च येन सः, सौभद्रताविष्टः सुभद्रायाः अपत्यं पुमान् सौभद्रः अभिमन्युः तस्य भावः सौभद्रता तया आविष्टः संयुक्तः सौभद्रताविष्टः अभिमन्युगुणोपबृंहित इत्यर्थः, राजा युधिष्ठिरः श्रिया कान्त्या कामदेव इव मदन इव अथवा एतद्ग्रन्थकारयिता कामदेवसंज्ञकः राजेव शुशुभे इति शेषः।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुर-कुलोद्भूत-श्रीदामोदरझा साहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अच्छी उत्तरा नाम की पत्नी है जिस की ऐसे अभिमन्यु के उदार गुणवाले, श्रीकृष्ण तथा राजा विराट को प्रसन्न करने वाले, सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के गुणों से युक्त राजा युधिष्ठिर कान्ति के द्वारा रतिपति कामदेव के समान अथवा इस ग्रंथ की रचना कराने वाले कामदेव नामक राजा के समान सुशोभित हुए।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुर-कुलोद्भूत श्री दामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में छठाँ सर्ग ॥ ६ ॥



सप्तमः सर्गः

अथ नृपतिरुपेत्य मित्रवर्गैं हरिबलभद्रमुखैः प्रणीतमन्त्रः ।
अवगतरिपुरात्मचक्रवृद्ध्या निजविजयोचितमन्त्रमन्वतिष्ठत् ॥१॥

अथ अनन्तरं हरिबलभद्रमुखैः हरिः वानरः सुग्रीवः बलभद्रः बलश्रेष्ठः हनुमान् तौ मुखे प्रमुखे येषां तैः, सुग्रीवहनुमत्प्रभृतिभिरित्यर्थः, मित्रवर्गैः सुहृत्समूहैः उपेत्य संगत्य प्रणीतमन्त्रः कृतगुप्तवादः, अवगतरिपुः विदितशत्रुः शत्रुशक्तिज्ञानवानित्यर्थः, नृपतिः राजा रामः आत्मचक्रवृद्ध्या स्वसेनोन्नत्या 'चक्रः कोके पुमान् क्लीवं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः' इति मेदिनी, निजविजयोचितमन्त्रं स्वविजययोग्यविचारम् अन्वतिष्ठत् निर्धारितवान् । अत्र पुष्पिताग्रा नाम विषमपदवृत्तम् 'अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ।

इस के बाद सुग्रीव बन्दर तथा हनुमान् प्रभृति मित्रसमूहों के द्वारा इकट्ठा होकर दीगई मन्त्रणावाले, शत्रु की शक्ति जाननेवाले राजा राम ने अपनी सेना की वृद्धि के द्वारा अपनी विजय के योग्य विचार निश्चित किया ।

पक्षे—अथ अनन्तरं हरिबलभद्रमुखैः हरिः कृष्णः बलभद्रः बलश्रेष्ठः भीमः (न त्वत्र बलभद्रो बलरामः, महाभारतयुद्धोद्योगसमये बलरामस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गकथाव्याघातात्) तौ मुखे प्रमुखे येषां तैः मित्रवर्गैः सुहृत्समूहैः उपेत्य आगत्य प्रणीतमन्त्रः कृतगुप्तवादः, अवगतरिपुः विदितदुर्योधनशक्तिः, नृपतिः राजा युधिष्ठिरः, आत्मचक्रवृद्ध्या स्वसैन्यसमृद्ध्या निजविजयोचितमन्त्रं स्वविजययोग्यविचारनिर्णयम् अन्वतिष्ठत् अकरोत् ।

इस के बाद कृष्ण भीम आदि मित्र-समूहों के द्वारा आकर दी गई मन्त्रणा वाले, दुर्योधन की शक्ति का ज्ञान रखने वाले राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना की उन्नति के द्वारा अपनी विजय के योग्य विचार स्थिर किया ।

ततो युगान्तक्षुभिताब्धिकल्पाः स्वभारभुग्नोरगराजकण्ठाः ।
स्फुरत्प्रभावानरपुङ्गवानां दिगन्तरेभ्यः पृतनाः समीयुः ॥२॥

ततस्तदनन्तरं दिगन्तरेभ्यः दिशामवकाशेभ्यः वानरपुङ्गवानां कपिश्रेष्ठानां स्फुरत्प्रभाः दीप्तकान्तयः, पक्षे—नरपुङ्गवानां श्रेष्ठमनुष्याणां स्फुरत्प्रभावाः स्फुरन् दीप्यमानः प्रभावः प्रभुशक्तिः यासां ताः, स्वभारभुग्नोरगराजकण्ठाः स्वभारेण भुग्नः वक्रीकृतः उरगराजस्य नागराजशेषस्य कण्ठो गलः याभिस्ताः, युगान्तक्षुभिताब्धिकल्पाः युगान्ते प्रलयकाले क्षुभितः संक्षुब्धः यः अब्धिः समुद्रः तत्तुल्याः, पृतनाः सेनाः समीयुः समाजग्मुः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्, उपमातिशयोक्तिश्चालङ्कारद्वयम्।

इस के बाद सभी दिशाओं से श्रेष्ठ बन्दरों की चमकती हुई कान्तिवाली, दूसरे पक्ष में—श्रेष्ठ मनुष्यों की दीप्तप्रभाव वाली, अपने भार से पृथ्वी के धारण करने वाले शेष नाग की गरदन झुका देने वाली, प्रलयकाल के संक्षुब्ध समुद्र के समान सेनायें आ गईं।

संनद्धसैन्येषु बलाधिपेषु ततस्ततो भूपतिमाश्रयत्सु।
विरोधिचक्रं बहुधार्तराष्ट्रं चिन्ताभिरन्तर्गतशल्यमासीत् ॥३॥

ततस्ततः तस्मात्तस्मात्प्रदेशात् संनद्धसैन्येषु सुसज्जितानीकेषु बलाधिपेषु सेनानायकेषु भूपतिं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरम् आश्रयत्सु मिलितेषु सत्सु बहुधार्तराष्ट्रं बहुधा अनेकप्रकारैः आर्तं पीडितं राष्ट्रं देशः येन तत्, पक्षे—बहवः अनेकसंख्याकाः धार्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रपुत्राः यस्मिन् तत् विरोधिचक्रं विरोधिनः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य चक्रं सैन्यं 'वरूथिनी बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्' इत्यमरः, चिन्ताभिः आशङ्काभिः अन्तर्गतशल्यं हृदयस्थितशङ्कु हृदयस्थितशल्यमिव सव्यथमित्यर्थः, पक्षे—अन्तर्गतः मध्ये स्थितः शल्यः मद्राधिपः यस्य एवंभूतम् आसीत् अभूत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

उन उन प्रदेशों से आकर सुसज्जितसेना वाले सेनानायकों के राजा राम, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर से मिल जाने पर अनेक प्रकार से देश को पीडितकरने वाली, दूसरे पक्ष में—बहुत से धृतराष्ट्रपुत्रों से युक्त, विरोधी रावण की सेना, दूसरे पक्ष में—विरोधी दुर्योधन की सेना आशङ्का से हृदय में चुभे शल्य से मानो व्यथित थी, दूसरे पक्ष में—अपने बीच राजा शल्य को रक्खे हुए थी।

कृतोद्यमः शत्रुजये यथावद्राजा सराष्ट्राणि वनानि नीत्वा।
महाविपद्वारिनिधिं तितीर्षुर्वेलावनान्तं प्रतिपद्य तस्थौ ॥४॥

शत्रुजये रावणविजये यथावत् समुचितरूपेण कृतोद्यमः विहित-

प्रयत्नः राजा रामः सराष्ट्राणि देशसहितानि वनानि काननानि नीत्वा अतिक्रम्य महाविपद्वारिनिधिं महती विपद् आपत्तिः यस्मिन् एवंभूतं वारिनिधिं समुद्रं तितीर्षुः तर्तुमिच्छुः सन् वेलावनान्तं समुद्रतटवनमध्यं प्रतिपद्य प्राप्य तस्थौ स्थितः। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

रावण को जीतने के लिये किये गये समुचित प्रयत्नवाले राजा राम अनेक देशों के सहित जङ्गलों को पार कर के बहुत बड़े सङ्कटों से युक्त समुद्र को पार करने की इच्छा से समुद्र तट के वन में पहुँच कर ठहर गये।

पक्षे—सराष्ट्राणि विराटदेशसहितानि वनानि काम्यकादीनि काननानि नीत्वा अतिक्रम्य, वेलावनान्तं वेलायाः त्रयोदशवर्षरूपस्य समयस्य यद् अवनं रक्षणं परिपालनमिति यावत्, तस्य अन्तं पारं प्रतिपद्य प्राप्य, शत्रुजये शत्रोर्दुर्योधनस्य विजये यथावद् उचितरूपेण कृतोद्यमः कृतप्रयत्नः महाविपद्वारिनिधि राज्यापहरणमेव या महती विपत् सैव वारिनिधिः समुद्रः तं तितीर्षुः तर्तुमिच्छुः सन् राजा युधिष्ठिरः तस्थौ स्थितवान्।

मत्स्यदेशसहित काम्यक आदि अनेक वनों को पार कर के, त्रयोदश वर्षात्मक समय पालन की समाप्ति करके, शत्रु दुर्योधन के जीतने के विषय में उचित रूप के प्रयत्न करनेवाले राजा युधिष्ठिर राज्यापहरणरूपी महाविपत्तिसमुद्र को पार करने के इच्छुक होकर रुके रहे।

ससह्यभूभृत्कटकान्तसक्ता धीरा महेन्द्रस्य विलङ्घनेऽपि।
समं समुद्रस्य पयः समृद्ध्या नरेन्द्रसेना प्रतिगच्छति स्म॥५॥

ससह्यभूभृत्कटकान्तसक्ता सह्यपर्वतसहिताः ये भूभृतः पर्वताः तेषां कटकान्तेषु नितम्बप्रान्तेषु सक्ता संलग्ना, महेन्द्रस्य महेन्द्रपर्वतस्य विलङ्घनेऽपि पारगमनेऽपि धीरा सक्षमा, नरेन्द्रसेना नरेन्द्रस्य रामस्य सेना, समृद्ध्या स्वोन्नतिसम्पदा समं तुल्यम् आत्मसदृशमित्यर्थः, समुद्रस्य पयः प्रति अब्धेर्जलमुद्दिश्य, अत्र विशेषणयोर्लिङ्गव्यत्ययेन पयस्यप्यन्वयः, यथा—ससह्यभूभृत्कटकान्तसक्तं महेन्द्रस्य विलङ्घनेऽपि धीरं समुद्रस्य पयः प्रतीति तात्पर्यम्, गच्छति स्म जगाम। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारश्च।

सह्याचलसहित पहाड़ों के नितम्बप्रान्तों में संलग्न, महेन्द्रपर्वत के लाङ्घने में भी समर्थ, राजा राम की सेना उन्नति के द्वारा अपने समान समुद्रजल के प्रति गई।

पक्षे—ससह्यभूभृत्कटकान्तसक्ता ससह्याः सह्यनामकेन राज्ञा सहिताः ये भूभृतः राजानः तेषां कटकान्तेन सैन्यस्वरूपेण सक्ता संयुक्ता, 'स्वरूपेऽन्तं विनाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इतित्रिकाण्ड-शेषः, 'भूभृन्नितम्बवलयचक्रेषु कटकोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, चक्रं सैन्यम्, महेन्द्रस्य देवराजस्य विलङ्घनेऽपि पराभवकरणेऽपि धीरा समर्था, नरेन्द्रसेना नरेन्द्रस्य युधिष्ठिरस्य सेना समृद्धया उन्नत्या समुद्रस्य पयः अब्धेर्जलं समं स्वसदृशं प्रतिगच्छति स्म स्वीकरोति स्म। अस्मिन्पक्षेऽपि पूर्ववल्लिङ्गव्यत्ययेन विशेषणयोः पयस्यन्वयः।

सह्यनामक राजा सहित राजाओं की सेना से मिली हुई तथा देवराज इन्द्र के भी पराभव करने में समर्थ राजा युधिष्ठिर की सेना ने उन्नति के द्वारा समुद्र के जल को अपने समान स्वीकार किया।

अथ नृपमनुवेलं सेव्यमानं बलौघै-
रगणितदशकण्ठोद्दण्डदोर्दण्डशक्तिः।
अनिलसुतनिबद्धप्रीतिरागत्य दूरात्
क्षितिघटितकिरीटं राक्षसेन्द्रो ववन्दे ॥६॥

अथ अनन्तरम् अनुवेलं वेलायां समुद्रतटे इति यावत्, बलौघैः सैन्यसमूहैः सेव्यमानं सेवितं संयुक्तमित्यर्थः, नृपं राजानं रामचन्द्रम् अगणितदशकण्ठोद्दण्डदोर्दण्डशक्तिः अगणिता अवहेलिता दशकण्ठस्य रावणस्य उद्दण्डानाम् उत्कटानां दोर्दण्डानां भुजकाण्डानां शक्तिः सामर्थ्यं येन सः, अनिलसुतनिबद्धप्रीतिः अनिलसुते वायुपुत्रे हनुमति निबद्धा संलग्ना प्रीतिः प्रेम यस्य सः, राक्षसेन्द्रः राक्षसश्रेष्ठः विभीषणः, दूरात् लङ्कातः आगत्य उपेत्य, क्षितिघटितकिरीटं क्षितौ पृथिव्यां घटितं लग्नं किरीटं मुकुटं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा ववन्दे प्रणनाम, अर्थाद् विभीषण आगत्य तेन सहामिलत्। अत्र मालिनीवृत्तं 'ननम-ययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इतिलक्षणात्।

इस के बाद समुद्र के तट में सेनासमूह से युक्त राजा रामचन्द्र को रावण के उद्दण्डभुजदण्डों की शक्ति की अवहेलना करनेवाले वायुपुत्र हनुमान् से प्रेम करनेवाले राक्षसश्रेष्ठ विभीषण ने दूरस्थान लङ्का से आकर पृथ्वी पर मुकुट रगड़ते हुए प्रणाम किया। अर्थात् विभीषण आ कर राम से मिल गये।

पक्षे—अथ अनन्तरम् अनुवेलं सर्वस्मिन् समये 'अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि' इत्यमरः, बलौघैः सैन्यसमूहैः सेव्यमानं

सेवितं संयुक्तमिति यावत्, नृपं राजानं युधिष्ठिरम्, अगणितदशकण्ठो-द्दण्डदोर्दण्डशक्तिः अगणितः तिरस्कृतः दशकण्ठः रावणः यया एवं-भूता उद्दण्डदोर्दण्डयोः उद्भटभुजप्रकाण्डयुगयोः शक्तिः यस्य सः, अनिलसुतनिबद्धप्रीतिः अनिलसुते वायुपुत्रे भीमे निबद्धा पितृत्वा-त्संलग्ना प्रीतिः प्रेम यस्य सः, राक्षसेन्द्रः राक्षसश्रेष्ठः घटोत्कचः, दूरात् सुदूरस्थानात् हिडिम्बवनात् आगत्य उपेत्य क्षितिघटितकिरीटं क्षितौ पृथिव्यां घटितं लग्नं किरीटं मुकुटं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा-स्थात्तथा ववन्दे प्रणमति स्म। अर्थात् ससैन्यो घटोत्कचोऽपि हिडिम्बवनादागत्य युधिष्ठिरस्य सेनायां संमिलितोऽभूत्।

इस के बाद प्रतिक्षण सैन्यसमूहों से घिरे हुए राजा युधिष्ठिर को रावण का तिरस्कार करने वाली उद्दण्डभुजदण्डयुगल की शक्ति धारण करने वाले, पिता होने के कारण वायुपुत्र भीम से प्रेम करने वाले, राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच ने दूरस्थान हिडिम्बवन से आकर पृथ्वी पर अपना मुकुट लगाते हुए प्रणाम किया। अर्थात् भीम के पुत्र घटोत्कच राक्षस भी हिडिम्ब वन से आकर युधिष्ठिर की सेना में मिल गये।

तं भीमतेजःप्रभवं प्रभावी विपक्षशक्तिप्रतिघातहेतुम्।
विभीषणं भूमिपतिः स्वकीयप्रसादलक्ष्मीसदनं चकार॥७॥

प्रभावी प्रभुशक्तिमान् भूमिपतिः राजा रामः, भीमतेजःप्रभवं भयङ्करबलस्योत्पत्तिस्थानं 'तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले शुक्रेऽपि' इत्यमरः, विपक्षशक्तिप्रतिघातहेतुं विपक्षस्य शत्रोः रावणस्य या शक्तिः, सामर्थ्यं तस्याः शक्तेः प्रतिघातहेतुं निषूदनकारणं, विभीषणं विभीषणसंज्ञकं तं रावणभ्रातरं स्वकीयप्रसादलक्ष्मीसदनं स्वकीयस्य आत्मनः यः प्रसादः प्रसन्नता तत्स्वरूपा या लक्ष्मीः रावणराजलक्ष्मीः तस्याः सदनम् आस्पदं चकार अकरोत्, रावणस्य राज्यसम्पत्तिं तस्मै ददौ इति भावः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

प्रभावशाली उस राजा राम ने भयङ्कर बल के उत्पत्तिस्थान, शत्रु रावण की शक्ति के विनाश के कारण विभीषणनामक रावण के उस भाई को अपनी प्रसन्नता के स्वरूप रावण की राजलक्ष्मी का पात्र बना दिया। अर्थात् रावण की राज्य-सम्पत्ति उसे दे दी।

पक्षे—प्रभावी प्रभावशाली भूमिपतिः राजा युधिष्ठिरः विभीषणं विशेषभयङ्करं विपक्षशक्तिप्रतिघातहेतुं विपक्षस्य शत्रोः दुर्योधनस्य या

शक्तिः सैन्यबलं तस्याः शक्तेः प्रतिघातहेतुं निर्मथनकारणभूतं भीमतेजःप्रभवं भीमस्य वृकोदरस्य तेजसा शुक्रेण प्रभवम् उत्पन्नं तं घटोत्कचं, स्वकीयप्रसादलक्ष्मीसदनं स्वकीयस्य आत्मनः यः प्रसादः प्रसन्नता तस्य या लक्ष्मीः शोभा तस्याः सदनं निवासस्थानं चकार कृतवान्। स्वप्रसन्नतायाः पात्रमकरोदिति भावः।

प्रभावशाली राजा युधिष्ठिर ने विशेषरूप से शत्रुओं के लिये भयङ्कर, शत्रु दुर्योधन के सैन्यबल के विनाश के कारण, भीम के वीर्य से उत्पन्न उस घटोत्कच को अपनी प्रसन्नता की शोभा का पात्र बना दिया। अर्थात् उस के ऊपर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

जवेन जिष्णुर्नृपनन्दनोऽथ द्विषो जिगीषुर्हरिसंग्रहेण।
दुर्योधनेन द्विषतावगाहमध्येपयोराशिमुपाससाद ॥८॥

अथ अनन्तरं जिष्णुः जयनशीलः नृपनन्दनः राजकुमारः रामः दुर्योधनेन दुःखेन योधयितुं शक्येन हरिसंग्रहेण वानरसमूहेन द्विषः शत्रून् जिगीषुः जेतुमिच्छुः सन् द्विषता शत्रुणा रावणेन अवगाहमध्येपयोराशिम् अवगाह्यते इति अवगाहः तम् अवगाहम् अवगाह्यमानं मध्येपयोराशिं समुद्रमध्यभागम् जवेन वेगेन उपाससाद प्राप्तवान्। अर्थात् शत्रुणा पूर्वप्रविष्टसमुद्रमध्यभागमगच्छत्। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इस के बाद जयनशील राजकुमार राम ने कठिनाई से युद्ध करने योग्य वानर-समूह के द्वारा शत्रुओं के जीतने के इच्छुक होकर अत्यन्त वेग से शत्रु के द्वारा अवगाहित (पूर्व में ही प्रवेश किये हुए) समुद्र के मध्य भाग को प्राप्त किया।

पक्षे—अथ अनन्तरं नृपनन्दनः राजकुमारः जिष्णुः अर्जुनः, हरिसंग्रहेण हरेः कृष्णस्य संग्रहेण संगृह्य स्वपक्षीयकरणेन द्विषः शत्रून् जिगीषुः जेतुमिच्छुः सन् दुर्योधनेन द्विषता दुर्योधननामकेन शत्रुणा अवगाहमध्येपयोराशिम् अवगाह्यते प्रविश्यते इत्यवगाहः तम् अवगाहम् अवगाह्यमानं मध्येपयोराशिं समुद्रस्य मध्यभागं द्वारकानगरम् जवेन वेगेन उपाससाद प्राप्तवान्। अर्थाद् यत्र कृष्णं संग्रहीतुं किञ्चित्पूर्वमेव दुर्योधनोऽगच्छत् तत्र द्वारकायां पश्चादयमर्जुनोऽप्यागतः।

इस के बाद राजकुमार अर्जुन कृष्ण के अपने पक्ष में संग्रह करने से शत्रुओं के

जीतने के इच्छुक होकर शत्रु दुर्योधन के द्वारा कुछ पूर्व ही प्रवेश किये हुए समुद्र के मध्य भाग अर्थात् द्वारकापुरी में शीघ्रता के साथ पहुँचे।

दुर्गं तुङ्गोत्तरङ्गावलि-मिलितमहानक्रमावर्तचक्र-
भ्राम्यद्डिण्डीरपिण्डप्रतिगलितसितच्छत्रविस्तारशोभम्।
अम्भः-संभार-भारालसजलद-घटादुर्दिनीभूतदिक्कं
दिक्कुम्भिप्रौढशुण्डाशकलितसलिलं सागरं सोऽभ्यपश्यत् ॥९॥

सः रामः, पक्षे—अर्जुनः आवर्तचक्रभ्राम्यद्डिण्डीरपिण्डप्रतिगलितसितच्छत्रविस्तारशोभं आवर्तचक्रे भ्रमिमण्डले भ्राम्यन्तः परिवर्तमानाः ये डिण्डीरपिण्डाः फेनस्तोमाः तेभ्यः प्रतिगलिता आविर्भूता सितच्छत्राणां श्वेतातपवारणानां शोभा श्रीः यस्मिन् तम्, तुङ्गोत्तरङ्गावलिमिलितमहानक्रम् तुङ्गाः उन्नताः ये उत्तरङ्गाः ऊर्ध्वं गच्छन्त्यः ऊर्मयः तेषामावलिषु श्रेणीषु मिलिताः संयुक्ताः महानक्राः विशालकुम्भीराः यस्मिन् तम्, अम्भःसंभारभारालसजलदघटादुर्दिनीभूतदिक्कम् अम्भसां जलानां संभारस्य समूहस्य यः भारः गुरुता तेन अलसाः मन्थराः ये जलदाः मेघाः तेषां घटाभिः आडम्बरैः दुर्दिनीभूताः सवृष्टिकमेघाच्छन्नीभूताः दिशः आशाः यस्मिन् तम्, दिक्कुम्भिप्रौढशुण्डाशकलितसलिलं दिक्कुम्भिनां दिग्गजानां याः प्रौढाः दृढाः शुण्डाः कराः ताभिः शकलितानि जर्जरीकृतानि सलिलानि जलानि यस्मिन् तम्, दुर्गं दुःखेन गन्तुं शक्यं सागरं समुद्रम् अभ्यपश्यत् अवालोकयत्। अत्र स्रग्धरावृत्तं, 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति लक्षणात्।

उस राम ने, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन ने आवर्तमण्डलों में घूमते हुए फेनपिण्डों के द्वारा उत्पन्न हुई है सफेद छातों की शोभा जिस में, ऊँची ऊँची ऊपर उठती हुई जो लहरें उन की श्रेणियों में मिले हुए हैं बड़े बड़े घड़ियाल जिस में, पानी के समूह के भार से मन्दगतिवाले बादलों के आडम्बरों से सवृष्टिकदिन बनाई गई हैं दिशाएँ जिस में, दिग्गजों की मजबूत सूँडों से जर्जरित किये गये हैं पानी जिस में, कठिनाई से प्रवेश करने योग्य उस समुद्र को देखा।

सरसं बहुयोजनाधिवासं भृतगाम्भीर्यमनुज्झितप्रसादम्।
स महार्थमुपासदत्समुद्रं ध्वनिभाजं सुकवेरिव प्रबन्धम् ॥१०॥

स रामः, पक्षे—अर्जुनः सरसं शृङ्गारादिरसयुक्तं, पक्षे—रसेन

जलेन सहितं 'रसो जलं रसो हर्षो रसः शृङ्गारपूर्वकः । रसः सालद्रुनिर्यासः पारदोऽपि रसो विषम्' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, बहुयोजनाधिवासं बह्वीनामनेकासां योजनानां संघटनानाम् अधिवासः निवासः उपस्थितिरित्यर्थः, यस्मिन् तम्, पक्षे—बहुषु अनेकेषु योजनेषु चतुष्कोशपरिमाणेषु अधिवासः निवासः यस्य तम् , भृतगाम्भीर्यं भृतं धृतं गाम्भीर्यं गाम्भीर्यसंज्ञकः गुणः येन तम् , पक्षे—धृतं गाम्भीर्यं निम्नता येन तम् , अनुज्झितप्रसादम् अनुज्झितः न त्यक्तः प्रसादः प्रसादगुणो येन तम् , पक्षे—न त्यक्तः प्रसादः स्वच्छता येन तम् , महार्थं महान्तो श्रेष्ठा अर्थाः अभिधेयाः यस्मिन् तम् , पक्षे—महान्तः विशालाः अर्थाः रत्नादिकधनराशयः यस्मिन् तम्, ध्वनिभाजं प्रधानव्यङ्ग्यार्थयुक्तं, पक्षे—तरङ्गारवसंयुक्तं, समुद्रं मुद्रालङ्कारयुक्तं सुकवेः शोभनकवयितुः प्रबन्धमिव ग्रन्थमिव समुद्रं सागरम् उपासदत् प्राप्तवान् । अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम् । पूर्णोपमालङ्कारश्च ।

वह राम, दूसरे पक्ष में—वह अर्जुन शृङ्गारादिरस से युक्त, अनेक पदसंघटनाओं से भरे हुए, गाम्भीर्यगुण धारण करनेवाले, प्रसादगुण को नहीं त्याग करने वाले, अर्थात् प्रसादगुण से युक्त, श्रेष्ठ अभिधेयार्थवाले, प्रधानव्यङ्ग्यार्थ से युक्त, मुद्रालङ्कार से संयुक्त, अच्छे कवि के प्रबन्ध (काव्य) के समान जल से संयुक्त, अनेकयोजनपरिमाणवाले स्थान में रहनेवाले, गहराई धारण करने वाले, स्वच्छता नहीं त्याग करनेवाले अर्थात् स्वच्छ, विशाल रत्न-राशिवाले, तरङ्गों का शब्द धारण करनेवाले समुद्र के पास पहुँचे ।

सवारिपूरस्फुटदारणाय धृतप्रतिज्ञं प्रतिदर्शितात्मा ।
तमार्चिचद्वारिधिरूर्मिबाहु-प्रणुन्नरत्नावलिरञ्जिताङ्घ्रिम् ॥११॥

सवारिपूरस्फुटदारणस्य सवारिपूरस्य वारिपूरसहितस्य जलप्रवाहसहितस्येति यावत् , समुद्रस्य स्फुटदारणाय स्पष्टरूपेण ध्वंसनाय धृतप्रतिज्ञं कृतसन्धं कृतनिश्चयमित्यर्थः, ऊर्मिबाहुप्रणुन्नरत्नावलिरञ्जिताङ्घ्रिम् ऊर्मयः तरङ्गा एव बाहवः भुजाः तैः प्रणुन्नाः प्रेरिताः याः रत्नावलयः मणिश्रेणयः ताभिः रञ्जितौ अनुरक्तीकृतौ अङ्घ्री चरणौ यस्य तम्, तम् रामं प्रदर्शितात्मा प्रकटितस्वरूपः वारिधिः समुद्रः आर्चिचत् पूजयामास । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तं रूपकमलङ्कारः ।

जलप्रवाहसहित समुद्र के स्पष्टरूप से ध्वंस करने के लिये प्रतिज्ञा किये हुए, तरङ्गरूपी भुजाओं से प्रेरित रत्नश्रेणियों से रँगे गये चरणवाले उस राम को

अपना स्वरूप प्रकट करनेवाले समुद्र ने पूजा की। अर्थात् नलद्वारा सेतु बँधवाने की विधि बताते हुए सम्मान किया।

पक्षे—सवारिपूरस्फुटदारणाय सवे यज्ञे युद्धयज्ञे इत्यर्थः, 'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः' इत्यमरः, अरिपूरस्य शत्रुप्रवाहस्य शत्रुसमूहस्येत्यर्थः, स्फुटदारणाय स्पष्टरूपेण विध्वंसाय धृतप्रतिज्ञं कृतप्रतिज्ञम् ऊर्मिबाहुप्रणुन्नरत्नावलिरञ्जिताङ्घ्रिम् ऊर्मयः तरङ्गा एव बाहवः भुजाः तैः प्रणुन्नाः प्रेरिताः उपरिविक्षिप्ता इत्यर्थः, याः रत्नावलयः मणिश्रेणयः ताभिः रञ्जितौ अनुरक्तीकृतौ अङ्घ्री चरणौ यस्य तम्, अर्जुनं प्रतिदर्शितात्मा प्रतिदर्शितः अक्षिगोचरीकृतः आत्मा जलविशालतामयस्वरूपं येन सः, वारिधिः समुद्रः आर्चिचत् सम्भावितवान्।

युद्धयज्ञ में शत्रुसमूह का स्पष्टरूप से विध्वंस करने के लिये प्रतिज्ञा किये हुए, तरङ्गरूपी भुजाओं से तट पर प्रक्षिप्त रत्नश्रेणियों से रँगे गये चरण वाले उस अर्जुन का अपना जलविशालतामय स्वरूप दिखलानेवाले समुद्र ने सत्कार किया।

वेलादरीदुन्दुभिनाददक्षैस्तरङ्गहस्तैः कृतमङ्गलस्य।
उदन्वतोऽभ्यागमनानुकूल्यादमंस्त संक्रान्तमिवारिचक्रम् ॥१२॥

सः रामः, पक्षे—अर्जुनः वेलादरीदुन्दुभिनाददक्षैः वेलासु तटेषु याः दर्यः कन्दराः ताः एव दुन्दुभयः भेर्यः तेषां नादे वादने दक्षैः क्षमैः, तरङ्गहस्तैः तरङ्गाः ऊर्मयः एव हस्ताः कराः तैः कृतमङ्गलस्य कृतं मङ्गलं स्वस्त्ययनादिरूपकल्याणं येन तस्य उदन्वतः समुद्रस्य अभ्यागमनानुकूल्यात् संमुखापतनस्वरूपानुकूलाचरणाद् अरिचक्रं शत्रुसैन्यं संक्रान्तमिव सम्यगाक्रान्तमिव अमंस्त मन्यते स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। रूपकमुत्प्रेक्षा चालङ्कारौ।

उस राम ने, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन ने तट की कन्दरारूपी दुन्दुभियों के बजाने में निपुण तरङ्गरूपी हाथों से स्वस्त्ययनादिमङ्गल करनेवाले समुद्र के सम्मुखागमनरूपी अनुकूलाचरण से शत्रुसेना को पूर्णरूप से आक्रमण किये गये के समान समझा।

दिशानया गच्छ निजेष्टसिद्धये हरिप्रभावार्पितसेतुबन्धया।
इतीव तस्मै स्फुटमाह सागरः स्वरैर्गभीरैः प्रतिनादयन्दिशः ॥१३॥

हरिप्रभावार्पितसेतुबन्धया हरीणां वानराणां प्रभावैः सामर्थ्यैः अर्पितः कृतः सेतुबन्धः आलिबन्धनं यत्र तया, पक्षे—हरेः कृष्णस्य प्रभावेण प्रभुशक्त्या अर्पितः कृतः सेतुबन्धः व्यवस्थानिबन्धनं यस्यां तया, 'सेतुरालौ व्यवस्थायाम्' इति विश्वप्रकाशः, 'सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्' इत्यमरः, अनया दिशा निजेष्टसिद्धये स्वाभीष्टपूरणाय सीतानयनाय, पक्षे—राज्याहरणायेति भावः, गच्छ व्रज, इति एतद्वचनं तस्मै रामाय, पक्षे—अर्जुनाय सागरः समुद्रः गभीरैः मांसलैः स्वरैः ध्वनिभिः दिशः आशाः प्रतिनादयन् शब्दयुक्ताः कुर्वन् स्फुटं स्पष्टम् आहेव कथयामासेव। अत्र वंशस्थवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

वानरों के प्रभाव से दिया गया है पुलबन्ध जिस में, दूसरे पक्ष में—कृष्ण के प्रभाव से किया गया है व्यवस्था का बन्धन जिस में उस इस दिशा से अपनी अभीष्टपूर्ति के लिये (सीता को वापस लाने के लिये, दूसरे पक्ष में—राज्य लौटाने के लिये) जाओ, यह वचन उस राम को, दूसरे पक्ष में—अर्जुन को समुद्र ने अपनी गम्भीर ध्वनि से दिशाओं को शब्दयुक्त करते हुए मानो कह दिया।

असौ विसृष्टाशनितीव्रवेगहरिप्रभावोच्चलितान् पुरस्तात्।
कृताभिपाताञ्जलधौ ददर्श विचित्रधातुच्छुरितान् महीध्रान्॥१४॥

असौ रामः पुरस्तात् अग्रे समक्षमित्यर्थः, विसृष्टाशनितीव्रवेगहरिप्रभावोच्चलितान् विसृष्टः प्रेरितः यः अशनिः वज्रं तद्वत् तीव्रवेगेन अतिजवेन हरिप्रभावोच्चलितान् वानराणां सामर्थ्येन संसरतः प्रक्षिप्तानिति यावत्, विचित्रधातुच्छुरितान् अनेकवर्णगैरिकादिधातुभिः संलग्नान्, जलधौ समुद्रे कृताभिपातान् निपतितान् महीध्रान् पर्वतान् ददर्श अवलोकितवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

इस राम ने सामने में प्रेरित वज्र के समान अत्यन्त वेग से वानरों के सामर्थ्य के द्वारा फेंके गये, अनेक वर्ण की धातुओं से संछुरित (संलग्न) समुद्र में गिरने वाले पर्वतों को देखा।

पक्षे—असौ अर्जुनः पुरस्ताद् अग्रे विसृष्टाशनितीव्रवेगहरिप्रभावोच्चलितान् विसृष्टः प्रक्षिप्तः यः अशनिः वज्रं तस्य तीव्रः वेगः जवः येन एवंभूतः यः हरिः इन्द्रः तस्य प्रभावेण सामर्थ्येन सामर्थ्यकारणेनेत्यर्थः, उच्चलितान् स्वस्थानं विहाय पलायितान्, विचित्रधातुच्छुरितान् अनेकवर्णगैरिकादिधातुसंलग्नान्, जलधौ समुद्रे कृताभिपातान् पतितान् महीध्रान् मैनाकादिपर्वतान् ददर्श अवलोकितवान्।

इस अर्जुन ने सामने में फेंके गये वज्र का तीव्र वेग है जिस से ऐसे इन्द्र के सामर्थ्य के कारण से पलायित (भागे हुए), अनेक रङ्ग की धातुओं से संलग्न, समुद्र में गिरे हुए मैनाकादि पहाड़ों को देखा ।

स विश्वकर्मोद्भवशिल्पसिद्धं सदूरसीमन्तितवारिपूरम् ।
मणिप्रभाभास्वरमभ्रवीथ्यामृजूत्थिताखण्डलचापकल्पम् ॥१५॥

हरिप्रभावोपचितक्षमाभृन्निवेशनैश्चायततां प्रपन्नम् ।
महीमहाम्भोरुहनालकल्पं ददर्श सेतुं हरिवंशकेतुः ॥१६॥

हरिवंशकेतुः सूर्यवंशचिह्नस्वरूपः रामः, पक्षे—चन्द्रवंशचिह्नस्वरूपः सः अर्जुनः, 'हरिश्चन्द्रार्कवाताश्विशुकभेकयमाहिषु । कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान्' इति मेदिनी, 'केतु र्ना रुक् पताकाऽरिग्रहोत्पातेषु लक्ष्मणि' इत्यपि मेदिनी, विश्वकर्मोद्भवशिल्पसिद्धं विश्वकर्मणः उद्भवस्य उत्पन्नस्य विश्वकर्मणः पुत्रस्य नलस्येत्यर्थः, शिल्पेन कलाकर्मणा सिद्धं सम्पन्नं विश्वकर्मपुत्रनलनिर्मितमित्यर्थः, पक्षे—विश्वकर्मणः उत्पन्नं यत् शिल्पं तेन सिद्धम् अर्थाद् विश्वकर्मनिर्मितम्, सदूरसीमन्तितवारिपूरं सदूरः दूरेण सहितः सीमन्तितः रेखया विभाजितः वारिपूरः जलप्रवाहः येन तम्, मणिप्रभाभास्वरं मणीनां रत्नानां प्रभाभिः कान्तिभिः भास्वरं दीप्यमानम्, अभ्रवीथ्याम् आकाशगङ्गायाम् ऋजूत्थिताखण्डलचापकल्पम् ऋजुना सरलाकारेण उत्थितम् आविर्भूतं यद् आखण्डलचापम् इन्द्रधनुः तत्कल्पं तत्तुल्यं, हरिप्रभावोपचितक्षमाभृन्निवेशनैः हरीणां वानराणां प्रभावेण सामर्थ्येन उपचिताः उपस्थापिताः ये क्षमाभृतः पर्वताः तेषां निवेशनैः समुचितस्थानस्थापनैः, पक्षे—हरेः कृष्णस्य प्रभावेण प्रभुशक्त्या उपचिताः संगृहीताः ये क्षमाभृतः राजानः तेषां निवेशनैः निवासभवनैः आयततां दैर्घ्यं प्रपन्नं धारयन्तं, महीमहाम्भोरुहनालकल्पं मही पृथ्वी एव महाम्भोरुहं महदुत्पलं तस्य नालकल्पं वृन्तसदृशं सेतुम् आलिबन्धं, पक्षे—व्यवस्थाबन्धनं 'सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्' इत्यमरः, 'सेतुरालौ व्यवस्थायाम्' इतिविश्वप्रकाशः, द्वारकानगरमिति यावद् , ददर्श अवलोकयामास । द्वयोः श्लोकयोरेकत्रान्वयादिदं श्लोकद्वयं युग्मकम्, 'द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम् । कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्' इत्युक्तेः । अत्र द्वयोः श्लोकयोरुपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः ।

सूर्यवंश के चिह्नस्वरूप अर्थात् सूर्यवंशीय श्रेष्ठ राम ने, दूसरे पक्ष में—चन्द्रवंश के चिह्नस्वरूप अर्थात् चन्द्रवंशीयश्रेष्ठ अर्जुन ने विश्वकर्मा के पुत्र नल को कला से बने हुए, दूसरे पक्ष में—विश्वकर्मा की कला से बने हुए, दूर तक स्वस्वरूपरेखा से जलप्रवाह को विभाजित करने वाले, रत्नों की कान्ति से चमकते हुए, आकाशगङ्गा में सीधेस्वरूप में प्रकट हुए इन्द्रधनुष के समान, वानरों के सामर्थ्य से लाये गये जो पर्वत उन के उचितस्थान में संनिवेश करने से विशालता प्राप्त करने वाले, दूसरे पक्ष में—श्रीकृष्ण की प्रभुशक्ति के द्वारा एकत्र किये गये जो राजा लोग उन के निवास-भवनों से विस्तृतता प्राप्त करनेवाले, पृथ्वी रूपी बहुत बड़े कमल के नाल के समान सेतुबन्ध को, दूसरे पक्ष में—व्यवस्थानिबन्ध को अर्थात् द्वारका नगर को देखा।

सद्वारकान्तां नगरीं गरिष्ठां संप्रस्थितस्तेन पथा नृवीरः।
ददर्श धीरो हरिवाहिनीभिर्निरन्तरालानि ककुब्मुखानि ॥१७॥

धीरः धैर्यशाली नृवीरः मनुष्येषु शूरः रामः तेन पथा सेतुमार्गेण गरिष्ठां गुर्वीं नगरीं पुरीं सद्वारकान्तां सद्वारत्वात् कान्तां मनोहराम् अथवा सद्वारकां द्वारसहितां तां लङ्कापुरीं संप्रस्थितः चलितः सन् हरिवाहिनीभिः वानरसेनाभिः निरन्तरालानि निरवकाशानि ककुब्मुखानि दिङ्मुखानि ददर्श अवलोकितवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

धैर्यशाली तथा मनुष्यों में वीर उस राम ने उस सेतु के मार्ग से बहुत बड़ी नगरी तथा फाटक होने के कारण मनोहर अथवा फाटकसहित उस लङ्कापुरी के प्रति प्रस्थान कर के वानरी सेना से भरे हुए दिग्भागों को देखा।

पक्षे—धीरः धैर्यशाली नृवीरः नरनारायणयोर्नरावतारः वीरः सः अर्जुनः तेन प्रसिद्धेन पथा मार्गेण, गरिष्ठां गुर्वीं तां कृष्णनिवासभूतां द्वारकां नगरीं द्वारकापुरीं प्रति संप्रस्थितः चलितः सन् हरिवाहिनीभिः कृष्णस्य सेनाभिः अथवा अश्वसेनाभिः निरन्तरालानि निरवकाशानि ककुब्मुखानि दिग्भागान् ददर्श अपश्यत्।

धैर्यशाली तथा नर-नारायणावतार में से नरावतार वीर उस अर्जुन ने द्वारका ले जाने वाले उस प्रसिद्ध मार्ग से बहुत बड़ी तथा कृष्ण के निवासभूत उस द्वारका नगरी के प्रति प्रस्थान कर के कृष्ण की सेनाओं से अथवा अश्वसेनाओं से बिलकुल भरे हुए दिग्भागों को देखा।

पश्यन्मनोज्ञान् कटकप्रदेशान् विलङ्घ्य पन्थानमलङ्घ्यतेजाः ।
विरोधिनाधिष्ठितपूर्वभागं स तं धरित्रीधरमाससाद ॥१८॥

अलङ्घ्यतेजाः अलङ्घ्यम् अनभिभवनीयं तेजः प्रभावो यस्य सः 'तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले शुक्रेऽपि' इत्यमरः, सः रामः मनोज्ञान् मनोहरान् कटकप्रदेशान् पर्वतनितम्बभागान् 'कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः, पश्यन् अवलोकयन् पन्थानं सेतुमार्गं विलङ्घ्य अतिक्रम्य विरोधिनाधिष्ठितपूर्वभागं विरोधिना शत्रुणा रावणेनेत्यर्थः, अधिष्ठितपूर्वः पूर्वमधिष्ठितः अधिकृतः भागः प्रदेशो यस्य तं, धरित्रीधरं पर्वतं तं सुवेलम् आससाद प्राप्तवान् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

अनभिभवनीयप्रभाववाले उस राम ने मनोहर पर्वतनितम्बप्रदेशों को देखते हुए सेतुबन्ध के मार्ग को पार कर के शत्रु रावण के द्वारा जिस का प्रदेश पूर्व में ही अधिकार में कर लिया गया है उस सुवेल पर्वत को प्राप्त किया, अर्थात् राम उस पहाड़ के समीप पहुँच गये ।

पक्षे—अलङ्घ्यतेजाः अनभिभवनीयबलः सः अर्जुनः मनोज्ञान् मनोहरान् कटकप्रदेशान् सैन्यस्थानानि 'भूभृन्नितम्बवलयचक्रेषु कटकोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, चक्रं सैन्यम्, अथवा कटकप्रदेशान् राजधानीप्रदेशान् 'राजधान्यां नितम्बेऽद्रेर्वलये कटकोऽस्त्रियाम्' इति त्रिकाण्डशेषः, पश्यन् अवलोकयन् पन्थानं द्वारकानगरीमार्गं विलङ्घ्य अतिक्रम्य विरोधिनाधिष्ठितपूर्वभागं विरोधिना शत्रुणा दुर्योधनेन अधिष्ठितः अधिकृतः स्वोपवेशनस्थानीकृत इत्यर्थः, पूर्वभागः शिरःसमीपप्रदेशो यस्य तं, धरित्रीधरं पृथिवीधारकं विश्वम्भरमिति यावत्, तं कृष्णम् आससाद प्राप्तवान् ।

अनभिभवनीयबलवाले उस अर्जुन ने मनोहर सैन्यनिवासस्थानों को अथवा राजधानी के प्रदेशों को देखते हुए द्वारकापुरी के मार्ग को पार कर के शत्रुदुर्योधन के द्वारा जिस का सिरहाने का भाग अधिकार में कर लिया गया है अर्थात् जिस के सिरहाने के भाग में पहले ही दुर्योधन बैठ गया है, पृथिवी के धारण करनेवाले उस विश्वम्भर कृष्ण को प्राप्त किया, अर्थात् अर्जुन श्रीकृष्ण जी के पास पहुँचे, जहाँ सिरहाने के भाग में दुर्योधन पहले ही से बैठा हुआ था ।

विचारमूढस्य बलानुकूल्यं द्विषोऽपि कुर्वञ्जगतीधरोऽसौ ।
अमुष्य पादान्तजुषस्तदानीं निर्व्याजमात्मार्चनमाचचार ॥१९॥

जगतीधरः पर्वतः असौ सुवेलः विचारमूढस्य किंकर्तव्यताविचार-शून्यस्य रामागमनेन स्तब्धस्येत्यर्थः, द्विषः शत्रोः रावणस्यापि बला-नुकूल्यं बलेन स्वशक्त्या आनुकूल्यं स्वविभागावकाशदानेन अनुकू-लाचरणं कुर्वन् आचरन् पादान्तजुषः पादानां प्रत्यन्तपर्वतानाम् अन्त-जुषः स्वरूपं सेवमानस्य तदुपरिवर्तमानस्येत्यर्थः, 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः, 'अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति मेदिनी, अमुष्य रामस्य निर्व्याजं निष्कपटं यथा स्यात्तथा आत्मार्चनम् आत्मना स्वशरीरेण अर्चनं पूजनम् आचचार कृतवान्। निश्छल-भावेन स्वशरीरं दत्तवानित्यर्थः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति-वृत्तम्।

इस सुवेल पर्वत ने राम के आगमन से किंकर्तव्यताविमूढ शत्रु रावण का भी अपनी शक्ति से अवकाशदानरूप अनुकूलाचरण करते हुए, उस समय में अपने प्रत्यन्तपर्वत पर उपस्थित इस राम का निष्कपट भाव से अपने आप के द्वारा अर्थात् अपने शिलोच्चयरूप शरीर के द्वारा सत्कार किया। अर्थात् अपने ऊपर सेना सहित निवास करने के लिये उन्हें अवकाश दिया।

पक्षे—जगतीधरः कच्छपरूपेण पृथिवीधारकः असौ कृष्णः विचारमूढस्य विवेके मूर्खस्य द्विषः शत्रोर्दुर्योधनस्यापि बलानुकूल्यं बलेन सैन्येन नारायणीसेनादानेनेत्यर्थः, आनुकूल्यम् अनुकूलाचरणं कुर्वन् आचरन्, तदानीं तस्मिन् समये पादान्तजुषः चरणसमीपसेव-मानस्य 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' इति कौमुदी, अमुष्य अर्जुनस्य निर्व्याजं निश्छलं यथा स्यात्तथा आत्मार्चनम् आत्मना स्वशरीरेण अर्चनम् पूजनम् आचचार कृतवान्। युद्धोपयोगाय स्वशरीरम् आत्मानमिति यावद् दत्तवान्।

कच्छपरूप से पृथिवी धारण करने वाले उस कृष्ण ने विचारकरने में मूर्ख शत्रु दुर्योधन का भी नारायणीसेना देने से अनुकूलाचरण करते हुए, उस समय चरण के समीप में सेवा करनेवाले इस अर्जुन का निश्छल भाव से अपने आप के द्वारा सत्कार किया। अर्थात् युद्ध में उपयोग करने के लिये अपने को अर्जुन को सौंप दिया। स्वयं अर्जुन के पक्ष में हो गये, यह तात्पर्य है।

बलोपलम्भादवलेपभाजा दैवाद्विपक्षेण पुरो निरस्तः।
विभीषणो विद्विषतामहार्यः प्रीत्यान्वयासीत् पुरुषोत्तमस्तम् ॥२०॥

बलोपलम्भात् शक्त्युपलब्धेः अवलेपभाजा गर्वधारकेण विपक्षेण

शत्रुणा रावणेन दैवाद् भाग्ययोगाद् भाग्यदोषादित्यर्थः, पुरः नगरात् निरस्तः निःसारितः विद्विषतां शत्रूणाम् अहार्यः अनभिभवनीयः पुरुषोत्तमः पुरुषश्रेष्ठः विभीषणः विभीषणनामा रावणानुजः प्रीत्या प्रेम्णा तम् रामम् अन्वयासीत् अन्वसरत्। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

शक्ति की प्राप्ति से गर्व धारण करने वाले शत्रु रावण के द्वारा भाग्य के दोष से नगर से निकाले हुये, शत्रुओं के लिये न धर्षण करने योग्य, पुरुषों में श्रेष्ठ विभीषण ने प्रीति से राम का अनुसरण किया।

पक्षे—बलोपलम्भात् सेनोपलब्धेः अवलेपभाजा गर्वधारकेण विपक्षेण शत्रुणा दुर्योधनेन दैवाद् भाग्यदोषात् पुरः अग्रे निरस्तः परित्यक्तः द्विषतां शत्रूणाम् अहार्यः अनभिभवनीयः, विभीषणः भयङ्करश्च पुरुषोत्तमः पुरुषश्रेष्ठः कृष्णः प्रीत्या प्रेम्णा तम् अर्जुनम् अन्वयासीद् अन्वगच्छत्।

सेना की प्राप्ति से घमण्ड धारण करनेवाले शत्रु दुर्योधन के द्वारा भाग्य के दोष से सामने में ही परित्याग किये गये, शत्रुओं के लिये अनभिभवनीय तथा भयङ्कर उस पुरुषोत्तम कृष्ण ने प्रेम से उस अर्जुन का अनुसरण किया।

मनुष्यमूर्तेः परमस्य पुंसः सौहार्दमासाद्य स दैवयोगात्।
पौलस्त्यसंपत्तिमपि स्वकीयभ्रूभङ्गलीलासुलभाममंस्त ॥२१॥

स विभीषणः, पक्षे—अर्जुनः—दैवयोगात् अनुकूलभाग्योदयात् मनुष्यमूर्तेः मनुष्यशरीरधारिणः परमस्य पुंसः सर्वश्रेष्ठपुरुषस्य विष्णोः रामस्य, पक्षे—कृष्णस्य सौहार्दम् मैत्रीम् आसाद्य प्राप्य पौलस्त्यसम्पत्तिमपि पौलस्त्यस्य रावणस्य, पक्षे—कुबेरस्य सम्पत्तिमपि लक्ष्मीमपि स्वकीयभ्रूभङ्गलीलासुलभाम् स्वकीयया आत्मीयया भ्रूभङ्गलीलया भ्रूसङ्केतविलासेन सुलभाम् अनायासेन प्राप्तुं योग्याम् अमंस्त मन्यते स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्

उस विभीषण ने अनुकूल भाग्य के संयोग से मनुष्यशरीरधारी परम पुरुष राम की मित्रता प्राप्त करके रावण की सम्पत्ति को भी अपने भ्रूसङ्केत के अनायासप्रयत्न द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य समझ लिया।

दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन ने अनुकूल भाग्य के संयोग से मनुष्यशरीरधारी परमपुरुष कृष्ण की मित्रता प्राप्त करके कुबेर की सम्पत्ति को भी अपने भ्रूसङ्केत के अनायास प्रयत्न के द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य समझ लिया

ससैन्यसुग्रीवसमग्रयानप्रभावसंपन्नरनाथजन्मा ।
स भूमिभर्तुः कटकं मनस्वी जवादुपप्लाव्यमुपेत्य तस्थौ ॥२२॥

ससैन्यसुग्रीवसमग्रयानप्रभावसंपत् ससैन्यः सेनासहितः यः सुग्रीवः वानरराजः तस्य समग्रः सम्पूर्णः यानप्रभावः प्रयाणप्रतापः एव संपत् यस्य सः, मनस्वी बुद्धिमान् नरनाथजन्मा राजकुमारः सः रामः भूमिभर्तुः पर्वतस्य सुवेलस्य जवाद् वेगाद् उपप्लाव्यम् आच्छाद्यम् कटकं नितम्बभागम् उपेत्य प्राप्य तस्थौ स्थितवान्। अत्रोपेन्द्रवज्रा-वृत्तम्।

सेनासहित सुग्रीव का प्रयाण-प्रभाव ही संपत्ति है जिसकी वह बुद्धिमान् राजकुमार राम शीघ्रता से आच्छादित होने वाले सुवेल पर्वत के नितम्बभाग में पहुँच कर स्थित हुए (ठहर गये)।

पक्षे—ससैन्यसुग्रीवसमग्रयानप्रभावसंपत् ससैन्याः सेनासहिताः ये सुग्रीवाः हयाः, शोभनाः ग्रीवाः गलाः येषां ते सुग्रीवाः अश्वाः, तैः यत् समग्रयानं सम्पूर्णप्रयाणं तेन यः प्रभावः स एव संपद् यस्य सः, मनस्वी बुद्धिमान् नरनाथजन्मा नरनाथात् नृपात् जन्म यस्य सः, राजकुमार इत्यर्थः, सः युधिष्ठिरः भूमिभर्तुः राज्ञः दुर्योधनस्य जवाद् वेगाद् उपप्लाव्यम् उपद्राव्यम् आक्रमणीयमित्यर्थः, कटकं सैन्यम् उपेत्य प्राप्य तस्थौ स्थितवान्।

सेनासहितघोड़ों के द्वारा सम्पूर्ण प्रयाण से प्रभावसंपत्तिवाले, बुद्धिमान् राजकुमार वह युधिष्ठिर राजा दुर्योधन के शीघ्र ही आक्रमण करने योग्य सेना के पास पहुँच कर स्थित हो गये।

तदा शुकोऽपि प्रतिपक्षवाचा वचोहरः प्राप्य सुसंवृतात्मा ।
तमुन्नतांसं जयशब्दपात्रं श्रियं दधानं नृपतिं निदध्यौ ॥२३॥

तदा तस्मिन्समये सुसंवृतात्मा प्रच्छन्नशरीरः सन् वचोहरः दूतः शुकोऽपि शुकनामाऽपि प्रतिपक्षवाचा प्रतिपक्षस्य शत्रोः रावणस्य वचनेन प्राप्य आगत्य उन्नतांसम् उच्चस्कन्धं जयशब्दपात्रं जयशब्दस्य भाजनं श्रियं दधानं शोभां धारयन्तं तं सुग्रीवं नृपतिं राजानं निदध्यौ अवलोकते स्म। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस समय सुगुप्तशरीरवाला शुकनामक दूत ने आकर ऊँचे कन्धेबाले जय-कार शब्द के पात्र शोभा धारण करने वाले उस राजा सुग्रीव का अवलोकन किया।

पक्षे—तदा तस्मिन् समये सुसंवृतात्मा सुरक्षितशरीरः सन् वचोहरः दूतः कोऽपि कश्चित् प्रतिपक्षवाचा प्रतिपक्षस्य शत्रोः धृतराष्ट्रस्य वचनेन आशु शीघ्रं प्राप्य आगत्य उन्नतांसम् उच्चस्कन्धं जयशब्दपात्रम् अर्जुनवचनस्य भाजनं श्रियं शोभां दधानं धारयन्तं तं युधिष्ठिरं नृपतिं राजानं निदध्यौ दृष्टवान् ।

उस समय सुरक्षितशरीरवाला किसी दूत ने शत्रु धृतराष्ट्र के वचन से शीघ्र आकर ऊँचे कन्धेवाले, अर्जुन के वचन के पात्र, शोभाधारणकरनेवाले उस राजा युधिष्ठिर को देखा ।

तदाज्ञयासौ गतभीतिरेनं हरिप्रणेतारमिदं जगाद ।
प्रज्ञेक्षणस्त्वामिदमाह राजा मुखेन मे दूतधुरि स्थितस्य ॥२४॥

तदाज्ञया तस्य रावणस्य आदेशेन, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य वचनेन गतभीतिः निर्भयः सन् असौ शुकनामा दूतः, पक्षे—दूतः, हरिप्रणेतारम् एनं वानरनायकं सुग्रीवं, पक्षे—हरिः कृष्णः प्रणेता निर्देशकः यस्य तं युधिष्ठिरं, "प्रज्ञेक्षणः राजा प्रज्ञा बुद्धिरेव ईक्षणं नयनं यस्य सः, बुद्धिमान् राजा रावणः, पक्षे—अन्धः राजा धृतराष्ट्रः दूतधुरि स्थितस्य दूतकार्याग्रगण्यस्य मे दूतस्य मुखेन मुखद्वारा इदं वक्ष्यमाणं वचनम् आह कथयति" इदम् एतद्वचनं जगाद अकथयत् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

उस रावण के आदेश से निर्भय होकर उस शुक नामक दूत ने वानरनायक सुग्रीव को 'बुद्धिमान् राजा रावण ने दूतकार्य में अग्रगण्य मुझ शुकनामक दूत के मुख द्वारा आगे कही जाने वाली बातें कहते हैं' यह वचन कहा है

दूसरे पक्ष में—उस धृतराष्ट्र के आदेश से निर्भय होकर उस दूत ने कृष्ण हैं निर्देशक जिस का उस युधिष्ठिर को 'अन्ध राजा धृतराष्ट्र ने दूतकार्य में अग्रगण्य मुझ दूत के मुखद्वारा आगे कही जानेवाली बातें कहते हैं' यह वचन कहा है ।

तदेव वचनं कथयति—

त्वया हि सत्प्रीतिपरायणत्वादङ्गीकृता साधुजनप्रवृत्तिः ।
अतः स्वयोग्ये पथि वर्तितव्यं न ते सुवेलाक्रमणेन सिद्धिः ॥२५॥

हि यतः सत्प्रीतिपरायणत्वात् सति सन्मार्गे या प्रीतिः प्रेम तस्यां तत्परत्वात् त्वया सुग्रीवेण, पक्षे—युधिष्ठिरेण साधुजनप्रवृत्तिः सज्जन-

नरसमुदाचारः, अङ्गीकृता स्वीकृता वर्तते इति शेषः, अतः अस्मात् कारणात् स्वयोग्ये पथि आत्मसमुचिते मार्गे वर्तितव्यं व्यवहर्त्तव्यम् ते तव सुग्रीवस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य, सुवेलाक्रमणेन सुवेलपर्वतस्य आक्रमणकरणेन, पक्षे—सुवेलायाः शोभनमर्यादायाः क्रमणेन अतिक्रमणेन 'अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि' इत्यमरः, सिद्धिर्न सफलता न भविष्यति। अत्र इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

क्यों कि सन्मार्ग के प्रेम में तत्पर होने के कारण तुझ सुग्रीव ने, दूसरे पक्ष में—तुझ युधिष्ठिर ने साधुलोगों का आचरण स्वीकार किया है, इसलिये अपने उचित मार्ग पर व्यवहार करना चाहिये, सुवेलपर्वत के आक्रमण करने से तुम्हारी सफलता नहीं होगी, दूसरे पक्ष में—अच्छी मर्यादा के उल्लङ्घन करने से तुम्हारी सफलता नहीं होगी।

आत्मोचितं प्रोज्झ्य वनान्तवासं युद्धाय मा चापलमद्य कार्षीः।
अनात्मनीने पथि वर्तमानात्पुंसो हि लोका भृशमुद्विजन्ते ॥२८॥

आत्मोचितं स्वयोग्यं वनान्तवासं वनमध्यनिवासं प्रोज्झ्य त्यक्त्वा अद्य अस्मिन् काले युद्धाय संगराय चापलं चञ्चलतां मा कार्षीः न कुरु, हि यतः अनात्मनीने आत्मने हितम् आत्मनीनं तद्विरुद्धे अनात्मनीने स्वकल्याणविरुद्धे पथि मार्गे वर्तमानात् स्थितात् पुंसः पुरुषात् लोकाः जनाः भृशम् अत्यन्तम् उद्विजन्ते उद्विग्नाः भवन्ति। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

अपने योग्य वननिवास छोड़ कर आज युद्ध के लिये चपलता मत धारण करो; क्यों कि अपने कल्याण के विरुद्ध रास्ते पर चलने वाले पुरुष से लोग अत्यन्त ऊब जाते हैं।

यथार्थमेतत्कुरु राजवाक्यं विचार्य मा लाघवसंश्रयी भूः।
हितोपदेशेषु पराङ्मुखानामदूरसंस्था विपदो हि पुंसाम् ॥२६॥

विचार्य विचारं कृत्वा एतत् पूर्वोक्तं राजवाक्यं राक्षसराजरावणवचनं यथार्थं सार्थकं सफलमित्यर्थः, कुरु विधेहि। लाघवसंश्रयी लघुत्वाश्रयवान् रलयोरैक्यात् राघवाश्रयी मा भूः न भव, पक्षे—कुरुराजवाक्यं धृतराष्ट्रवचनं यथार्थं समुचितप्रयोजनसहितम् एतद् विचार्य इदं विमृश्य लाघवसंश्रयी लघुत्वाश्रयवान् मा भूः न भव; हि यतः हितोपदेशेषु हितैषिणामुपदेशवचनेषु पराङ् मुखानां विमुखा-

नाम अवहेलायुक्तानामित्यर्थः पुंसां जनानां विपदः विपत्तयः अदूर-संस्थाः निकटवर्त्तिन्यः भवन्तीति शेषः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तमर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

विचार कर के यह राक्षसराज रावण का वचन सार्थक करो लघुता का आश्रयण करने वाला, र लु को एक मान कर राघव का आश्रयण करने वाला मत बनो, दूसरे पक्ष में--कुरुराज धृतराष्ट्र का वचन सप्रयोजन है यह विचार कर के लघुता का आश्रयण करने वाला मत बनो; क्यों कि-हितचाहनेवाले के उपदेशों में विमुख रहनेवाले लोगों की विपत्तियां निकटवर्तिनी रहती हैं ।

एवं विपक्षदूतेन व्याहृता वाक्यपद्धतिः ।
प्रतिजज्ञे सरस्वत्या हरिराजमुखोत्थया ॥२८॥

विपक्षदूतेन विपक्षस्य शत्रोः रावणस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य दूतेन सन्देशहरेण एवम् एवंप्रकारेण व्याहृता कथिता वाक्यपद्धतिः वचन-परम्परा हरिराजमुखोत्थया हरिराजस्य वानराधिपस्य सुग्रीवस्य मुखोत्थया मुखोत्पन्नया, पक्षे—हरेः कृष्णस्य राज्ञः युधिष्ठिरस्य मुखाभ्यामुत्पन्नया सरस्वत्या वाण्या प्रतिजज्ञे प्रत्युत्तरिता। अत्रानुष्टुप्छन्दः ।

शत्रु रावण के दूत के द्वारा, दूसरे पक्ष में—शत्रु धृतराष्ट्र के दूत के द्वारा इस प्रकार कही गयी वचन-परम्परा वानरराज सुग्रीव के मुख से उत्पन्न, दूसरे पक्ष में—कृष्ण तथा राजा युधिष्ठिर के मुख से उत्पन्न वाणी के द्वारा प्रत्युत्तरित हुई । अर्थात् इन के मुख के वचन के द्वारा उस का उत्तर दिया गया ।

किमुत्तरितम् ? तदेव कथयति—

अहो महन्नैपुणमस्य भूभृतो निवृत्तये नोदयितुं चिराय नः ।
भवन्ति सुव्यक्तमनात्मवेदिनः परोपदेशेषु विशेषपण्डिताः ॥२९॥

अहो ! इत्याश्चर्ये, नः अस्मान् चिराय चिरकालं यावत्, सततं कृते इत्यर्थः, निवृत्तये परावर्तनाय नोदयितुं प्रेरयितुम् अस्य भूभृतः अमुष्य राज्ञः रावणस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य महन्नैपुणम् अतिचातुर्यम् अस्ति । तदेव सामान्येन समर्थयति—सुव्यक्तम् इति तु स्पष्टमस्ति यद् अनात्मवेदिनः स्वविषयानभिज्ञाः परोपदेशेषु अन्येषामुपदेशदानेषु विशेषपण्डिताः विशेषरूपेण विद्वांसः, विशेषरूपेण पण्डितंमन्याः इति भावः, भवन्ति जायन्ते । अत्र वंशस्थवृत्तम् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

अरे ! हमलोगों को सदा के लिये लौट जाने के लिये प्रेरणा करने में इस राजा रावण को, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्र की बड़ी चतुरता है। यही बात सामान्य रूप से कही जाती है कि—यह स्पष्ट है कि अपने विषयों के अनभिज्ञ दूसरों को उपदेश देने में विशेष रूप से पण्डित हो जाते हैं।

स चेह राजा प्रतिदानपूर्वं शान्तिं न वाञ्छत्युचितां कुलस्य।
दशाननस्यापि दशा न न स्यादमुष्य दीना हतबन्धुसूनोः ॥३०॥

इह अस्मिन् काले स राजा रावणः, पक्षे—धृतराष्ट्रः प्रतिदानपूर्वं सीताप्रत्यावर्तनपूर्वकं, पक्षे—राज्यप्रत्यावर्तनपूर्वकं कुलस्य वंशस्य उचितां योग्यां शान्तिं शमं कल्याणमिति यावत्, न वाञ्छति नेच्छति चेत्यवधारणे निश्चतमेवेत्यर्थः, 'चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये। पक्षान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे' इति मेदिनी, दशाननस्यापि दशसंख्याकमुखयुक्तस्यापि हतबन्धुसूनोः निहतभ्रातृपुत्रस्य अमुष्य रावणस्य दीना शोचनीया दशा परिस्थितिः न स्यादिति न, अवश्यमेव भविष्यतीत्यर्थः, पक्षे—हतबन्धुसूनोः निहतबान्धवपुत्रस्य अमुष्यापि धृतराष्ट्रस्यापि दशाननस्य दशा रावणस्य परिस्थितिः कुलध्वंस इत्यर्थः, न स्यादिति न, अवश्यमेव भविष्यतीत्यर्थः।

इत आरभ्य षट्त्रिंशत्तमश्लोकं यावद् इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् अत्र यमकमलङ्कारः।

इस समय वह राजा रावण सीता को लौटाते हुए अपने कुल की उचित शान्ति नहीं चाहता है यह निश्चित है, फिर दशवदन होने पर भी मारे गये बन्धु तथा पुत्रवाले इस रावण की दयनीय दशा न होगी ऐसी बात नहीं। अवश्य ही होगी।

दूसरे पक्ष में—इस समय वह धृतराष्ट्र राजा राज्य लौटाते हुये अपने कुल की उचित शान्ति नहीं चाहता है यह निश्चित है फिर मारे गये पुत्र-बान्धव वाले इस धृतराष्ट्र की भी रावण की शोचनीय दशा (कुलध्वंस) नहीं होगी ऐसी बात नहीं। अवश्य ही होगी।

शुभाशुभे कर्मणि संनिविष्टं धर्मो यथा पश्यति लोकमेकः।
तथा जनश्चेदखिलोऽपि धर्मं जगत्यधर्मस्य कुतोऽवकाशः ॥३१॥

यथा येन प्रकारेण एकः अद्वितीयः धर्मः पुण्यम् शुभाशुभे कर्मणि साध्वसाधुकार्ये संनिविष्टं संलग्नं लोकं जनं पश्यति निरीक्षते आनुकूल्येन वर्तते इत्यर्थः, तथा तेनैव प्रकारेण अखिलोऽपि सर्वोऽपि जनः

लोकः चेद् यदि धर्मं पुण्यं पश्येत् अवलोकेत तदानुकूल्येन वर्तेत इत्यर्थः, तर्हि जगति संसारे अधर्मस्य पापस्य अवकाशः अवसरः कुतः कस्मात् कारणाद् भवेत् न भविष्यतीति भावः। अत्र काव्यलिङ्ग-मलङ्कारः।

जिस प्रकार अकेला धर्म अच्छे अथवा बुरे कामों में लगे हुए सभी लोगों की देखभाल करता है अर्थात् उन्हें सुख-सुविधा पहुँचाता है, उसी प्रकार सभी लोग यदि धर्म की अनुकूलता का आचरण करें तो संसार में पाप को कहाँ से अवसर मिले ? अर्थात् उसे अवसर मिल ही नहीं सकता है।

स एव तावत्प्रसमीक्ष्य धर्मं समाचरत्वात्महितं विधेयम्।
न यावदारोहति हन्त मौर्वी भीमानुजस्येष्वसनं खरारेः॥३२॥

तावत् तावता कालेन 'तावन्माने ऽवधारणे' इति मेदिनी, स एव रावण एव, पक्षे—धृतराष्ट्र एव धर्मं प्रसमीक्ष्य पुण्यमवलोक्य पुण्यकार्यं विचार्येत्यर्थः, आत्महितं विधेयम् स्वकल्याणकारि कर्तव्यम् समाचरतु करोतु, हन्त! इति खेदे, यावत् यावत्कालं भीमानुजस्य भीमः शत्रूणां भयङ्करः अनुजः कनिष्ठभ्राता लक्ष्मणः यस्य तस्य खरारेः खरनामकस्य राक्षसस्य शत्रोः रामस्येत्यर्थः, पक्षे—यावत्कालं खरारेः खरः तीक्ष्णः शत्रुः दुर्योधनः यस्य तस्य भीमानुजस्य वृकोदरस्य कनिष्ठ-भ्रातुः अर्जुनस्य मौर्वी ज्या इष्वसनं शरासनं न आरोहति नोत्तिष्ठते, यावद्धनुषि तस्य ज्या न संलगतीत्यर्थः।

उतने समय में वही राजा रावण, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्र पुण्यकार्य विचार कर के अपना कल्याणकारी कर्त्तव्य करें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि जब तक जिस का छोटा भाई लक्ष्मण शत्रुओं के लिए भयंकर है उस खर के शत्रु राम की, दूसरे पक्ष में—जिसका शत्रु तीक्ष्ण है अर्थात् तीक्ष्णविरोधी जिसका दुर्योधन है, भीम के छोटे भाई उस अर्जुन की प्रत्यञ्चा धनुष पर नही चढ़ती है।

स सौष्ठवव्यञ्जितशौर्यमार्गैःप्रत्याहतो वानरराजवाक्यैः।
सद्यः पुरीं प्राप्य जनेश्वरे तद्वचो विषं सर्प इवोत्ससर्ज॥३३॥

सौष्ठवव्यञ्जितशौर्यमार्गैः सौष्ठवेन शोभनेन प्रकारेण व्यञ्जितः प्रकटितः शौर्यमार्गः वीरत्वसरणिः येषु तैः वानरराजवाक्यैः वानर-राजस्य सुग्रीवस्य वचनैः, पक्षे—नरराजस्य युधिष्ठिरस्य वचनैः वेति पादपूरणे प्रत्याहतः तिरस्कृतः सः दूतः सद्यः तत्कालमेव पुरीं नगरीं लङ्कां, पक्षे-हस्तिनापुरीम् प्राप्य गत्वा जनेश्वरे राजनि रावणे, पक्षे-धृत-

राष्ट्रे सर्पः फणी विषमिव गरलमिव तद्वचः तदुक्तवचनं सुग्रीवोक्तवचनं, पक्षे-युधिष्ठिरोक्तवचनम् उत्ससर्ज तत्याज। याथातथ्येन स्वमुखेन निरगमयदित्यर्थः, अकथयत् इति भावः। अत्रोपमालङ्कारः।

अच्छे ढङ्ग से प्रकट किया गया है वीरता का मार्ग जिन में ऐसे वानरराज सुग्रीव के वचनों से, दूसरे पक्ष में—नरराज युधिष्ठिर के वचनों से तिरस्कार किए गए उस दूत ने उसी समय लङ्कापुरी जाकर राजा रावण के सामने, दूसरे पक्ष में-हस्तिनापुरी पहुँच कर राजा धृतराष्ट्र के सामने जैसे सर्प विष उगलता है उसी प्रकार सुग्रीव के कहे हुए वचनों को, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर के कहे हुए वचनों को उगल दिया, अर्थात् उन्ही के शब्दों में साफ साफ कह दिया।

आगामिसंग्रामविपन्निवृत्तावुपायचिन्ताकुलचित्तवृत्तेः।
क्षत्त्राभियुक्तस्य विमोहभाजः प्रजागरोऽभूद्रजनीषु राज्ञः ॥३४॥

आगामिसंग्रामविपन्निवृत्तौ आगामी भविष्यन् संग्रामः रणः एव विपत् आपत् तस्याः निवृतौ निराकरणविषये उपायचिन्ताकुलचित्तवृत्तेः उपायेषु सामदानभेददण्डेषु या चिन्ता चिन्तनं तया आकुला व्याकुला चित्तवृत्तिः मानसं यस्य तस्य क्षत्त्राभियुक्तस्य क्षत्त्रेण क्षत्रियजात्युद्भवेन रामेण अभियुक्तस्य अभिगृहीतस्य आक्रान्तस्येति भावः, पक्षे-क्षत्त्रा विदुरेण अभियुक्तस्य संयुक्तस्य विमोहभाजः विमूढतायुक्तस्य कार्याकार्यविचारमुग्धस्येत्यर्थः राज्ञः रावणस्य, पक्षे-धृतराष्ट्रस्य रजनीषु रात्रिषु प्रजागरः जागरणं निद्राराहित्यमिति यावद् अभूत् अभवत्। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

आगामी युद्धरूपी विपत्ति के निराकरण करने के विषय में साम-दान-भेद दण्ड रूप उपायों के चिन्तन में व्याकुल चित्तवाले क्षत्रिय राम के द्वारा युद्ध के लिये ललकारे हुए, दूसरे पक्ष में—विदुर से संयुक्त हुए कार्याकार्यविचारविमूढ़ राजा रावण का, दूसरे पक्ष में-धृतराष्ट्र का रातों में जागरण ही होता रहता था।

अत्रान्तरे भूमिपतेः प्रियार्थं पयोधिसीमाधिगतोरुसैन्याः।
हरीश्वरा भूमिभृतोऽध्यरोहंस्तुङ्गां प्रतिज्ञामिव तुङ्गभूमिम् ॥३५॥

अत्रान्तरे अस्मिन् काले भूमिपतेः राज्ञो रामस्य या प्रिया सीता तदर्थ पयोधिसीमाधिगतोरुसैन्याः पयोधेः समुद्रस्य सीमासु अधिगतानि प्रसृतानि उरुसैन्यानि बृहद्बलानि येषां ते हरीश्वराः वानरनायकाः तुङ्गाम् उन्नतां प्रतिज्ञामिव प्रतिज्ञातुल्यां भूमिभृतः पर्वतस्य सुवेलस्य तुङ्गभूमिं शिखरप्रदेशम् अध्यरोहन् आरोहन्। राक्षसानां

विनाशाय महतीं प्रतिज्ञामपि कृतवन्तः तथैव सुवेलपर्वतस्य उपरितन-भूमिमभ्यारोहन् इति भावः। अत्रोपमानोपमेययोरुभयोः प्रस्तुतयोरेवोपमालङ्कारः।

इसी बीच में राजा राम की प्रिया सीता के लिये, समुद्र की सीमाओं में अपनी बड़ी सेना फैलाने वाले वानरनायक गण बहुत बड़ी प्रतिज्ञा के समान सुवेलपहाड़ की ऊँची भूमि पर चढ़ गये।

पक्षे—अत्रान्तरे अस्मिन् काले भूमिपतेः राज्ञो युधिष्ठिरस्य प्रियार्थं प्रियकार्याचरणार्थं पयोधिसीमाधिगतोरुसैन्याः पयोधि-सीमाभ्यः समुद्रसीमास्थितदेशेभ्यः अधिगतानि प्राप्तानि उरुसैन्यानि बृहद्बलानि यैस्ते, हरीश्वराः हरिः कृष्णः ईश्वरः अधिपतिः येषां ते भूमिभृतः राजानः तुङ्गभूमिमिव उन्नतां महीमिव तुङ्गाम् उन्नताम् उच्चश्रेणीगणनीयामित्यर्थः प्रतिज्ञाम् आश्रुतिम् अध्यरोहन् कृतवन्तः।

इसी बीच में राजा युधिष्ठिर के प्रिय कार्य करने के लिये, समुद्रसीमा में स्थित देशों से बड़ी बड़ी सेना प्राप्त करनेवाले, श्रीकृष्ण हैं अधिपति जिन के वे राजा लोग ऊँची भूमि के समान ऊँची ऊँची प्रतिज्ञाओं पर आरूढ हो गये। अर्थात् उनलोगों ने शत्रुओं को मारने के विषय में बड़ी बड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं।

भूभृच्छिरश्छेदविधानदक्षे मायाविनि क्षुभ्यति राक्षसौघे।
वैधव्यचिन्ताचकितैश्चकम्पे नरेन्द्रदारैर्धरणीसमेतैः॥३६॥

भूभृच्छिरश्छेदविधानदक्षे भूभृतः राज्ञो रामस्य मायानिर्मित-रामस्येत्यर्थः पक्षे—भूभृतां विपक्षस्थितभूपानां शिरश्छेदविधानदक्षे मुण्डकर्तनकर्तव्यनिपुणे मायाविनि शाम्बरीमायायुक्ते राक्षसौघे रावणसेनाराक्षससमूहे, पक्षे—घटोत्कचसेनाराक्षससमूहे क्षुभ्यति संक्षुब्धे सति, धरणीसमेतैः पृथिवीसहितैः वैधव्यचिन्ताचकितैः पतिमरणचिन्तात्रस्तैः नरेन्द्रदारैः राजपत्न्या सीतया, पक्षे—दुर्योधना-दीनां पत्नीभिः चकम्पे कम्पितम्। उत्पातेन पृथ्वी अपि कम्पिताभूत् त्रासेन सीतापि कम्पिताऽभूत्, पक्षे—त्रासेन दुर्योधनादीनां पत्न्यः कम्पिताः अभवन् इति भावः। अत्र सहोक्तिरलङ्कारः।

माया निर्मित राम के, दूसरे पक्ष में—विपक्षभूत राजाओं के शिर काटने के काम में निपुण, शाम्बरीमायाजाननेवाले, रावणसेना के राक्षसों के, दूसरे पक्ष में—घटोत्कचसेना के राक्षसों के संक्षुब्ध होने पर पृथिवी के साथ विधवाहोने की चिन्ता से भयभीत हो कर राजा की पत्नी सीता काँपने लगी, दूसरे पक्ष में—दुर्योधनादिराजाओं की पत्नियाँ काँपने लगीं।

अथाङ्गदं बिभ्रतमुल्लसन्महः सुरेन्द्रसूनोर्हृदयैकनन्दनम् ।
समीक्ष्य कार्यस्य गतिं नरेश्वरो हरिं परेषां नगरीमजीगमत् ॥३७॥

अथ अनन्तरं नरेश्वरः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः कार्यस्य प्रयोजनस्य गतिं परिस्थितिं समीक्ष्य विचार्य सुरेन्द्रसूनोः देवेन्द्रपुत्रस्य वालिनः, पक्षे—अर्जुनस्य, हृदयैकनन्दनं पुत्रं, पक्षे—हृदयस्य प्रधानानन्ददायकम् उल्लसत् प्रसरत् महः तेजः बिभ्रतं धारयन्तम् अङ्गदम् अङ्गदनामानं हरिं वानरं, पक्षे—उल्लसन्महः उल्लसत् प्रादुर्भवत् महः तेजः यस्मिन् तद् अङ्गदं बाहुभूषणं बिभ्रतं धारयन्तं हरिं श्रीकृष्णं परेषां शत्रूणां रावणादीनां, पक्षे—दुर्योधनादीनां नगरीं लङ्कापुरीं, पक्षे—हस्तिनापुरीम् अजीगमत् दूतं कृत्वा प्राहिणोत् । अत्र वंशस्थवृत्तम् ।

इस के बाद राजा राम ने प्रयोजन की परिस्थिति विचार कर इन्द्र के पुत्र वालि के प्रधान आनन्द देनेवाले अर्थात् वालि के पुत्र, फैलती हुई आभा धारण करने वाले, अङ्गद नामक वन्दर को दूत बना कर शत्रु की पुरी लङ्कानगरी को भेजा ।

दूसरे पक्ष में—इस के बाद राजा युधिष्ठिर ने प्रयोजन की परिस्थिति विचार कर इन्द्र के पुत्र अर्जुन के प्रधान आनन्द देने वाले, फैलती हुई प्रभा वाले बाहुभूषण धारण किये हुए श्री कृष्ण को शत्रु की नगरी हस्तिनापुरी को भेजा ।

स याननिर्ह्रादमुदीरयन्खे सुदूरमध्वानमतीत्य वेगात् ।
प्रपद्य मध्यं परमण्डलस्य ददर्श राजानमभीः सभायाम् ॥३८॥

सः अङ्गदः खे आकाशे याननिर्ह्रादं जिगीषुयात्रानिनादम् उदीरयन् उच्चारयन् 'जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते' इति वीरमित्रोदयः, पक्षे—सः कृष्ण खे आकाशे यानस्य वाहनस्य रथस्येत्यर्थः निर्ह्रादं निस्वनम् उदीरयन् उत्पादयन्, सुदूरम् अध्वानम् अतिदूरपथम् अतीत्य अतिक्रम्य वेगाद् जवात् परमण्डलस्य शत्रुसमूहस्य मध्यं मध्यभागं प्रपद्य प्राप्य अभीः निर्भयः सन् सभायाम् समितौ राजानं नृपं रावणं, पक्षे—धृतराष्ट्रं ददर्श अवलोकते स्म । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

उस अङ्गद ने आकाश में विजययात्रा का शब्द प्रसारित करते हुए, दूसरे पक्ष में—उस कृष्ण ने आकाश में अपने वाहन रथ का शब्द उत्पन्न करते हुए, अतिदूररास्ता पार कर के अतिशीघ्रता से शत्रु समूह के बीच पहुँच कर निर्भय हो कर सभा में राजा रावण का, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्र का दर्शन किया ।

बलाधिपैर्भीष्ममुखैरुपेतं प्रसिद्धभूरिश्रवसं हरिस्तम् ।
सकर्णशल्यं वच इत्यवोचत्प्रकाशगम्भीरमहार्थजातम् ।।३९।।

स हरिः स वानरः अङ्गदः भीष्ममुखैः भीष्मानि भयानकानि मुखानि वदनानि येषां तैः 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः, बलाधिपैः सेनानायकैः उपेतं संयुक्तम्, प्रसिद्धभूरिश्रवसं प्रसिद्धानि प्रथितानि भूरीणि बहुसंख्याकानि श्रवांसि श्रवणानि यस्य तम्, तं रावणं प्रकाशगम्भीरमहार्थजातं प्रकाशः प्रकटः गम्भीरः निपुणैकवेद्यः महार्थजातः महान् अर्थसमूहो यस्मिन् तत् कर्णशल्यं श्रवणव्यथाकरम् इति वचः एतद्वचनम् अवोचत् अकथयत् । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

उस बन्दर अङ्गद ने भयङ्करमुखवाले सेनापतियों से संयुक्त, प्रसिद्ध बहुसंख्यक बीस कान वाले उस रावण को प्रकट तथा गम्भीर महान् अर्थसमूह वाला, कान में व्यथाकरनेवाला यह वचन कहा ।

पक्षे—हरिः कृष्णः भीष्ममुखैः भीष्मः गाङ्गेयः मुखं प्रधानं येषां तैः बलाधिपैः सेनापतिभिः उपेतं संयुक्तं, प्रसिद्धभूरिश्रवसं प्रसिद्धः विख्यातः भूरिश्रवाः सोमदत्तपुत्रः भूरिश्रवःसंज्ञकः राजा यस्य तं, सकर्णशल्यं कर्णेन राधेयेन शल्येन मद्राधिपेन च सहितं तं धृतराष्ट्रं प्रकाशगम्भीरमहार्थजातं प्रकटगम्भीरबृहदर्थसमूहम् इति वचः एतद्वचनम् अवोचत् अकथयत् ।

श्री कृष्ण ने भीष्म प्रभृति सेनापतियों से संयुक्त, विख्यातभूरिश्रवा राजा वाले, कर्ण तथा शल्य से संयुक्त उस धृतराष्ट्र को प्रकट तथा गम्भीर महान् अर्थ समूह वाला यह वचन कहा ।

अनात्मवंशोचितमार्यगर्हितं सबन्धुमित्रस्य कुलस्य घस्मरम् ।
त्वमग्रयायी नयपारदृश्वनां विरोधमीदृग्विधमीहसे कथम् ।।४०।।

त्वं रावणः, पक्षे—धृतराष्ट्रः नयपारदृश्वनां नीतिपारंगतानाम् अग्रयायी अग्रेसरः प्रथमगण्यः इत्यर्थः, असि अतः अनात्मवंशोचितम् अस्वकुलयोग्यं स्वकुलयोग्यं नेत्यर्थः, आर्यगर्हितम् आर्यैः सद्भिः गर्हितं निन्दितं सबन्धुमित्रस्य बान्धवसुहृत्सहितस्य कुलस्य वंशस्य घस्मरं भक्षकं विनाशकमित्यर्थः ईदृग्विधम् एतत्प्रकारकं विरोधं वैराचरणं कथं कस्मात् कारणात् ईहसे चेष्टसे ? अत्र वंशस्थं वृत्तं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ।

हे रावण ! तुम, दूसरे पक्ष में—हे धृतराष्ट्र ! तुम नीतिपारंगत लोगों के अग्रेसर हो, अतः अपने कुल के लिये अनुचित, सज्जनलोगों के द्वारा निन्दित, मित्रबान्धवसहित अपने वंश का विनाश करने वाला, इस प्रकार का विरोध क्यों कर रहे हो ?

तस्मादस्माद्विरम कलहाद् गोप्तुमात्मीयगोत्रं
क्षोणीभर्त्रे वितर मुषितामात्मपालो महेलाम् ।
नो चेज्जिष्णोरुपहर शरश्रेणये प्राणराशी-
न्मोहान्धानां युधि निजसुहृद्बन्धुभृत्यात्मजानाम् ॥४१॥

तस्मात् कारणात् आत्मीयगोत्रं स्वकुलं गोप्तुं रक्षितुम् अस्मात्कलहात् एतदुपस्थितयुद्धाद् विरम विरतो भव, आत्मपालः सन् स्वरक्षको भूत्वा क्षोणीभर्त्रे राज्ञे रामाय, पक्षे—युधिष्ठिराय मुषितां चौर्येणापहृतां, पक्षे—द्यूतेनापहृतां महेलां महिलां योषितमिति यावत्, पक्षे—महतीमिलां पृथ्वीं राज्यभूमिति यावद् वितर देहि। नो चेत् अन्यथा युधि युद्धे जिष्णोः जयनशीलस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य शरश्रेणये बाणव्राताय मोहान्धानाम् अज्ञानान्धीभूतानां निजसुहृद्बन्धुभृत्यात्मजानां स्वमित्रबान्धवानुचरपुत्राणां प्राणराशीन् प्राणसमूहान् उपहर उपायनं कुरु। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्' इति लक्षणात्। विकल्पोऽलङ्कारश्च।

अतः अपने कुल की रक्षा करने के लिये इस युद्ध से विरत हो जाओ, अपना रक्षक बन कर राजा राम को चोरी से अपहरण की गई स्त्री दे दो, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर को द्यूत से अपहरण की गई भूमि दे दो। नहीं तो युद्ध में जयनशील राम के शरसमूहों को, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के शरसमूहों को अज्ञान से अन्धे बने हुए अपने मित्र-बान्धव-नौकर तथा पुत्रों के प्राणसमूह उपहार बना कर दो।

निशितविशिखशम्बोत्कृत्तवीरोत्तमाङ्ग-
स्तवकितलहरीभिः शोणिताम्भःसरिद्भिः ।
नयनिपुण न यावत्क्षाल्यते क्षोणिचक्रं
द्रुतमुपनतकालस्तावदाधत्स्व सन्धिम् ॥४२॥

नयनिपुण ! हे नीतिनिष्णात ! रावण, पक्षे—धृतराष्ट्र ! यावत् यावत्कालं निशितविशिखशम्बोत्कृत्तवीरोत्तमाङ्गस्तवकितलहरीभिः

निशिताः तीक्ष्णाः विशिखाः बाणा एव शम्बाः वज्राणि 'ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः । शतकोटिः स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इत्यमरः, तैः उत्कृत्तानि छिन्नानि यानि वीरोत्तमाङ्गानि वीराणां शिरांसि तैः स्तवकिताः सगुच्छकीकृताः लहर्यः ऊर्मयः यासां ताभिः शोणिताम्भःसरिद्भिः शोणितानि रुधिराण्येव अम्भांसि जलानि तेषां नदीभिः क्षोणिचक्रं पृथिवीमण्डलं न क्षाल्यते न आप्लाव्यते, तावत् तावत्कालं द्रुतं शीघ्रम् उपनतकालः उपनतः उपस्थितः कालः समयः यस्य सः उपस्थितसमयोचितव्यवहारकः सन्नित्यर्थः, सन्धिं सन्धानम् आधत्स्व कुरु अत्र मालिनीवृत्तम् 'नन म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इतिलक्षणात् !

हे नीतिनिपुण रावण ! दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्र ! जब तक तेज बाण रूपी वज्रों से काटे गये वीरों के मस्तकों से स्तवकित (गुच्छों से भरी हुई) लहरी वाली रुधिर जल की नदियों से पृथ्वीमण्डल आप्लावित नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र ही उपस्थित-समयोचित-व्यवहारी बन कर सन्धि कर लो ।

वैधव्यव्यथितसुतावरोधबोध-
प्रक्रान्तप्रतिरवमेदुरोदराणि ।
स्युर्यावन्न तव गृहाण्यतो विचारं
त्वं तावत्कुरुकुलशान्तये यतस्व ॥४३॥

अतः अस्मात् कारणात् यावत् यावत्कालपर्यन्तं तव रावणस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य गृहाणि भवनानि वैधव्यव्यथितसुतावरोधबोधप्रक्रान्तप्रतिरवमेदुरोदराणि वैधव्येन पतिमरणेन व्यथिताः पीडिताः ये सुतावरोधाः पुत्राणां दाराः तेषां बोधे प्रतिबोधे आश्वासने इति यावद् यः प्रक्रान्तः आरम्भः क्रियेति यावत् तस्य यः प्रतिरवः प्रतिध्वनिः तेन मेदुराणि सान्द्राणि भरितानीति भावः उदराणि अवकाशस्थानानि येषाम् एवं भूतानि न स्युः न भवेयुः तावत् तावत्कालपर्यन्तं त्वं रावणः विचारं कुरु विमर्शं विधेहि कुलशान्तये वंशकल्याणाय यतस्व प्रयत्नं कुरु, पक्षे—त्वं धृतराष्ट्रः कुरुकुलशान्तये कुरुवंशकल्याणाय विचारं यतस्व विचारकरणे प्रयत्नं विधेहि । अत्र प्रहर्षिणीवृत्तम् 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात् । अनुप्रासोऽलङ्कारः ।

इसलिए जब तक तुम्ह रावण के घर, दूसरे पक्ष में—तुम्ह धृतराष्ट्र के घर पतिमरण से व्यथित पुत्रवधुओं के प्रतिबोध के शब्दों की प्रतिध्वनि से भरे हुए

न हो जाँय, तब तक तुम विचार करो तथा अपने कुल के कल्याण के लिए प्रयत्न करो। दूसरे पक्ष में—तुम कुरुवंश के कल्याण के लिये विचार करने का प्रयत्न करो।

द्विजोत्तमाकीर्णकुशस्थलाढ्यान् ग्रामानपि त्वं नियतं विसृज्य ।
सुखप्रसादेन युधिष्ठिरेण सन्धाय मोदस्व चिराय राज्ञा ॥४४॥

त्वं रावणः द्विजोत्तमाकीर्णकुशस्थलाढ्यान् द्विजोत्तमैः ब्राह्मणश्रेष्ठैः आकीर्णाः यज्ञभूमौ प्रसारिताः ये कुशाः दर्भाः तत्र तिष्ठतीति द्विजोत्तमाकीर्णकुशस्थः राजा जनकः सततयज्ञदीक्षित इत्यर्थः तं लाति स्वजन्मना गृह्णाति इति द्विजत्तमाकीर्णकुशस्थला सीता ला आदाने इति कौमुदी, तया आढ्यान् संयुक्तान् ग्रामान् समूहान् उपायनरत्नसमूहान् इत्यर्थः अपि नियतं निश्चितमेव विसृज्य दत्वा युधिष्ठिरेण संग्रामे दृढेन सुखप्रसादेन सुखेन अनायासेन प्रसादः प्रसन्नता यस्य तेन राज्ञा रामेण सन्धाय सन्धिं विधाय चिराय चिरकालं यावद् मोदस्व आनन्दितो भव। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

हे रावण तुम ब्राह्मणश्रेष्ठों के द्वारा यज्ञभूमि में फैलाये गये कुशों के ऊपर यज्ञदीक्षित होकर सतत रहने वाले राजा जनक को स्वजन्म के द्वारा ग्रहण करने वाली सीता से संयुक्त उपायन रत्नसमूहों को भी निश्चित रूप से दे कर युद्ध में स्थिर रहने वाले तथा सरलता से प्रसन्न होने वाले राजा राम के साथ सन्धि कर के बहुत समय तक आनन्दित होकर रहो।

पक्षे—हे धृतराष्ट्र! त्वम् द्विजोत्तमाकीर्णकुशस्थलाढ्यान् श्रेष्ठब्राह्मणपरिपूर्णकुशस्थलसंज्ञकग्रामयुक्तान् ग्रामान् पञ्चग्रामान् अपि नियतं निश्चयेन विसृज्य दत्त्वा सुखप्रसादेन सुखेन अनायासेन प्रसादः प्रसन्नता यस्य तेन युधिष्ठिरेण एतन्नामकेन स्वभ्रातृजेन राज्ञा नृपेण सन्धाय सन्धिं कृत्वा चिराय चिरकालं यावत् मोदस्व आनन्दितो भव।

हे धृतराष्ट्र! तुम श्रेष्ठब्राह्मणों से परिपूर्ण कुशस्थल नामक ग्राम सहित पाँच ग्रामों को भी अवश्य दे कर सरलता से प्रसन्न होने वाले राजा युधिष्ठिर से सन्धि कर के बहुत दिनों तक आनन्द के साथ रहो।

परिगतनयविद्यान् बिभ्रतो राजलक्ष्मीं
विषयरसनिवासे यौवने वर्तमानान् ।
बलतुलितमहेन्द्रानात्मजानात्मतुल्यान्
समरभुवि मुधा त्वं मान्तकायोपकार्षीः ॥४५॥

हे रावण ! त्वम्, पक्षे—हे धृतराष्ट्र ! त्वम् समरभुवि युद्धभूमौ मुधा व्यर्थमेव अन्तकाय यमाय परिगतनयविद्यान् परिगता प्राप्ता नयविद्या नीतिशास्त्रविद्या यैस्तान् राजलक्ष्मीं नृपश्रियं बिभ्रतः धारयतः विषयरसनिवासे विषयरसस्य स्रक्चन्दनवनिताद्युपभोगानन्दस्य निवासे वासस्थानभूते यौवने द्वितीये वयसि वर्तमानान् स्थितान्, बलतुलितमहेन्द्रान् बलेन शक्त्या तुलितः समीकृतः महेन्द्रः देवराजः यैस्तान् आत्मतुल्यान् स्वसदृशान् आत्मजान् पुत्रान् मेघनादादीन्, पक्षे—दुर्योधनादीन् मा उपकार्षीः न उपहारीकुरु। अत्रमालिनीवृत्तमुपमालङ्कारः ।

हे रावण ! तुम, दूसरे पक्ष में—हे धृतराष्ट्र ! तुम युद्धभूमि में व्यर्थ ही यमराज के लिये नीति-विद्या जानने-वाले, राजलक्ष्मी धारण करने वाले, सांसारिक विषयोपभोगानन्द के निवासस्थानस्वरूप युवावस्था में वर्तमान, अपने बल से देवराज इन्द्र की समता करने वाले, अपने पुत्रों को मत उपहार बनाओ ।

इति हरिवदनाद्विनिःसृता सा परिषदि सज्जनसंमतापि वाणी ।
शशिरुचिरिव गह्वरे महाद्रेर्मनसि चकार परस्य न प्रवेशम् ॥४६॥

परिषदि सभायाम् इति एतत्प्रकारेण हरिवदनात् वानरमुखात् अङ्गदमुखादित्यर्थः, पक्षे—कृष्णमुखात् विनिःसृता निर्गता सज्जनसंमतापि सज्जनानां तत्र स्थितानां सतां मनोऽनुकूलापि सा वाणी तद्वचनं महाद्रेः विशालपर्वतस्य गह्वरे गुहायां शशिरुचिरिव चन्द्रद्युतिरिव परस्य शत्रोः रावणस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनस्य वा मनसि चित्ते प्रवेशं न चकार न प्राविशत् संमता नाभवदित्यर्थः। अत्र पुष्पिताग्रा नाम विषमपदवृत्तम् 'अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात्, उपमालङ्कारश्च ।

सभा में इस प्रकार से बन्दर अङ्गद के मुख से, दूसरे पक्ष में—श्री कृष्ण के मुख से निकली हुई सज्जनों के मनोनुकूल भी वही वाणी विशालपर्वत की गुफा में चान्दनी के समान शत्रु रावण के मन में, दूसरे पक्ष में—शत्रु धृतराष्ट्र के मन में अथवा दुर्योधन के मन में नही प्रविष्ट हुई ।

त्वरितमिति वृषाकपेर्गिरोद्यद्भ्रुकुटिभुजङ्गमलाञ्छनो विपक्षः ।
रिपुकुलबलसारभूतमेनं तम इव तिग्मरुचिं निरोद्धुमैच्छत् ॥४७॥

वृषाकपेः वृषः श्रेष्ठः आ पूजितश्चासौ कपिः वानरः वृषाकपिः अङ्गदः तस्य 'शुक्ले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः, 'अकारो

वासुदेवः स्यादाकारस्तु पितामहः । पूजायामपि माङ्गल्ये आकारः परिकीर्तितः 'इत्येकाक्षरकोषः, पक्षे—वृषाकपेः कृष्णस्य 'हरविष्णू वृषाकपी' इत्यमरः, इतिगिरा एतद्वचनेन विपक्षः शत्रुः रावणः, पक्षे—दुर्योधनः उद्यद्भ्रुकुटिभुजङ्गमलाञ्छन उद्यन्ती उत्पद्यमाना भ्रुकुटिः भ्रूवक्रता एव भुजङ्गमः सर्पः सः लाञ्छनं चिह्नं यस्य एवंभूतः अभूदिति शेषः। रिपुकुलबलसारभूतं शत्रुसमूहसेनादृढांशस्वरूपम् एनम् अङ्गदं, पक्षे—श्रीकृष्णं तिग्मरुचिं सूर्यं तम इव अन्धकार इव निरोद्धुम् अवरोद्धुम् ऐच्छत् वाञ्छति स्म। अन्धकारस्येव तस्य प्रयासो व्यर्थोऽभूदिति भावः। अत्रापि पुष्पिताग्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

श्रेष्ठ तथा पूजित बन्दर अङ्गद की, दूसरे पक्ष में—कृष्ण की इस वाणी से शत्रु रावण, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन उत्पन्न हुई वक्रभ्रूरूपी सर्प से चिह्नित हो गया। तथा उस ने शत्रुदल की सेना के दृढांश स्वरूप इस अङ्गद को, दूसरे पक्ष में—कृष्ण को सूर्य को अन्धकार के समान बाँध रखने की इच्छा की। अन्धकार के समान उसका भी प्रयत्न व्यर्थ हो गया।

अधिपतिबलनुन्नेष्वञ्जसा सौबलाग्रे
त्वरितकृतविरोधप्रक्रमेषु प्रकामम्।
परिषदि निजतेजस्तेजयामास पूर्वं
हरिरिव बलियज्ञे विक्रमाक्रान्तलोकः ॥४८॥

अधिपतिबलनुन्नेषु अधिपतेः स्वामिनः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य शक्त्या नुन्नेषु प्रेरितेषु अञ्जसा निश्चितरूपेण प्रकामं पर्याप्तरूपेण त्वरितकृतविरोधप्रक्रमेषु त्वरितं तूर्णमेव कृताः प्रारब्धाः ये विरोधप्रक्रमाः विरोधस्य उपक्रमाः तेषु सत्सु बलाग्रे सेनासंमुखे परिषदि सभायां विक्रमाक्रान्तलोकः विक्रमेण पराक्रमेण आक्रान्ताः अभिभूताः लोकाः जनाः येन सः, असौ अङ्गदः पूर्वं पूर्वकाले बलियज्ञे बलिदैत्यमखे विक्रमाक्रान्तलोकः विक्रमेण पादविक्षेपेण आक्रान्ताः पादविक्षेपान्तर्गतीकृताः लोकाः भुवनानि येन सः हरिरिव वामनरूपधारी विष्णुरिव, पक्षे—सौबलाग्रे सौबलस्य शकुनेः अग्रे सम्मुखे परिषदि सभायां विक्रमाक्रान्तलोकः पराक्रमाभिभूतजनः हरिः श्रीकृष्णः पूर्वं पूर्वकाले विक्रमाक्रान्तलोकः पादविक्षेपान्तर्गतीकृतभुवनः सन् बलियज्ञे इव बलिमखे इव निजतेजः स्वतेजः तेजयामास दीपयति स्म। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारश्च।

स्वामी रावण की, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन की शक्ति से प्रेरित निश्चितरूप से तथा पर्याप्तरूप से शीघ्रता के साथ विरोध के उपक्रमों के किये जाने पर सेना के सामने सभा में पराक्रम से लोगों को नीचा दिखाने वाले इस अङ्गद ने पूर्वकाल में बलि के यज्ञ में चरणविक्षेप से भुवनों को अपने कदमों के अन्दर लाने वाले वामनरूप-धारी विष्णु के समान, दूसरे पक्ष में—सुबल के पुत्र शकुनि के सामने सभा में पराक्रम से लोगों को नीचा दिखाने वाले श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में चरणविक्षेप के अन्दर भुवनों को करते हुए जैसे बलि के यज्ञ में किया था उसी प्रकार अपना तेज समुत्तेजित किया।

दिवि च भुवि च तुल्यं तायमानैर्महोभिः
प्रमथितपरधामा लोचनानि प्रतिघ्नन्।
अरितिमिरनिरासाद्दर्शयन् विश्वरूपं
मिहिर इव स उद्यन् सर्वभूतैरशंसि ॥४९॥

दिवि च आकाशेऽपि भुवि च पृथिव्यामपि तुल्यं समानरूपेण तायमानैः प्रसरद्भिः तेजोभिः महोभिः प्रमथितपरधामा प्रमथितं विनाशितं परेषां विरोधिनां धाम तेजः येन सः, लोचनानि जनानां नयनानि प्रतिघ्नन् प्रतिघातयन् अरितिमिरनिरासाद् अरयः शत्रवः तिमिराणीव तमांसीव तेषां निरासात् अपाकरणात्, सूर्यपक्षे—अरिभूतानां तिमिराणां दूरीकरणात् विश्वरूपं सम्पूर्णाकारं, पक्षे—विराट्स्वरूपधारिणमात्मानं, सूर्यपक्षे—विश्वेषां सर्वेषामाकृतिं दर्शयन् नयनगोचरीकुर्वन् सः अङ्गदः, पक्षे—श्रीकृष्णः उद्यन् उदीयमानः मिहिर इव सूर्य इव सर्वभूतैः सर्वप्राणिभिः अशंसि प्रशंसितः। अत्रापि मालिनीवृत्तमुपमालङ्कारः।

आकाश में तथा पृथ्वी पर समान रूप से फैलते हुए तेजों के द्वारा शत्रुओं का तेज, सूर्यपक्ष में—दूसरों का तेज विनष्ट करने वाले, अपने ऊपर लगी हुई लोगों की आँखों को चकचौंधी पैदा करने वाले, अन्धकार के समान शत्रु का, सूर्यपक्ष में—शत्रुभूत अन्धकार का निराकरण करने से अपना सम्पूर्ण आकार, दूसरे पक्ष में—विराट्स्वरूप, सूर्यपक्ष में—सभीवस्तुओं की आकृति दिखलाते हुए वह अङ्गद, दूसरे पक्ष में—श्री कृष्ण उदीयमान सूर्य के समान सभी प्राणियों के द्वारा प्रशंसित हुए।

परव्रतापातपसंनिपातात्प्रकीर्य तेजः प्रतिपक्षकक्षे।
सकृत्प्रशान्त्या पुनरेव शान्तिं प्रापानुकुर्वन् रविकान्तचेष्टाम् ॥५०॥

परप्रतापातपसंनिपातात् परेषां प्रतापः तेजः आतप इव प्रकाश इव तस्य संनिपातात् पतनात्, प्रतिपक्षकक्षे प्रतिपक्षः शत्रुः कक्ष इव तृणसमूह इव 'कक्षौ तु तृणवीरुधौ' इत्यमरः, तस्मिन् तेजः प्रभावं, पक्षे—दीप्तिं प्रकीर्य प्रसार्य प्रशान्त्या परप्रतापस्य प्रशमनेन, सूर्यकान्त-पक्षे—आतपस्य प्रशमनेन पुनरेव सकृत् पुनरप्येकवारं रविकान्तचेष्टां सूर्यकान्तमणेः क्रियाम् अनुकुर्वन् अन्वाचरन् सः अङ्गदः, पक्षे—कृष्णः शान्तिं प्राप शान्तावस्थां धारयति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्र-वज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

धूप के समान शत्रु के प्रताप के अपने ऊपर पड़ने से सूखे तृणसमूह के समान शत्रुओं के ऊपर अपना तेज फैला कर, शत्रुओं के प्रताप के शान्त हो जाने पर, सूर्यकान्त पक्ष में—धूप के शान्त हो जाने पर, फिर एक वार, सूर्यकान्तमणि की क्रिया का अनुकरण करते हुए उस अङ्गद ने, दूसरे पक्ष में—उस श्री कृष्ण ने शान्त अवस्था को धारण किया ।

स क्षिप्रं नृपजननीतिपारदर्शी
स्वैर्वाक्यैः कृतपरपक्षकर्णभेदः ।
भूभर्तुर्निकटमुपेत्य वैरिवर्गं
व्याचष्टे प्रतिनियतोग्रदण्डसाध्यम् ॥५१॥

नृपजननीतिपारदर्शी नृपजनानां राज्ञां नीतेः सामदानभेददण्ड-स्वरूपायाः नीतेः पारदर्शी सम्यग्ज्ञाता, स्वैर्वाक्यैः स्ववचनैः कृतपर-पक्षकर्णभेदः कृतः परपक्षस्य शत्रुपक्षीयस्य कर्णभेदः श्रवणभेदनं कर्णव्यथेति भावः, येन सः अङ्गदः, पक्षे—स्ववचनैः कृतः परपक्षस्य शत्रुपक्षस्थितस्य कर्णस्य राधेयस्य भेदः उपजापः येन सः श्रीकृष्णः, (पश्चादेकान्ते श्रीकृष्णेन कर्णो बोधितः यत् त्वं कुन्तीपुत्रः असि त्वया पाण्डवानां साहाय्यं कर्त्तव्यम्, किन्तु कर्णः स्वाश्रुतदुर्योधनपक्षात् न व्यचलत्) भूभर्तुः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य निकटं समीपम् उपेत्य गत्वा वैरिवर्गं शत्रुसमूहं प्रतिनियतोग्रदण्डसाध्यं प्रतिनियतं निश्चित-मेव उग्रदण्डेन भयङ्करदण्डप्रयोगेण साध्यं साधनीयं व्याचष्टे अकथ-यत् । अत्र प्रहर्षिणीवृत्तं—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात् ।

सामदानभेददण्ड रूपी राजनीति को ठीक ठीक जानने वाले, अपने वचनों से शत्रु पक्ष के राक्षसों के कान में व्यथा उत्पन्न करने वाले उस अङ्गद ने राजा

राम के पास पहुँच कर, दूसरे पक्ष में—अपने वचनों से शत्रुपक्ष से अलग हो जाने के लिये कर्ण के ऊपर भेद नीति प्रयोग करने वाले श्री कृष्ण ने (पश्चात् एकान्त में श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा कि तुम कुन्ती के पुत्र हो तुम्हें पाण्डवों की सहायता करनी चाहिये, किन्तु कर्ण ने पूर्व में दुर्योधन के साथ वचनबद्ध होने के कारण यह स्वीकार नही किया) राजा युधिष्ठिर के पास पहुँच कर कहा कि शत्रुसमूह केवल भयङ्कर दण्डनीति से ही अर्थात् युद्ध से ही साधा जायगा।

अथाप्तकालो नृपतिर्न्ययुङ्क्त बलानि रोषादभिषेणनाय।
युगान्तमासाद्य यथाम्बुराशिः स्वाम्भांसि लोकत्रयसंप्लवाय ॥५२॥

अथ अनन्तरम् आप्तकालः प्राप्तसमयः नृपतिः राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः रोषात् क्रोधात् युगान्तमासाद्य प्रलयकालं प्राप्य अम्बुराशिः समुद्रः लोकत्रयसंप्लवाय त्रिभुवनस्य आप्लावनाय स्वाम्भांसि यथा निजजलानीव बलानि सैन्यानि अभिषेणनाय सेनया आक्रमणाय न्ययुङ्क्त नियोजितवान् आदिशदित्यर्थः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

इस के बाद समय पाकर राजा राम ने, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर ने क्रोध से प्रलयकाल को प्राप्त कर के समुद्र तीनों भुवनों को आप्लावित करने के लिये अपने जलों को जैसे प्रयुक्त करता है उसीप्रकार सेनाओं को आक्रमण करने के लिये आदेश दे दिया।

साकं भुवा मत्सरिणां मनांसि प्रकम्पयन् भूमिपतिः प्रपेदे।
द्विषो जिगीषुर्जमदग्निजन्मा रामः कुरुक्षेत्रमिवाजिभूमिम् ॥५३॥

द्विषः शत्रून् जिगीषुः जेतुमिच्छुः भूमिपतिः राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः भुवा साकं पृथिव्या सह मत्सरिणां विद्वेषिणां शत्रूणामिति यावत् मनांसि चित्तानि प्रकम्पयन् कम्पितानि कुर्वन् जमदग्निजन्मा जमदग्निपुत्रः रामः परशुरामः कुरुक्षेत्रमिव कुरुक्षेत्रनामकस्थानमिव आजिभूमिं संग्रामस्थलं, पक्षे—जमदग्निपुत्रः परशुराम इव कुरुक्षेत्ररूपं युद्धस्थानं प्रपेदे प्राप्तवान् अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् सहोक्तिरुपमाचालङ्कारः।

शत्रुओं के जीतने की इच्छा वाले राजा राम, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर पृथ्वी के साथ शत्रुओं का मन कँपाते हुए जैसे जमदग्नि के पुत्र परशुराम कुरुक्षेत्र में पहुँचे थे उसी प्रकार युद्धभूमि में पहुँचे, दूसरे पक्ष में—जमदग्नि के पुत्र परशुराम के सदृश कुरुक्षेत्र रूपी युद्धभूमि में पहुँचे।

अथ गतवति राज्ञः सोदरे शत्रुपक्षं
श्रितवति तदभीष्टं संविधित्सौ युयुत्सौ।
अपि सुभटसमेता सा चमूः कान्तिमत्तां
युवतिरिव न लेभे कर्णशोभाविहीना ॥५४॥

अथ अनन्तरं राज्ञः रावणस्य सोदरे सहोदरभ्रातरि विभीषणे शत्रुपक्षं तच्छत्रुरामपक्षं गतवति प्राप्ते सति श्रितवति आश्रयं च गृहीते सति तदभीष्टं रामस्य प्रियं संविधित्सौ कर्तुमिच्छुके सति युयुत्सौ योद्धुं चेच्छुके सति सुभटसमेतापि वीरैर्युक्तापि सा चमूः रावणसेना कर्णशोभाविहीना श्रवणशोभारहिता युवतिरिव तरुणीव कान्तिमत्तां सौन्दर्यं न लेभे न प्राप्तवती। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस के बाद राजा रावण के सहोदर भाई विभीषण के इसके शत्रु राम के पक्ष में चले जाने पर, और उन के पक्ष का आश्रय कर लेने पर, उन का प्रिय आचरण करने के इच्छुक होने पर तथा युद्ध के लिये इच्छुक होने पर वीरों से संयुक्त भी उस रावणसेना ने कान की शोभा से रहित युवती के सामान सौन्दर्य छटा नहीं प्राप्त की।

पक्षे—अथ अनन्तरं राज्ञः दुर्योधनस्य सोदरे भ्रातरि युयुत्सौ युयुत्सुनामके शत्रुपक्षं तच्छत्रुपाण्डवपक्षं गतवति श्रितवति च गते आश्रिते च सति तदभीष्टं पाण्डवानां प्रियं संविधित्सौ कर्तुमिच्छुके च सति कर्णशोभाविहीना कर्णेन राधेयेन या शोभा तया हीना, भीष्मे सेनापतौ भूते तेनार्धरथीति कथितेन क्रुद्धः कर्णः भीष्मसेनापतित्वे न युद्धमकरोदिति भावः, सा चमूः दुर्योधनसेना सुभटसमेतापि वीरैर्युक्तापि कर्णशोभाविहीना श्रवणशोभारहिता युवतिरिव तरुणीव कान्तिमत्तां सौन्दर्यं न लेभे न प्राप्तवती।

इसके बाद राजा दुर्योधन के ययुत्सु नामक भाई के उस के शत्रु पाण्डवों के पक्ष में चले जाने पर और उनका आश्रय कर लेने पर तथा पाण्डवों का प्रिय आचरण करने के इच्छुक हो जाने पर, भीष्म के सेनापति होने पर (भीष्म ने उसे अर्धरथी कहा था अतः क्रुद्ध होकर कर्ण ने भीष्म के सेनापतित्व में युद्ध नहीं किया अतः) कर्ण की शोभा से हीन वीरों से युक्त होने पर भी दुर्योधन की उस सेना ने कान की शोभा से हीन युवती के समान सौन्दर्य नहीं धारण किया।

भारतपक्षे एतदपि भवितुमर्हति-अथ अनन्तरं राज्ञः युधिष्ठिरस्य सोदरे सहोदरभ्रातरि कर्णे शत्रुपक्षे दुर्योधनपक्षे गतवति श्रितवति

गते आश्रिते च सति तदभीष्टं तस्य दुर्योधनस्य प्रियं संविधित्सौ कर्तुमिच्छुके युयुत्सौ योद्धुमिच्छुके च सति कर्णशोभाविहीना कर्णेन कर्णनाम्ना भ्रात्रा या शोभा तया रहिता सुभटसमेतापि भीमादिभिर्वीरैः संयुक्तापि सा चमूः युधिष्ठिरसेना कर्णशोभाविहीना श्रवणशोभारहिता युवतिरिव तरुणीव कान्तिमत्तां शोभनतां न लेभे न प्राप्नोत्।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर के सहोदर भाई कर्ण के दुर्योधन रूपी शत्रु के पक्ष में चले जाने पर तथा आश्रय ग्रहण कर लेने पर उस दुर्योधन का प्रिय आचरण करने के इच्छुक होने पर और युद्ध के लिए इच्छुक होने पर भाई कर्ण की शोभा से हीन भीमादि वीरों से संयुक्त रहने पर भी युधिष्ठिर की उस सेना ने कान की शोभा से हीन युवती के समान शोभनता को नहीं धारण किया।

अथोद्गतस्यन्दनसप्तिपत्तिहस्तिस्फुटाटोपनिकामभीमा ।
रणाङ्गणं प्रापदशास्यसेनापतिप्रणुन्ना पृतना परेषाम् ॥५५॥

अथ अनन्तरं परेषां शत्रूणां राक्षसानां, पक्षे—दुर्योधनादीनाम् उद्गतस्यन्दनसप्तिपत्तिहस्तिस्फुटाटोपनिकामभीमा उद्गतानाम् ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य यातानां स्यन्दनानां रथानां सप्तीनाम् अश्वानां पत्तीनां पादातिकानां हस्तिनां गजानां स्फुटः प्रत्यक्षः यः आटोपः आडम्बरः तेन निकामम् अत्यन्तं भीमा भयानका पृतना सेना दशास्यसेनापतिप्रणुन्ना दशास्यस्य रावणस्य ये सेनापतयः तैः प्रणुन्ना प्रेरिता सती रणाङ्गणं युद्धस्थलं प्राप प्राप्तवती, पक्षे—अशास्यसेनापतिप्रणुन्ना अशास्यः अदमनीयः यः सेनापतिः भीष्मः तेन प्रणुन्ना प्रेरिता सती रणाङ्गणं युद्धस्थलं प्रापत् आजगाम। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इसके बाद शत्रु राक्षसों की, दूसरे पक्ष में—शत्रु दुर्योधनादिकों की उछलते हुए रथ-घोड़े-पैदल सैनिक तथा हाथियों के स्पष्ट आडम्बर से अत्यन्त भयङ्कर रावण के सेनापतियों से प्रेरित, दूसरे पक्ष में-अदमनीय सेनापति भीष्म के द्वारा प्रेरित सेना युद्धस्थल में पहुँच गई।

विलोक्य जिष्णुः परमण्डलं तच्चिन्तां
प्रियापायभयाद् गतोऽपि।
स्थैर्यं प्रपेदे हरियोगलब्ध-
स्वास्थ्यः प्रभाविक्रमशोभिरामः ॥५६॥

जिष्णुः जयनशीलः प्रभाविक्रमशोभिरामः प्रभया कान्त्या विक्रमेण पराक्रमेण शोभी शोभायुक्तश्चासौ रामः तत् समागतं परमण्डलं शत्रुसमूहं विलोक्य दृष्ट्वा प्रियापायभयात् प्रियायाः, जानक्याः यः अपायः विश्लेषः तद्भयात् क्रोधाद्रावणस्तां चेद्धन्यादिति भयादिति भावः, चिन्तां मनोव्यथां गतोऽपि प्राप्तोऽपि हरियोगलब्धस्वास्थ्यः हरेः वानरस्य सुग्रीवस्य योगेन संयोगेन लब्धं प्राप्तं स्वास्थ्यं स्वावस्थानं येन एवंभूतः सन् स्थैर्यं स्थिरतां हृदयदृढतामित्यर्थः, प्रपेदे प्राप्तवान् । अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

जयनशील, कान्ति तथा पराक्रम से शोभा पानेवाले राम आए हुए उस शत्रुसमूह को देखकर क्रोध से कहीं रावण सीता को मार न डाले इस प्रकार प्रिया सीता के विश्लेष के भय से चिन्तित होने पर भी वानर सुग्रीव के संयोग से स्वस्थता धारण करते हुए स्थिरता धारण किये ।

पक्षे—जिष्णुः अर्जुनः तत् सन्नद्धं परमण्डलं शत्रुसमूहं विलोक्य दृष्ट्वा प्रियापायभयात् प्रियाणां प्रियबन्धूनाम् अपायस्य विध्वंसस्य भयाद् भीतेः चिन्तां मनोव्यथां गतोऽपि प्राप्तोऽपि प्रभाविक्रमशः प्रभावोत्पादकेन क्रमेण हरियोगलब्धस्वास्थ्यः हरेः कृष्णस्य योगेन ज्ञानयोगभक्तियोगवैराग्ययोगस्वरूपभगवद्गीतोपदेशेन लब्धं प्राप्तं स्वास्थ्यं स्वावस्थितिर्येन एवंभूतः अभिरामः मनोहरश्च सन् प्रसन्न इत्यर्थः, स्थैर्यं हृदयदार्ढ्यं प्रपेदे प्राप्तवान् ।

सन्नद्ध हो कर आये हुए उस शत्रुसमूह को देख कर प्रिय बन्धुओं के विध्वंस के भय से चिन्ता को प्राप्त हुए भी अर्जुन प्रभावोत्पादक क्रम से श्री कृष्ण के भगवद्गीता स्वरूप ज्ञान-भक्ति-वैराग्ययोग के उपदेश से स्वस्थ तथा प्रसन्न होकर स्थिरहृदय हो गये ।

कृत्वोपसत्तिं तरसा गुरूणां नरेन्द्रसूनुः कलितज्यधन्वा ।
बभूव भीमो भुवि शम्बरस्य वधं विधित्सन्निव कामदेवः ॥५७॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहित-कविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कामदेवाङ्के लङ्कादहनोत्तरगोग्रहो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

नरेन्द्रसूनुः राजपुत्रः रामः तरसा वेगेन गुरूणां वशिष्ठ-विश्वामित्रागस्त्यादीनाम् उपसत्तिम् उपासनां मानसिकीं पूजामिति यावत्, कृत्वा विधाय कलितज्यधन्वा कलिता संलग्ना ज्या मौर्वी यस्मिन् तत्

कलितज्यम् एवंभूतं धनुः यस्य सः भुवि पृथिव्यां शम्बरस्य शम्बरासुरस्य वधं मरणं विधित्सन् कर्तुमिच्छन् तं मारयितुमिच्छन्नित्यर्थः, कामदेव इव मदन इव भीमः भयङ्करः बभूव अभवत्। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

राजकुमार राम शीघ्रता से वशिष्ठादि गुरुओं की मानसिक पूजा कर के मौर्वी लगे हुए धनुष धारण कर के पृथ्वी पर शम्बरासुर का वध करने को उत्सुक कामदेव के समान भयंकर हो गये ।

पक्षे—नरेन्द्रसूनुः राजकुमारः भीमः वृकोदरः तरसा वेगेन गुरूणां युधिष्ठिरादीनाम् उपसत्तिं समीपावस्थितिं कृत्वा विधाय तान् गत्वा आपृच्छ्य इत्यर्थः, भुवि भूमौ शम्बरस्य शम्बरासुरस्य वधं मरणं विधित्सन् कर्तुमिच्छन् कामदेव इव मन्मथ इव कलितज्यधन्वा धृतसमौर्वीकशरासनः बभूव अभवत् ।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीरघुनन्दनशर्मात्मजश्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायां सप्तमः सर्ग ॥७॥

राजकुमार भीम शीघ्रता से युधिष्ठिर आदि की समीपावस्थिति कर के अर्थात् उन से पूछ कर पृथ्वी पर शम्बरासुर का वध करने के लिये उद्यत कामदेव के समान मौर्वी लगे हुए धनुष धारण कर लिये ।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्री दामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में सप्तम सर्ग ॥७॥

अष्टमः सर्गः

अथ रघुनृपसूनोरेकतःस्त्यायमाने
बधिरितजगदण्डे चण्डकोदण्डघोषे ।
युगपदुभयसेनोज्जृम्भितोद्दामभेरी-
पटहमुरजनादध्मातगर्भं नभोऽभूत् ॥१॥

अथ अनन्तरं रघुनृपसूनोः रघुराजसन्ततेः राघवस्य रामस्येत्यर्थः, पक्षे—रलयोरैक्यात् लघु क्षिप्रं नृपसूनोः राजकुमारस्य अर्जुनस्य एकतः एकस्मिन् भागे बधिरितजगदण्डे एडितजगन्मण्डले बधिरीकृत-ब्रह्माण्डे इति यावत्, 'स्यादेडे बधिरः' इत्यमरः, चण्डकोदण्डघोषे चण्डस्य प्रचण्डस्य कोदण्डस्य धनुषः घोषे शब्दे स्त्यायमाने वर्धिते सति युगपत् समकालमेव नभः गगनम् उभयसेनोज्जृम्भितोद्दामभेरी-पटहमुरजनादध्मातगर्भम् उभयसेनाभ्याम् रामरावणसेनाभ्यां, पक्षे—पाण्डवकौरवसेनाभ्याम् उज्जृम्भितैः परिवर्धितैः भेरीपटहमुरजानाम् एतन्नामकानां वाद्यविशेषाणां नादैः शब्दैः आध्मातः भरितः गर्भः कुक्षिप्रदेशः यस्य एवंभूतम् अभूत् अजायत । अत्र मालिनीवृत्तम् 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात् ।

इस के बाद राजा रघु की सन्तति राम के, दूसरे पक्ष में—शीघ्र ही राजकुमार अर्जुन के एक भाग में भूमण्डल को बधिर बनाते हुए प्रचण्ड धनुष के शब्द के बढ़ जाने पर एक-साथ ही आकाश दोनों सेनाओं के द्वारा राम-रावणसेनाओं के द्वारा, दूसरे पक्ष में—पाण्डव-कौरवसेनाओं के द्वारा बढ़ाये हुए भेरी-पटह तथा मुरज आदि वाजों के शब्द से भरे हुए गर्भ (खाली प्रदेश) वाला हो गया ।

रणभुवि रणरेणौ तूर्यनादे च तूर्णं
स्थगयति जगदण्डं न्यक्कृतान्यप्रवृत्ति ।
अहह न निरधारि प्राणिनां चेतनाभिः
क्षितिमयमुत विश्वं शब्दतन्मात्रकं वा ॥२॥

रणभुवि युद्धभूमौ रामरावणयुद्धभूमौ, पक्षे—पाण्डवकौरव-युद्धभूमौ रणरेणौ युद्धोत्थितरजसि तूर्यनादे च भेरीरवे च तूर्णं शीघ्रं न्यक्कृतान्यप्रवृत्ति न्यक्कृताः दूरीकृताः अन्यप्रवृत्तयः अन्यक्रियाः यस्मिन् एवंभूतं जगदण्डं जगन्मण्डलं स्थगयति आच्छादयति सति, अहह ! इति खेदे प्राणिनां जीवानां चेतनाभिः बुद्धिभिः क्षितिमयं पार्थिवं विश्वं जगत् उत वा अथवा शब्दतन्मात्रकं शब्दस्य तत्तत्स्वरूपं न निरधारि न निश्चितम् । अत्रापि मालिनीवृत्तम् अतिशयोक्तिर-लङ्कारः ।

राम-रावण की युद्धभूमि में, दूसरे पक्ष में—पाण्डवकौरव की युद्धभूमि में युद्ध में उठी हुई धूलियों के तथा नगाड़ों के शब्द के, शीघ्र ही स्थगित हो गई हैं अन्यक्रियाएँ जिस में इस प्रकार के जगन्मण्डल को आच्छादित कर लेने पर, खेद है कि-प्राणियों की बुद्धियों के द्वारा पार्थिव संसार तथा शब्द का वह वह स्वरूप नहीं निश्चित किया जा सका ।

काष्ठाः क्वापि विलिल्यिरे कवलिताः केनापि भानोस्त्विषः
कुत्राप्यस्तमहर्जगाम कुहचिन्नष्टं नभोमण्डलम् ।
केनाज्ञायि विलोचनस्य विषयः कालक्षपा काप्यभूद्
ब्रह्माण्डोदरपूरणं रणमहीरेणौ तदा तन्वति ॥३॥

तदा तस्मिन् काले रणमहीरेणौ रामरावणयुद्धभूमिरजसि, पक्षे—पाण्डवकौरवयुद्धभूमिरजसि ब्रह्माण्डोदरपूरणं ब्रह्मगोलकस्य कुक्षिप्रदेशावकाशभरणं तन्वति विदधति सति काष्ठाः दिशः क्वापि कुत्रचित् स्थाने विलिल्यिरे विलीनाः अभवन् अदृश्याः अभवन्नित्यर्थः, केनापि अज्ञातेन जन्तुना भानोः सूर्यस्य त्विषः प्रभाः कवलिताः ग्रस्ताः, अहः दिनं कुत्रापि अज्ञातस्थाने अस्तं जगाम अदृश्यमभूत् कुहचित् कुत्रचित् नभोमण्डलम् आकाशमण्डलं नष्टम् विनष्टम् सर्वम् अदृश्यमभदित्यर्थः, विलोचनस्य चक्षुषः विषयः चक्षुरिन्द्रियार्थः रूपं केनाज्ञायि केन ज्ञातः ? न केनापि ज्ञात इत्यर्थः, कापि अपूर्वा कालक्षपा प्रलयकालरात्रिः अभूत् समभवत् । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं 'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् अतिशयोक्तिरलङ्कारश्च ।

उस समय रामरावण की, दूसरे पक्ष में—पाण्डवकौरव की युद्धभूमि की धूलि के ब्रह्माण्ड का अवकाशस्थान भर देने पर दिशाएँ कहीं विलीन हो गईं,

किसी अज्ञात जन्तु ने सूर्य की प्रभाओं को ग्रसित कर लिया, दिन कहीं छिप गया, आकाश-मण्डल कहीं जा कर विनष्ट हो गया, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप किसी को भी ज्ञात नहीं हुआ, कोई अपूर्व ही प्रलयकाल की रात्रि हो गयी। अर्थात् धूली से आच्छन्न हो कर सभी वस्तुएँ अदृश्य हो गईं।

आरम्भे मदसलिलं मदद्विपानां
माद्यद्दिक्करिकरशीकरं ततश्च।
भूरेणुर्जलधरगर्भवारि पीत्वा
स्वःसिन्धोरपि निरपादपां प्रवाहम् ॥४॥

भूरेणुः युद्धभूमिधूलिः आरम्भे प्रथमं मदद्विपानां मदस्राविणां गजानां मदसलिलं दानोदकं पीत्वा स्वलगनाच्छुष्कं कृत्वा, ततश्च तदनन्तरं माद्यद्दिक्करिकरशीकरं माद्यताम् उन्मदानां दिक्करिणां दिग्गजानां करशीकरं शुण्डस्रुतजलच्छोदं पीत्वेत्यर्थः, ततश्च जलधर-गर्भवारि जलधराणां मेघानां गर्भवारि गर्भस्थितं जलं पीत्वा स्वःसिन्धोरपि वियद्गङ्गायाः अपि अपां प्रवाहं जलसमूहम् अपात् अपिबत्। अर्थात् क्रमशः प्रसरन्ती युद्धभूमिधूलिः युद्धस्थले दिशामन्तिमसीमासु मेघमार्गे वियद्गङ्गाजलेषु च प्रासरत्। अत्र प्रहर्षिणीवृत्तं 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात्। एकस्या रेणोरनेकत्र भवनात्पर्यायोऽलङ्कारः।

युद्धभूमि की धूलि ने सर्वप्रथम मदस्रावी हाथियों का मदजल पी कर फिर दिग्गजों की सूढ़ के जल-शीकर का पान किया तदनन्तर बादलों के गर्भ में स्थित पानी पी कर आकाशगङ्गा का भी जल पी लिया। अर्थात् युद्धभूमि की धूलियाँ पहले उस युद्धभूमि में फैल कर फिर दिशाओं के अन्त तक फैल गयीं, उस के बाद मेघमार्ग तक फैल कर फिर उस से ऊपर आकाशगङ्गा तक फैल गयीं।

प्रचलितहरिचक्रच्छिन्नमूलो विसर्पन्
नभसि कृतनिरोधः प्रातिकूल्ये नराणाम्।
सपदि धरणिरेणुस्तिग्मभानुं न्यरौत्सी-
दपर इव महीयान् रंहसा सैंहिकेयः ॥५॥

प्रचलितहरिचक्रच्छिन्नमूलः प्रचलितं संचलितं यत् हरिचक्रं विष्णोः सुदर्शनचक्रं तेन छिन्नं कर्तितं मूलं गलप्रदेशः यस्य सः

अपरः अन्यः महीयान् विशालः सैंहिकेयः इव राहुरिव प्रचलितहरिचक्रच्छिन्नमूलः प्रचलितं चलितं यत् हरिचक्रम् वानरसमूहः, पक्षे—अश्वसमूहः तेन छिन्नं विभिन्निम् मूलम् भूतलसम्बन्धः यस्य सः, विसर्पन् प्रसरन् नराणां जनानां प्रातिकूल्ये प्रतिकूलाचरणे नभसि आकाशे कृतनिरोधः कृतः निरोधः अवरोधः येन सः, धरणिरेणुः भूमेर्धूलिः सपदि तत्कालं रंहसा अतिवेगेन तिग्मभानुं सूर्यं न्यरौत्सीत् अवारुणत्। अत्र मालिनीवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

श्रीविष्णु के हाथ से चले हुए चक्र से कटे हुए गलनालवाले राहु से अन्य एक विशाल राहु की तरह चलते हुए वानरों के, दूसरे पक्ष में—घोड़ों के समूह से कटे हुए भूतल सम्बन्धवाले फैलते हुए, मनुष्यों के प्रतिकूल आकाश का अवरोध करने वाले भूतल की धूलि ने अत्यन्तवेग से सूर्य का अवरोध कर लिया।

आसरोजभवसद्म सर्वतो लोकमुद्ग्रसति रेणुमण्डले।
नूनमाहितभयं न्यमीलयद् भास्करेन्दुनयने विराट् पुमान् ॥६॥

आसरोजभवसद्म ब्रह्मलोकपर्यन्तं सर्वतः सर्वत्र लोकं भुवनं रेणुमण्डले धूलिनिकरे उद्ग्रसति आच्छादयति सति नूनं निश्चितम् आहितभयं प्राप्तभयं यथा स्यात्तथा विराट् पुमान् विराट्स्वरूपधारी पुरुषः विष्णुः भास्करेन्दुनयने सूर्यचन्द्ररूपलोचने न्यमीलयत् मुद्रितवान्। अत्र रथोद्धतावृत्तं 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

ब्रह्मलोक पर्यन्त भुवन के धूलिनिकर के द्वारा व्याप्त कर लेने पर ऐसा मालूम होता है कि निश्चय भयभीत हो कर विराट् पुरुष ने अपनी सूर्यचन्द्रमा-रूपी दोनों आखों को बन्द कर लिया।

उद्दामदुर्दिनविसंष्ठुलवृत्तिरारा-
दारब्धगात्रमलनो वसनान्तसङ्गी।
आमृष्टगण्डतिलकानि मुखान्यचुम्ब-
द्रागीव रेणुनिकरः सुरसुन्दरीणाम् ॥६॥

उद्दामदुर्दिनविसंष्ठुलवृत्तिः उद्दामम् उत्कटं यद् दुर्दिनम् आच्छन्नदिनं तेन विसंष्ठुला चञ्चला वृत्तिर्व्यापारो यस्य सः, आराद् दूर अत्यन्तमित्यर्थः, आरब्धगात्रमलनः आरब्धं कृतं गात्रमलनं शरीरमर्दनं येन सः, वसनान्तसङ्गी वसनान्तस्य परिधानाञ्चलस्य सङ्गी

सम्पर्की, अत एव रागीव कामुक इव रेणुनिकरः धूलिपटलं, सुरसुन्दरीणां देवाङ्गनानाम् आमृष्टगण्डतिलकानि आमृष्टानि प्रोञ्छितानि गण्डतिलकानि कपोलस्थितचित्रकानि येषां तानि मुखानि वदनानि अचुम्बत् चुम्बितवान् अस्पृशदित्यर्थः । देवमार्गपर्यन्तं रेणुनिकरः प्रासरदिति भावः । अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात् उपमालङ्कारः ।

अत्यन्त आच्छन्नदिन होने के कारण चञ्चलव्यवहारवाले अतिशय शरीरमर्दन करने वाले, परिधानवस्त्रों के आँचल का सम्पर्क करनेवाले अत एव कामी के समान धूलिपटल ने देवाङ्गनाओं के पोछे गये कपोल के तिलक वाले मुखों का चुम्बन किया, । अर्थात् धूलीसमूह उड़ कर देवलोक तक फैल गया ।

अकालजलदावलीगलितरक्तधाराहता
करीन्द्रकरटक्षरन्मदमहोर्मिरुद्धासिता ।
रणव्रणितसैनिकक्षतजसिक्तमूला च सा
रजोजवनिका शनैरपससार सेनामुखात् ॥८॥

अकालजलदावलीगलितरक्तधाराहता अकाले असमये या जलदावली मेघमाला तस्याः गलिता निःसृता या रक्तधारा शोणितवृष्टिः तया आहता विनाशिता उपद्रवसूचकशोणितवृष्ट्यापसारितेत्यर्थः, करीन्द्रकरटक्षरन्मदमहोर्मिरुद्धा करीन्द्राणां गजानां करटेभ्यः; कपोलेभ्यः 'काकेभगण्डौ करटौ' इत्यमरः, क्षरन्तः निःसरन्तः ये मदाः दानजलानि तेषां या महोर्मिः महावीचिः तया रुद्धा निरुद्धा, अत एव असिता कृष्णवर्णा, रणव्रणितसैनिकक्षतजसिक्तमूला च रणे युद्धे व्रणिताः अस्त्रक्षताः ये सैनिकाः तेषां क्षतजैः शोणितैः सिक्तमूला आप्लुतमूलभागा च सा एतद्वर्णनोक्ता रजोजवनिका तिरस्करिणी 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः, सेनामुखात् सैनिकवदनात् अथवा सेनाग्रभागात् शनैः क्रमशः अपससार निरगच्छत् । अत्र पृथ्वी नाम वृत्तम् 'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति लक्षणात् । रूपकमलङ्कारः ।

उपद्रवसूचक असमय की मेघमाला से निर्गत शोणितवृष्टि से मूलनष्ट किया हुआ, हाथियों के कपोलों से निर्गत मदोदक को लहरों से अवरुद्ध, अत एव काले रङ्गवाला, युद्ध में घायल सैनिकों के शोणितों से सिक्तमूल वाला वह धूली का पर्दा सैनिकों के अग्रभाग से हट गया ।

आभूमण्डलमापयोधिवलयादाचक्रवालाचला-
दातारापथमापुरन्दरपदादापद्मसद्मालयात् ।
आब्रह्माण्डकटाहकर्परपुटं तूर्णं जुघूर्णे भय-
भ्राम्यद्दिक्करिकीर्णभूमिवलयैर्भेरीरवैर्भैरवैः ॥९॥

भयभ्राम्यद्दिक्करिकीर्णभूमिवलयैः भयेन भ्राम्यन्तः परिचलन्तः ये दिक्करिणः दिग्गजाः तैः कीर्णं विक्षिप्तं भूमिवलयं भूमण्डलं यैस्तैः भैरवैः भयङ्करैः भेरीरवैः दुन्दुभीशब्दैः तूर्णं शीघ्रम् आपयोधिवलयात् समुद्रमण्डलाद् आरभ्य आभूमण्डलं भूमिवलयपर्यन्तम् आचक्रवालाचलात् लोकालोकपर्वतादारभ्य 'लोकालोकश्चक्रवालः' इत्यमरः, आतारापथम् अन्तरिक्षपर्यन्तम् आपुरन्दरपदात् स्वर्गादारभ्य आपद्मसद्मालयाद् ब्रह्मलोकादप्यारभ्य आब्रह्माण्डकटाहकर्परपुटं ब्रह्माण्डं ब्रह्मगोलकमेव कटाहः तस्य यत् कर्परं कपालं तस्य पुटं सम्पुटम् उपरितनभागः तावत्पर्यन्तं जुघूर्णे घूर्णितम्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् अतिशयोक्तिरलङ्कारः।

भय से चञ्चल दिग्गजों के द्वारा झकझोरा गया है भूमण्डल जिन से इस प्रकार के भयङ्कर दुन्दुभीनिनादों ने शीघ्र ही समुद्र की गोलाई से लेकर भूमि की गोलाई तक, लोकालोकपर्वत से लेकर अन्तरिक्षमार्ग पर्यन्त, स्वर्ग लोक से लेकर तथा ब्रह्मलोक से लेकर ब्रह्माण्डरूपी कड़ाह के ऊपर वाले कपालसंपुट पर्यन्त भ्रमण किया अर्थात् व्याप्त कर लिया।

दिव्यास्त्रग्रामशिक्षानिकषमरिकुलारब्धवैराग्निहोमं
स्वर्योषाकर्षदिव्यौषधममरपुरीवर्त्मसोपानखण्डम् ।
कीर्तिक्षीराब्धिमूलस्थलमखिलजगच्छल्यनिर्हारयत्नं
प्राणद्यूतं व्यदीव्यन्नृपकुलमहसां मण्डनं शौर्यशौण्डाः ॥१०।

शौर्यशौण्डाः वीरत्वेनोन्मत्ताः वीरा इत्यर्थः, दिव्यास्त्रग्रामशिक्षानिकषम् दिव्यास्त्रग्रामाणां महास्त्रसमूहानां शिक्षानिकषम् शिक्षणस्य परीक्षास्थानम् अरिकुलारब्धवैराग्निहोमम् अरिकुलेन शत्रुसमूहेन आरब्धः प्रारब्धः वैराग्नौ शत्रुत्वरूपवह्नौ होमः यज्ञः यस्मिन् एवंभूतम्, स्वर्योषाकर्षदिव्यौषधम् स्वर्योषाणाम् स्वर्गाङ्गनानां आकर्षे आकर्षणे दिव्यौषधम् महौषधम्, अमरपुरीवर्त्मसोपानखण्डम् अमरपुर्याः स्वर्गस्य यद् वर्त्म मार्गः तस्य सोपानखण्डम् आरोहणखण्डं,

कीर्तिक्षीराब्धिमूलस्थलं कीर्तिरेव क्षीरं दुग्धं तस्य यः अब्धिः समुद्रः तस्य मूलस्थलम् आधारस्थानम् अखिलजगच्छल्यनिर्हारयत्नम् अखिलस्य सम्पूर्णस्य जगतः संसारस्य यत् शल्यं हृदयलग्नं बाणखण्डं रावणरूपं, पक्षे—दुर्योधनस्वरूपमित्यर्थः, तस्य निर्हारयत्नं निष्कासनप्रयत्नं, नृपकुलमहसां राजसमूहतेजसां मण्डनम् आभूषण-स्वरूपं प्राणद्यूतं प्राणैर्देवनं व्यदीव्यन् अक्रीडन् । अत्र स्रग्धरावृत्तं 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इतिलक्षणात् । अत्र एकस्मिन् प्राणद्यूते निकषादीनामनेकेषामारोपणान्मालारूपक-मलङ्कारः ।

वीरता से उन्मत्त वीरों ने महास्त्रशिक्षा का परीक्षास्थान, शत्रुसमूहों के द्वारा प्रारम्भ किया गया है शत्रुता रूपी अग्नि में होम जिस में इस प्रकार का देवाङ्गनाओं के आकर्षण का अनोखा औषध, स्वर्गलोक के मार्ग की सीढ़ी का खण्ड, कीर्तिरूपी दूध के समुद्र का अधार-स्थान, सम्पूर्णसंसार के लिये शल्य-स्वरूप रावण, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के निकाल फेकने का प्रयत्न, राजमण्डल के तेजों का आभूषण स्वरूप प्राणों का जूआ खेल किया ।

पुरो बलानां विजयध्वजश्रियं समादधानेन भृशं हनूमता ।
प्रवेशिता श्रोत्रपथेन विद्विषां मनःसु भीतिर्नदतातिभैरवम् ॥११॥

बलानां सैन्यानां पुरः अग्रे विजयध्वजश्रियं विजयाय शत्रुपराज-याय यः ध्वजः सपताककेतुः तस्य, पक्षे—विजयस्य अर्जुनस्य ध्वजस्य श्रियं शोभां भृशम् अत्यर्थं समादधानेन धारयता, अतिभैरवं अति-भयङ्करं यथा स्यात्तथा नदता शब्दं कुर्वता हनूमता हनुमन्नामकेन वानरेण विद्विषां शत्रूणां राक्षसानां, पक्षे—कौरवसैनिकानां मनःसु मानसेषु श्रोत्रपथेन कर्णविवरमार्गेण भीतिः भयं प्रवेशिता प्रापिता । अत्र वंशस्थवृत्तम् ।

सेना के आगे जीतने की ध्वजा की शोभा, दूसरे पक्ष में—अर्जुन की ध्वजा की शोभा अत्यन्त धारण करने वाले, अत्यन्त भयङ्कर गरजने वाले हनुमान् ने शत्रुराक्षसों के मन में, दूसरे पक्ष में—शत्रुकौरवों के मन में कर्णविवर के मार्ग से भय प्रवेश करा दिया ।

बलोद्धतानीलगजाभिरामा तीव्राच्छभल्ला शरभालभीमा ।
महोदयारम्भपरा गभीरतारप्रणादा कुमुदानुबद्धा ॥१२॥

उदीर्णतालार्जुनकृष्णसारप्रौढायुधामन्युबलोर्जिता च ।
महीपतेः सल्लसदुत्तमौजाः सेना शतानीकमुखी ननाद ॥१३॥

महीपतेः राज्ञो रामस्य बलोद्धता बलैः बलवद्भिः उद्धता उत्कटा 'बलं गन्धरसे रूपे स्थामनि स्थौल्यसैन्ययोः । पुमान् हलायुधे दैत्यप्रभेदे वायसेऽपि च ॥ बलयुक्तेऽन्यलिङ्गः स्याद्' इति मेदिनी, नीलगजाभिरामा नीलेन गजेन च वानरेण अभिरामा मनोहरा तीव्राच्छभल्ला तीव्राः तीक्ष्णाचरणाः अच्छभल्लाः जाम्बवदादयो भल्लूकाः यस्यां सा 'अथ भल्लुके, ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः' इत्यमरः, शरभालभीमा शरभेण शरभनामकेन वानरेण आलवर्णा पीतवर्णा भीमा भयनका च, महोदयारम्भपरा महोदयाय महोन्नत्यै यः आरम्भः उद्यमः तस्मिन् परा संलग्ना, गभीरतारप्रणादा गभीरः मांसलः तारस्य तारनामकवानरस्य प्रणादः गर्जनशब्दः यस्यां सा, कुमुदानुबद्धा कुमुदेन एतन्नामकेन कपिना अनुबद्धा संयुक्ता, उदीर्णतालार्जुनकृष्णसारप्रौढायुधा उदीर्णानि उत्थापितानि तालाः तालवृक्षाः अर्जुनाः ककुभवृक्षाः कृष्णसाराः शिंशपावृक्षाः एव प्रौढानि दृढानि आयुधानि अस्त्राणि यस्यां सा, 'नदीसर्जो वीरतरुरिन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः' इत्यमरः 'कृष्णसारः शिंशपायां पुंसि स्तुत्यां मृगान्तरे' इति मेदिनी, मन्युबलोर्जिता च मन्युना क्रोधेन बलेन शक्त्या च ऊर्जिता प्रवृद्धा सल्लसदुत्तमौजाः सद् वर्तमानं लसत् शोभमानम् उत्तमं श्रेष्ठम् ओजो बलं यस्याः सा, शतानीकमुखी शतम् अनीकानि पृथक्-सैन्यानि मुखे अग्रभागे यस्याः सा, सेना वाहिनी ननाद शब्दायते स्म । अस्मिन् युग्मके इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

महाराज राम को बलवान् सैनिकों से उद्धत, नील तथा गज नामक वानरों से सुन्दर, तीक्ष्णस्वभाववाले भालुओं से युक्त, शरभ नामक वानर से पीतवर्ण तथा भयङ्कर, बहुत बड़ी उन्नति के लिये उद्योग में तत्पर, तारनामक बन्दर के गंभीरशब्द से युक्त, कुमुद नामक बन्दर से युक्त, उखाड़े गये ताड़वृक्ष ककुभवृक्ष तथा शीशम वृक्ष के मजबूत हथियार वाली, क्रोध तथा बल से बढ़ी हुई, वर्तमान तथा शोभायमान उत्तम बल वाली, । सैकड़ों अलग अलग सेना अग्रभाग में रखने वाली, इस प्रकार की सेना शब्द करने लगी ।

पक्षे—महीपतेः राज्ञो युधिष्ठिरस्य बलोद्धतानीलगजाभिरामा बलेन शक्त्या उद्धताः उत्कटाः ये आनीलाः समन्तान्नीलवर्णाः गजाः

हस्तिनः तैः अभिरामा मनोहरा, तीव्राच्छभल्ला तीव्राः तीक्ष्णाः अच्छाः निर्मलाश्च भल्लाः अस्त्रविशेषाः यस्यां सा शरभालभीमा शराणां बाणानां भालेन तेजसा भीमा भयानका, 'भालं तेजोललाटयोः' इति मेदिनी, महोदयारम्भपरा महान् उदयः उन्नतिः यस्मिन् एवंभूतो य आरम्भः उद्योगः तस्मिन् तत्परा, गभीरतारप्रणादा गभीरो मांसलः तारः उच्चस्वरश्च प्रणादः शब्दः यस्यां सा, कुमुदानुबद्धा कुमुदेन कुमुद-नाम्ना वीरेण अनुबद्धा संयुक्ता, उदीर्णताला उदीर्णः उत्थितः तालः ऊरु-करतलास्फालनशब्दः यस्यां सा, अर्जुनकृष्णसारप्रौढा अर्जुनकृष्णयोः सारेण बलेन प्रौढा दृढा, 'सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिषु' इत्यमरः, युधामन्युबलोर्जिता च युधामन्योः एतन्नामकस्य वीरस्य बलेन शक्त्या ऊर्जिता प्रवृद्धा, सल्लसदुत्तमौजाः सन् वर्तमानः लसन् शोभमानः उत्तमौजाः एतन्नामा वीरो यस्यां सा, शतानीकमुखी शतानीकः एतन्नामा वीरः मुखे अग्रभागे यस्याः सा, सेना वाहिनी ननाद शब्दं चकार।

महाराज युधिष्ठिर की बल से उद्धत, नीलवर्ण के हाथियों से मनोहर, तेज तथा निर्मल भालों से युक्त, बाणों के तेज से भयङ्कर, बहुत बड़ी उन्नति वाले उद्योग में तत्पर, गंभीर तथा उच्चशब्द करने वाली, कुमुद नामक वीर से संयुक्त, उत्पन्न हुआ है ताल ठोकने का शब्द जिस में, अर्जुन तथा कृष्ण के बल से मजबूत, युधामन्यु नामक वीर के बल से बढी हुई, उपस्थित तथा शोभायमान है उत्तमौजा नामक वीर जिस में, शतानीक नामक योद्धा है अग्रभाग में जिस के वह सेना शब्द करने लगी।

अकम्पनोद्दीपितमेघनादा प्रहस्तनाथा दृढचित्रकाया।
आविर्भवद्वैरनरान्तकोग्रा सामर्षवेगोज्ज्वललोहिताक्षा ॥१४॥
ससिन्धुराजातरसोग्रभीष्मा सहेतिशल्या कृतवर्मनिष्ठा।
समिन्महाकर्मसु दक्षिणा च रुरोध शत्रून् परवाहिनी सा ॥१५॥

अकम्पनोद्दीपितमेघनादा अकम्पनेन एतन्नाम्ना राक्षसेन उद्दीपितः प्रोत्साहितः मेघनादः यस्यां सा, प्रहस्तनाथा प्रहस्तः नाथः अधिपतिः यस्यां सा, दृढचित्रकाया दृढः युद्धे स्थिरः चित्रकायो नाम राक्षसो यस्यां सा, आविर्भवद्वैरनरान्तकोग्रा आविर्भवत् प्रकटीभवद् वैरं विरोधः यस्य एवंभूतेन नरान्तकेन एतन्नाम्ना रावणपुत्रेण उग्रा भयानका, सामर्ष-वेगोज्ज्वललोहिताक्षा अमर्षेण रोषेण सह यः वेगः तेन उज्ज्वलः दीप्तः

लोहिताक्षः लोहिताक्षनामा राक्षसः यस्यां सा, ससिन्धुरा सिन्धुरैः गजैः सहिता जातरसोग्रभीष्मा जातः उत्पन्नः यः रसः वीरो रसः तेन उग्रा उत्कटा भीष्मा भयानका च, सहेतिशल्या हेतिभिः बाणैः शल्यैः शस्त्रविशेषैश्च सहिता, कृतवर्मनिष्ठा कृता वर्मसु कवचेषु निष्ठा निर्वहणं विजयविश्वास इत्यर्थः, यस्यां सा, समिन्महाकर्मसु समिति युद्धे महाकर्मसु महासमरव्यापारेषु दक्षिणा निपुणा सा परवाहिनी रावणसेना शत्रून् रामादीन् रुरोध रुणद्धि स्म। अस्य युग्मकस्य प्रथमश्लोके इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तं द्वितीये तूपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

अकम्पन नामक राक्षस के द्वारा उत्साहित है मेघनाद जिस में, प्रहस्त है अधिपति जिस में, युद्ध में स्थिर चित्रकाय नामक राक्षस है जिस में, प्रकट हो गया है विरोध जिस का इस प्रकार के रावणकुमार नरान्तक के कारण भयानक, रोषसहित आवेग से उद्दीप्त है लोहिताक्षनामक राक्षस जिस में, हाथियों से युक्त, उत्पन्न हुए वीररस से उत्कट तथा भयङ्कर, बाण तथा शल्य नामक अस्त्र से युक्त, किया गया है कवचों के ऊपर विजय-विश्वास जिस में, युद्ध में बड़े बड़े कार्य करने में निपुण इस प्रकार की उस रावणसेना ने अपने शत्रुभूत रामादिकों को घेर लिया।

पक्षे—अकम्पना न कम्पते इति अकम्पना युद्धे स्थिरा इत्यर्थः, उद्दीपितमेघनादा उद्दीपितः प्रकटीकृतः मेघस्येव नादः शब्दो यया सा, प्रहस्तनाथा प्रकृष्टाः हस्ताः कराः येषां ते नाथाः अधिपतयः यस्याः सा, दृढचित्रकाया दृढाः ससाराः चित्राः विविधवर्णाः कायाः योधानां सुसज्जितशरीराणि यस्यां सा, आविर्भवद्वैरनरान्तकोग्रा आविर्भवत् प्रकटीभवद् वैरं विरोधो येषाम् एवंभूता नरा एव अन्तकाः यमराजभूताः नरा इत्यर्थः तैः उग्रा भयानका, सामर्षवेगोज्ज्वललोहिताक्षा अमर्षेण रोषेण सहितो यो वेगः युद्धोत्साहः तेन उज्ज्वलानि दीप्तानि लोहितानि रक्तानि अक्षीणि वीराणां नयनानि यस्यां सा, ससिन्धुराजा सिन्धुराजेन जयद्रथेन सहिता, तरसोग्रभीष्मा तरसा वेगेन उग्रः भयङ्करः भीष्मः यस्यां सा, सहेतिशल्या हेतिभिः बाणैः सहितः शल्यः मद्राधिपः यस्यां सा, कृतवर्मनिष्ठा कृतवर्मणि एतन्नामकक्षत्रिये निष्ठा निर्वहणं विजयविश्वास इत्यर्थः यस्यां सा, समिन्महाकर्मसु समिति युद्धे महाकर्मसु महायुद्धचर्यासु दक्षिणा निपुणा सा परवाहिनी परस्य शत्रुभूतस्य दुर्योधनस्य सेना शत्रून् स्वशत्रुभूतयुधिष्ठिरादीन् रुरोध रुणद्धि स्म।

युद्ध में स्थिर रहने वाली, मेघ के समान शब्द करने वाली, उत्कृष्ट हाथवाले अधिपति हैं जिस के, मजबूत तथा अनेकवर्ण के वीरों के सुसज्जित शरीर हैं जिस में, विरोध प्रकट करनेवाले मनुष्यरूपी यमराजों के द्वारा भयङ्कर, रोष के सहित जो युद्धावेग उस से उद्दीप्त तथा रक्तवर्ण वीरों की आखें हैं जिस में, सिन्धुराज जयद्रथ से संयुक्त, आवेग से भयङ्कर हैं भीष्म जिस में, बाणों से युक्त राजा शल्य हैं जिस में, कृतवर्मा नामक क्षत्रिय के ऊपर विजयविश्वास है जिस में, युद्ध के बडे बड़े कार्यों में निपुण उस दुर्योधनसेना ने अपने शत्रुभूत युधिष्ठिरादिकों को घेर लिया।

द्रुतमधरितवज्रमुष्टिघातं स्फुरदशनिप्रभहेतिदुर्निरीक्ष्यम्।
रणभुवि विदधे महाभुजाभ्यामरिकुलमर्दनमश्विनन्दनाभ्याम् ॥१६॥

महाभुजाभ्यां दीर्घबाहुभ्याम् अश्विनन्दनाभ्याम् अश्विनीकुमारदस्रपुत्राभ्यां मैन्दद्विविदाभ्याम्, पक्षे—नकुलसहदेवाभ्याम् रणभुवि युद्धभूमौ अधरितवज्रमुष्टिघातम् अधरितं न्यग्भूतं वज्रं कुलिशं येन एवंभूतः मुष्टिघातः मुष्टिप्रहारः यस्मिन् तत्, पक्षे-अधरितः तिरस्कृतः वज्रमुष्टिघातः वज्रस्येव मुष्टेः प्रहारो यस्मिन् तत्, स्फुरदशनिप्रभहेतिदुर्निरीक्ष्यं स्फुरन्त्यः दीप्यमानाः अशनिप्रभाः वज्रतुल्याः याः हेतयः बाणाः शत्रोरिति भावः, पक्षे—स्वकीयस्य इति भावः, ताभिर्हेतिभिः दुर्निरीक्ष्यः दुःखेनावलोकितुं शक्यः स्वयं यस्मिन् तत् अरिकुलमर्दनं शत्रुसमूहस्य राक्षसगणस्य, पक्षे—कौरवसैन्यस्य मर्दनं विनाशः द्रुतं शीघ्रं विदधे कृतम्। अत्र पुष्पिताग्रा-वृत्तम् 'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात्। उपमालङ्कारः।

बड़ी बड़ी भुजाओं वाले, अश्विनीकुमार के पुत्र मैन्द तथा द्विविद के द्वारा, दूसरे पक्ष में—नकुल तथा सहदेव के द्वारा युद्धभूमि में वज्र को नीचा दिखाने वाले मुष्टि का प्रहार है जिस में, दूसरे पक्ष में—तिरस्कृत किया गया है वज्र के समान मुष्टि का प्रहार जिस में, चमकते हुए वज्र के समान जो शत्रु के बाण, दूसरे पक्ष में—अपने बाण उन से मुश्किल से देखने योग्य स्वयं है जिस में इस प्रकार शत्रुसमूह राक्षसीसेना का, दूसरे पक्ष में—कौरवसेना का मर्दन किया गया।

रथान् रथै र्वाजिभिरर्वतोघ्नन्निभानिभैः पत्तिभिरेव पत्तीन्।
समीरसूनुः समरे परेषां बलानि वीरः प्रसभं बभञ्ज ॥१७॥

समरे युद्धे रथैः रथान् वाजिभिः अश्वैः अर्वतः अश्वान् इभैः हस्तिभिः इभान् हस्तिनः पत्तिभिः पादातैः पत्तीन् पादचारिणः घ्नन् विनाशयन् वीरः वीर्यवान् समीरसूनुः पवनपुत्रः हनुमान्, पक्षे—भीमः परेषां शत्रूणाम् बलानि सैन्यानि प्रसभं हठात् बभञ्ज मर्दयामास। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

युद्ध में रथों से रथों का, घोड़ों से घोड़ों का, हाथियों से हाथियों का तथा पैदलसैनिकों से पैदलसैनिकों का विनाश करते हुए वीर पवनसुत हनुमान् ने, दूसरे पक्ष में—भीम ने शत्रुओं के सैनिकों का हठात् भङ्ग कर दिया अर्थात् उन्हें कुचल डाला।

व्यूहप्रतिव्यूहविधानदक्षः सेनापतिः पावकलब्धजन्मा।
नरेन्द्रसैन्यानि जुगोप नीलः शिखण्डिसैन्यानि यथाम्बुवाहः ॥१८॥

व्यूह-प्रतिव्यूहविधानदक्षः व्यूहस्य शत्रोः सैन्यसमावेशस्य प्रतिव्यूहविधाने प्रतिसैन्यसमावेशनिर्माणे दक्षः निपुणः पावकलब्धजन्मा पावकादग्नेः लब्धं प्राप्तं जन्म जनिर्येन सः अग्निपुत्रः नीलः नीलनामा वानरः, पक्षे—पावकात् प्रादुर्भूतः धृष्टद्युम्नः शिखण्डिसैन्यानि मयूरसमूहान् अम्बुवाहः यथा मेघ इव, पक्षे—नीलः मेघ इव नरेन्द्रसैन्यानि नरेन्द्रस्य राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य सैन्यानि वाहिनीः जुगोप ररक्ष। इत आरभ्य एकविंशतितमं श्लोकं यावद् इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। अत्रोपमालङ्कारः।

शत्रु के सैन्यव्यूह की प्रतिक्रिया में प्रतिसैन्यव्यूह बनाने में निपुण अग्नि से जन्म प्राप्त करने वाले नील ने, दूसरे पक्ष में—धृष्टद्युम्न ने मयूरसमूह को बादल के समान, दूसरे पक्ष में—नीले बादल के समान, राजा राम की सेना की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की सेना की रक्षा की।

व्याधूतनानायुधयोधभीमां मदान्धमातङ्गघटापटिष्ठाम्।
पलाशिभिर्द्राग्विशिखैर्बबाधे सहस्रगोः सूनुररातिसेनाम् ॥१९॥

व्याधूतनानायुधयोधभीमां व्याधूतानि कम्पितानि नानायुधानि अनेकशस्त्राणि यैः एवंभूतैः योधैः वीरैः भीमां भयानकाम् मदान्धमातङ्गघटापटिष्ठां मदान्धानां मदमत्तानां मातङ्गानां हस्तिनां घटाभिः समूहैः पटिष्ठां पटुतरां, पलाशिभिः पलम् आममांसं तद् अशितुं भक्षितुं शीलमेषामिति पलाशिनः तैः पलाशिभिः राक्षसैः, विशिखैः बाणैश्चोपलक्षिताम् अत्र लक्षणे तृतीया, पक्षे—मांसभक्षकैः बाणैः

अरातिसेनाम् अरातेः शत्रोः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य सेनां वाहिनीम् 'अभिघातिपरारातिप्रत्यर्थिपरिपन्थिनः' इत्यमरः, सहस्रं गावः किरणाः यस्य सः सहस्रगुः सूर्यः तस्य सूनुः पुत्रः सुग्रीवः, पक्षे—सहस्रं गावः चक्षूंषि यस्य सः इन्द्रः तस्य सूनुः पुत्रः अर्जुनः द्राग् झटिति बबाधे अवरुणद्धि स्म।

हथियार हिलाते हुए वीरों से भयङ्कर, मद से उन्मत्त हाथियों के द्वारा अत्यन्त पटु, कच्चे मांस खानेवाले राक्षसों से तथा बाणों से उपलक्षित शत्रु रावण की सेना को सहस्रकिरणवाले सूर्य के पुत्र सुग्रीव ने शीघ्र ही बाधित कर दिया। दूसरे पक्ष में—शत्रु की सेना को मांसभक्षक बाणों से सहस्रलोचन वाले इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने शीघ्र ही बाधित कर दिया।

विभीषणो दर्शितभर्तृभक्तिर्युद्धे हिडिम्बाकुलभूः प्रसर्पन्।
क्षपाचरेन्द्रः क्षपयाम्बभूव नैकान्यनीकानि निशाचराणाम् ॥२०॥

क्षपाचरेन्द्रः निशाचरपतिः हिडिम्बाकुलभूः हीति पादपूरणे डिम्बेन विप्लवेन उपद्रवेणेत्यर्थः, आकुला अव्यवस्थिता भूर्भूमिः यस्यः सः, 'डिम्बे डमरविप्लवौ' इत्यमरः, पक्षे—हिडिम्बायाः एतन्नाम्न्याः राक्षस्याः कुलस्य वंशस्य भूः उत्पत्तिस्थानं घटोत्कच इत्यर्थः, विभीषणः एतन्नामा रावणानुजः, पक्षे—भयङ्करः, दर्शितभर्तृभक्तिः दर्शिता प्रकटिता भर्तृभक्तिः स्वामिनिष्ठा येन सः, युद्धे रणे प्रसर्पन् सञ्चरन् निशाचराणां रावणपक्षीयाणां राक्षसानां, पक्षे—दुर्योधनपक्षीयाणां राक्षसानां नैकानि बहूनि अनीकानि सैन्यानि क्षपयाम्बभूव नाशयति स्म।

राक्षसों के पति उपद्रव से पर्याकुल भूमिवाले विभीषण ने, दूसरे पक्ष में—भयङ्कर तथा हिडिम्बा के कुल के उत्पत्ति-स्थान घटोत्कच ने स्वामिभक्ति दिखला कर युद्ध में सञ्चार करते हुए रावणपक्षीयराक्षसों के, दूसरे पक्ष में—दुर्योधनपक्षीयराक्षसों के अनेक सैन्यों का विनाश कर दिया।

परिस्फुरत्कार्मुकमण्डलोऽथ नृपात्मजो वानरवीरलक्ष्मा।
ततापं विद्वेषिबलं पृषत्कैर्लोकान् मयूखैरिव तिग्मभानुः ॥२१॥

अथ अनन्तरं परिस्फुरत्कार्मुकमण्डलः परिस्फुरत् कम्पमानं कार्मुकमण्डलं धनुर्गोलकं यस्य सः, वानरवीरलक्ष्मा वानरवीराः सुग्रीवादयः लक्ष्माणि प्रधानानि यस्य सः, 'लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः' इत्यमरः, पक्षे—वानरवीरः हनुमान् लक्ष्म चिह्नं यस्य सः, नृपात्मजः राज-

कुमारः रामः, पक्षे—अर्जुनः लोकान् भुवनानि मयूखैः किरणैः तिग्मभानुरिव सूर्य इव विद्वेषिबलं शत्रुसैन्यं पृषत्कैः बाणैः 'पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः' इत्यमरः, ततापं अतापयत्। अत्रोपमालङ्कारः।

इस के बाद धनुर्मण्डल कँपाते हुए, वानरवीर सुग्रीवादि ही हैं प्रधान जिस के उस राजकुमार राम ने, दूसरे पक्ष में—वानरवीर हनुमान् चिह्न है जिस का उस राजकुमार अर्जुन ने भुवनों को किरणों से सूर्य के समान शत्रुसेना को बाणों से सन्तप्त कर दिया।

लूनस्यन्दनकेतुपत्तितुरगच्छत्राक्षधूर्बन्धुराः
सैन्यस्त्रीकुचकुम्भमौक्तिकबहिष्कारस्फुरत्साहसाः।
वीरोरःस्थलदारणारुणमुखाः सैन्येषु देवद्विषां
प्राणोन्मोचननिर्विकारचरिताश्चेरुस्तदीयाः शराः॥२२॥

तदीयाः रामसम्बन्धिनः, पक्षे—अर्जुनसम्बन्धिनः शराः बाणाः, लूनस्यन्दनकेतुपत्तितुरगच्छत्राक्षधूर्बन्धुराः लूनाः खण्डिताः ये स्यन्दनकेतवः रथध्वजदण्डाः पत्तयः पादचारिणः तुरगाः अश्वाः छत्राणि आतपत्राणि अक्षाः रथकीलकाः धुरः युगकाष्ठानि तैः बन्धुराः शोभनाः, 'बन्धुरः शोभने नम्रे वरत्रारज्जुकक्षयोः' इति मेदिनी, सैन्यस्त्रीकुचकुम्भमौक्तिकबहिष्कारस्फुरत्साहसाः सैन्यानां सैनिकजनानां याः स्त्रियः तासां कुचकुम्भेषु घटवत्स्तनेषु यानि मौक्तिकानि मौक्तिकाभरणानि तेषां बहिष्कारे दूरीकरणे स्फुरत् जाग्रत् साहसं दण्डः येषां ते 'साहसं तु दमो दण्डः' इत्यमरः, वीरोरःस्थलदारणारुणमुखाः वीराणां शत्रुयोधानाम् उरःस्थलदारणेन वक्षःस्थलविपाटनेन अरुणानि रक्तानि मुखानि अग्रभागाः येषां ते, प्राणोन्मोचननिर्विकारचरिताः प्राणोन्मोचने प्राणापहरणे निर्विकारं निष्ठुरं चरितम् आचरणं येषां ते, एवंभूताः सन्तः देवद्विषां रावणसेनागतराक्षसानां, पक्षे—दुर्योधनसेनागतराक्षसानां सैन्येषु सेनासु चेरुः भ्रमन्ति स्म। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

रामसम्बन्धी बाण, दूसरे पक्ष—अर्जुनसम्बन्धी बाण, कटे हुए रथध्वज, पदाति, घोड़े, छत्र, रथ की धुरी तथा जूओं से सुन्दर, सैनिकों की पत्नियों के घड़ों के समान स्तनों के ऊपर जो मोती के आभरण उन के दूर करने में सचेष्ट दण्ड वाले, वीरों की छाती फाड़ने से लाल मुख वाले, प्राण अपहरण करने में

निर्विकारचरित्र वाले अर्थात् निर्दयी बन कर रावणपक्षीय राक्षसों की सेना में, दूसरे पक्ष में—दुर्योधनपक्षीय राक्षसों की सेना में भ्रमण करने लगे।

निपातयन्तो ध्वजकाननानि विदारितोत्तुङ्गकरीन्द्रसेनाः।
महेन्द्रमुक्ताशनिसंनिकाशा न सेहिरे तस्य शरा विपक्षैः ॥२३॥

ध्वजकाननानि पताकादण्डसमूहान् निपातयन्तः निकृत्य भूमिसात् कुर्वन्तः, विदारितोत्तुङ्गकरीन्द्रसेनाः विदारिताः विपाटिता उत्तुङ्गाः उन्नताः करीन्द्रसेनाः महागजवाहिन्यः यैस्ते, महेन्द्रमुक्ताशनिसंनिकाशाः महेन्द्रेण देवराजेन मुक्तः प्रक्षिप्तः यः अशनिः वज्रं तत्संनिकाशाः तत्तुल्याः तस्य रामस्य, पक्षे—अर्जुनस्य शराः बाणाः विपक्षैः शत्रुभिः रावणपक्षीयैः सैन्यैः, पक्षे—दुर्योधनपक्षीयैः सैन्यैः न सेहिरे न सोढाः, ते बाणाः असह्याः जाता इत्यर्थः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस राम के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन के ध्वजाओं के समूह गिराने वाले, ऊँचे ऊँचे हाथियों की सेनाओं को फाड़ने वाले, इन्द्र के द्वारा फेंके गये वज्र के समान बाण शत्रुओं के द्वारा नहीं सहे गये अर्थात् उन के लिये असह्य हो गये।

चरंस्तथाजौ रघुराजसूनुर्विपाटितारातिचमूर्विपाटैः।
गाण्डीवमुच्छ्रायि धनुर्विधुन्वन्साक्षान्नरो देव इवाबभासे ॥२४॥

विपाटैः विशेषेण पाटयन्ति विदारयन्ति इति विपाटाः बाणाः तैः विपाटितारातिचमूः विपाटिता विदारिता अरातेः शत्रोः चमूः सेना येन सः, उच्छ्रायि उन्नतं गाण्डीवं शरासनं विधुन्वन् कम्पयन् 'गाण्डीवो गाण्डिवश्चास्त्री कार्मुकेऽर्जुनकार्मुके' इति मेदिनी, धनुः धनुर्धरः 'धनुः प्रियाले ना न स्त्री राशिभेदे शरासने। धनुर्धरे त्रिषु' इति मेदिनी, रघुराजसूनुः रघुवंशीयः रामः नरः मनुष्यः सन् आजौ युद्धे तथा तेन प्रकारेण चरन् विचरन् साक्षात् प्रत्यक्षं देव इव सुर इव आबभासे शुशुभे। पक्षे—उच्छ्रायि धनुः उन्नतं शरासनं गाण्डीवं गाण्डीवसंज्ञकं विधुन्वन् कम्पयन् साक्षान्नरः प्रत्यक्षनरावतारः अर्जुनः रघुराजसूनुः रघुवंशीयः देव इव आबभासे शुशुभे। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

विशेषरूप से फाड़नेवाले बाणों से फाड़ दी गयी है शत्रु की सेना जिस के द्वारा वह, लम्बे धनुष को कँपाने वाले, धनुर्धर रघुवंशीय राम मनुष्य होते हुए भी युद्ध में उस प्रकार विचरण करते हुए साक्षात् देवता के समान सुशोभित

हुए। दूसरे पक्ष में—लम्बे धनुष गाण्डीव को कँपाते हुए प्रत्यक्ष नरावतार अर्जुन रघुवंशीय देव राम के समान सुशोभित हुए।

अथ रणभुवि भीष्मः प्रोच्चलन्मेघनादः
स्फुरदविरलरोपारोपदुर्दर्शचापः ।
द्विषदयुतनिपाते नित्यबद्धप्रतिज्ञः
स्फुटमलभत दोष्णोर्विक्रमस्यावकाशम् ॥२५॥

अथ अनन्तरं रणभुवि युद्धभूमौ स्फुरदविरलरोपारोपदुर्दर्शचापः स्फुरन्तः देदीप्यमानाः अविरलाः निरन्तराः ये रोपाः बाणाः 'कलम्ब-मार्गणशराः पत्री रोप इषुर्द्वयोः' इत्यमरः, तेषाम् आरोपेण सन्धानेन दुर्दर्शं दुःखेनावलोकनीयं चापं धनुः यस्य सः द्विषदयुतनिपाते द्विषतां शत्रूणाम् अयुतं दशसहस्राणि तन्निपाते तद्विनाशे नित्यबद्धप्रतिज्ञः नित्यं प्रत्यहं बद्धा कृता प्रतिज्ञा सन्धा येन सः, भीष्मः भयङ्करः मेघनादः इन्द्रजित् प्रोच्चलन् अग्रे सरन्, पक्षे—मेघनादः मेघवद्-गर्जनशब्दः यस्य सः भीष्मः गाङ्गेयः प्रोच्चलन् अग्रे प्रवर्तमानः दोष्णोः भुजयोः विक्रमस्य पराक्रमस्य अवकाशम् अवसरम् स्फुटं स्पष्टरूपेण अलभत प्राप्तवान्। अत्र मालिनीवृत्तं 'न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्।

इस के बाद युद्धभूमि में देदीप्यमान निरन्तर बाणों के सन्धान करने से कष्ट से देखने योग्य है धनुष जिस का, प्रतिदिन दशहजार शत्रुओं का बध करने की प्रतिज्ञा की गयी है जिस के द्वारा, इस भयङ्कर मेघनाद ने, दूसरे पक्ष में—बादल के समान गरजने वाले भीष्म पितामह ने आगे बढ़ते हुए दोनों भुजाओं के पराक्रम का अवसर स्पष्ट रूप से प्राप्त किया।

रोमाञ्चिता इव भुवो गिरयः प्ररोह-
त्पक्षा इवाभ्रपटलीजटिला इवाशाः।
अन्तः शकुन्तिभिरिवाश्रितमन्तरिक्षं
तद्बाणसन्तति-तिरस्करणादभूवन् ॥२६॥

तद्बाणसन्ततितिरस्करणात् तस्य मेघनादस्य, पक्षे—भीष्मस्य बाणसन्तत्या बाणसमूहेन तिरस्करणाद् आच्छादनाद् भुवः पृथिव्यः पृथिवीभागाः इत्यर्थः, रोमाञ्चिता इव रोमाञ्चयुक्ता इव, गिरयः पर्वताः प्ररोहत्पक्षा इव प्रादुर्भूतच्छदा इव, आशाः दिशः

अभ्रपटलीजटिला इव मेघमालाभरिता इव, अन्तरिक्षम् नभः शकुनिभिः पक्षिभिः अन्तः अभ्यन्तरम् अञ्चितमिव संयुक्तमिव अभूवन् भवन्ति स्म। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम्—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात्, उत्प्रेक्षात्रयाणां संसृष्टिरलङ्कारः।

उस मेघनाद के, दूसरे पक्ष में—भीष्म के बाणों के समूह से आच्छादित होने से पृथ्वी रोमाञ्चित हुई के समान, पहाड़ जमे हुए पङ्ख वाले के समान, दिशाएँ मेघों के समूह से भरी हुई के समान, आकाश पक्षियों से अभ्यन्तर में युक्त हुए के समान हो गये।

सुरेन्द्रसन्तानभुवाभिमन्युना महारथो भग्नमनोरथः कृतः।
परैर्दुरीक्ष्यः स बभूव तेजसा रविर्यथा मध्यमधिष्ठितो दिवः ॥२७॥

महारथः महायोद्धा 'आत्मानं सारथिं चाश्वान् रक्षन् युध्येत यो नरः। स महारथसंज्ञः स्यादित्याहुर्नीतिकोविदाः॥ सः मेघनादः अभिमन्युना अभिगतक्रोधेन सुरेन्द्रसन्तानभुवा सुरेन्द्रस्य देवेन्द्रस्य सन्तानं सन्ततिः वालीत्यर्थः सः भूः उत्पत्तिस्थानं यस्य तेन अङ्गदेन, पक्षे—सः भीष्मः सुरेन्द्रसन्तानभुवा इन्द्रस्य सन्तानम् अर्जुनः स उत्पत्तिस्थानं यस्य एवंभूतेन अभिमन्युना अभिमन्युसंज्ञकेन भग्नमनोरथः विफलाभिलाषः विफलप्रयत्न इति भावः, कृतः विहितः दिवः आकाशस्य मध्यं मध्यभागम् अधिष्ठितः आरूढः तेजसा दीप्त्या रविर्यथा सूर्य इव तेजसा पराक्रमेण परैः शत्रुभिः, सूर्यपक्षे—अन्यैः दुरीक्ष्यः दुःखेनावलोकनीयः बभूव जातः। अत्र वंशस्थवृत्तं—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इतिलक्षणात् उपमालङ्कारः।

महारथी वह मेघनाद क्रोध से युक्त, इन्द्र के पुत्र बाली उस के पुत्र अङ्गद के द्वारा, दूसरे पक्ष में—वह भीष्म इन्द्र के पुत्र उस अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के द्वारा विफलमनोरथं अर्थात् विफलप्रयत्न कर दिये गये। वह मेघनाद, दूसरे पक्ष में—भीष्म आकाश के मध्यभाग में स्थित दीप्ति के कारण सूर्य के समान पराक्रम के कारण शत्रुओं के द्वारा, सूर्य के पक्ष में—दूसरों के द्वारा दुःख से अर्थात् कठिनाई से देखने योग्य बन गये।

तेन द्विषां दुष्करदर्शनेन मुक्तः शराशीविषराशिरुग्रः।
क्षपामुखे ध्वान्तवदन्तरिक्षं निरन्तरालं न चिराच्चकार ॥२८॥

द्विषां शत्रूणां दुष्करदर्शनेन दुष्करं दुःखसाध्यं दर्शनमवलोकनं यस्य तेन, तेन मेघनादेन उग्रः भयङ्करः शराशीविषराशिः बाणसर्पसमूहः सर्पबाणा इत्यर्थः, पक्षे—तेन भीष्मेण उग्रः भयङ्करः शराशीविषराशिः शराः बाणाः आशीविषा इव सर्पा इव तेषां राशिः समूहः मुक्तः त्यक्तः प्रहृत इत्यर्थः, क्षपामुखे सायंकाले अन्तरिक्षम् आकाशं ध्वान्तमिव अन्धकार इव न चिरात् शीघ्रमेव निरन्तरालम् अवकाशशून्यं चकार कृतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

शत्रुओं के लिये दुःख से देखने योग्य उस मेघनाद ने भयङ्कर सर्पबाणों का समूह (नागपाश) छोड़ दिया, दूसरे पक्ष में—उस भीष्म ने भयङ्कर साँपों के समान बाणों का समूह छोड़ दिया। उस बाणसमूह ने शीघ्र ही सायंकाल में अन्धकार के समान आकाश को अवकाशशून्य कर दिया। अर्थात् उन बाणों से आकाश भर गया।

तथाशान्तनवोद्योगे मेघनादे यथाध्वगाः।
अवापुः प्राणसन्देहमुदारा वानरेश्वराः ॥२६॥

अशान्तनवोद्योगे उद्धतनवाडम्बरे मेघनादे मेघशब्दे सति अध्वगाः यथा पथिका इव तथा तेन प्रकारेण अशान्तनवोद्योगे उद्धतनवप्रयत्ने मेघनादे रावणपुत्रे सति उदाराः महान्तो वानरेश्वराः कपिसेनापतयः 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः, प्राणसन्देहं प्राणसंकटम् अवापुः प्राप्तवन्तः। अत्रानुष्टुप्छन्दः 'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः' इति लक्षणात्। उपमालङ्कारः।

उद्धत नवीन आडम्बरवाले मेघ के शब्द के होने पर पथिकों के समान उस प्रकार से उद्धत नवीन प्रयत्न में तत्पर मेघनाद के होने पर बड़े बड़े बानरयूथपतियों ने प्राण का सन्देह प्राप्त किया।

पक्षे—अशान्तनवोद्योगे उद्धतनवाडम्बरे मेघनादे वारिदशब्दे सति अध्वगाः यथा पथिका इव तथा तेन प्रकारेण मेघनादे मेघवत् बलाहकवत् नादः गर्जनशब्दः यस्मिन् एवंभूते शान्तनवोद्योगे शान्तनवस्य शन्तनुपुत्रस्य भीष्मस्य उद्योगे प्रयत्ने सति उदाराः महान्तो नरेश्वराः राजानः वेति पादपूरणे प्राणसन्देहं मरणसंभावनाम् अवापुः प्राप्तवन्तः।

उद्धत नवीन आडम्बरवाले मेघ का शब्द होने पर परदेशियों के समान उस-प्रकार के मेघ के समान गर्जन है जिस में ऐसे भीष्म के प्रयत्न के होने पर बड़े बड़े राजा लोग प्राण का सन्देह अर्थात् मरने की संभावना प्राप्त कर गये।

अस्त्रैरनालीढवपुः परेषां धृतायुधो यावदमित्रमेकः।
मनोरथं वैरिबलस्य भङ्क्त्वा श्वेतं यशःपुञ्जमसौ बबन्ध ॥३०॥

धृतायुधः धृतशस्त्रः एकः एकलः असौ मेघनादः, पक्षे—भीष्मः यावदमित्रं यावन्तः अमित्राः शत्रवः इति यावदमित्रं 'यावदवधारणे' इति समासः, तेषां सर्वेषां परेषां शत्रूणाम् अस्त्रैः प्रहरणैः अनालीढवपुः अनास्वादितशरीरः सन् अस्पृष्टशरीरः सन्नित्यर्थः, वैरिबलस्य शत्रुसैन्यस्य मनोरथमभिलाषं प्रयत्नमिति भावः, भङ्क्त्वा विफलीकृत्य श्वेतं धवलं यशःपुञ्जं यशोराशिं बबन्ध बध्नाति स्म प्रसारयामासेत्यर्थः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

अस्त्रधारण करने वाले अकेले इस मेघनाद ने, दूसरे पक्ष में—भीष्म ने जितने शत्रु थे उन सभी शत्रुओं के अस्त्रों से अपने शरीर में घाव न लगने देने वाला होकर शत्रुसेना का अभिलाष विफल कर के अपने धवल यशःसमूह को फैलाया।

नरनारायणौ साक्षादिव तौ रामलक्ष्मणौ।
सचक्रौ स तिरश्चक्रे नागरूपधरैः शरैः ॥३१॥

स मेघनादः सचक्रौ चक्रं सैन्यं तत्सहितौ साक्षात् प्रत्यक्षभूतौ नरनारायणाविव नरनारायणावताराविव तौ प्रसिद्धौ रामलक्ष्मणौ कर्मभूतौ रामं लक्ष्मणञ्चेत्यर्थः, नागरूपधरैः सर्पस्वरूपधारिभिः शरैः बाणैः सर्पबाणैरित्यर्थः, तिरश्चक्रे तिरस्कृतौ अपमानितौ चकार बबन्धेत्यर्थः। अत्रानुष्टुपछन्दः उपमालङ्कारः।

उस मेघनाद ने सेनासहित प्रत्यक्षनरनारायण के समान उन राम-लक्ष्मणों को सर्पस्वरूपधारणकरनेवाले बाणों से अर्थात् सर्पबाणों से अपमानित कर दिया अर्थाद् बांध दिया।

पक्षे—सः भीष्मः साक्षात् प्रत्यक्षभूतौ रामलक्ष्मणौ इव एतन्नामकौ राघवाविव तौ प्रसिद्धौ सचक्रौ सैन्यसहितौ नरनायणौ अर्जुनवासुदेवौ कर्मभूतौ अर्जुनं वासुदेवञ्चेत्यर्थः नागरूपधरैः सर्पस्वरूपधारिभिः सर्पतुल्यैरित्यर्थः शरैः बाणैः तिरश्चक्रे आच्छादयामास।

उस भीष्म ने प्रत्यक्ष रामलक्ष्मण के समान सेनासहित उस अर्जुन तथा कृष्ण को सर्प के समान बाणों से आच्छादित कर दिया।

दुर्निवार्यमपरैर्धरणीशस्तस्यवीर्यमवलोक्य सरोषः।
नागबद्ध इव मन्दरशैलः स्थैर्यमात्मगतमुत्सृजति स्म ॥३२॥

धरणीशः भूपतिः रामः, पक्षे—सर्वासां धरणीनां पतिः सर्वभुवनपतिः कृष्ण इत्यर्थः, तस्य मेघनादस्य, पक्षे—भीष्मस्य अपरैः अन्यैः दुर्निवार्यम् अनिवारणीयं वीर्यं बलम् अवलोक्य दृष्ट्वा सरोषः सक्रोधः सन् नागबद्धः समुद्रमथनसमये शेषनागवेष्टितः मन्दरशैल इव मन्दराचल इव आत्मगतं स्वस्मिन् स्थितं स्थैर्यं धैर्यं, पर्वतपक्षे—स्थिरस्वभावम् उत्सृजति स्म तत्याज अर्थाच्चञ्चलोऽभवत्, मन्दरपर्वतोऽपि समुद्रमथनसमये स्वाभाविकस्थैर्यं विहाय चलति स्म। अत्र स्वागतावृत्तं—'स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम्' इतिलक्षणात्।

उपमालङ्कारः।

राजा राम ने उस मेघनाद का, दूसरे पक्ष में—भुवनपति कृष्ण ने भीष्म का दूसरों से न निवारण करने योग्य बल देख कर क्रोधित हो कर समुद्रमथन के समय में शेषनाग से बान्धे हुए मन्दर पर्वत के समान अपने में रहने वाली स्थिरता को त्याग दिया। अर्थात् जैसे समुद्रमथन समय में मन्दराचल अपनी स्वाभाविक स्थिरता त्याग कराकर देवदानवों द्वारा चलाया गया था उसी प्रकार राम, दूसरे पक्ष में—कृष्ण अपनी स्वाभाविक स्थिरता त्याग कर के चञ्चल हो गये।

जिघांसया तस्य शरार्दितानि बलानि भग्नानि निरीक्षमाणः।
मनुष्यमूर्तिः पुरुषः पुराणो महीतले मन्युवशाज्जगाम ॥३३॥

तस्य मेघनादस्य, पक्षे—भीष्मस्य जिघांसया हन्तुमिच्छया शरार्दितानि बाणपीडितानि अत एव भग्नानि इतस्ततः पलायितानि बलानि सैन्यानि निरीक्षमाणः अवलोकयन् पुराणः पुरुषः प्राचीनः पुमान् विष्णुः मनुष्यमूर्तिः मनुष्यस्वरूपः रामरूपः, पक्षे—कृष्णरूपः मन्युवशात् शोकवशात्, पक्षे—क्रोधवशात् 'मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्। मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः, महीतले भूतले जगाम अपतत्, पक्षे—अवातरत्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस मेघनाद के, दूसरे पक्ष में—भीष्म के मारने की इच्छा से बाणों से पीडित इधर उधर भागते हुए सैन्य को देखते हुए प्राचीन पुरुष विष्णु मनुष्य-

शरीर अर्थात् रामस्वरूप धारण किये हुए शोक के वशीभूत हो कर पृथ्वी पर गिरे गये, दूसरे पक्ष में—अर्थात् कृष्णस्वरूप धारण किये हुए क्रोध के वशीभूत हो कर पृथ्वी पर उतर गये।

सपदि भुवननाथे तां दशां संप्रपन्ने
भ्रमति च हरिचक्रे लोलहेतिप्रताने।
सुरमुनिभिरवाचि स्वस्ति लोकत्रयाय
व्युदजनि परसैन्ये मङ्क्षु कोलाहलश्च ॥३४॥

भुवननाथे भुवनपतौ रामे, पक्षे—कृष्णे सपदि तत्क्षणं तां दशां तां पूर्वोक्तां दशां परिस्थितिं संप्रपन्ने प्राप्ते सति लोलहेतिप्रताने लोलाः चञ्चला हेतिप्रताना मेघनादसम्बन्धिनः अस्त्रसमूहाः यस्मिन् एवंभूते हरिचक्रे वानरसमूहे भ्रमति इतस्ततः अपक्रामति सति, पक्षे—लोलः चञ्चलः हेतिप्रतानः ज्वालासमूहः यस्मिन् एवंभूते हरिचक्रे कृष्णस्य चक्रे भ्रमति परिवर्तमाने सति 'रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः, सुरमुनिभिः देवैः ऋषिभिश्च लोकत्रयाय भुवनत्रयाय स्वस्ति 'कल्याणं भवतु' इति अवाचि कथितम्, परसैन्ये शत्रुसेनायां रावणसेनायां, पक्षे—दुर्योधनसेनायां मङ्क्षु शीघ्रं कोलाहलः विजयोत्साहजनितः शब्दः, पक्षे—भयजनित शब्दः व्युदजनि उत्पन्नः। अत्र मालिनीवृत्तं—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्।

भुवनपति राम के, दूसरे पक्ष में—कृष्ण के उस समय उस परिस्थिति के प्राप्त होने पर मेघनाद के चञ्चल अस्त्रों के समूह हैं जिस के ऊपर इस प्रकार के वानरसमूह के इधर उधर भागते रहने पर, दूसरे पक्ष में—चञ्चल ज्वाला समूह हैं जिस में ऐसे श्रीकृष्ण के चक्र के भ्रमण करते रहने पर देवताओं तथा मुनियों ने तीनों भुवनों के लिये 'कल्याण होवे' यह कहा। शत्रु रावण की सेना में शीघ्र ही विजयोत्साहजनित कोलाहल उत्पन्न हो गया, दूसरे पक्ष में—शत्रु दुर्योधन की सेना में शीघ्र ही भयजनित कोलाहल उत्पन्न हो गया।

निरीक्ष्य रामानुजमाकुलं तथा तदा विसंज्ञे भुवनत्रये भृशम्।
प्रभाववेदी भुवनत्रयप्रभोर्मुमोच न स्वां प्रकृतिं पितामहः ॥३५॥

तदा तस्मिन्काले रामानुजं रामश्च अनुजश्चेति समाहारद्वन्द्वः, समाहारत्वादेकवचनं नपुंसकत्वं च रामलक्ष्मणयोः समहमित्यर्थः

तथा तेन प्रकारेण आकुलं व्याकुलं निरीक्ष्य अवलोक्य, पक्षे—रामस्य बलरामस्य कनिष्ठभ्रातरं कृष्णं तथा तेन प्रकारेण आकुलं क्रोधपरवशम् अवलोक्य भुवनत्रये त्रिभुवने भृशम् अत्यर्थं विसंज्ञे सञ्ज्ञारहिते जाते पितामहः ब्रह्मा भुवनत्रयप्रभोः त्रिभुवनाधीश्वरस्य रामस्य, पक्षे—भीष्मः त्रिभुवनाधीश्वरस्य कृष्णस्य प्रभाववेदी प्रभावज्ञः अत एव स्वां स्वकीयां प्रकृतिं स्थैर्यस्वभावं न मुमोच न तत्याज, स न व्याकुलोऽभूदित्यर्थः । अत्र वंशस्थवृत्तं काव्यलिङ्गमलङ्कारश्च ।

उस समय में राम तथा लक्ष्मण को उस प्रकार व्याकुल देख कर, दूसरे पक्ष में—बलराम के भाई कृष्ण को उस प्रकार क्रोधपरवश देख कर तीनों भुवनों के होशहवाश से अत्यन्त विहीन हो जाने पर, तीनों भुवनों के पति राम के प्रभाव को जानने वाले ब्रह्मा जी ने, दूसरे पक्ष में—कृष्ण के प्रभाव को जानने वाले भीष्म ने अपने स्थैर्यस्वभाव को नहीं त्याग किया ।

अवान्न वायुर्निरवात्कृशानुः
क्षितिश्चकम्पे जलधिर्जुघूर्णे ।
आसीन्महोल्काजटिलं नभश्च
किं वा तदोद्भ्रान्तमभून्न भूतम् ॥३६॥

तदा तस्मिन् काले वायुः पवनः न अवात् न वाति स्म, कृशानुः अग्निः निरवात् प्रशान्तो बभूव, क्षितिः पृथ्वी चकम्पे कम्पिताभूत्, जलधिः समुद्रः जुघूर्णे उद्भ्रान्तोऽभवत्, नभश्च आकाशोऽपि महोल्काजटिलं महोल्काभिः पूरितम् आसीत् एवं किं वा भूतं कः प्राणी उद्भ्रान्तं भयत्रस्तं न भूतम् न जातम् ? सर्वोऽपि प्राणिवर्गो भयत्रस्तो जात इति भावः । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

उस समय हवा बन्द हो गई, आग बुझ गई, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र उद्वेलित हो गया और आकाश उल्काओं से भर गया, इस प्रकार कौन सा प्राणी भयत्रस्त नहीं हुआ ? अर्थात् सभी प्राणी भयत्रस्त हो गये ।

अथ भुवमवतीर्णः पन्नगारिः किरीटी
सपदि शमितमन्युः प्रीतिहृद्यैर्वचोभिः ।
तमवजितभुजङ्गप्राभवाभ्यां भुजाभ्या-
मशिथिलमुपगूह्य स्वामवस्थामनैषीत् ॥३७॥

अथ अनन्तरं किरीटी मुकुटवान्, पक्षे—अर्जुनः पन्नगारिः सर्पशत्रुः गरुडः, पक्षे—सर्पशत्रुः अर्जुनः, अर्जुनोऽपि खाण्डववनदाहे सर्पान् निहत्य सर्पशत्रु र्भवति स्म, प्रीतिहृद्यैः प्रेम्णा मनोहरैः वचोभिः वचनैः शमितमन्युः शमितः दूरीकृतः मन्युः शोकः, पक्षे—क्रोधः येन सः, सपदि तत्कालं भुवं भूतलम् अवतीर्णः आगतः, अवजितभुजङ्ग-प्राभवाभ्याम् अवजितः पराभूतः भुजङ्गः सर्पः येन एवंभूतं प्राभवं प्रभुत्वं ययोः एवंभूताभ्यां भुजाभ्यां हस्ताभ्यां तम् रामं, पक्षे—कृष्णम् अशिथिलं गाढम् उपगूह्य आलिङ्ग्य स्वामवस्थाम् आत्मीयपरिस्थितिं पूर्वावस्थामित्यर्थः, अनैषीत् आनयत्। अत्र मालिनीवृत्तम् तथा उपमालङ्कारो व्यज्यते।

इस के बाद मुकुट धारण किये हुए सापों के शत्रु गरुड़ जी ने, दूसरे पक्ष में—सर्पों के शत्रु अर्जुन ने प्रेम से मनोहर वचनों के द्वारा शान्त किया है शोक को, दूसरे पक्ष में—क्रोध को जिस ने वह, तत्काल पृथ्वीपर उतर कर सर्पों के प्रभुत्व को जीतने वाली भुजाओं से उस राम का, दूसरे पक्ष में—कृष्ण का गाढ आलिङ्गन कर के अपनी परिस्थिति अर्थात् पूर्व परिस्थिति को प्राप्त करा दिया।

दीप्तं यशः संयति लब्धवन्तं गाङ्गेयमुच्चैर्गतमात्मधाम्ना।
तृणीकृताखण्डलशत्रुमेनं राजा स्ववर्गैः सह बह्वमंस्त ॥३८॥

संयति युद्धे गाङ्गेयं स्वर्णसदृशं दीप्तं भास्वरं यशः कीर्तिं लब्धवन्तं प्राप्तवन्तं, पक्षे—गाङ्गेयं भीष्मं 'गाङ्गेयः स्यात्पुमान् भीष्मे क्लीबं स्वर्णकशेरुणोः' इति मेदिनी, आत्मधाम्ना स्वतेजसा उच्चैर्गतम् महत्त्वं प्राप्तवन्तं, तृणीकृताखण्डलशत्रुं तृणीकृतः तृणवदवहेलितः आखण्डलः इन्द्रः शत्रुर्येन तम्, पक्षे—आखण्डलस्य अपत्यं पुमान् आखण्डलः अर्जुनः 'तस्यापत्यम्' इत्यण्, तृणवदवहेलितः आखण्डलः अर्जुनः शत्रुर्येन तम्, मेघनादं, पक्षे—भीष्मं राजा रावणः, पक्षे—दुर्योधनः स्ववर्गैः सह स्ववर्गीयैरमात्यादिभिः सार्द्धं बहु अमंस्त अतिसत्कारं कृतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

युद्ध में सोना के समान भास्वर यश प्राप्त करने वाले, अपने तेज से महान् बने हुए, तिनके के समान इन्द्ररूपी शत्रु का अपमान करने वाले, इस मेघनाद का स्ववर्गों के साथ राजा रावण ने बहुत आदर किया।

दूसरे पक्ष में—युद्ध में भास्वर यश प्राप्त करने वाले, अपने तेज से महान्

बने हुए, तिनके के समान अर्जुनरूपी शत्रु का अपमान करने वाले इस भीष्म का स्ववर्गों के साथ राजा दुर्योधन ने बहुत आदर किया।

तदा पुनः स्वां प्रकृतिं प्रपन्नौ निरीक्ष्य हृष्टौ नरदेववर्यौ।
बलाधिनाथाः प्रसभं बभञ्जुः प्रचण्डवेगाः परमण्डलं ते ॥३९॥

तदा तस्मिन् काले नरदेववर्यौ क्षत्रियश्रेष्ठौ रामलक्ष्मणौ, पक्षे—कृष्णार्जुनौ पुनः भूयोऽपि स्वाम् आत्मीयां प्रकृतिं गुणसाम्यावस्थां प्रपन्नौ प्राप्तवन्तौ अत एव हृष्टौ प्रसन्नौ निरीक्ष्य दृष्ट्वा 'प्रकृतिर्गुणसाम्ये स्यादमात्यादिस्वभावयोः' इति विश्वः, प्रचण्डवेगाः अत्युद्धताः बलाधिनाथाः सेनापतयः ते सुग्रीवादयः, पक्षे—भीमादयः, परमण्डलं शत्रुसमूहं प्रसभं हठात् बभञ्जुः त्रोटयन्ति स्म। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस समय में क्षत्रियश्रेष्ठ रामलक्ष्मणों को, दूसरे पक्ष में—कृष्ण तथा अर्जुन को फिर अपनी गुणसाम्यावस्था को प्राप्त हुए तथा प्रसन्न देख कर अत्युद्धतवेगवाले वे सुग्रीव आदि, दूसरे पक्ष में—भीम आदि सेनापतिगण शत्रुसमूह का बलपूर्वक भङ्ग कर दिये।

आक्रान्तमन्तर्हरिनायकेन तेषां प्रतापेन कृशानुनेव।
पुरत्रयं प्लुष्टमिवेश्वरेण विरोधिचक्रं चकितं चचाल ॥४०॥

तेषां वानराणां, पक्षे—पाण्डवानां प्रतापेनेव प्रभावेणेव हरिनायकेन वानरप्रमुखेन हनुमतेत्यर्थः, पक्षे—हरिः कृष्णः नायकः नेता यस्य तेन अर्जुनेनेत्यर्थः, ईश्वरेण शिवेन प्लुष्टं दग्धं पुरत्रयं त्रिपुरासुरस्य त्रीणि पुराणि कृशानुनेव अग्निनेव अन्तराक्रान्तं अन्तरे समाक्रान्तं विरोधिचक्रं शत्रुसैन्यं चकितं भयत्रस्तं सत् चचाल इतस्ततः पलायते स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उत्प्रेक्षा तथा उपमालङ्कारः।

उन वानरों के प्रभाव के समान वानरों के नायक हनुमान् के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उन पाण्डवों के प्रभाव के समान, कृष्ण हैं नायक जिस के ऐसे अर्जुन के द्वारा, शिव जी से जलाये गये अत एव अग्नि के द्वारा तीनों पुरों के समान अन्दर से आक्रमण की हुई शत्रुओं की सेना भयत्रस्त हो कर इधर उधर विचलित हो गई।

रोषेण धूम्राक्षमकम्पनं च प्रमथ्य सैन्यं पवमानसूनुः।
व्ययोजयत्संयति जीवितेन तुङ्गेन दोष्णा तुलिताद्रिशृङ्गः ॥४१॥

तुङ्गेन उन्नतेन दोष्णा बाहुना तुलिताद्रिशृङ्गः तुलितं समीकृतम् अद्रिशृङ्गं पर्वतशिखरं येन सः, पवमानसूनुः वायुपुत्रः हनुमान् संयति युद्धे रोषेण क्रोधेन सैन्यं सेनां प्रमथ्य मर्दयित्वा धूम्राक्षम् अकम्पनं च एतन्नामकं राक्षसद्वयमपि जीवितेन प्राणैः व्ययोजयत् वियुक्तौ चकार, पक्षे—पवमानसूनुः, भीमः संयति युद्धे रोषेण क्रोधेन धूम्राक्षं धूम्रवर्णलोचनम् अकम्पनं न कम्पितं युद्धे स्थिरमित्यर्थः, सैन्यं शत्रुबलं प्रमथ्य मर्दयित्वा जीवितेन प्राणैः व्ययोजयत् वियुक्तं हीनमित्यर्थः, चकार । अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् । उपमालङ्कारः ।

ऊँची भुजा से पहाड़ की चोटी की समता करने वाले पवनपुत्र हनुमान् ने युद्ध में क्रोध से सेना का मर्दन कर के धूम्राक्ष तथा अकम्पन को प्राणों से हीन कर दिया अर्थात् मार डाला । दूसरे पक्ष में—पवन के पुत्र भीम ने युद्ध में क्रोध से धूमिलवर्ण आँखवाली तथा न कम्पित होने वाली सेना को कुचल कर प्राणों से विहीन कर दिया अर्थात् मार डाला ।

ततो निषङ्गी शरदी प्रहस्तः सेनापतिः क्रौञ्चमिवापगेयः ।
बलं बृहच्छक्तिधरो बिभेद मूर्च्छद्यशःपाण्डुसुतस्य राज्ञः ॥४२॥

ततस्तदनन्तरं निषङ्गी तूणीरवान् शरदी शरं बाणं ददातीति शरदं धनुः तद्वान्, बृहच्छक्तिधरः महाकासूधारकः 'कासूसामर्थ्ययोः शक्तिः' इत्यमरः, प्रहस्तः प्रहस्तनामा रावणसुतः सेनापतिः सेनानायकः सन्, पक्षे—प्रकृष्टौ हस्तौ यस्य एवंभूतः सेनानायकः आपगेयः नादेयः गाङ्गेयः भीष्म इत्यर्थः, आपगेयः गङ्गानद्युद्भवः बृहच्छक्तिधरः महाकासूधारकः सेनापतिः कार्तिकेयः 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः' इत्यमरः, क्रौञ्चमिव क्रौञ्चपर्वतमिव मूर्च्छद्यशःपाण्डु मूर्च्छता वर्धमानेन यशसा कीर्त्या पाण्डु श्वैत्यं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा-स्यात्तथा राज्ञः सुतस्य राजकुमारस्य रामस्य, पक्षे—मूर्छद्यशः मूर्च्छद् वर्धमानं यशः कीर्तिः यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा पाण्डुसुतस्य पाण्डोः तनयस्य राज्ञः नृपस्य युधिष्ठिरस्य बलं सैन्यं बिभेद छिनत्ति स्म । अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

इस के बाद तरकस तथा धनुष धारण किये हुए, बहुत बड़ा भाला धारण-करनेवाले, सेनापति बने हुए रावण के पुत्र प्रहस्त ने, दूसरे पक्ष में—बड़ी भुजावाले सेनापति गङ्गानदी के पुत्र भीष्म ने, गङ्गानदी से उत्पन्न बहुत बड़ा भाला धारण करने वाले सेनापति कीर्तिकेय जैसे क्रौञ्च पहाड़ का भेद किये थे

उसी प्रकार बढ़ते हुए यश से सफेदी है जिस में इसप्रकार राजकुमार राम की, दूसरे पक्ष में—बढता हुआ यश है जिस में इस प्रकार पाण्डु के पुत्र राजा युधिष्ठिर की सेना को काट डाला।

प्रवीरलोकान् प्रशमं नयन्तं प्रतापकालानलमस्य दृष्ट्वा ।
यशोधनस्तन्निधनैकसाध्यां विपक्षरक्षां क्षितिपोऽनुमेने ॥४३॥

अस्य प्रहस्तस्य, पक्षे—भीष्मस्य प्रवीरलोकान् वीरान् जनान् प्रशमं नयन्तं शान्ति प्रापयन्तं मरणं दिशन्तमित्यर्थः, प्रतापकालानलं प्रलयकालाग्निसदृशं प्रतापं दृष्ट्वा अवलोक्य यशोधनः यश एव धनं यस्य सः, क्षितिपः राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः स्वपक्षरक्षाम् आत्मीयवर्ग-सुरक्षां तन्निधनैकसाध्यां तस्य प्रहस्तस्य, पक्षे-भीष्मस्य निधनैकसाध्यां मरणमात्रैककारणनिष्पादनीयाम् अनुमेने स्वीचकार। अत्रोपेन्द्रवज्रा-वृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस प्रहस्त के, दूसरे पक्ष में—भीष्म के बड़े बड़े वीरों को मृत्यु प्राप्त कराते हुए प्रलय काल की अग्नि के तुल्य प्रताप को देख कर यश ही है धन जिस का इस प्रकार के राजा राम ने अपने वर्ग को रक्षा 'उस प्रहस्त के मरण रूपी एकमात्रकारण से सम्पादन करने के लिये साध्य है' यह स्वीकार किया। दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर ने अपने वर्ग को रक्षा 'उस भोष्म के मरण रूपी एक मात्र कारण से सम्पादन करने के लिये साध्य है' यह स्वीकार किया।

विक्रान्ता अपि धीमन्तस्ते पार्था हरिनायकाः ।
नक्तंचारिबलाधीशमभिपेतुर्जयार्थिनः ॥४४॥

अपार्थाः अपि व्यर्थाः अपि विक्रान्ताः पराक्रमशालिनः धीमन्तः बुद्धिमन्तः जयार्थिनः विजयेच्छुकाः हरिनायकाः वानरपतयः ते सुग्रीवादयः नक्तंचारिबलाधीशं नक्तंचारिणां निशाचराणां बलाधीशं सेनापतिं प्रहस्तमित्यर्थः, अभिपेतुः आक्रामन्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

व्यर्थ होने पर भी पराक्रमी बुद्धिमान् तथा विजय चाहने वाले बन्दरों के सेनापतियों ने राक्षसों के सेनापति के ऊपर आक्रमण कर दिया!

पक्षे—विक्रान्ताः पराक्रमयुक्ताः धीमन्तः अपि बुद्धिमन्तः अपि हरिनायकाः हरिः कृष्णः नायकः नेता येषां ते जयार्थिनः विजये-च्छुकाः पार्थाः पृथायाः कुन्त्याः पुत्राः ते अर्जुनादयः नक्तं च रात्रावपि अरिबलाधीशं शत्रूणां सेनापतिं भीष्मम् अभिपेतुः आक्रामन्।

पराक्रम युक्त तथा बुद्धिमान् भी, कृष्ण हैं नेता जिन के इस प्रकार के,

विजय चाहने वाले कुन्ती के पुत्र वे अर्जुन आदि रात में भी शत्रु के सेनापति भीष्म के ऊपर आक्रमण कर दिये।

निर्भिन्नमर्मणा देहस्पृहां हित्वा युयुत्सुना।
परेभ्यस्तेन वीरेण वधोपायः प्रदर्शितः ॥४५॥

निर्भिन्नमर्मणा छिद्रितहृदयेन देहस्पृहां शरीरलालसां हित्वा त्यक्त्वा युयुत्सुना योद्धुमिच्छुकेन तेन वीरेण प्रहस्तेन, पक्षे—भीष्मेण परेभ्यः शत्रुभ्यः वधोपायः मरणकारणप्रकारः पराक्रमेणैवाहं मरिष्यामीतिप्रकारः, पक्षे—शिखण्डिनमग्रे विलोक्य निःशस्त्रीभूतः अर्जुनबाणैरहं मरिष्यामीति स्वमरणप्रकारः प्रदर्शितः सूचितः, पक्षे—उपदिष्टः। अत्राप्यनुष्टुप् छन्दः।

बाणविद्धहृदयवाले, शरीर का मोह त्याग कर के युद्ध करने की इच्छा वाले उस वीर प्रहस्त ने 'पराक्रम के द्वारा मैं मारा जाऊँगा' यह अपने मरने का प्रकार अपनी क्रिया के द्वारा सूचित कर दिया। दूसरे पक्ष में—उस वीर भीष्म ने 'शिखण्डी को आगे देख कर निःशस्त्र बना हुआ मैं अर्जुन के बाणों से मरूँगा' यह अपने मरने का प्रकार बता दिया।

प्रवर्त्य भूयः समरं परश्शतान् विपक्षवीरान्नयतो यमक्षयम्।
पराक्रमस्तस्य धनञ्जयोद्भवप्रतापरुद्धोऽपि न पप्रथेतराम् ॥४६॥

भूयः पुनः समरं युद्धं प्रवर्त्य प्रारभ्य परश्शतान् शताधिकान् विपक्षवीरान् शत्रुपक्षीययोधान् यमक्षयं यमालयं 'निलयापचयौ क्षयौ' इत्यमरः, नयतः प्रापयतः तस्य प्रहस्तस्य, पक्षे—भीष्मस्य पराक्रमः विक्रमः धनञ्जयोद्भवप्रतापरुद्धोऽपि धनञ्जयो वह्निः तदुद्भवः नीलः तस्य प्रतापरुद्धोऽपि तत्पराक्रमवारितोऽपि, पक्षे—धनञ्जयोद्भवस्य अर्जुनपुत्रस्य अभिमन्योः पराक्रमवारितोऽपि सन् नेति काक्वा पप्रथेतरां न? ववृधे न? अपि तु अवर्धत एव। 'धनञ्जयोऽर्जुने वह्निनागदिग्देहमारुते' इति मेदिनी। अत्र वंशस्थं वृत्तम्।

फिर युद्ध प्रारम्भ कर के सैकड़ो शत्रुवीरों को यमालय पहुँचाते हुए उस प्रहस्त का पराक्रम अग्नि के पुत्र नील के पराक्रम के द्वारा रोके जाने पर भी, दूसरे पक्ष में—उस भीष्म का पराक्रम अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के द्वारा रोके जाने पर भी बढ़ा नहीं क्या? बल्कि और बढ़ गया।

प्रतिदिशमरिवीरानाशु विद्राव्य दूरं
समरभुवि चरन्तं नायकं वाहिनीनाम्।

प्रसभमभिपपात प्रांशुधामाग्निजन्मा
फणिपतिमिव तीव्रं चण्डवेगः शिखण्डी ॥४७॥

प्रतिदिशं सर्वासु दिक्षु आशु शीघ्रम् अरिवीरान् शत्रुपक्षीययोधान् दूरम् अत्यन्तं विद्राव्य विक्षिप्य समरभुवि युद्धभूमौ चरन्तं विचरणशीलं वाहिनीनां नायकं सेनापतिं प्रांशुधामा उदग्रतेजाः चण्डवेगः अतिवेगवान् अग्निजन्मा अग्निपुत्रः नीलः, पक्षे—सेनापतिं भीष्मं प्रांशुधामा उदग्रतेजाः चण्डवेगः अतिवेगवान् अग्निजन्मा यज्ञानलादुद्भूतः शिखण्डी एतन्नामको द्रुपदपुत्रः तीव्रं तीक्ष्णविषं फणिपतिं महासर्पं चण्डवेगः अतिवेगशाली शिखण्डीव मयूर इव प्रसभं हठात् अभिपपात आक्रामत्। अत्र शालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

चारों दिशाओं में शीघ्र शत्रुवीरों को दूर भगा कर युद्धभूमि में विचरण करते हुए सेनापति प्रहस्त के ऊपर उग्रतेजवाले अतिवेगशाली अग्नि के पुत्र नील ने, दूसरे पक्ष में—सेनापति भीष्म के ऊपर उग्रतेजवाले अत्यन्तवेगशाली यज्ञानल से उत्पन्न शिखण्डी नामक द्रुपदपुत्र ने तीक्ष्णविषवाले महासर्प के ऊपर अत्यन्त वेगशाली मयूर के समान बलपूर्वक आक्रमण कर दिया।

असह्यतेजाः प्रहरन् प्रसह्य मनोजवः स्यन्दनदीर्णभूमिः।
असौ विसर्पन् समरे समन्तान्न तच्छराणामभवच्छरव्यम् ॥४८॥

असह्यतेजाः असह्यं सोढुमशक्यं तेजो बलं यस्य सः, मनोजवः मानसवद्वेगशाली स्यन्दनदीर्णभूमिः स्यन्दनेन तिनिशवृक्षेण, पक्षे—रथेन दीर्णा विपाटिता भूमिः पृथ्वी येन सः, 'तिनशे स्यन्दनो नेमी रथद्रुरतिमुक्तक' इति 'याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथः' इति चामरः, प्रसह्य हठात् प्रहरन् प्रहारं कुर्वन्, समरे युद्धे विसर्पन् इतस्ततः परिभ्रमन् असौ नीलः, पक्षे—शिखण्डी तच्छराणां प्रहस्तबाणानाम् अतिलाघवादिति भावः, पक्षे—भीष्मबाणानां, शिखण्डिनं विलोक्य भीष्मेण अस्त्रन्यासादिति तात्पर्यम्, शरव्यं लक्ष्यं न अभवत् न जातः। अत्र उपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

असहनीयबलवाला, मन के समान वेगवाला, तिनिश वृक्ष से, दूसरे पक्ष में—रथ के द्वारा भूमि को फाड़ने वाला, बलपूर्वक प्रहार करता हुआ, युद्ध में घूमता हुआ यह नील, उस प्रहस्त के बाणों का, दूसरे पक्ष में—यह शिखण्डी उस भीष्म के बाणों का लक्ष्य नहीं हुआ।

संख्ये संमुखतां यता रचयता रामान्वयस्य प्रियं
सद्यः संमदहृष्टलोमविलसद्वक्षःशिलां बिभ्रता ।
अग्रे धाम शिखण्डिनः प्रथयता भ्राजिष्णुना जिष्णुना
नीलेनाम्बुमुचेव दावदहनः सेनापतिः पातितः ॥४६॥

संख्ये युद्धे संमुखताम् आभिमुख्यं यता गच्छता रामान्वयस्य रामवंशस्य प्रियम् इष्टं रचयता कुर्वता शिलां पाषाणखण्डं बिभ्रता धारयता शिखण्डिनः मुकुटधारिणः प्रहस्तराक्षसस्य अग्रे संमुखे धाम तेजः प्रथयता विस्तारयता जिष्णुना जयनशीलेन भ्राजिष्णुना देदीप्यमानेन नीलेन नीलनामकेन वानरेण नीलेन कृष्णवर्णेन अम्बुमुचा मेघेन दावदहनः इव वनाग्निरिव संमदहृष्टलोमविलसद्वक्षः संमदेन विशेषगर्वेण हृष्टानि विकसितानि यानि लोमानि तनूरुहाणि तैः विलसत् शोभमानं वक्षः उरः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा सेनापतिः सेनानायकः प्रहस्तः सद्यः तत्कालं पातितः विनाशितः । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, 'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात्, उपमालङ्कारः ।

युद्ध में संमुख जानेवाले, श्रीराम के वंश का प्रिय आचरण करनेवाले, पत्थर का खण्ड धारण करनेवाले, मुकुटधारी प्रहस्त के सामने अपना तेज विस्तार करनेवाले, विजयशील तथा देदीप्यमान नील नामक बन्दर ने जङ्गली आग को नीले बादल के समान विशेष गर्व से विकसित जो रोंगटे उन से सुशोभित है छाती जिस काम में उस प्रकार सेनापति प्रहस्त को उसी समय मार डाला ।

पक्षे—संख्ये युद्धे संमुखताम् आभिमुख्यं यता गच्छता, रामान्वयस्य रामः अभिरामः सुन्दरः इति यावत्, यः अन्वयः स्ववंशः तस्य प्रियम् अनुकूलाचरणं रचयता कुर्वता संमदहृष्टलोमविलसद्वक्षःशिलां बिभ्रता संमदेन विशेषगर्वेण हृष्टानि उल्लसितानि यानि लोमानि तनूरुहाणि तैः विलसत् शोभमानं यद् वक्षः उरःस्थलं तत् शिलामिव पाषाणखण्डमिव धारयता, अग्रे अग्रभागे स्थितस्य शिखण्डिनः एतन्नामकस्य द्रुपदपुत्रस्य धाम बलं प्रथयता विस्तारयता, भ्राजिष्णुना देदीप्यमानेन जिष्णुना अर्जुनेन, नीलेन कृष्णवर्णेन अम्बुमुचा मेघेन दावदहन इव वनाग्निरिव सेनापतिः सेनाध्यक्षः भीष्मः सद्यः तत्कालं पातितः बाणैराविध्य रथाद् भूमौ पातितः ।

युद्ध में संमुख जाते हुए, अपने सुन्दर खानदान का प्रिय आचरण करते हुए, पत्थर के चट्टान के समान विशेष गर्व से उभड़े हुए रोंगटों से सुशोभित वक्षःस्थल धारण करनेवाले, आगे में स्थित शिखण्डी का बल-विस्तार करने वाले देदीप्यमान अर्जुन ने जङ्गली आग को जैसे नीले बादल विनष्ट करते हैं उसी प्रकार सेनापति भीष्म को रथ से गिरा दिया।

रणाङ्गणगतः प्राणांस्तावदेव बभार सः।
यावत्तीव्रकरो नासीदाग्नेयपथगोचरः ॥५०॥

तीव्रकरः तीव्रः प्रकृष्टः करः हस्तः यस्य सः, सः प्रहस्तः रणाङ्गणगतः युद्धस्थलस्थितः सन् तावदेव तावत्कालपर्यन्तमेव प्राणान् असून् बभार धारयति स्म यावत् यावत्कालपर्यन्तम् आग्नेयपथगोचरः आग्नेयस्य अग्निपुत्रस्य नीलस्य पथगोचरः मार्गसंमुखस्थितः न आसीत् न बभूव। नीलसंमुखगमनात् तस्य मृत्युरेवाभवदिति भावः। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

युद्धस्थल में स्थित प्रकृष्ट हाथ वाला वह प्रहस्त तब तक ही प्राण धारण करता रहा जब तक अग्नि के पुत्र नील के मार्ग के संमुख नहीं गया था। अर्थात् उस के मार्ग के संमुख जाते ही उस की मृत्यु हो गयी।

पक्षे—रणाङ्गणगतः युद्धस्थलस्थितः पतितः इति यावत् सः भीष्मः तावदेव तावत्कालपर्यन्तमेव प्राणान् बभार जीवनं धारयति स्म यावत् यावत्कालपर्यन्तं तीव्रकरः सूर्यः आग्नेयपथगोचरः आग्नेय्याः आगतः आग्नेयः, 'ततः आगतः' इत्यर्थे ण्यण्, आग्नेयश्चासौ पन्थाः आग्नेयपथः तत्र गोचरः तत्रेन्द्रियविषयभूतः तन्मार्गसञ्चारी आग्नेयदिगागतस्य मार्गस्य उत्तरायणस्य सञ्चारीति यावत् न आसीत् न अभवत्।

युद्धस्थल में गिरे हुए वह भीष्म तब तक प्राण धारण किये थे जब तक सूर्य उत्तरायण-सञ्चारी नहीं हुए थे।

एवं दशाहानि धृतप्रतिज्ञः कपिध्वजेनाहितयुद्धभीष्मः।
पतत्रिभिस्तीव्रमुखैः परीतः स वीरशय्यां चिरमध्यशेत ॥५१॥

एवंदशाहानि एवंदशायाः एवंभूतायाः परिस्थितेः अहानि दिनानि युद्धदिनानीति यावत्, पक्षे-एवम् एवं प्रकारेण दशाहानि दश दिनानि धृतप्रतिज्ञः पालितप्रतिज्ञः सन् कपिध्वजेन कपिश्रेष्ठेन नीलेन, पक्षे—अर्जुनेन आहितयुद्धभीष्मः आहिते कृते युद्धे संग्रामे भीष्मः भयङ्करः,

पक्षे—आहितं कृतं युद्धं येन एवंभूतश्चासौ भीष्मः गाङ्गेयः तीव्रमुखैः पतत्त्रिभिः तीक्ष्णचञ्चुभिः पक्षिभिः, पक्षे—तीक्ष्णाग्रभागैः बाणैः परीतः व्याप्तः सन् सः प्रहस्तः, पक्षे—भीष्मः चिरम् चिरकालाय वीरशय्यां मृत्युं, पक्षे—शरशय्याम् अध्यशेत अधिशयितवान् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

इस युद्धपरिस्थिति के दिनों में प्रतिज्ञा पालन करता हुआ, कपिश्रेष्ठ नील के साथ किये हुए युद्ध में भयङ्कर, तेज चोंच वाले पक्षियों से घिरा हुआ वह प्रहस्त चिरकाल के लिये मृत्युशय्या पर सो गया । दूसरे पक्ष में—इस प्रकार दश दिनों तक प्रतिज्ञा-पालन करते हुए संग्राम में भयङ्कर वह भीष्म तेज नोकवाले बाणों से व्याप्त होकर चिरकाल के लिये शरशय्या पर सो गये ।

ततो जिगीषुः प्रतिपक्षमाजौ लङ्केश्वरः प्रागिव देवराजम् ।
दध्रे धनुस्तुङ्गकिरीटमौलिराकल्परत्नद्युतिशोभिकर्णः ॥५२॥

ततस्तदनन्तरं प्राक् पूर्वं देवराजमिव इन्द्रमिव आजौ युद्धे प्रतिपक्षं शत्रुं राममित्यर्थः जिगीषुः जेतुमिच्छुः, तुङ्गकिरीटमौलिः तुङ्गमुन्नतं किरीटं मुकुटं मौलौ मस्तके यस्य सः, आकल्परत्नद्युतिशोभिकर्णः आकल्पानां प्रसाधनानां यानि रत्नानि माणिक्यादीनि तेषां द्युतिभिः कान्तिभिः शोभिताः विराजमानाः कर्णाः यस्य सः लङ्केश्वरः रावणः धनुः शरासनं दध्रे धारयति स्म । अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् । उपमालङ्कारः ।

इस के बाद पूर्व में इन्द्र के समान युद्ध में शत्रुभूत राम को जीतने की इच्छा वाले, ऊँचा मुकुट मस्तकपर धारण करने वाले, अलङ्कार के रत्नों की कान्ति से सुशोभित कान वाले रावण ने धनुष धारण किया ।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं प्राक् पूर्वं देवराजम् इन्द्रं लङ्केश्वर इव रावण इव आजौ युद्धे प्रतिपक्षं शत्रुम् अर्जुनादिकं जिगीषुः जेतुमिच्छुः, तुङ्गकिरीटमौलिः तुङ्गम् उन्नतं किरीटं मुकुटं मौलौ यस्य सः, आकल्परत्नद्युतिशोभिकर्णः आकल्पानां प्रसाधनानां यानि रत्नानि माणिक्यादीनि तेषां द्युतिभिः कान्तिभिः शोभी शोभमानश्चासौ कर्णः राधेयः धनुः शरासनं दध्रे धारयति स्म ।

इस के बाद पूर्व में देवराज इन्द्र को रावण के समान युद्ध में शत्रु अर्जुनादि को जीतने के इच्छुक, ऊँचा मुकुट मस्तक-पर धारण करने वाले आभूषण के रत्नों की कान्ति से सुशोभित कर्ण ने धनुष धारण किया ।

स्वामिना जनितसत्क्रियेण सा दिङ्मुखान्तरविसारितेजसा ।
दक्षिणादिगिव कुम्भजन्मना नाथवत्यजनि वैरिवाहिनी ॥५३॥

दिङ्मुखान्तरविसारितेजसा दिङ्मुखान्तरे दिशामवकाशे विसारि प्रसरणशीलं तेजो यस्य तेन जनितसत्क्रियेण जनिता कृता सत्क्रिया संभावना येन तेन स्वामिना रावणेन, पक्षे—स्वामिना राज्ञा दुर्योधनेन जनितसत्क्रियेण जनिता कृता सत्क्रिया संभावना यस्य तेन कर्णेन, सा वैरिवाहिनी शत्रुसेना रावणसेना, पक्षे—दुर्योधन-सेना कुम्भजन्मना अगस्त्येन दक्षिणादिगिव दक्षिणादिक्तुल्या नाथ-वती सनाथा सहायसम्पन्ना इति यावत् अजनि जाता अभवदित्यर्थः अत्र रथोद्धता वृत्तम् 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात् । उपमालङ्कारः ।

दिशाओं के अवकाश में प्रसरणशील तेज वाले तथा सत्कार करने वाले स्वामी रावण के द्वारा वह राक्षसी सेना, दूसरे पक्ष में—स्वामी दुर्योधन के द्वारा सत्कार किया गया है जिस का उस कर्ण के द्वारा वह कौरवसेना अगस्त्य ऋषि के द्वारा दक्षिण दिशा के समान सनाथ अर्थात् सहायसम्पन्न हो गयी ।

सजीवितग्रहणविधौ कृतोद्यमः
क्षमापतेः प्रसभमजातविद्विषः ।
ससंभ्रमोच्छलितपयोधिडम्बरैः
स मण्डलैः परमण्डलमभ्यवर्तत ॥५४॥

अजातविद्विषः अजातः न उत्पन्नः विद्विट् शत्रुर्यस्य तस्य बलाधिक्यात्, पक्षे—वैरभावराहित्यादिति भावः, क्षमापतेः राज्ञः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही। विपुला गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा' इत्यमरः, जीवितग्रहणविधौ प्राणग्रहणप्रकारे, पक्षे—सजीवितग्रहणविधौ जीवनसहितस्य ग्रहणप्रकारे, कृतोद्यमः कृतप्रयत्नः सः रावणः, पक्षे—कर्णः ससंभ्रमोच्छलितपयोधिडम्बरैः ससंभ्रमेण सौद्धत्येन उच्छलितः ऊर्ध्वीभूतः यः पयोधिः समुद्रः तद्वद्डम्बरः आडम्बरः आटोप इति यावद् येषां तैः समण्डलैः समूहसहितैः सैन्यैरित्यर्थः, पक्षे—मण्डलैः समूहैः सैन्यसमूहैरिति भावः, 'मण्डलं परिधौ कोठे देशे द्वादशरा-जसु। क्लीबेऽथ निवहे बिम्बे त्रिषु पुंसि तु कुक्कुरे' इति मेदिनी,

प्रसभं सवेगं परमण्डलं शत्रुसमूहम् अभ्यवर्तत आक्रामत्। अत्र रुचिरावृत्तम् 'चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिरा जभौ स्जगाः' इति लक्षणात् उपमालङ्कारश्च।

बल की अधिकता के कारण नही उत्पन्न हुआ है शत्रु जिस का उस राजा राम के प्राणलेने की विधि में प्रयत्न शील उस रावण ने उद्धतता से उछले हुए समुद्र के समान आडम्बर वाले समूहसहित सेना के द्वारा वेग के साथ शत्रु अर्थात् राम की सेना पर आक्रमण कर दिया। दूसरे पक्ष में—वैर भाव न होने के कारण नहीं उत्पन्न हुआ है शत्रु जिस का उस राजा युधिष्ठिर के जीवनसहित पकड़ने की विधि में प्रयत्नशील उस कर्ण ने उद्धतता से उछले हुए समुद्र के समान आडम्बर वाले सैन्य समूहों के द्वारा वेग के साथ शत्रुसमूह अर्थात् पाण्डवसेना के ऊपर आक्रमण कर दिया।

स संगरे नरेन्द्रस्य विजयं प्रति संदधे।
वसन्ते कामदेवस्य शीतरश्मेरिवोदयः ॥५५॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते कामदेवाङ्के राघवपाण्डवीये महाकाव्ये प्रहस्तभीष्मवधो नामाष्टमः सर्गः ॥८॥

वसन्ते वसन्तर्तौ कामदेवस्य मदनस्य मदनकर्तृकस्येति भावः विजयं प्रति विजयमुद्दिश्य शीतरश्मेः चन्द्रस्य उदयः इव प्रकटीभवनमिव सः रावणः, पक्षे—कर्णः समरे युद्धे नरेन्द्रस्य राज्ञो रामस्य रामकर्मकस्येति भावः, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य युधिष्ठिरकर्मकस्येति तात्पर्यं विजयं प्रति विजयमुद्दिश्य संदधे सन्धानं करोति स्म। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः। वसन्ते एतद्ग्रन्थकारयितृ राज्ञः कामदेवस्य एतत्कर्तृकस्य विजयोऽपि व्यज्यते।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुरसोदरपुरकुलोद्भूतश्रीरघुनन्दनशर्मात्मजश्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामधेयायां व्याख्यायाम् अष्टमः सर्गः ॥८॥

वसन्त ऋतु में कामदेव कर्तृक विजय को उद्देश्य कर के चन्द्रमा के उदय के समान उस रावण ने राजा रामकर्मक विजय को उद्देश्य कर के, दूसरे पक्ष में—उस कर्ण ने राजा युधिष्ठिरकर्मक विजय को उद्देश्य कर के सन्धान किया।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिलब्राह्मणसोदरपुरकुलोद्भूत श्री रघुनन्दनशर्मात्मजश्रीदामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका मे अष्टम सर्ग ॥८॥

नवमः सर्गः

सा सेना युद्धयात्रोत्सुकसुभटमुखाध्मातशङ्खानुमूर्छ-
न्नानानिःशाणभेरीमुरजरवरयाक्रान्तलोकान्तराला ।
वातव्याधूतधौतध्वजपटपटलीचुम्ब्यमानाम्बुवाहा
वाहव्यूहक्षतक्ष्मातलबहलरजोनिर्भरा निर्बभासे ॥१॥

युद्धयात्रोत्सुकसुभटमुखाध्मातशङ्खानुमूर्छन्नानानिःशाणभेरीमुरजरवरयाक्रान्तलोकान्तराला युद्धयात्रायां समरप्रयाणे उत्सुकाः उत्कण्ठिताः ये सुभटाः वीराः तेषां मुखैः वदनैः आध्माताः वातपूरिताः ये शङ्खाः कम्बवः तैः तच्छब्दैरितिभावः अनुमूर्छन्तः वर्धमानाः ये निःशाणभेरीमुरजानां वाद्यविशेषाणां रवाः शब्दाः तैः रयेण वेगेन आक्रान्तः व्याप्तः लोकानां भुवनानाम् अनन्तरालः विवरावकाशभागः यया सा, वातव्याधूतधौतध्वजपटपटलीचुम्ब्यमानाम्बुवाहा वातेन पवनेन व्याधूता कम्पिता या धौतध्वजपटपटली धौतानां निर्मलानां ध्वजपटानां ध्वजवस्त्राणां पटली श्रेणी तया चुम्ब्यमानाः संस्पृष्टाः अम्बुवाहाः मेघाः यया सा, वाहव्यूहक्षतक्ष्मातलबहलरजोनिर्भरा वाहानाम् अश्वानां ये व्यूहाः समूहाः तैः क्षतं खानितं यत् क्ष्मातलं भूतलं तस्य बहलैः अत्यधिकैः रजोभिः धूलिभिः निर्भरा परिपूर्णा सा सेना रावणसेना, पक्षे—दुर्योधनसेना निर्बभासे निःशेषेण शुशुभे अत्यधिकं शोभते स्म इत्यर्थः। अत्र स्रग्धरावृत्तम् 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इतिलक्षणात् ।

युद्धप्रयाण के लिये उत्सुक वीरों के मुख से वातपूरित जो शङ्ख उन के शब्दों से बढ़े हुए निःशाण भेरी तथा मुरज के शब्दों से अत्यन्त तेजी से भुवन विवरों को भरने वाली, हवा से हिलने वाले निर्मल ध्वजाञ्चलवस्त्र के समूहों से बादल को छूने वाली, घोडों के समूह के द्वारा खोदे गये भूतल की अत्यधिक धूली से भरी हुई वह राक्षसी सेना, दूसरे पक्ष में— कौरवी सेना अत्यन्त सुशोभित हुई ।

तदनु सा भरताग्र्यवरूथिनी धृतमहायुधपत्तिनिरन्तरा ।
समरङ्गतले समदोच्चलद्गजघटैर्जघटे परसैनिकैः ॥२॥

तदनु ततः पश्चात् समरङ्गतले समरः युद्धमेव रङ्गतलं नृत्यस्थलं तस्मिन् धृतमहायुधपत्तिनिरन्तरा धृतानि उत्तोलितानि महायुधानि वृक्षादीनि, पक्षे--बाणादीनि बृहन्ति अस्त्राणि याभिः एवंभूताभिः पत्तिभिः पादचारिसेनाभिः निरन्तरा निरवकाशा सा प्रसिद्धा भरताग्र्य-वरूथिनी भरताग्र्यस्य भरतस्य ज्येष्ठभ्रातुः रामस्य, पक्षे-भरतकुलश्रेष्ठस्य युधिष्ठिरस्य वरूथिनी सेना समदोच्चलद्गजघटैः समदाः दानजलसहिताः उच्चलन्तः अग्रे गच्छन्तश्च ये गजाः हस्तिनः तेषां घटा घटना समूह इति यावत् येषु तैः परसैनिकैः शत्रुसैनिकजनैः रावणसेनास्थितयोधैः, पक्षे— दुर्योधनसेनास्थितयोधैः जघटे सममिलत् । अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तं 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणात् ।

इस के पश्चात् युद्धरूपी नृत्यस्थल में बड़े-बड़े वृक्ष, दूसरे पक्ष में—बाण आदि हथियार धारण करने वाले पैदल सैनिकों से भरी हुई, भरत के ज्येष्ठ भाई राम की, दूसरे पक्ष में—भरतकुल के श्रेष्ठ युधिष्ठिर की वह प्रसिद्ध सेना मतवाले तथा आगे चलने वाले हाथियों के समूह से युक्त शत्रुसैनिकों से रावण-सेना के वीरों से, दूसरे पक्ष में—कौरवसेना के वीरों से जा मिली ।

पणवानकशङ्खसिंहनादैर्बधिरीभूतनभोदिगन्तरालम् ।

इतरेतरसक्तवैरिवीरं समरं संभृतसंभ्रमं बभूव ॥३॥

पणवानकशङ्खसिंहनादैः पणवाः वाद्यविशेषाः आनकाः दुन्दुभयः शङ्खाः कम्बवः सिंहनादाश्च वीराणां क्ष्वेडारवाश्च तैः, बधिरीभूतनभो-दिगन्तरालं बधिरीभूतानि श्रवणक्रियारहितीकृतानि नभः गगनं दिगन्तरालानि दिशामवकाशभागाश्च यस्मिन् तत् इतरेतरसक्तवैरिवी-रम् इतरेतरम् अन्योऽन्यं सक्ताः मिलिताः वैरिवीराः शत्रुयोधाः यस्मिन् तत्, संभृतसंभ्रमं संभृतः धृतः संभ्रमः संवेगो यस्मिन् एवंभूतं समरं युद्धं रामरावणयुद्धं, पक्षे—कौरवपाण्डवयुद्धं बभूव अभवत् । अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम् "विषमे ससजा यदा गुरू चेत् । सभरा येन तु मालभारिणीयम्" इतिलक्षणात् ।

पणव दुन्दुभी शङ्ख आदि बाजों के शब्दों से तथा वीरों के सिंहनादों से बहरा हो गया है आकाश तथा दिशाओं का अवकाश जिस में, एक दूसरे के साथ गूंथ गये हैं दुश्मन के वीर जिस में, धारण किया गया है आवेग जिस में इस प्रकार का रामरावण युद्ध, दूसरे पक्ष में--कौरवपाण्डव युद्ध प्रारम्भ हो गया ।

महाहवे महितमनोरथं द्विषं महीपतेः प्रतिमुखमिन्द्रजिद्भुवम् ।
न्यवारयद् द्रुतमभिपत्य गोपतेः शरीरजो भुजधृततुङ्गगोत्रभूः ॥४॥

महाहवे महायुद्धे महीपतेः राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य प्रतिमुखं समक्षं भुजधृततुङ्गगोत्रभूः भुजाभ्यां धृता उत्थापिता तुङ्गा उन्नता गोत्रभूः पर्वतशिखरभागः येन सः, पक्षे—भुजेन धृता उन्नता गोत्रभूः कुलस्य निर्वहणभारो येन सः, 'शैले गोत्रं कुलाख्ययोः' इति मेदिनी, गोपतेरादित्यस्य, पक्षे—सहस्राक्षस्य शरीरजः पुत्रः सुग्रीवः, पक्षे—अर्जुनः द्रुतं शीघ्रम् अभिपत्य आक्रम्य महितमनोरथं महितः उन्नतः मनोरथः स्वशत्रुविजयरूपः अभिलाषः यस्य तम् द्विषं शत्रुम् इन्द्रजिद्भुवम् इन्द्रजितो मेघनादस्य भूरुत्पत्तिस्थानं रावणः तम्, पक्षे—इन्द्रं जयतीति इन्द्रजिद् एवं भूता भूः उत्पत्तिर्यस्य तम् कर्ण-मित्यर्थः न्यवारयद् अवरुणद्धि स्म । अत्र रुचिरावृत्तम् 'चतुर्ग्रहैर्यति रुचिरा जभौ स्जगाः' इति लक्षणात् ।

बहुत बड़े युद्ध में राजा राम के सामने भुजाओं से पहाड़ का ऊँचा शिखर उठाने वाले सूर्य के पुत्र सुग्रीव ने शीघ्र आक्रमण कर के मेघनाद के पिता रावण को रोक दिया । दूसरे पक्ष में—बहुत बड़े युद्ध में राजा युधिष्ठिर के सामने भुजाओं से अपने कुल का भार धारण करने वाले सहस्राक्ष इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने शीघ्र आक्रमण कर के इन्द्र को जीतने वाली उत्पत्ति है जिस की उस कर्ण को रोक दिया ।

हरिप्रणेतारमुदूढबाणं महीगतं भानुमिव स्फुरन्तम् ।
भित्वा स वीरानितरानरौत्सीदाकाशकुक्षिंभरिभिः पृषत्कैः ॥५॥

स रावणः, पक्षे—कर्णः आकाशकुक्षिंभरिभिः गगनोदरपूरकैः पृषत्कैः बाणैः महीगतं भूतलमागतं स्फुरन्तं दीप्यमानं भानुमिव सूर्यमिव उदूढबाणं गृहीतबाणसंज्ञकवृक्षं, पक्षे—गृहीतशरं हरिप्रणे-तारं वानरनायकं सुग्रीवं, पक्षे—हरिः कृष्णः प्रणेता सञ्चारकः सारथिरिति यावत् यस्य तम् अर्जुनं भित्त्वा विद्ध्वा इतरान् अन्यान् वीरान् योधान् अरौत्सीत् अवारुधत् न्यवारयदित्यर्थः । अत्र इन्द्र-वज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

उस रावण ने, दूसरे पक्ष में—उस कर्ण ने आकाश का अवकाश भरने वाले बाणों से पृथ्वीपर आये हुए चमकते हुए सूर्य के समान बाणनामकवृक्ष धारण

करने वाले वानरनायक सुग्रीव को, दूसरे पक्ष में—शरवारण करने वाले तथा कृष्णसारथी वाले अर्जुन को वेध कर के अन्य वीरों को भी रोक दिया।

किरीटिनः स्यन्दनकेतुमौलिं क्रान्त्वा नदन्तं कपिसैन्यनाथम्।
दृष्ट्वा विपक्षस्य विनेतुमिच्छोर्नेत्राण्यमर्षादरुणत्वमापुः ॥६॥

स्यन्दनकेतुमौलिं रथध्वजशिखरं, क्रान्त्वा आरुह्य नदन्तं गर्जन्तं कपिसैन्यनाथं वानरसेनाध्यक्षं सुग्रीवं दृष्ट्वा विलोक्य विनेतुमिच्छोः तदभिभवनाभिलाषुकस्य किरीटिनः मुकुटयुक्तस्य विपक्षस्य शत्रोः रावणस्य अमर्षात् क्रोधात् नेत्राणि चक्षूंषि अरुणत्वमापुः रक्तानि बभूवुः। अत्रापीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

रथध्वज की चोटी पर चढ़ कर गरजते हुए वानरसेनाध्यक्ष सुग्रीव को देख कर उस का पराभव करने की इच्छा वाले तथा मुकुटधारण करने वाले शत्रु रावण की आखें क्रोध से लाल हो गईं।

पक्षे—किरीटिनः अर्जुनस्य स्यन्दनकेतुमौलिं रथध्वजशिखरं क्रान्त्वा आरुह्य नदन्तं गर्जन्तं कपिसैन्यनाथं वानरगणश्रेष्ठं हनूमन्तं दृष्ट्वा विलोक्य विनेतुमिच्छोः अर्जुनादिपरिभवाभिलाषुकस्य विपक्षस्य शत्रोर्दुर्योधनादिकस्य अमर्षात् क्रोधात् नेत्राणि नयनानि अरुणत्वमापुः रक्तिमानं जग्मुः।

अर्जुन के रथध्वज की चोटी पर चढ़ कर गरजते हुए वानरगणश्रेष्ठ हनुमान् को देख कर अर्जुनादिकों के हराने के अभिलाषुक शत्रु दुर्योधनादिकों की आखें क्रोध से लाल हो गईं।

व्याक्षिप्तारातिरक्षोबलपतिरभितः संयुगं वर्तयित्वा
किञ्चिद्दोर्दण्डकण्ड्वाः कृतशमनविधिर्मारुतेर्विक्रमेण।
वाञ्छाभङ्गे किरीटापनय इव कृते गोपतेर्नन्दनेन
प्राप प्राप्ते क्षपायास्तिमिरमुचि मुखे सानुयात्रो निवेशम् ॥७॥

व्याक्षिप्तारातिरक्षोबलपतिः व्याक्षिप्ताः विमर्दिताः अरातयः शत्रवः येन एवंभूतः रक्षोबलपतिः राक्षससेनाध्यक्षः रावणः, पक्षे—व्याक्षिप्तारातिरक्षः व्याक्षिप्ता तिरस्कृता अरातिरक्षा शत्रूणां स्वसुरक्षा येन सः बलपतिः सेनापतिः कर्णः सानुयात्रः ससहचरः अभितः चतसृषु दिक्षु संयुगं युद्धं वर्तयित्वा कृत्वा मारुतेः हनूमतः, पक्षे—भीमस्य विक्रमेण पराक्रमेण दोर्दण्डकण्ड्वाः भुजदण्डकण्डूतेः किञ्चिद्

अल्पमात्रं कृतशमनविधिः विहितप्रशमनप्रकारः गोपतेः आदित्यस्य, पक्षे—सहस्राक्षस्य इन्द्रस्य नन्दनेन पुत्रेण सुग्रीवेण, पक्षे—अर्जुनेन वाञ्छाभङ्गे इव मनोरथभङ्गतुल्ये किरीटापनये मुकुटभङ्गे कृते सति विहिते सति, पक्षे—किरीटापनये इव मुकुटभङ्गतुल्ये वाञ्छाभङ्गे कृते सति मनोरथभङ्गे कृते सति क्षपायाः रात्रेः तिमिरमुचि अन्धकारवर्षके प्रादुर्भूतान्धकारे इति यावत् मुखे प्रारम्भकाले सायंकाले इत्यर्थः प्राप्ते आगते सति निवेशं शिबिरं प्राप गतवान्। अत्र स्रग्धरावृत्तम् उपमालङ्कारः।

शत्रुओं का मर्दन करने वाले राक्षसों के सेनाध्यक्ष रावण, दूसरे पक्ष में—शत्रुओं की सुरक्षा भङ्ग करने वाले सेनापति कर्ण अपने अनुयायियों के साथ चारों तरफ युद्ध कर के पवन पुत्र हनुमान् के पराक्रम से, दूसरे पक्ष में—पवनपुत्र भीम के पराक्रम से भुजाओं की खुजली कुछ शान्त होने पर सूर्य के पुत्र सुग्रीव के द्वारा मनोरथभङ्ग होने के समान मुकुटभङ्ग किये जाने पर, दूसरे पक्ष में—सहस्राक्ष इन्द्र के पुत्र अर्जुन के द्वारा मुकुटभङ्ग होने के समान मनोरथभङ्ग होने पर रात का अन्धकारवर्षाकरने वाला प्रारम्भ काल अर्थात् सायंकाल होने पर अपने शिबिर में पहुँचे।

रचितं नरदेवजन्मनाजौ मुकुटस्येव मनोरथस्य भङ्गम्।
परिभावयतो न शर्म राज्ञो निशि जज्ञे धृतराष्ट्रनन्दनस्य ॥८॥

आजौ युद्धे नरदेवजन्मना नरस्य रामस्य यः देवजन्मा देवपुत्रः सुग्रीवः तेन रामानुचरेण सुग्रीवेणेत्यर्थः मनोरथस्य इव अभिलषितस्येव मुकुटस्य भङ्गं किरीटस्य भञ्जनं, पक्षे—नरदेवजन्मना राजकुमारेणार्जुनेन मुकटस्येव किरीटस्येव मनोरथस्य अभिलषितस्य भङ्गं विफलीकरणं रचितं कृतं परिभावयतः चिन्तयतः अधृतराष्ट्रनन्दनस्य अधृतं न कृतं राष्ट्रस्य देशस्य नन्दनं रञ्जनं येन तस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रनन्दनस्य धृतराष्ट्रपुत्रस्य राज्ञो रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य निशि रात्रौ शर्म सुखं न जज्ञे न जातम्। चिन्तया जाग्रत एव रात्रिर्व्यतीता इति भावः। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तं 'विषमे ससजा यदा गुरू चेत्। सभरा येन तु मालभारिणीयम्' इति लक्षणात्। उपमालङ्कारः।

युद्ध में राम के अनुचर सुग्रीव के द्वारा मनोरथ के समान किया हुआ मुकुट का भङ्ग, दूसरे पक्ष में—राजकुमार अर्जुन के द्वारा मुकुट के समान किया हुआ

मनोरथ का भङ्ग सोचते हुए राष्ट्र का रञ्जन नहीं करनेवाले राजा रावण को, दूसरे पक्ष में—धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन को रात में शान्ति नहीं मिली।

आगामियुद्धे विजयानुबन्धि संकल्प्य संशप्तकयोधवृन्दम्।
राजा रजन्या विरतौ रणाय निजानुजोद्बोधनमाचचार ॥९॥

आगामियुद्धे भविष्यत्संग्रामे संशप्तकयोधवृन्दं संग्रामादनिवर्तिवीरसमूहं, पक्षे—सुशर्माधिष्ठितवीरसमूहं विजयानुबन्धि विजययानुवर्तकं संकल्प्य निश्चित्य 'संशप्तकास्तु समरे संग्रामादनिवर्तिनः' इति हलायुधः, राजा रावणः, पक्षे-दुर्योधनः रजन्याः निशायाः विरतौ विनिवृत्तौ प्रभातकाले इत्यर्थः, रणाय युद्धाय निजानुजोद्बोधनं स्वभ्रातुः कुम्भकर्णस्य जागरणं, पक्षे-दुःशासनादीनां परिबोधनम् आचचार कृतवान् अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

आगे के युद्ध में युद्ध से नहीं लौटने वाले वीर-समूह को विजय का कारण निश्चित करके राजा रावण ने, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन ने रात बीतने पर युद्ध के लिये अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाया, दूसरे पक्ष में—अपने भाई दुःशासन आदि को ढाढस दिया।

प्रातर्भूयः प्रवृत्ते समरमहमहारम्भहम्भानिनादे
सन्ध्यारागे भटानामरिरुधिरनिभे रञ्जयत्यायुधानि।
वीरैर्वैरानुबन्धात्प्रतिभटघटनाकाङ्क्षया रुद्धमार्गा-
वेकीभूतावभूतां रणरभसजितोदन्वदोघौ बलौघौ ॥१०॥

प्रातः प्रातःकाले भूयः पुनरपि समरमहमहारम्भहम्भानिनादे समरं युद्धमेव महः उत्सवः तस्य यः महारम्भः, महान् प्रयत्नः तस्मिन् यः हम्भानिनादः हुंकारशब्दः तस्मिन् प्रवृत्ते प्रारब्धे सति, अरिरुधिरनिभे शत्रुशोणिततुल्ये सन्ध्यारागे प्रातःकालिकसन्ध्यारुणत्वे भटानां योधानाम् आयुधानि शस्त्राणि रञ्जयति रक्तिमानमानयति सति, वैरानुबन्धात् शत्रुत्वानुसरणात् प्रतिभटघटनाकाङ्क्षया प्रतियोद्धृसंगमाभिलाषेण वीरैर्योधैः रुद्धमार्गौ रुद्धः अवरुद्धः मार्गः पन्थाः ययोस्तौ रणरभसजितोदन्वदोघौ रणरभसेन युद्धावेगेन जितः अधःकृतः उदन्वतः समुद्रस्य ओघः जलप्रवाहो याभ्यां तौ, एवंभूतौ बलौघौ सैन्यसमूहौ एकीभूतौ परस्परमिलितौ अभूतां जातौ। अत्र स्रग्धरावृत्तम् रूपकम् उपमा व्यतिरेकश्चालङ्काराः।

प्रातः काल फिर युद्धरूपी उत्सव के बहुतबड़ेसमारोह में हूंकार का शब्द होने पर, शत्रुओं के शोणित के समान प्रातःसन्ध्या अर्थात् उषःकाल की लालिमा के द्वारा वीरों के शस्त्रों के रङ्ग जाने पर, शत्रुता के अनुसरण करने के कारण प्रतिपक्षीयोद्धा के संगम की अभिलाषा से वीरों के द्वारा रोके गये मार्ग वाली, युद्धावेग से समुद्र की जलराशि को जीतने वाली दोनों सेनाएँ रामरावण की सेनाएँ, दूसरे पक्ष में--कौरवपाण्डवों की सेनाएँ परस्पर मिल कर एक हो गईं।

नरकभुवमथाग्रे वाहिनीनां यियासुं
पटुपटहनिनादध्वस्तनिद्रं दिनादौ।
पतिरमररिपूणां सोदरं भर्तृभक्तेः
परिचरणविधिज्ञं प्राहिणोत्संगराय ॥११॥

अथ अनन्तरम् अमररिपूणां पतिः राक्षसानां स्वामी रावणः, पक्षे—पतिः स्वामी दुर्योधनः दिनादौ दिनप्रारम्भे पटुपटहनिनाद-ध्वस्तनिद्रं पटूनाम् उच्चैः शब्दायमानानां पटहानां ढक्कानां निनादेन शब्देन ध्वस्तनिद्रं ध्वस्ता विनष्टा निद्रा यस्य तं, वाहिनीनां सेनानाम् अग्रे अग्रभागे यियासुं गन्तुमिच्छुं, नरकभुवं स्वपापकर्मकारणा-न्नरकाश्रयं 'भूर्भूमिः स्थानमाश्रयः' इति विश्वः, पक्षे—नरकासुर-स्य पुत्रं, भर्तृभक्तेः स्वामिभक्तेः परिचरणविधिज्ञम् आचरणमर्मवेत्तारं सोदरं स्वसहोदरभ्रातरं कुम्भकर्णं, पक्षे—अमररिपूणां सोदरं राक्ष-सानां सगोत्रं भगदत्तं संगराय युद्धाय प्राहिणोत् प्रेषयति स्म। अत्र मालिनीवृत्तं 'न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्।

इस के बाद राक्षसों के पति रावण ने, दूसरे पक्ष में—स्वामी दुर्योधन ने दिन के प्रारम्भ में ऊँची आवाज से बजाये जाने वाले नगाड़ों के शब्द से जागे हुए, सेनाओं के आगे चलने के इच्छुक, अपने पाप कर्म के कारण नरक के आश्रय, दूसरे पक्ष में—नरकासुर के पुत्र, स्वामिभक्ति परिचर्या की विधि जानने वाले, अपने सगे भाई कुम्भकर्ण को, दूसरे पक्ष में—राक्षसों के सगोत्रज भगदत्त को युद्ध के लिये भेज दिया।

स प्रतिश्रुतविरोधिशासनो वीरपानमदघूर्णितेक्षणः।
उच्चचाल परमण्डलं प्रति प्रांशुकायपिहितोरुदिङ्मुखः ॥१२॥

प्रतिश्रुतविरोधिशासनः प्रतिश्रुतं स्वीकृतं विरोधिनां शत्रूणां शासनं शास्तिकरणं दण्डनमिति यावत् येन सः, वीरपानमदघूर्णितेक्षणः वीरपानस्य युद्धयात्रापूर्वक्षणमदिरापानस्य मदेन मनोविकारेण घूर्णिते वरिवर्तिते ईक्षणे नयने यस्य सः, "वीरपानं तु तत् पानं वृत्ते भाविनि वा रणे" इत्यमरः, प्रांशुकायपिहितोरुदिङ्मुखः प्रांशुना उन्नतेन कायेन शरीरेण पिहितम् आच्छादितम् उरु दिङ्मुखं महद् दिग्भागो येन सः, सः कुम्भकर्णः, पक्षे—भगदत्तः परमण्डलं प्रति शत्रुसैन्यं प्रति उच्चचाल चलति स्म। अत्र रथोद्धतावृत्तं, "रान्नराविह रथोद्धता लगौ" इति लक्षणात्।

शत्रुओं का मर्दनकरना स्वीकार करने वाला, युद्धयात्रापूर्वकालिक मदिरापान से घूरती हुई आँख वाला, ऊँचे शरीर से बहुत बड़ा दिग्भाग आच्छादित करने वाला वह कुम्भकर्ण, दूसरे पक्ष में—वह भगदत्त शत्रुसेना की ओर चल दिया।

तं सुप्रतीकेन सुरद्विपेन समं समीकाजिरमापतन्तम्।
किरीटकोटिस्खलितार्करश्मिं द्रष्टुं न शेकुर्युधि वानरेन्द्राः ॥१३॥

सुरद्विपेन देवदन्तिना दिग्गजेनेत्यर्थः सुप्रतीकेन सुप्रतीकनाम्ना समं तुल्यं, पक्षे—सुप्रतीकेन सु सुष्ठु शोभना इतियावत् प्रतीकाः अङ्गानि यस्य तेन सुरद्विपेन देवहस्तिना ऐरावतपुत्रेण योजनपालनाम्ना हस्तिनेत्यर्थः समं सहितं "पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः" इति "अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनोऽथ कलेवरम्" इति चामरः, समीकाजिरं युद्धभूमिं "मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं सांपरायिकम्। अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ" इत्यमरः आपतन्तम् आगच्छन्तं किरीटकोटिस्खलितार्करश्मिं किरीटकोटौ मुकुटशिखरे स्खलिताः संघट्टिताः प्रतिफलिता इति भावः अर्करश्मयः सूर्यकिरणाः यस्य तं, तं कुम्भकर्णं, पक्षे—भगदत्तं युधि समरभूमौ वानरेन्द्राः कपिश्रेष्ठाः, पक्षे—वेति वितर्के "वा स्याद्विकल्पोपमयोर्वितर्के पादपूरणे" इति मेदिनी, नरेन्द्राः राजानः द्रष्टुम् अवलोकितुं न शेकुः न समर्था बभूवुः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, एकस्मिन् पक्षे—उपमालङ्कारः।

स्वर्गीय हाथी सुप्रतीकनामकदिग्गज के समान, दूसरे पक्ष में—सुन्दर अवयव वाले स्वर्गीय हाथी अर्थात् ऐरावत के पुत्र योजनापाल नामक अपने हाथी

के साथ युद्धभूमि में आते हुए, मुकुट के शिखर में संघट्टित हो रहीं हैं सूर्य किरणें जिस के उस कुम्भकर्ण को वानरगण देखने में समर्थ नहीं हुए। दूसरे पक्ष में—उस भगदत्त को राजागण देखने में समर्थ नहीं हुए यह वितर्क किया जाता है।

संनद्धेभगदत्तशङ्खनिनदत्रस्यत्त्रिलोके बले
ताम्यद्दिक्करिकुम्भकर्णपृतनाप्रारब्धकोलाहले ।
तीक्ष्णद्रोणपतत्त्रिपीतसुभटप्रत्यग्ररक्तासवं
प्रावर्तिष्ट दिवोऽतिथीकृतमहायोधं महायोधनम् ॥१४॥

संनद्धेभगदत्तशङ्खनिनदत्रस्यत्त्रिलोके संनद्धाः धृतकवचाः ये इभगाः गजारोहिणः तैः दत्ताः फूत्कृताः ये शङ्खनिनदाः कम्बुशब्दाः तैः त्रस्यत् भयव्यथितं त्रिलोकं त्रिभुवनं यस्मिन् तस्मिन् सति, ताम्यद्दिक्करिकुम्भकर्णपृतनाप्रारब्धकोलाहले ताम्यन्तः क्लिश्यन्तो दिक्करिणो दिग्गजाः येन एवंभूतस्य कुम्भकर्णस्य एतन्नामकस्य रावणानुजस्य पृतनया सेनया प्रारब्धः आविष्कृतः कोलाहलस्तुमुलशब्दो यस्मिन् तस्मिन् बले सैन्ये सति, तीक्ष्णद्रोणपतत्त्रिपीतसुभटप्रत्यग्ररक्तासवं तीक्ष्णाः उग्राः ये द्रोणपतत्त्रिणः काकपक्षिणः तैः पीतः सुभटानां वीराणां प्रत्यग्रः सद्योनिर्गतः रक्तासवः शोणितसुरा यस्मिन् तत् दिवो ऽतिथीकृतमहायोधं दिवः स्वर्गस्य अतिथीकृताः प्राघुणकीकृताः महायोधाः प्रधानवीराः यस्मिन् तत् महायोधनं महद्युद्धं प्रावर्तिष्ट प्रारब्धमभूत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

कवचधारण किये हुए गजारोहियों के द्वारा किये गये शङ्खशब्द से भयभीत हैं तीनो भुवन जिस में, दुखी हो रहे हैं दिग्गज जिस से इस प्रकार के कुम्भकर्ण की सेना के द्वारा प्रारम्भ किया गया है कोलाहल जिस में इस प्रकार सेना के होने पर, उग्रकर्म वाले काक पक्षी के द्वारा पान की गई है वीरों का ताजा शोणित रूपी शराब जिस में, स्वर्ग के अतिथि बनाये गये हैं बड़े बड़े वीर जिस में इस प्रकार का महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

पक्षे—भगदत्तशङ्खनिनदत्रस्यत्त्रिलोके भगदत्तस्य प्राग्ज्योतिषेश्वरस्य शङ्खनिनदेन शङ्खशब्देन त्रस्यद् भयग्रस्तं त्रिलोकं त्रिभुवनं यस्मिन् तस्मिन्, ताम्यद्दिक्करिकुम्भकर्णपृतनाप्रारब्धकोलाहले ताम्यन्तः क्लिश्यन्तो दिक्करिकुम्भाः दिग्गजानां शिरःपिण्डाः यया एवंभूतया कर्णपृतनया राधेयस्य सेनया प्रारब्धः उच्चारितः कोलाहलः कलकल-

शब्दो यस्मिन् तस्मिन् , बले सैन्ये संनद्धे युद्धाय उद्यते सति तीक्ष्णद्रोणपतत्त्रिपीतसुभटप्रत्यग्ररक्तासवं तीक्ष्णा निशिताः ये द्रोणस्य द्रोणाचार्यस्य पतत्त्रिणो बाणाः तैः पीतः आस्वादितः सुभटानां वीराणां रक्तासवः शोणितमदिरा यस्मिन् तत् , दिवः स्वर्गस्य अतिथीकृतमहायोधम् अतिथीकृताः प्राघुणकीकृताः महायोधाः महावीरा यस्मिन् तत् महायोधनं महायुद्धं प्रावर्तिष्ट प्रवर्तितमभूत् ।

प्राग्ज्योतिषेश्वर भगदत्त राजा के शङ्ख के शब्द से भयभीत है त्रिभुवन जिस में, पीड़ित हो रहे हैं दिग्गजों के शिरःपिण्ड जिस से इस प्रकार की कर्ण की सेना के द्वारा प्रारम्भ किया गया है कोलाहल जिस में इस प्रकार के सैन्य के युद्ध के लिये उद्यत हो जाने पर द्रोणाचार्य के तेज बाणों के द्वारा पान की गई है वीरो की शोणितरूपी मदिरा जिस में, स्वर्ग के अतिथि बनाये गये हैं बढ़े बड़े वीर जिस में इस प्रकार का महायुद्ध प्रारम्भ हो गया ।

हेलानिक्षिप्तपृथ्वीभरसरलभुजङ्गेन्द्रभोगानुकारि-
प्रौढोदञ्चत्करेण प्रलयपरिणतश्यामजीमूतभासा ।
व्यारुग्णक्षोणिखण्डस्फुटितमहिगृहं कुर्वता पादचारे
संक्षुण्णा तेन सर्वा क्षितिपतिपृतना कुम्भिनाम्भोजिनीव ॥१५॥

हेलानिक्षिप्तपृथ्वीभरसरलभुजङ्गेन्द्रभोगानुकारिप्रौढोदञ्चत्करेण हेलया विलासेन निक्षिप्तः प्रक्षिप्तः यः पृथ्वीभरः धरण्या भारः तेन सरलः यः भुजङ्गेन्द्रभोगः शेषनागशरीरं तदनुकारी तत्सदृशः प्रौढः सारवान् उदञ्चन ऊर्ध्वमुत्थापितः करः हस्तो यस्य तेन, पक्षे—करः शुण्डादण्डो यस्य तेन. प्रलयपरिणतश्यामजीमूतभासा प्रलयाय सर्वसंहाराय परिणतः संलग्नः यः श्यामजीमूतः संवर्तादिनीलमेघः तद्वद् भाः कान्तिर्यस्य तेन, पादचारे चरणसञ्चारे व्यारुग्णक्षोणिखण्डस्फुटितमहिगृहं व्यारुग्णा त्रुटिता या क्षोणिः पृथ्वी तस्याः खण्डेन शकलेन स्फुटितम् उपरितनतलरहितं महिगृहं पाताललोकं कुर्वता सम्पादयता तेन कुम्भकर्णेन कुम्भिना गजेन अम्भोजिनीव कमलिनीव सर्वा सम्पूर्णा क्षितिपतिपृतना राज्ञो रामस्य सेना संक्षुण्णा विमर्दिता, पक्षे—कुम्भिना हस्तिना तेन योजनपालनाम्ना भगदत्तगजेन अम्भोजिनीव कमलिनीव क्षितिपतिपृतना राज्ञो युधिष्ठिरस्य सेना संक्षुण्णा मथिता । अत्र स्रग्धरावृत्तम् उपमालङ्कारः ।

खेलबाड़ में ही फेके गये पृथ्वी के भार से अर्थात् भार हट जाने के कारण

सीधे शेषनाग के शरीर का अनुकरण करनेवाला मजबूत तथा ऊपर उठाहुआ है हाथ जिस का उस, दूसरे पक्ष में—सूँढ जिस की उस, प्रलय करने में संलग्न काले काले संवर्तादि बादल के समान कान्ति वाले, पैदलचलने से टूटे हुए पृथ्वी के खण्ड से पाताललोक को फूटे हुए बनाने वाले उस कुम्भकर्ण के द्वारा हाथी के द्वारा कमलिनी के समान राजा राम की सम्पूर्ण सेना कुचल डाली गयी, दूसरे पक्ष में—भगदत्त के योजनपालनामक उस हाथी के द्वारा कमलिनी के समान राजा युधिष्ठिर की सम्पूर्ण सेना कुचल डाली गयी।

करधृतकरवालं शातदन्ताग्रकुन्तं
गुरुतरमदवेगात्सोढगाढप्रहारम् ।
अविकलगलगर्जारब्धपर्जन्यघोषं
धृतिरतिबलमेनं पश्यतां नश्यति स्म ॥१६॥

करधृतकरवालं करेण हस्तेन धृतः गृहीतः करवालः असिः येन तं, पक्षे—करेण शुण्डादण्डेन गृहीतः असिः येन तं, युद्धे गजशुण्डायाम् अस्त्रबन्धनविधानात्, शातदन्ताग्रकुन्तं शाताः निशिता दन्ताग्रा एव रदनाग्रभागा एव कुन्ता अस्त्रविशेषाः भल्ला इति यावत् यस्य तम्, पक्षे-द्विवचनम्, गुरुतरमदवेगात् अतिशयमदिरापानमनोविकारात्, पक्षे—अतिशयदानजलविकारात् सोढगाढप्रहारम् सोढः हेलयानुभूतः गाढप्रहारः दृढाघातो येन तम्, अविकलगलगर्जारब्धपर्जन्यघोषम् अविकला तुमुला या गलगर्जा कण्ठगर्जनं तया आरब्धः कृतः पर्जन्यघोषः मेघवच्छब्दो येन तम्, अतिबलं महाबलवन्तम् एनं कुम्भकर्णं पश्यताम् अवलोकयतां रामसैनिकानां, पक्षे—एनं भगदत्तगजं योजनपालम् अवलोकयतां युधिष्ठिरसैनिकानां धृतिः धैर्यं नश्यति स्म व्यनशत्। अत्र मालिनीवृत्तम्, "न न, म य य युतेयं मालिनीभोगिलोकैः" इति लक्षणात्

हाथ में, दूसरे पक्ष में—सूँढ में तलवारधारण किये हुए, तेज दाँतो के अग्रभागरूपी भाला धारण करने वाले, मदिरा के नशा के अधिकवेग के कारण, दूसरे पक्ष मे—दानजल के विकार के वेग के कारण दृढ आघातों के सहने वाले सम्पूर्णगला के गरजने से मेघ के समान शब्द करने वाले महाबलवान् इस कुम्भकर्ण को देखनेवाले राम के सैनिकों का, दूसरे पक्ष में—इस भगदत्त के हाथी योजनपाल को देखने वाले युधिष्ठिर के सैनिकों का धैर्य नष्ट हो गया।

पादक्षोदैर्दशनदलनैः पुष्करस्य प्रहारै-
र्हस्तोत्क्षिप्तैः परिघमुसलैः केवलैर्हस्तघातैः ।
भ्रामं भ्रामं प्रधनपृथिवीमण्डले चण्डवेगः
शीर्णव्यूहं प्रतिबलमसौ नाशयामास तूर्णम् ॥१७॥

पादक्षोदैः चरणचूर्णनैः दशनदलनैः दन्तखण्डनैः पुष्करस्य करवालस्य, पक्षे—शुण्डाग्रभागस्य प्रहारैः, "पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले । व्योम्नि खड्गफले पद्मे तीर्थौषधिविशेषयोः" इत्यमरः, हस्तोत्क्षिप्तैः हस्तेन करेण, पक्षे—शुण्डादण्डेन उत्क्षिप्तैः उत्थापितैः परिघमुसलैः परिघैः मुसलैश्च शस्त्रविशेषैः केवलैः हस्तघातैः करप्रहारैः, पक्षे--शुण्डादण्डप्रहारैः चण्डवेगः अतिवेगशाली असौ कुम्भकर्णः, पक्षे—योजनपालः प्रधनपृथिवीमण्डले युद्धभूमौ भ्रामं भ्रामं परिक्रम्य शीर्णव्यूहं शीर्णः भ्रष्टो व्यूहः सैन्यसंनिवेशो यस्य तत् प्रतिबलम् शत्रुसैन्यं तूर्णं शीघ्रं नाशयामास अमारयत् । अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् "मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद् गुरू चेत्" इति लक्षणात् ।

पैरों से चूर्ण करने से, दाँतो से कुचलने से, तलवार की धार के प्रहार से, दूसरे पक्ष में—सूँढ के अग्रभाग के प्रहार से, हाथ से, दूसरे पक्ष में—सूँढ से उठाये हुए परिघ तथा मुसलों से, केवल हाथ के प्रहार से, दूसरे पक्ष में—केवल सूँढ के प्रहार से अत्यन्त वेगवाले इस कुम्भकर्ण ने, दूसरे पक्ष में—इस योजनपाल हाथी ने युद्धभूमि में भ्रमण कर के टूटे हुए संनिवेश वाले विपक्षीसेना को शीघ्र ही विनष्ट कर दिया ।

भ्रमद्गजानीकमपास्तपत्ति नश्यद्धरि स्यन्दनवेपितोर्वि ।
बभूवतत्कुञ्ज रवेगभिन्नं पयोरुहां पुञ्जमिवारिसैन्यम् ॥१८॥

भ्रमद्गजानीकं परिचलत् हस्तिसैन्यं यस्मिन् तत्, अपास्तपत्ति अपास्ता विक्षिप्ताः पत्तयः पादचारिणः सैनिकाः यस्मिन् तत्, नश्यद्धरि नश्यन्तः विनाशं गच्छन्तः हरयः वानराः, पक्षे—अश्वाः यस्मिन् तत्, स्यन्दनवेपितोर्वि स्यन्दनैः रथैः वेपिता कम्पिता उर्वी पृथ्वी यस्मिन् तत्, तत् अरिसैन्यं शत्रुसैन्यं, पक्षे—तत्कुञ्जरवेगभिन्नं तस्य कुञ्जरस्य योजनपालगजस्य वेगेन भिन्नं विदारितम् अरिसैन्यं शत्रुसैन्यं कुञ्जरवेगभिन्नं हस्तिवेगेन मथितं पयोरुहां जलजानाम्

पुञ्जमिव समूह इव बभूव अभवत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति-वृत्तमुपमालङ्कारः।

घूम रही है हाथियों की सेना जिस में, इधर उधर बिखेर दी गयी हैं पैदल सेना जिस में, विनष्ट हो रहे हैं बन्दर, दूसरे पक्ष में—घोड़े जिस में, रथों से काँप रही है पृथ्वी जिस में वह शत्रु सेना, दूसरे पक्ष में—उस योजनपाल हाथी के वेग से विमर्दित शत्रु सेना हाथी के वेग से विनष्ट कमलों के समूह के समान हो गयी।

सुग्रीवस्तदभिमुखं निपत्य भीमः
संग्रामं स्वभुजबलोचितं विधाय।
द्राग्दैवाद्विषमदशां गतोऽपि तस्मा-
दात्मानं कथमपि मोचयाञ्चकार ॥१९॥

भीमः भयङ्करः सुग्रीवनामा वानरसेनापतिः, पक्षे—सुग्रीवः सुष्ठु शोभना ग्रीवा गलदेशः यस्य सः भीमः वृकोदरः तदभिमुखं तस्य कुम्भकर्णस्य, पक्षे—योजनपालस्य अभिमुखं संमुखं निपत्य गत्वा स्वभुजबलोचितम् आत्मबाहुबलसदृशं संग्रामं युद्धं विधाय कृत्वा दैवाद् दुर्भाग्याद् विषमदशां कठिनपरिस्थितिं गतोऽपि प्राप्तोऽपि सन् तस्मात् पराभवप्राप्तोऽपि सन्नित्यर्थः कथमपि केनापि प्रकारेण द्राक् शीघ्रं तस्मात् कुम्भकर्णात्, पक्षे—योजनपालगजाद् आत्मानं स्वं मोचयाञ्चकार विमुक्तम् अकरोत्। अत्र प्रहर्षिणीवृत्तं "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" इति लक्षणात्।

भयङ्कर सुग्रीव ने उस कुम्भकर्ण के सम्मुख जा कर, दूसरे पक्ष में—सुन्दर ग्रीवा (गला) वाले भीम ने उस योजनपाल के सम्मुख जाकर, अपनी भुजाओं के बल के अनुसार युद्ध कर के दैवसंयोग से पराभव स्थिति प्राप्त कर के किसी प्रकार शीघ्र ही उस कुम्भकर्ण से, दूसरे पक्ष में—उस योजनपाल हाथी से अपने आप को विमुक्त कर लिया।

स कोपितो मारुतिना मनस्वी महास्त्रजालेन रणे रिपूणाम्।
व्यूहं बृहद्बाहुबलो बिभेद प्राग्ज्योतिषेशस्त्रिपुरं यथोग्रः ॥२०॥

उग्रः भयङ्करः बृहद्बाहुबलः अत्यन्तबलशाली मनस्वी बुद्धिमान रणे युद्धे मारुतिना पवनपुत्रेण हनूमता, कोपितः क्रोधितः सन् स कुम्भ-कर्णःप्राक् पूर्वम् ईशः शिवः ज्योतिषा दृष्ट्या त्रिपुरं यथा असुरस्य

त्रिपुरमिव "ज्योतिर्भद्योतदृष्टिषु" इत्यमरः, पक्षे—प्राग्ज्योतिषेशः प्राग्ज्योतिषदेशपतिः स भगदत्तः उग्रः शिवः त्रिपुरं यथा त्रिपुरमिव महास्त्रजालेन महास्त्रसमूहेन रिपूणां शत्रूणां व्यूहं सैन्य-संनिवेशं बिभेद त्रोटयति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

भयङ्कर तथा अत्यन्तबलवान् और बुद्धिमान् युद्ध में पवनपुत्र हनुमान् के द्वारा क्रोध कराये गये उस कुम्भकर्ण ने पूर्व में शिव जी दृष्टि से त्रिपुरासुर के तीनों नगरों के समान, दूसरे पक्ष में—पवन पुत्र भीम के द्वारा क्रोध कराये गये प्राग्ज्योतिषदेश के पति उस भगदत्त ने जैसे शिव जी त्रिपुरासुर के तीनो पुरों को नष्ट किये थे उसी प्रकार बड़े बड़े अस्त्रों के समूह से शत्रुओं के सैन्य-संनिवेश को तोड़ डाला।

संशप्तकानां द्विषतां वधाय निबद्धकक्षः प्रतिपक्षभिन्नम्।
दूरं प्रसर्पद्विजयः स्वसैन्यं दृष्ट्वा तमायात्तरसाभिरामः ॥२१॥

संशप्तकानां युद्धादनिवर्तिनां द्विषतां शत्रूणां वधाय मारणाय निबद्धकक्षः सुदृढबद्धपरिधानः, "संशप्तकास्तु समयात्संग्रामादनिवर्तिनः" इत्यमरः, "कक्षा स्यादन्तरीयस्य पश्चादञ्चलपल्लवे" इति विश्वः। अन्तरीयं परिधानम्, विजयः विशिष्टो जयो यस्य सः, पक्षे—अर्जुनः, रामः दाशरथिः, पक्षे—अभिरामः सुन्दरः, प्रतिपक्षभिन्नं शत्रुणा विदारितम् अत एव दूरं प्रसर्पत पलायमानं स्वसैन्यं दृष्ट्वा अवलोक्य तरसा वेगेन तम् अभि कुम्भकर्णमुद्दिश्य, पक्षे—तं भगदत्तं प्रति आयात् आगच्छत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

युद्ध से न हटने वाले शत्रुओं को मारने के लिये मजबूती से कमर कसे हुए विशिष्ट जय वाले राम, दूसरे पक्ष में—सुन्दर अर्जुन शत्रु से विदलित अत एव दूर भागते हुए अपने सैन्य को देख कर अत्यन्त वेग से कुम्भकर्ण के प्रति, दूसरे पक्ष में—भगदत्त के प्रति आ गये।

अथ सुररिपुराजपुत्रयोस्त्रिभुवनविस्मयनीयरंहसोः।
समजनि समरोत्सवस्तदानीं ज्वलदमरास्त्रनिरन्तराम्बरान्तः ॥२२॥

अथ अनन्तरं सुररिपुराजपुत्रयोः सुररिपो राक्षसस्य कुम्भकर्णस्य राजपुत्रस्य रामस्य च, पक्षे—सुररिपोः नरकासुरस्य राज्ञः पाण्डोश्च पुत्रयोः सुतयोः भगदत्तार्जुनयोरिति यावत् त्रिभुवनविस्मयनीय-

रंहसोः त्रिभुवनस्य विस्मयकारिवेगवतोः तदानीं तस्मिन् समये ज्वलदमरास्त्रनिरन्तराम्बरान्तः ज्वलन्ति दीप्यमानानि यानि अमरास्त्राणि सुरदत्तास्त्राणि दिव्यास्त्राणीति यावत् तैः निरन्तरः निरवकाशः अम्बरान्तः आकाशमध्यभागो यस्मिन् सः समरोत्सवः युद्धोत्सवः समजनि अभवत्। अत्र गाथा नाम विषमपदछन्दः "विषमाक्षरपादत्वात्पादैरसमञ्जसं धर्मवत्। यच्छन्दसि नोक्तमत्र गाथेति तत्सूरिभिः प्रोक्तम्" इत्युक्तेः।

इस के बाद तीनो भुवनों के आश्चर्यकारक वेगवाले राक्षसकुम्भकर्ण तथा राजकुमार राम का, दूसरे पक्ष में—नरकासुर तथा राजा पाण्डु के पुत्र भगदत्त तथा अर्जुन का उस समय चमकते हुए दिव्यास्त्रों से आकाशविवर को निरवकाश करने वाला युद्धरूपी उत्सव प्रारम्भ हो गया।

अत्रान्तरे मुक्तमनेन रौद्रं शूलं यथा वैष्णवमस्त्रमुग्रम्।
हरिर्मरुत्प्रीतिकरो न्यगृह्णाद्यशोमयी स्रक् तदभूदमुष्य ॥२६॥

अत्रान्तरे अस्य समयस्य मध्ये अनेन कुम्भकर्णेन मुक्तं प्रक्षिप्तं वैष्णवं विष्णुदेवताकम् अस्त्रं यथा अस्त्रमिव उग्रं भयङ्करं रौद्रं रुद्रदेवताकं शूलं शूलास्त्रं मरुत्प्रीतिकरः मरुतां देवानां प्रीतिकारकः हरिः वानरः सुग्रीवः न्यगृह्णात् गृह्णाति स्म तद् अस्त्रम् अमुष्य सुग्रीवस्य यशोमयी यशःस्वरूपा स्रक् माला अभूत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इसी बीच में इस कुम्भकर्ण के द्वारा फेंके गये विष्णुदेवताक अस्त्र के समान रुद्रदेवताक भयङ्कर शूल को देवताओं के प्रसन्न करने वाले वानर सुग्रीव ने पकड़ लिया। वह पकड़ा गया अस्त्र इस की यशोमयी माला हो गया।

पक्षे—अत्रान्तरे अस्य समयस्य मध्ये अनेन भगदत्तेन मुक्तं प्रक्षिप्तं रौद्रं रुद्रदेवताकं शूलं यथा शूलमिव उग्रं भयङ्करं वैष्णवं विष्णुदेवताकम् अस्त्रं मरुत्प्रीतिकरः देवप्रीतिकारकः हरिः कृष्णः न्यगृह्णात् अधारयत्, तद् गृहीतमस्त्रम् अमुष्य कृष्णस्य यशोमयी यशःस्वरूपा स्रगभूत् माला अभवत्।

इसी बीच में इस भगदत्त के द्वारा फेंके गये रुद्रदेवताक शूल के समान भयङ्कर वैष्णवास्त्र को देवताओं के प्रसन्न करने वाले श्रीकृष्ण ने पकड़ लिया। वह पकड़ा गया अस्त्र इस कृष्ण के लिये यशोमयी माला बन गया। अर्थात् इस कृत्य से उन का यश फैल गया।

अथायं कामरूपेशः कुपितो हरिकर्मणा ।
यत्नेन महता भूयो युयुधे राजसूनुना ॥२४॥

अथ अनन्तरं कामरूपेशः कामरूपाः स्वेच्छास्वरूपधारिणः राक्षसाः तेषामीशः पतिः अयं कुम्भकर्णः हरिकर्मणा हरेः वानरस्य सुग्रीवस्य कर्मणा कर्त्तव्येन, पक्षे—कामरूपेशः कामरूपदेशपतिः अयं भगदत्तः हरिकर्मणा हरेः कृष्णस्य कर्मणा कर्तव्येन कुपितः क्रुद्धः सन् भूयः पुनः महता यत्नेन अतिशयेन प्रयत्नेन राजसूनुना राजकुमारेण रामेण, पक्षे—अर्जुनेन युयुधे युद्धमकरोत् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

इस के बाद स्वेच्छास्वरूपधारी राक्षसों के पति इस कुम्भकर्ण ने सुग्रीवबन्दर के कर्तव्य से, दूसरे पक्ष में--कामरूप देश के पति उस भगदत्त ने श्रीकृष्ण के कर्त्तव्य से क्रुद्ध हो कर फिर बहुत बड़े प्रयत्न के द्वारा राजकुमार राम के साथ, दूसरे पक्ष में--राजकुमार अर्जुन के साथ युद्ध किया ।

तस्याथ नरसिंहस्य शिलीमुखनखावलिः ।
रिपुकुञ्जरगात्रेषु निपपात निरन्तरम् ॥२५॥

अथ अनन्तरं नरसिंहस्य पुरुषश्रेष्ठस्य तस्य रामस्य, पक्षे—नरावतारस्य पुरुषश्रेष्ठस्य तस्य अर्जुनस्य शिलीमुखनखावलिः शिलीमुखा बाणा एव नखावलिः नखसमूहः रिपुकुञ्जरगात्रेषु शत्रुश्रेष्ठस्य कुम्भकर्णस्य शरीरेषु, पक्षे—शत्रोर्गजस्य योजनपालस्य शरीरेषु निरन्तरं सततं निपपात पतति स्म । अत्रानुष्टुपछन्दः । अत्र यथा नृसिंहावतारस्य विष्णोः बाणतुल्यनखश्रेणिः शत्रुश्रेष्ठस्य हिरण्यकशिपोर्गात्रेषु न्यपतत् तथैवेत्युपमा व्यज्यते ।

इस के बाद पुरुषश्रेष्ठ उस राम का, दूसरे पक्ष में--नरावतारी पुरुषश्रेष्ठ उस अर्जुन का बाणरूपी नखसमूह शत्रुश्रेष्ठ कुम्भकर्ण के शरीर पर, दूसरे पक्ष में--शत्रु के हाथी योजनपाल के शरीर पर सघनरूप से लगातार गिरने लगा । इस श्लोक में--जैसे नृसिंह भगवान् के बाणों के सदृश नखसमूह शत्रु श्रेष्ठ हिरण्यकशिपु के शरीर पर गिरा था उसी प्रकार यहाँ भी । यह उपमा व्यङ्ग्य होती है ।

न्यञ्चद्भूचक्रभारोद्वहनपरिगतायासदिक्कुम्भिकुम्भं
सद्यस्त्रस्तामरस्त्रीकरपुटपिहितोत्पद्मचक्षुःसरोजम् ।

अन्योन्योत्कर्षवार्ताकृतकलहकथं खेचरैर्लोकपालाः
संप्राप्तं मेनिरे तं प्रतिभयमुभयोः संयुगान्तं युगान्तम् ॥२६॥

उभयोः रामकुम्भकर्णयोः, पक्षे--अर्जुनभगदत्तयोः न्यञ्चद्भूचक्रभारोद्वहनपरिगतायासदिक्कुम्भिकुम्भं न्यञ्चद् न्यग्भूतं यद् भूचक्रं भूमण्डलं तस्य भारोद्वहने भारधारणे परिगतायासाः प्राप्तपरिश्रमाः दिक्कुम्भिनां कुम्भाः दिग्गजानां शिरःपिण्डाः येन तम्, सद्यस्त्रस्तामरस्त्रीकरपुटपिहितोत्पक्ष्मचक्षुःसरोजं सद्यस्तत्कालं त्रस्ता भीता या अमरस्त्रियःसुराङ्गनाः तासां करपुटैः पृथक्पृथग्हस्तयुगलैः पिहितानि आच्छादितानि उत्पक्ष्माणि अनिमेषत्वात् ऊर्ध्वस्थितनेत्रलोमयुक्तानि चक्षुःसरोजानि नयनकमलानि यस्मिन् तम्, खेचरैः आकाशचारिभिः अन्योन्योत्कर्षवार्ताकृतकलहकथम् अन्योन्यस्मिन् परस्परम् उत्कर्षवार्तासु कुम्भकर्णस्य रामस्य वोत्कर्षः, पक्षे—भगदत्तस्य अर्जुनस्य वा उत्कर्षः इत्यालापेषु कृतकलहकथं कृता विहिता कलहकथा वाक्कलहालापः यस्मिन् तम्, प्रतिभयं भयकारकं तं लङ्कायुद्धक्षेत्रस्थितं, पक्षे—कुरुक्षेत्रस्थितं संयुगान्तं युद्धे विनाशम् उभयपक्षीयवीरनाशमिति यावत्, "अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु" इति मेदिनी, लोकपालाः दिक्पालाः युगान्तं प्रलयकालं सम्प्राप्तम् उपस्थितं मेनिरे मन्यन्ते स्म। अत्र स्रग्धरावृत्तं, भ्रान्तिमानलङ्कारः।

राम तथा कुम्भकर्ण दोनों के, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा भगदत्त दोनों के झुके हुए भूमण्डल का भार धारण करने में परिश्रम प्राप्त किये हुए हैं दिग्गजों के शिरःपिण्ड जिस से, तत्कालभयभीत हुई देवाङ्गनाओं के करसम्पुटों से आच्छादित किये गये हैं उठे हुए पलक वाले नेत्रकमल जिस में, आकाशचारी सिद्धगन्धर्वों के द्वारा परस्पर दोनों के उत्कर्ष की (राम का उत्कर्ष है वा कुम्भकर्ण का, दूसरे पक्ष में—अर्जुन का उत्कर्ष है वा भगदत्त का इस प्रकार की) बातचीत में की गई हैं झगड़े की बातें जिस में, इस प्रकार के भयङ्कर उस युद्धसम्बन्धी वीरसंहार को दिक्पालों ने उपस्थित हुआ प्रलयकाल समझा।

विहाय पूर्वं चतुरङ्गभङ्गं नरप्रवीरेण विरोधिवर्यः।
मत्तः करी केसरिणेव मौलौ जघ्ने नखेनेव शिलीमुखेन ॥२७॥

नरप्रवीरेण मनुष्येषु श्रेष्ठयोधेन रामेण, पक्षे—नरावतारत्वाच्छ्रेष्ठयोधेन अर्जुनेन पूर्वं प्रथमं चतुरङ्गभङ्गं हस्त्यश्वरथपादातस्वरूप-

चतुरङ्गिणीसेनाविनाशं विहाय त्यक्त्वा केसरिणा सिंहेन नखेन नखरेण मौलौ मस्तके मत्तः मदस्रावी करीव हस्तीव शिलीमुखेन बाणेन मौलौ मस्तके विरोधिवर्यः शत्रुश्रेष्ठः कुम्भकर्णः, पक्षे—भगदत्तः जघ्ने प्रहृतः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उपमालङ्कारः।

मनुष्यों में श्रेष्ठ योद्धा राम के द्वारा, दूसरे पक्ष में—नरावतारी होने से श्रेष्ठ वीर अर्जुन के द्वारा पहले चतुरङ्गिणी सेना का संहार करना छोड़ कर सिंह के द्वारा नख से मस्तक पर मतवाले हाथी के समान बाण से मस्तक पर शत्रुश्रेष्ठ कुम्भकर्ण, दूसरे पक्ष में—भगदत्त ताडित हुआ अर्थात् प्रहार किया गया।

स जिष्णुना सङ्गररङ्गमध्ये विपक्षवीरः क्षिपता महास्त्रम्।
खरः पुरस्तादिव कुम्भकर्णो रामेण जघ्ने रणपण्डितेन ॥२८॥

विपक्षवीरः शत्रुपक्षीयो योधः स प्रसिद्धः कुम्भकर्णः रावणानुजः सङ्गररङ्गमध्ये युद्धभूमौ "रङ्गो ना रागे नृत्ये रणक्षितौ अस्त्री त्रपुणि" इति मेदिनी, महास्त्रं प्रबलास्त्रं क्षिपता प्रेरयता जिष्णुना जयनशीलेन रणपण्डितेन युद्धनिपुणेन रामेण पुरस्तात् पूर्वकाले खर इव दूषण-सहोदरो राक्षस इव जघ्ने मारितः। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तमुपमा-लङ्कारः।

शत्रुपक्ष का वीर वह प्रसिद्ध कुम्भकर्ण युद्धभूमि में प्रबल अस्त्र फेंकने वाले जयनशील तथा युद्ध करने में कुशल राम के द्वारा पूर्वकाल में खरराक्षस के समान मार डाला गया।

पक्षे—खरः तीक्ष्णः विपक्षवीरः शत्रुपक्षीयो योधः सः भगदत्तः सङ्गररङ्गमध्ये युद्धभूमौ महास्त्रं प्रबलास्त्रं क्षिपता मुञ्चता रणपण्डितेन युद्धनिपुणेन जिष्णुना अर्जुनेन, पुरस्तात् प्राचीनकाले रामेण दाशरथिना कुम्भकर्ण इव रावणानुज इव जघ्ने मारितः।

युद्ध करने में तीक्ष्ण शत्रुपक्षीय योद्धा वह भगदत्त युद्धभूमि में बड़े बड़े अस्त्र फेकने वाले, युद्ध में कुशल अर्जुन के द्वारा प्राचीनकाल में राम के द्वारा कुम्भकर्ण के समान मार डाला गया।

नरवरशरकृत्तं तच्छिरः प्राक् शरीरा-
दपतदुरुकिरीटोद्भासि दूरस्रुतासृक्।
दवदहनशिखाभिर्दह्यमानं महाद्रेः
शिखरमिव सधातुस्यन्दमिन्द्रास्त्ररुग्णम् ॥२९॥

महाद्रेः विशालपर्वतस्य दवदहनशिखाभिः दावानलज्वालाभिः दह्यमानं प्रज्वलत् सधातुस्यन्दं गैरिकादिधातुक्षरणयुक्तम् इन्द्रास्त्ररुग्णं देवेन्द्रास्त्रेण वज्रेण रुग्णं भिन्नं विदारितमिति यावत्, शिखरमिव शृङ्गमिव नरवरशरकृत्तं मनुष्यश्रेष्ठरामबाणेन, पक्षे—नरावतारित्वाच्छ्रेष्ठस्य अर्जुनस्य बाणेन खण्डितम् उरुकिरीटोद्भासि उरुकिरीटेन विशालमुकुटेन उद्भासि दीप्यमानं दूरस्रुतासृक् दूरमत्यर्थं स्रुतम् क्षरितम् असृक् रुधिरं यस्य तत् तच्छिरः तस्य कुम्भकर्णस्य, पक्षे—भगदत्तस्य शिरः मस्तकं शरीरात् प्राक् शरीरात् पूर्वमेव अपतत् पतति स्म। अत्र मालिनीवृत्तमुपमालङ्कारः।

विशाल पर्वत के दावानल की ज्वाला से प्रज्वलित गैरिकादि धातु के द्रव-क्षरण से युक्त इन्द्र के अस्त्र वज्र से विदीर्ण शिखर के समान मनुष्यश्रेष्ठ राम के, दूसरे पक्ष में—नर के अवतार होने से श्रेष्ठ अर्जुन के बाण से खण्डित विशाल मुकुट से चमकता हुआ अत्यन्त शोणितक्षरण करने वाला उस कुम्भकर्ण का शिर, दूसरे पक्ष में--भगदत्त का शिर शरीर से पहले ही गिर गया। अर्थात् शरीर बाद में गिरा।

कण्ठच्छेदादुपरिविसरच्छोणिताम्भश्छटाना-
मासारेण क्षणमरुणयन्नन्तरिक्षस्य कुक्षिम्।
तत्कायोऽपि प्रसभमपतद्वीरयात्रा-निमित्तं
क्षोणीदेव्या इव विरचयन् गौरवेण प्रणामम् ॥३०॥

कण्ठच्छेदात् गलकर्तनात् उपरि ऊर्ध्वं विसरच्छोणिताम्भश्छटानां विसरन्त्यः प्रसरन्त्यः याः शोणिताम्भश्छटाः रुधिरजलक्षोदाः तासाम् आसारेण धारासम्पातेन क्षणं किञ्चित्कालं यावद् अन्तरिक्षस्य आकाशस्य कुक्षिं मध्यभागम् अरुणयन् रक्तं कुर्वन् तत्कायोऽपि तस्य कुम्भकर्णस्य, पक्षे—भगदत्तस्य कायोऽपि शरीरमपि गौरवेण गुरुतया प्रतिष्ठयेति यावत्, क्षोणीदेव्याः पृथिवीदेव्याः प्रणामं नमस्कारं विरचयन्निव कुर्वन्निव वीरयात्रानिमित्तं युद्धमरणहेतवे प्रसभं हठात् अपतत् पतति स्म। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं "मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्" इति लक्षणात् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

गला कट जाने से ऊपर में फैलने वाले शोणित-जल की छींटों के धारासम्पात से कुछ क्षण तक आकाश के मध्य-भाग को लाल बनाते हुए कुम्भकर्ण का,

दूसरे पक्ष में—उस भगदत्त का शरीर भी गौरव के कारण पृथ्वी देवी का प्रणाम करते हुए के समान युद्धमरण के लिये वेग से गिर गया।

तस्य वीरवरिष्ठस्य भ्रूभङ्गि पतितं शिरः।
बभौ सन्ततिवात्सल्याद्धात्र्येवाङ्के निवेशितम् ॥३१॥

वीरवरिष्ठस्य शूरश्रेष्ठस्य तस्य कुम्भकर्णस्य, पक्षे—भगदत्तस्य भ्रूभङ्गि भ्रूभङ्गयुक्तं पतितं भूतललुण्ठितं शिरः मस्तकं सन्ततिवात्सल्यात् सन्तानप्रेमतः धात्र्या पृथिव्या उपमात्रेत्यपि व्यज्यते, अङ्के क्रोडे निवेशितमिव गृहीतमिव बभौ शुशुभे। अत्रानुष्टुप् छन्दः, उत्प्रेक्षालङ्कारः।

वीरश्रेष्ठ उस कुम्भकर्ण का, दूसरे पक्ष में—उस भगदत्त का भ्रूभङ्ग से युक्त गिरा हुआ शिर सन्तान के प्रेम से पृथ्वी देवी के द्वारा गोदी में धारण किये हुए के समान सुशोभित हुआ।

सदैवतैर्वैरिनिपातहृष्टैः प्राशंसि वीरैर्नरदेववर्यः।
दर्पोद्धतं शूर्पकमाजिभूमौ जित्वेव राजन्यककामदेवः ॥३२॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते कामदेवाङ्के राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कुम्भकर्णभगदत्तवधो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

नरदेववर्यः क्षत्रियश्रेष्ठः रामः, पक्षे—अर्जुनः वैरिनिपातहृष्टैः शत्रुमरणप्रसन्नैः सदैवतैः देवतासहितैः वीरैः शूरैः आजिभूमौ युद्धक्षेत्रे दर्पोद्धतम् अहङ्कारेण औद्धत्यधारकं शूर्पकं शूर्पकनामानं जित्वा पराजित्य राजन्यककामदेव इव क्षत्रियो राजा कामदेव इव प्राशंसि प्रशंसितः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारश्च।

इति राघवपाण्डवीये काव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीरघुनन्दन-
शर्मात्मज श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनी-
नामधेयायां व्याख्यायां नवमः सर्गः।

क्षत्रियश्रेष्ठ राम, दूसरे पक्ष में—अर्जुन शत्रु के मारे जाने से प्रसन्न देवताओं के सहित वीरों के द्वारा युद्धभूमि में घमण्ड से औद्धत्य धारण किये हुए शूर्पक नामक राजा को जीत कर क्षत्रिय-राजा कामदेव के समान प्रशंसित हुए।

इति राघव-पाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुर-कुलोद्भूत श्री
दामोदरझा साहित्याचार्य-विरचित सरला नामक टीका में नवम सर्ग ॥९॥

दशमः सर्गः

ततो भृशं व्याकुलितान्तरात्मा
स्वपक्षघातेन विपक्षनाथः ।
प्रायुङ्क्त वीरान् पुनरेव योद्धु-
मापत्सु मुह्यन्ति न मानभाजः ॥१॥

ततस्तदनन्तरं विपक्षनाथः शत्रूणामधिपतिः रावणः, पक्षे—दुर्योधनः स्वपक्षघातेन निजवर्गीयविनाशेन भृशमत्यर्थं व्याकुलितान्तरात्मा व्याकुलितः विस्मितः अन्तरात्मा हृदयं यस्य सः एवंभूतः सन् वीरान् महायोद्धॄन् पुनरेव भूयोऽपि योद्धुं युद्धं कर्तुं प्रायुङ्क्त प्रेरितवान् । मानभाजः मानिनः आपत्सु विपत्तिकाले न मुह्यन्ति न वैचित्यं यान्ति । अत्र सामान्येन विशेषस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः तथा इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

इस के बाद स्ववर्गीय के विनाश से अत्यन्तव्याकुलहृदयवाला शत्रुओं के अधिपति राजा रावण ने, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन ने महामहायोद्धाओं को फिर भी युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। अभिमानी मनुष्य विपत्ति के समय में भी वैचित्य नहीं धारण करते हैं अर्थात् नहीं घबड़ाते हैं !

ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य कुमाराः कुपिता भृशम् ।
रक्षःपुरोगमाश्चेलुर्गूढशासनकारिणः ॥२॥

रक्षःपुरोगमा रक्षांसि राक्षसाः पुरोगमानि अग्रयायिनो येषां ते, गूढशासनकारिणः गुप्तादेशपालकाः, भृशं कुपिताः अत्यन्तं क्रुद्धाः सन्तः धृतराष्ट्रस्य धृतं स्वायत्तीकृतं राष्ट्रं राज्यतन्त्रं येन तस्य राज्ञो नृपस्य रावणस्य, पक्षे—धृतराष्ट्रनामकस्य भूपस्य ते प्रसिद्धाः कुमाराः पुत्राः चेलुः युद्धार्थं निरगच्छन् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

राक्षस हैं अग्रगामी जिन के तथा गुप्त आदेश का पालन करने वाले, अत्यन्त क्रुद्ध हुए, राष्ट्र के धारण करने वाले राजा रावण के पुत्र, दूसरे पक्ष में—राजा धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध के लिये निकल पड़े ।

घण्टाटङ्कारघोरोत्तुरुककरिघटासंकटक्षोणिपीठं
घाटीभिर्घोटकानां झटिति खरखुरोद्धूतधूलीवितानम् ।
सान्द्राणां स्यन्दनानां ध्वजपटपटलीलीढदिक्चक्रवालं
सैन्यं संनद्धमासीत्पटुसुभटभुजामण्डलोद्गूर्णखड्गम् ॥३॥

घण्टाटङ्कारघोरोत्तुरुककरिघटासंकटक्षोणिपीठं घण्टानां कांस्यवाद्यविशेषाणां टङ्कारेण टङ्कारशब्देन घोरः भयङ्करः उत्तुरुकः वाद्यविशेषो यासु एवंभूताभिः करिघटाभिः हस्तिसमूहैः संकटं निरन्तरं क्षोणिपीठं भूमिपृष्ठभागो येन तत्, घोटकानामश्वानां घाटीभिः समूहैः झटिति शीघ्रं खरखुरोद्धूतधूलीवितानं खरखुरैः तीक्ष्णशफैः उद्धूतधूलीवितानम् उद्धूतम् उत्थापितं धूलीवितानं रजसामुल्लोचः यस्मिन् तत्, सान्द्राणां निविडानां स्यन्दनानां रथानां ध्वजपटपटलीलीढदिक्चक्रवालं ध्वजपटानां पताकावस्त्राणां पटलीभिः समूहैः लीढं ग्रस्तम् आच्छादितमिति यावत्, दिक्चक्रवालं दिङ्मण्डलं यस्मिन् तत्, पटुसुभटभुजामण्डलोद्गूर्णखड्गं पटवः युद्धविशारदाः ये सुभटाः वीराः तेषां भुजामण्डलेन दोश्चक्रवालेन उद्गूर्णा उत्थापिताः खड्गाः यस्मिन् तत् सैन्यं रामरावणसैन्यं, पक्षे—पाण्डवकौरवसैन्यं संनद्धं युद्धोद्यतम् आसीत् अभूत्। अत्र स्रग्धरावृत्तम् ।

घण्टा के टं टं शब्द से भयङ्कर उत्तुरुक नामक बाजा है जिस में इस प्रकार की गजघटाओं से संकीर्ण है भूमिपृष्ठ जिस में, घोड़ों के समूह के द्वारा शीघ्र ही तीक्ष्ण खुरों से उड़ाया गया है धूली का वितान जिस में, सघन रथों के ध्वजवस्त्रों के समूह से आच्छादित हो गया है दिङ्मण्डल जिस में, युद्ध में पटु वीरों के भुजमण्डलों के द्वारा उठाये गये हैं खड्ग जिस में इस प्रकार की राम-रावण सेना, दूसरे पक्ष में—पाण्डव-कौरव-सेना युद्ध के लिये उद्यत हो गयी ।

आमूलादजिरस्यान्तादाचार्येण प्रवर्तितम् ।
पद्मं परबलानां तत्पश्यतां विस्मयोऽभवत् ॥४॥

अजिरस्य युद्धप्राङ्गणस्य आमूलात् प्रारम्भतः आ अन्ताद् अन्तपर्यन्तम् आचार्येण धनुर्वेदशिक्षागुरुणा रावणेनेत्यर्थः, प्रवर्तितं सञ्चारितं तत् पद्मं पद्मसंख्याविशिष्टं पद्मसंख्यामितं सैन्यमिति यावत्, पक्षे—आचार्येण द्रोणाचार्येण प्रवर्तितं कृतं तत् पद्मं पद्मव्यूहं पश्यताम् अवलोकयतां परबलानां शत्रुसैन्यानाम् अर्थाद् रामसैन्यानां, पक्षे—

पाण्डवसैन्यानां विस्मयः आश्चर्यम् अभवत् अभूत् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

युद्धक्षेत्र के प्रारम्भ से अन्तपर्यन्त धनुर्वेदशिक्षा के गुरु रावण के द्वारा संचारित वह सेनाओं की पद्म-संख्या, दूसरे पक्ष में—द्रोणाचार्य के द्वारा निर्मित वह पद्म व्यूह देखने वाले शत्रु सैन्यों को, अर्थात् राम के सैन्यों को, दूसरे पक्ष में—पाण्डवों के सैन्यों को आश्चर्य हो गया ।

ततो युगान्तार्णव-धीरघोषा व्याधूत-नानायुधदुर्निरीक्ष्याः ।
अभ्युद्ययुर्भीममुखा नरेन्द्र-सेनाधिनाथाः परसैन्यवीरान् ॥५॥

ततस्तदनन्तरं युगान्तार्णव-धीरघोषाः युगान्तार्णवस्य इव प्रलयकालसमुद्रस्य इव धीरो मन्द्रो घोषः शब्दो येषां ते, व्याधूतनानायुधदुर्निरीक्ष्याः व्याधूतानि कम्पितानि यानि नानायुधानि अनेकशस्त्राणि वृक्षपर्वतशिखरादीनि, पक्षे—धनुर्बाणकरवालादीनि तैः दुर्निरीक्ष्याः अवलोकनानर्हाः, भीममुखाः भीमानि भयानकानि मुखानि वदनानि येषां ते, पक्षे—वृकोदरप्रभृतयः, नरेंद्रसेनाधिनाथाः नरेन्द्रस्य राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य सेनापतयः परसैन्यवीरान् शत्रुसेनायोधान् अभ्युद्ययुः आक्रामन्ति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

इस के बाद प्रलय-काल के समुद्र के समान गम्भीर शब्द करने वाले कँपाये गये अनेक हथियारों से दुर्निरीक्ष्य, भयङ्कर मुख वाले, राजा राम के सेनापति, दूसरे पक्ष में—भीम प्रभृति राजा युधिष्ठिर के सेनापतिगण शत्रु-सेना के योद्धाओं के ऊपर आक्रमण करने लगे ।

नानायान-भयानकं गुरु-धनुर्ज्याघोषघोरं नद-
द्रक्षोराजकुमाररक्षितबहुस्कन्धं द्विषां तद्बलम् ।
पद्मव्यूहरजोभरैः सर इव व्यापिञ्जरं कुञ्जरै-
राश्वे पवनात्मज-प्रभृतिभिर्वीरैर्विगाहोद्यतैः ॥६॥

नानायानभयानकं नानायानैरनेकवाहनैः भयानकं भयङ्करं गुरुधनुर्ज्याघोषघोरं गुरूणां महतां धनुषां चापानां ज्याघोषेण अटनीटङ्कारशब्देन, पक्षे—गुरोर्द्रोणाचार्यस्य अटनीटङ्कारशब्देन घोरं भयङ्करं नदद्रक्षोराकुमाररक्षितबहुस्कन्धं नदन्ति शब्दं कुर्वन्ति यानि रक्षांसि तेषां राजा रावणः तस्य कुमारैः पुत्रैः, पक्षे—नदन्ति गर्जन्ति रक्षांसि

राक्षसाः यस्मिन् तत्, राजकुमारैः दुर्योधनादिभिः रक्षिताः निर्विघ्नीकृताः बहवः अनेके स्कन्धाः सैन्यसमूहाः यस्मिन् तत्, "स्कन्धः स्यान्नृपतावंसे संपरायसमूहयोः। काये तरुप्रकाण्डे च भद्रादौ छन्दसो भिदि" इति मेदिनी, पद्मव्यूहरजोभरैः कमलसमूह-पराग-निचयैः व्यापिञ्जरं कपिशवर्णं सरः कासारः विगाहोद्यतैः बिलोडनतत्परैः कुञ्जरैरिव हस्तिभिरिव विगाहोद्यतैः सैन्यमर्दनतत्परैः पवनात्मजप्रभृतिभिर्हनुमदादिभिः, पक्षे—भीमादिभिः वीरैः योद्धृभिः पद्मव्यूहरजोभरैः पद्मव्यूहस्य पद्मसंख्याकसमूहस्य, पक्षे—पद्मनामकसैन्यसंनिवेशविशेषस्य रजोभरैः धूलीसमूहैः व्यापिञ्जरं हरितालवर्णीकृतं द्विषां शत्रूणां रावणादीनां, पक्षे—दुर्योधनादीनां तद्बलं तत् सैन्यम् आवव्रे वेष्टितमभूत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

अनेकवाहनों से भयङ्कर, बडे बड़े धनुषों की, दूसरे पक्ष में—गुरुद्रोणाचार्य के धनुषों की प्रत्यंचा के शब्द से भयङ्कर, गरजते हुए राक्षसों के राजा रावण के कुमारों से, दूसरे पक्ष में—गरजते हुए राक्षस हैं जिस में, तथा राजकुमार दुर्योधनादिकों से सुरक्षित हैं बहुत से सैन्यसमूह जिस में, कमलसमूह के परागनिकरों से पीले रङ्ग का सरोवर जैसे विलोड़न करने के लिए उद्यत हाथियों से उसी प्रकार सैन्यमर्दन करने के लिये उद्यत हनुमदादि वीरों के द्वारा, दूसरे पक्ष में—भीमादि वीरों के द्वारा पद्मसंख्याकसैन्यसमूह की, दूसरे पक्ष में—पद्मनामकसैन्य-व्यूह की धूली के समूह से धूसरित बनायी गयी वह शत्रुओं की सेना (रावणादिकों की सेना, दूसरे पक्ष में—दुर्योधनादिकों की सेना) घेर ली गई।

महीमहाभारनिरासहेतुमाकल्पमाकल्पमनल्पकीर्त्तेः ।
सुराङ्गनासङ्गफलाय काले संग्रामयज्ञं बलिनो वितेनुः ॥७॥

बलिनः बलवन्तो वीराः काले उचितसमये महीमहाभारनिरासहेतुं मह्याः पृथिव्याः महाभारस्य अतिगुरुत्वस्य निरासहेतुं निराकरणकारणम्, अनल्पकीर्त्तेः महतो यशसः आकल्पं कल्पसमाप्तिं यावत् आकल्पं प्रसाधनम्, सुराङ्गनासङ्गफलाय देवयोषित्सङ्गमरूप-फलप्राप्तये संग्रामयज्ञं युद्धस्वरूपं मखं वितेनुः चक्रुः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् रूपकमलङ्कारः।

बलशाली वीरों ने उचित समय पर पृथ्वी का बहुत बड़ा भार दूर करने का कारण, बहुत बड़ी कीर्ति की कल्पान्तकाल तक के लिये वेषरचना, अप्सराओं के सङ्गमरूपी फल के लिये युद्धरूपी यज्ञ किया।

द्विषां सुशर्मापनयैक-कर्ता समृद्धगोपालबल-प्रणोदी ।
देवान्तकः प्राप्य हरेः कुमारं विपक्षकम्पार्थमरुद्ध सैन्यैः ॥८॥

द्विषां शत्रूणां सुशर्मापनयैककर्ता सुशर्मणः सुसुखस्य अपनयैककर्ता निरासैककारकः, समृद्धगोपालबलप्रणोदी समृद्धम् उन्नतं यद् गोपालस्य पृथ्वीपालकस्य रामस्य बलं सैन्यं तत्प्रणोदी युद्धार्थं तत्प्रेरकः, देवान्तकः देवान्तकनामा रावणपुत्रः हरेः वानरस्य वालिनः कुमारं पुत्रमङ्गदमित्यर्थः, प्राप्य उपेत्य विपक्षकम्पार्थं शत्रूणां त्रासार्थं सैन्यैः सेनाभिः अरुद्ध निरुद्धवान् । अत्रापि तदेवोपजाति वृत्तम् ।

शत्रुओं का सुख दूर करने वाले राजा राम की समृद्ध सेना के प्रेरक देवान्तक नामवाले रावण के पुत्र ने वानर वालि के पुत्र को प्राप्त कर के शत्रुओं को त्रास देने के लिये सेनाओं से रोक दिया (घेर लिया)।

पक्षे—द्विषां शत्रूणाम् अपनयैककर्ता एकः अपकारकारकः समृद्धगोपालबलप्रणोदी समृद्धम् उन्नतं यद् गोपालस्य राज्ञो युधिष्ठिरस्य बलं सैन्यं तत्प्रणोदी तत्प्रेरकः उपद्रावक इति यावत्, देवान्तकः देवानामपि संहारकः सुशर्मा एतन्नामा त्रिगर्तराज; विपक्षकं शत्रुभूतं हरेः इन्द्रस्य कुमारं पुत्रं पार्थम् अर्जुनं प्राप्य उपेत्य सैन्यैः सेनाभिः अरुद्ध अरुणत् ।

शत्रुओं के प्रधान अपकारकर्ता, राजा युधिष्ठिर की उन्नतिशीलसेना के प्रेरक (उपद्रावक) देवाताओं का भी अन्त करने वाले सुशर्मानामक त्रिगर्तराज ने शत्रुरूप इन्द्र के पुत्र अर्जुन को प्राप्त कर के सेनाओ से घेर लिया।

समापतन्तः प्रसभं समन्तादपि द्विषच्चक्र-विभेददक्षाः ।
व्यूहं न भेत्तुं व्यषहन्त वीराः पद्मं मयूखा इव शीतरश्मेः ॥९॥

द्विषच्चक्रविभेददक्षाः अपि द्विषच्चक्रस्य शत्रुसैन्यस्य विभेदे विदारणे दक्षाः अपि निपुणाः अपि "चक्रः कोके पुमान् क्लीवं व्रजे सैन्य-रथाङ्गयोः । राष्ट्रे दम्भान्तरे कुम्भकारोपकरणास्त्रयोः" इति मेदिनी, समन्तात् चतुर्दिक्तः प्रसभं हठात् वेगेनेत्यर्थः, समापतन्तः आगच्छन्तः वीराः सुग्रीवादयः, पक्षे—भीमादयः शीतरश्मेः चन्द्रस्य मयूखाः किरणाः पद्ममिव कमलमिव व्यूहं सैन्यसमूहं, पक्षे—पद्मं व्यूहं पद्मनामकं सैन्यसंनिवेशं भेत्तुं त्रोटयितुं न व्यषहन्त न समर्था अभूवन् । अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

शत्रुओं की सेना के मर्दन करने में निपुण होने पर भी चारों तरफ से वेग से आते हुए सुग्रीव आदि वीरगण, दूसरे पक्ष में—भीम आदि वीरगण चन्द्रमा की किरणें जैसे कमल को नहीं भेद सकती हैं उसी प्रकार सैन्यसमूह को, दूसरे पक्ष में—पद्मनामक व्यूह को भेदने में अर्थात् तोड़ने में समर्थ नहीं हुए।

तमुद्यतस्यन्दनसिन्धुराजं व्यूहं द्विषां दुष्करभेदमन्यैः।
दृष्ट्वा सपत्नाकरणाय तस्य न्ययुङ्क्त राजा पुरुहूतपौत्रम् ॥१०॥

उद्यतस्यन्दनसिन्धुराजम् उद्यताः युद्धसंनद्धाः स्यन्दनाः रथा एव सिन्धुराजः समुद्रो यस्मिन् तम्, पक्षे—उद्यतः संनद्धः स्यन्दनः रथः यस्य एवंभूतः सिन्धुराजः जयद्रथः यस्मिन् तम्, अन्यैः अन्यवीरैः दुष्करभेदं दुष्करः कठिनः भेदः त्रोटनं यस्य तम्, तं प्रसिद्धं द्विषां शत्रूणां व्यूहं सैन्यसंनिवेशं दृष्ट्वा विलोक्य तस्य व्यूहस्य सपत्नाकरणाय विनाशाय राजा सुग्रीवः पुरुहूतपौत्रम् इन्द्रपौत्रमङ्गदम्, पक्षे—राजा युधिष्ठिरः पुरुहूतपौत्रम् इन्द्रस्य पौत्रम् अभिमन्युं न्ययुङ्क्त प्रेरितवान्। अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम्।

युद्ध के लिये संनद्ध रथरूपी समुद्र है जिस में, दूसरे पक्ष में—युद्ध के लिये संनद्ध है रथ जिस का इस प्रकार का जयद्रथ है जिस में, अन्य वीरों के द्वारा जिस का भेदना कठिन है, शत्रुओं के उस प्रसिद्ध व्यूह को देख कर उस व्यूह के विनाश के लिये राजा सुग्रीव ने इन्द्र के पौत्र अङ्गद को नियुक्त किया, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर ने इन्द्र के पौत्र अभिमन्यु को नियुक्त किया।

स संनिदेशं पितृसोदरस्य संस्थाप्य मालामिव मौलिदेशे।
तूर्णं रथेनेव मनोरथेन प्रत्यर्थिनां स्कन्धमभिप्रतस्थे ॥११॥

सोऽङ्गदः, पक्षे—अभिमन्युः पितृसोदरस्य सुग्रीवस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य संनिदेशम् आज्ञां मालामिव पुष्पमाल्यमिव मौलिदेशे शिरसि संस्थाप्य धृत्वा स्वीकृत्येत्यर्थः, रथेनेव रथसदृशेन मनोरथेन युद्धविजयाभिलाषेण, पक्षे—मनोरथेनेव युद्धविजयाभिलाषसदृशेन वेगवता रथेन स्यन्दनेन तूर्णं शीघ्रं प्रत्यर्थिनां शत्रूणां स्कन्धं समूहम् अभिप्रतस्थे प्रचलति स्म, "स्कन्धः स्यान्नृपतावंसे संपरायसमूहयोः" इति मेदिनी। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस अङ्गद ने पिता के सहोदर सुग्रीव की, दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु ने पिता के सहोदर युधिष्ठिर की आज्ञा माला के समान शिर पर धारण कर के अर्थात् स्वीकार कर के रथ के सदृश युद्धविजयाभिलाषा से, दूसरे पक्ष में—युद्ध-

विजयाभिलाषा के समान वेगशाली रथ से शीघ्र ही शत्रुओं के समूह के प्रति प्रस्यान किया।

स बाणवंशोच्चशरासनस्फुरत्कराग्ररंहःकृतमार्गमग्रतः ।
जवाज्जगाहे परमण्डलं बली सुरापगापूर इवाम्भसां निधिम् ॥१२॥

बली बलवान् सः अङ्गदः, पक्षे—अभिमन्युः अग्रतः अग्रे बाणवंशोच्चशरासनस्फुरत्कराग्ररंहःकृतमार्गं बाणैः बाणवृक्षैः वंशैः वेणुभिः उच्चा उदग्राः ये शराः शरकाण्डाः असनाः असनवृक्षाः तैश्च स्फुरन् स्फूर्तिमान् यः कराग्रः हस्ताग्रभागः तस्य रंहसा वेगेन कृतः निर्मितः मार्गः पन्था यस्मिन् तत्, पक्षे—बाणैः शरैः वंशोच्चशरासनेन वेणुनिर्मितोन्नतचापेन स्फुरन् दीप्तिमान् यः कराग्रः हस्ताग्रभागः तस्य रंहसा वेगेन कृतः निर्मितः मार्गः गमनावकाशो यस्मिन् तत् परमण्डलं शत्रुसमूहम् अम्भसां निधिं समुद्रं सुरापगापूर इव गङ्गाप्रवाह इव जवाद् वेगाद् जगाहे प्राविशत्। अत्र वंशस्थं वृत्तम् "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इतिलक्षणात्, उपमालङ्कारः।

बलवान् उस अङ्गद ने अपने आगे में बाण वृक्ष, बाँस ऊँचे ऊँचे शरपत तथा बड़े बड़े असननामक वृक्षों से स्फुरणशील हस्ताग्रभाग के वेग से बनाया गया है रास्ता जिस में, दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु ने अपने आगे में बाण तथा बाँस के बने हुए लम्बे धनुष पर चञ्चल हाथ के अग्रभाग के वेग से रास्ता बनाया गया है जिस में, उस शत्रु के समूह में समुद्र में गङ्गा प्रवाह के समान अतिवेग से प्रवेश किया।

तमाशु यान्तं रिपुचक्रमर्दनं तदानुगन्तुं व्यषहन्त नान्ये ।
द्राक् सिन्धुराजेन निरुद्धमार्गाः पुरा हनूमन्तमिवात्मवर्ग्याः ॥१३॥

तदा तस्मिन् समये रिपुचक्रमर्दनं शत्रुसैन्यविनाशकम् आशु यान्तं शीघ्रं गच्छन्तं तम् अङ्गदं, पक्षे—अभिमन्युम् सिन्धुराजेन समुद्रेण निरुद्धमार्गाः निरुद्धः अवरुद्धः मार्गः पन्थाः येषां ते आत्मवर्ग्याः स्वपक्षीयाः अन्ये नीलादयः पुरा पूर्वं सीतान्वेषणसमये हनूमन्तमिव मारुतिमिव सिन्धुराजेन सिन्धुप्रदेशस्याधिकारिणा देवान्तकेन निरुद्धमार्गाः अवरुद्धपथाः आत्मवर्ग्याः स्वपक्षीयाः अन्ये हनुमदादयः, पक्षे—सिन्धुराजेन जयद्रथेन निरुद्धमार्गाः अवरुद्धपथाः आत्मवर्ग्याः स्वपक्षीयाः अन्ये भीमादयः द्राक् शीघ्रम् अनुगन्तुं

पश्चाद्धावितुं न व्यषहन्त न शेकुः। अत्र वंशस्थोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्राणामुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

उस समय शत्रुओं का सैन्यमर्दन करने वाले, शीघ्रता से जाते हुए उस अङ्गद का पूर्व में सीतान्वेषण करने के समय में समुद्र से रास्ता रोके हुए स्वपक्ष वाले नील आदि जैसे हनुमान् का अनुगमन नहीं कर सके थे उसी प्रकार समुद्र प्रदेश के अधिकारी देवान्तक के द्वारा रास्ता रोके गये स्वपक्षीय हनुमान् आदि शीघ्रता से अनुगमन नहीं कर सके। दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु का जयद्रथ के द्वारा रास्ता रोके गये स्वपक्षीय भीम आदि शीघ्रता से अनुगमन नहीं कर सके।

परिभ्रमत्कुञ्जरनक्रचक्रं व्याविद्धवाजिव्रजवीचिमालम्।
विचिक्षिपे तेन विपक्षसैन्यं मन्थाचलेनेव महार्णवाम्भः॥१४॥

परिभ्रमत्कुञ्जरनक्रचक्रं परिभ्रमन्तः इतस्ततश्चलन्तः कुञ्जराः इव नक्रचक्रम् कुम्भीरसमूहः यस्मिन् तत् अर्णवाम्भः, पक्षे—परिभ्रमन्तः कुञ्जराः नक्रचक्रमिव यस्मिन् तत्, व्याविद्धवाजिव्रजवीचिमालं व्याविद्धाः विक्षिप्ताः वाजिव्रजाः इव अश्वसमूहाः इव वीचिमालाः तरङ्गपङ्क्तयः यस्मिन् तत् अर्णवाम्भः, पक्षे—व्याविद्धाः विक्षिप्ताः वाजिव्रजाः अश्वसमूहाः वीचिमाला इव तरङ्गपङ्क्तय इव यस्मिन् तत् एवंभूतं विपक्षसैन्यं शत्रूणां सैन्यं तेन अङ्गदेन, पक्षे—अभिमन्युना मन्थाचलेन मन्दरपर्वतेन महार्णवाम्भ इव महोदधिजलमिव विचिक्षिपे व्यालोडितम्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

इधर उधर घूमते हुए हाथी नाकों के समूह के समान हैं जिस में, समुद्र-जल के पक्ष में—इधर उधर घूमने वाले हाथी के समान हैं नाकों के समूह जिस में, इधर उधर बिखरे हुए घोड़े तरङ्ग-पङ्क्तियों के समान हैं जिस में, समुद्र जल के पक्ष में—इधर उधर बिखरे हुए घोड़ों के समान हैं तरङ्गपङ्क्तियाँ जिस में इस प्रकार की शत्रुसेना उस अङ्गद के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु के द्वारा मन्दराचल के द्वारा समुद्रजल के समान मथ डाली गयी।

वीरान् बहून् बाहुबलेन मुख्यान्
निघ्नन्तमेतं रणवेगनिघ्नम्।
न वीक्षितुं स्म प्रभवन्त्यमित्रा
नैदाघमर्कं नभसीव भान्तम्॥१५॥

रणवेगनिघ्नं युद्धावेशपरवशम् "अधीनो निघ्न आयत्तः" इत्यमरः, बाहुबलेन भुजयोः सामर्थ्येन मुख्यान् प्रधानान् बहून् अनेकान्

वीरान् योधान् निघ्नन्तं मारयन्तम् एतम् अङ्गदं, पक्षे—अभिमन्युम् अमित्राः शत्रवः नभसि आकाशे भान्तं प्रदीप्तं नैदाघं ग्रीष्मर्तुसम्बन्धिनम् अर्कमिव सूर्यमिव वीक्षितुं द्रष्टुं न प्रभवन्ति स्म न समर्था बभूवुः। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः।

युद्ध-वेग के अधीन, बाहुबल से मुख्य मुख्य बहुत वीरों को मारते हुए उस अङ्गद को, दूसरे पक्ष में—इस अभिमन्यु को शत्रुगण आकाश में चमकने वाले ग्रीष्मऋतुसम्बन्धी सूर्य के समान देखने में समर्थ नहीं हुए।

मातङ्गैरिव गण्डशैलवलिताः सिन्दूरसान्द्रत्विषः
कीर्णा भूषणभीषणै र्भटभुजैर्वेल्लद्भुजङ्गप्रभैः।
व्याकृष्टध्वजकाननाः शरधनुश्चक्रासिनक्राकुलाः
संरुद्धध्वजिनीपथा रुधिरजाः प्रोहुर्महासिन्धवः ॥१६॥

मातङ्गैः गजैः मृतगजैरिति भावः, गण्डशैलवलिता इव पर्वतच्युतस्थूलोपलयुक्ता इव सिन्दूरसान्द्रत्विषः सिन्दूरवत्सान्द्रा घना त्विट् कान्ति र्यासाम् ताः, भूषणभीषणैः आभूषणेन भयङ्करैः अत एव वेल्लद्भुजङ्गप्रभैः सञ्चरत्सर्पतुल्यैः भटभुजैः भटानां वीराणां भुजैः बाहुभिः कीर्णाः व्याप्ताः, व्याकृष्टध्वजकाननाः व्याकृष्टानि प्रवाहवेगेनाहृत्य नीतानि ध्वजकाननानि ध्वजसमूहाः याभिस्ताः, शरधनुश्चक्रासिनक्राकुलाः शराः बाणाः धनुंषि चापानि चक्राणि वर्तुलायुधविशेषाः असयः खड्गा एव नक्राः कुम्भीलाः तैः आकुलाः पूर्णाः, संरुद्धध्वजिनीपथाः संरुद्धाः निरवकाशीकृताः ध्वजिनीपथाः सेनासञ्चारमार्गाः याभिस्ताः, एवंभूताः रुधिरजाः शोणितसम्भवाः महासिन्धवः महानद्यः प्रोहुः वहन्ति स्म। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उत्प्रेक्षोपमारूपकालङ्काराणां संकरः।

मरे हुए हाथियों के द्वारा बड़े चट्टानों से संयुक्त के समान, सिन्दूर के समान गाढी कान्ति वाली, भूषणों के द्वारा भयानक अत एव संचरणशील साँपों के समान वीरों की भुजाओं से व्याप्त, ध्वजाओं का समूह वहाने वाली, बाण धनुष चक्र तथा तलवार रूपी नाकों से भरी हुई, सेना का रास्ता रोकने वाली उस प्रकार की शोणित से उत्पन्न नदियाँ वहने लगीं।

विरोधिनां निकरमपोढलक्ष्मणां
वितन्वता प्रसभमनेन वैरिणः।

परश्शताः समरतले निपातिताः
प्रफुल्लभूरुह इव चण्डवायुना ॥१७॥

विरोधिनां शत्रूणां निकरं समूहम् अपोढलक्ष्मणं सश्रीकजन-रहितं, पक्षे—दुर्योधनात्मजलक्ष्मणशून्यं मृतलक्ष्मणमिति भावः, "लक्ष्मणा त्वौषधीभेदे सारस्यामपि योषिति । रामभ्रातरि पुंसि स्यात्सश्रीके चाभिधेयवत्" इति मेदिनी, वितन्वता कुर्वता अनेन अङ्गदेन, पक्षे—अभिमन्युना समरतले युद्धस्थले प्रसभं हठात् पर-श्शताः शतात् परे बहव इत्यर्थः । वैरिणः शत्रवः, चण्डवायुना अति-वेगवता पवनेन प्रफुल्लभूरुह इव विकसितवृक्षा इव निपातिताः भूतल-शायिनः कृताः मारिता इति यावत् । अत्र रुचिरावृत्तं "चतुर्ग्रहैर्यति रुचिरा जभौ स्जगाः" इति लक्षणात् उपमालङ्कारः ।

शत्रुओं के समूह को सश्रीकजन से रहित करने वाले उस अङ्गद के द्वारा, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण से रहित करने वाले उस अभिमन्यु के द्वारा युद्धक्षेत्र में हठात् सैकड़ों शत्रु जैसे प्रचण्ड वायु के द्वारा विकसित वृक्ष गिराये जाते हैं उसी प्रकार धराशायी कर दिये गये ।

वीरवर्गैकनिर्घातं निपातितबृहद्बलम् ।
द्विषन्नरान्तकः प्राप तं दुःशासनसंभवः ॥१८॥

दुःशाशनसंभवः दुष्टं शासनं यस्य स दुःशासनः रावणः सः सम्भवः उत्पत्तिस्थानं यस्य सः रावणपुत्रः द्विषन् शत्रुः नरान्तकः नरान्तकनामा वीरवर्गैकनिर्घातं वीरवर्गेषु शूरसमूहेषु एकः निर्घातः प्रहारो यस्य तम् निपातितबृहद्बलं निपातितानि मारितानि बृहन्ति महान्ति बलानि सैन्यानि येन तम्, अङ्गदं प्राप प्राप्तवान् । अत्रा-नुष्टुप् छन्दः ।

दूषित है शासन जिस का उस रावण का पुत्र शत्रुभूत नरान्तक, वीरों के समूह के ऊपर एक ही प्रहार करने वाले तथा बहुत बड़ी सेना के मारने वाले उस अङ्गद के पास पहुँचा ।

पक्षे—द्विषन्नरान्तकः द्विषतां शत्रुभूतानां नराणाम् अन्तकः यमस्वरूपः दुःशासनसंभवः दुःशासनपुत्रः दोषणनामा वीरवर्गैक-निर्घातं वीरवर्गेषु शूरसमूहेषु एकः अद्वितीयः निर्घातः प्रहारः यस्य तं, निपातितबृहद्बलं निपातितः मारितः बृहद्बलः बृहद्बलनामा राजा येन तम्, तम् अभिमन्युं प्राप उपेयिवान् ।

शत्रुभूत मनुष्यों के लिये यमस्वरूप दुःशासन का पुत्र दोषण, वीरसमूहों के ऊपर एक ही प्रहार करने वाले तथा बृहद्बलनामक राजा के मारने वाले उस अभिमन्यु के पास पहुँचा।

यशोनिधानस्य निदानभूतं जगत्त्रयीविस्मयनीयकीर्ति ।
सुराङ्गनालोचनलोभहेतु तयोरभूत् संगरकर्म भीमम् ॥१६॥

तयोः नरान्तकाङ्गदयोः, पक्षे—अभिमन्युदोषणयोः यशोनिधानस्य यशः कीर्तिरेव निधानं निधिः तस्य निदानभूतम् आदिकारणस्वरूपं "निदानं त्वादिकारणम्" इत्यमरः, जगत्त्रयीविस्मयनीयकीर्ति जगत्त्रय्याः त्रिजगतां विस्मयनीया विस्मापनीया कीर्तिर्यशः यस्मिन् तत्, सुराङ्गनालोचनलोभहेतु सुराङ्गनानां देवयोषितां लोचनानां नयनानां लोभस्य लिप्सायाः हेतवः यस्मिन् तत् भीमं भयङ्करं संगरकर्म युद्धकार्यम् अभूत् प्रवृत्तम्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उस नरान्तक तथा अङ्गद का, दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु तथा दोषण का यशरूपी निधि का आदिकारण, तीनों भुवनों के आश्चर्य करने वाली कीर्ति है जिस में, देवाङ्गनाओं के लोचनों के लोभ के कारण हैं जिस में इस प्रकार का भयङ्कर युद्धकार्य हुआ।

मिथः समानं कृतसंप्रहारौ दिव्यैर्जनैर्व्याहृतसाधुवादौ ।
जगत्प्रतिष्ठापितशुद्धकीर्ती स्वस्थावभूतामचिरादुभौ तौ ॥२०॥

मिथः परस्परं समानं तुल्यं यथा स्यात्तथा कृतसंप्रहारौ कृतः संप्रहारो याभ्यां तौ दिव्यैर्जनैः आकाशचारिभिर्देवैः व्याहृतसाधुवादौ व्याहृतः उक्तः साधुवादः प्रशंसाशब्दः ययोस्तौ, जगत्प्रतिष्ठापितशुद्धकीर्त्ती जगति संसारे प्रतिष्ठापिता स्थिरीकृता शुद्धा विमला कीर्तिर्यशः याभ्यां तौ, उभौ द्वावपि अङ्गदनरान्तकौ, पक्षे—अभिमन्युदोषणौ अचिरात् तूर्णमेव स्वस्थौ अभूताम् अङ्गदः स्वस्थः स्वास्थ्ययुक्तः अभवत् प्रसन्नोऽभवदिति यावत्, नरान्तकश्च स्वःस्थः स्वर्गस्थितः अभवत् मृतः इति तात्पर्यम्, अत्रैकस्मिन्नर्थे "खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य" इति वैकल्पिकविसर्गलोपोऽवगन्तव्यः। पक्षे—अभिमन्युः स्वःस्थः स्वर्गस्थितोऽभवत् तथा दोषणः स्वस्थः प्रकृतिस्थो जातः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् श्लेषोऽलङ्कारः। अयमलङ्कारस्तु प्रायः सर्वत्रैवास्मिन् काव्ये।

परस्पर समान रूप से प्रहार करने वाले, आकाशचारि देवों के द्वारा कहा गया है साधुवाद अर्थात् प्रशंसा का वचन जिन का, संसार में स्वच्छ कीर्ति स्थापित करने वाले दोनों वे अङ्गद तथा नरान्तक स्वस्थ हो गये अर्थात् अङ्गद स्वस्थचित्त प्रसन्न हो गये और नरान्तक स्वर्गवासी हो गया, दूसरे पक्ष में—अभिमन्यु स्वर्गवासी हो गये और दोषण स्वस्थचित्त हो गया।

तदा सौभद्रमाकर्ण्य कुमारं निहतं परैः।
शुशोच राजा चित्तेन व्याकुलेन दशाननः ॥२१॥

तदा तस्मिन् समये असौ दशाननः दशमुखः राजा रावणः भद्रं कल्याणिनं कुमारं पुत्रं नरान्तकं, पक्षे—दशाननः दशायाः कष्टमयपरिस्थितेः अननं प्राणनं यस्मात् सः राजा युधिष्ठिरः सौभद्रं सुभद्रायाः अपत्यं कुमारं पुत्रम् अभिमन्युं परैः शत्रुभिः निहतं मारितम् आकर्ण्य श्रुत्वा व्याकुलेन अपर्यवस्थितेन चित्तेन मनसा शुशोच शोकं चकार। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

उस समय में इस दशमुख राजा रावण ने कल्याणी पुत्र नरान्तक को, दूसरे पक्ष में—कष्टमय दशा के भोग करने वाले राजा युधिष्ठिर ने सुभद्रा के पुत्र कुमार अभिमन्यु को शत्रुओं से मारे हुए सुन कर व्याकुल मन से शोक मनाया।

विनीयमानस्य सुहृद्वचोभिरशान्तशोकानलधूमितस्य।
निबद्धवैरस्य विरोधिवर्गैर्न स्वास्थ्यमासीत्पितुरस्य चित्ते ॥२२॥

सुहृद्वचोभिः मित्राणां वचनैः, पक्षे—कृष्णस्य वचनैः विनीयमानस्य उपदिश्यमानस्य, तथापि अशान्तशोकानलधूमितस्य अशान्तः अनिर्वाणः यः शोकानलः शोकवह्निः तेन धूमितस्य धूमेनेवान्धीभूतस्य विरोधिवर्गैः शत्रुसमूहैः निबद्धवैरस्य तत्प्रतिशोधार्थं दृढीकृतवैरभावस्य अस्य नरान्तकस्य पितुः रावणस्य, पक्षे—अस्याभिमन्योः पितुरर्जुनस्य चित्ते मनसि स्वास्थ्यं स्वस्थता शान्तिरिति यावत् न आसीत् नाभवत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

मित्रों के वचनों से, दूसरे पक्ष में—कृष्ण के वचनों से उपदेश दिये जाने वाले, तथापि न शान्त हुए शोकाग्नि से अन्धा बने हुए तथा शत्रुओं के साथ दृढ़ वैरभाव धारण करने वाले उस नरान्तक के पिता रावण के मन में, दूसरे पक्ष में—उस अभिमन्यु के पिता अर्जुन के मन में शान्ति नहीं हुई।

प्रधानहेतुभूतस्य निजात्मजनिपातने ।
पराक्रमं न ममृषे वृद्धक्षत्रात्मजस्य सः ॥२३॥

सः रावणः, पक्षे—अर्जुनः निजात्मजनिपातने निजात्मजस्य स्वपुत्रस्य नरान्तकस्य, पक्षे—अभिमन्योः निपातने मारणे प्रधानहेतुभूतस्य मुख्यकारणस्वरूपस्य वृद्धक्षत्रात्मजस्य वृद्धः पुराणः क्षत्रः क्षत्रियः दशरथः तस्य आत्मजस्य पुत्रस्य रामस्य, पक्षे—बृहद्रथनामा सिन्धुराजः जयद्रथस्य पिता तस्यात्मजस्य पुत्रस्य जयद्रथस्य पराक्रमं पौरुषं न ममृषे न सोढवान् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

उस रावण ने अपने पुत्र नरान्तक के मारने में, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन ने अपने पुत्र अभिमन्यु के मारने में प्रधान कारणभूत बुड्ढे क्षत्री दशरथ के पुत्र राम का, दूसरे पक्ष में—बृहद्रथ नामक राजा के पुत्र जयद्रथ का पराक्रम नहीं सहन किया ।

औद्धत्यपश्चात्कृतसिन्धुराजे पुनः प्रतिद्वन्द्विनि वैरिचक्रे ।
रणाङ्गणं प्राप नरेन्द्रसेना प्रातर्दिवं भानुमतः प्रभेव ॥२४॥

औद्धत्यपश्चात्कृतसिन्धुराजे औद्धत्येन आडम्बरेण पश्चात्कृतः अधः कृतः सिन्धुराजः समुद्रो येन तस्मिन् , पक्षे-औद्धत्येन बलदर्पाडम्बरेण पश्चात्कृतः पृष्ठभागे स्थापितः सिन्धुराजो जयद्रथो येन तस्मिन् , वैरिचक्रे शत्रुसैन्ये प्रतिद्वन्द्विनि संघर्षधारके सति नरेन्द्रसेना राज्ञो रामस्य सेना, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य सेना पुनः पुनरपि प्रातः प्रातःकाले भानुमतः सूर्यस्य प्रभा कान्तिः दिवमिव आकाशमिव रणाङ्गणं युद्धक्षेत्रं प्राप प्राप्तवती । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

आडम्बर से समुद्र को नीचा दिखानेवाले; दूसरे पक्ष में--बलदर्प के आडम्बर से जयद्रथ को पृष्ठभाग में स्थापित कर के रखने वाले शत्रु-सैन्य के संघर्ष धारण करने पर अर्थात् युद्धस्थल में मोर्चे पर आ जाने पर राजा राम की सेना, दूसरे पक्ष में--राजा युधिष्ठिर की सेना प्रातःकाल सूर्य की प्रभा जैसे आकाश में पहुँचती है उसी प्रकार फिर युद्धस्थल में पहुँची ।

अथातिकायस्य जयद्रथस्य वधाय वेगेन कृतप्रतिज्ञः ।
धनुर्विधुन्वन्विजयस्थवीयः परान्स राजावरजोऽभ्ययुङ्क्त ॥२५॥

अथ—अनन्तरं जयद्रथस्य जयन् शत्रून् अभिभवन् रथः स्यन्दनो यस्य तस्य अतिकायस्य अतिकायनाम्नो रावणपुत्रस्य वधाय मार-

णाय कृत प्रतिज्ञः कृता प्रतिज्ञा सन्धा येन सः विजयस्थवीयः विजये विशिष्टे जये स्थवीयः स्थिरतरं धनुः चापं विधुन्वन् कम्पयन् राजावरजः राज्ञो रामस्य अवरजः अनुजः स लक्ष्मणः परान् शत्रून् वेगेन तीव्रगत्या अभ्ययुङ्क्त अभियुक्तवान् आक्रान्तवानिति यावत्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

इस के बाद विजयशीलरथवाले अतिकाय नामक रावणकुमार का बध करने के लिये विजय-करने में सुस्थिर धनुष कँपाते हुए राजा राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने शत्रुओं के ऊपर तेजी से आक्रमण किया।

पक्षे—अथ अनन्तरम् अतिकायस्य अतिशयितशरीरस्य जयद्रथस्य जयद्रथनाम्नः सिन्धुराजस्य वधाय मारणाय कृतप्रतिज्ञः प्रतिज्ञाधारकः स्थवीयः स्थिरतरं धनुः गाण्डीवाख्यं चापं विधुन्वन् कम्पयन् राजावरजः राज्ञो युधिष्ठिरस्य अवरजः कनिष्ठो भ्राता सः प्रसिद्धः विजयः अर्जुनः, एकस्मिन् पक्षे—विजय इत्यत्र "खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः" इत्यनेन विसर्गलोपो बोद्धव्यः, परान् शत्रून् वेगेन तीव्रगत्या अभ्ययुङ्क्त आक्रान्तवान्।

इस के बाद बहुत बड़े शरीरवाले जयद्रथ का वध करने के लिये प्रतिज्ञा करने वाले सुदृढ गाण्डीव धनुष कँपाते हुए राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन ने शत्रुओं के ऊपर तेजी से आक्रमण कर दिया।

गुरुणा कृतवर्मणा सयोधि-प्रतिपक्षेण सुदक्षिणेन भूयः।
स विधाय महाहवं मनस्वी परसेनाम्बुधिमध्यमाजगाहे ॥२६॥

सयोधिप्रतिपक्षेण वीरशत्रुसहितेन गुरुणा श्रेष्ठेन कृतवर्मणा धृतकवचेन सुदक्षिणेन दक्षिणदिगुत्पन्नेन सह "दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु" इति मेदिनी, राक्षसेन सहेत्यर्थः, पक्षे—सयोधिप्रतिपक्षेण वीरशत्रुसहितेन सुदक्षिणेन अतिनिपुणेन गुरुणा द्रोणाचार्येण कृतवर्मणा कृतवर्मनामकेन योधेन सह भूयः अत्यर्थं यथा स्यात्तथा महाहवं महायुद्धं विधाय कृत्वा मनस्वी मानी सः लक्ष्मणः, पक्षे—अर्जुनः परसेनाम्बुधिमध्यं शत्रुसैन्यसमुद्रान्तःस्थानम् आजगाहे प्रविवेश। अत्र मालभारिणीनाम विषमपदवृत्तं "विषमे ससजा यदा गुरू चेत् सभरा येन तु मालभारिणीयम्" इति लक्षणात्।

वीर शत्रुसहित श्रेष्ठ तथा कवच धारण करने वाले दक्षिण दिशा में उत्पन्न हुए राक्षसों के साथ, दूसरे पक्ष में—वीर-शत्रुसहित अत्यन्त निपुण द्रोणा-

चार्य तथा कृतवर्मा के साथ अत्यन्त महायुद्ध कर के मानवाले लक्ष्मण, दूसरे पक्ष में--वह अर्जुन शत्रुसेनारूपी समुद्र के बीच में पहुँच गये ।

अकलितलघुपातं संप्रविष्टेन दूरा-
दलघु विकिरतोच्चैर्विश्वतो विक्रमाग्निम् ।
रणभुवि परचक्रं व्याकुलं तेन तेने
त्रिपुरमिव पुरस्तात्पावकेन स्मरारेः ॥२७॥

अकलितलघुपातम् अकलितः नावधारितः लघु क्षिप्रं पातः आपतनम् उपस्थितिरिति यावत्, यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा संप्रविष्टेन अन्तर्गतेन, रणभुवि युद्धक्षेत्रे विश्वतः सर्वस्मिन् भागे, अत्र सप्तम्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिः, दूरात् दूरस्थाने अलघु नास्ति लघु क्षिप्रं यस्मात्तदलघु अतिक्षिप्रमित्यर्थः, उच्चैः महान्तं विक्रमाग्निं पराक्रमानलं विकिरता विक्षिपता तेन लक्ष्मणेन, पक्षे—अर्जुनेन पुरस्तात् पूर्वं स्मरारेः शिवस्य पावकेन बाणाग्निना त्रिपुरमिव त्रिपुरासुरस्य त्रीणि पुराणि इव परचक्रं शत्रुसैन्यं व्याकुलम् अपर्यवस्थितं तेने अकारि । अत्र मालिनीवृत्तं "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इतिलक्षणात् उपमालङ्कारः ।

शत्रुओं के द्वारा अनिर्धारित है शीघ्र आगमन जिस में इस प्रकार से प्रवेश किये हुए, युद्धक्षेत्र के सभी भागों में दूर स्थान तक अतिशीघ्रता से बहुत बड़े पराक्रम रूपी अग्नि को फेंकने वाले उस लक्ष्मण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन के द्वारा, पूर्व में शिव के बाणाग्नि के द्वारा त्रिपुरासुर के तीनों नगर के समान शत्रुसैन्य व्याकुल कर दिया गया ।

विन्दानुविन्दप्रतियोधिभेत्ता प्रणीतसंशप्तकजीवमोक्षः ।
सुदर्शनोद्योगहरः स सद्यश्चकार दुर्योधनमानभङ्गम् ॥२८॥

विन्दानुविन्दप्रतियोधिभेत्ता विन्दानुविन्दयोः विन्दानुविन्दनामकयोः राक्षसयोः, पक्षे—विन्दानुविन्दनामकयोः अवन्तीराजकुमारयोः प्रतियोधिनोः शत्रुवीरयोः भेत्ता विदारकः, प्रणीतसंशप्तकजीवमोक्षः प्रणीतः कृतः संशप्तकानां युद्धादनिवर्तिनां वीराणां जीवमोक्षः मृत्युर्येन सः "संशप्तकास्तु समयात्संग्रामादनिवर्तिनः" इत्यमरः, पक्षे—प्रणीतः कृतः संशप्तकानां सुशर्माधिष्ठितसैनिकानां जीवमोक्षः मरणं येन सः, सुदर्शनोद्योगहरः सुष्ठु शोभनं दर्शनम् अवलोकनं येषां ते सुदर्शनाः तेषां सुदर्शनानां सुन्दराणां राक्षसानाम् उद्योगं प्रयत्नं हरति

विनाशयतीति सुदर्शनोद्योगहरः स लक्ष्मणः, पक्षे—सुदर्शनस्य सुदर्शननाम्नः कृष्णचक्रस्य उद्योगं प्रयत्नं हरति दूरीकरोतीति सुदर्शनोद्योगहरः स्वपराक्रमेण सर्वतत्कर्तव्यसाधनात्कृष्णस्य सुदर्शनचक्रं प्रयत्नरहितं करोतीति भावः, सः अर्जुनः सद्यः तत्क्षणमेव दुर्योधनमानभङ्गं दुःखेन योधनं यस्य स दुर्योधनः रावणः, पक्षे—दुर्योधनः धृतराष्ट्रात्मजः तस्य मानभङ्गम् अभिमानमर्दनं चकार कृतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

विन्द-अनुविन्द नामक दोनों शत्रुपक्षीय वीर राक्षसों का, दूसरे पक्ष में—विन्द-अनुविन्द नामक दोनों अवन्ती-राजकुमार शत्रुपक्षीय वीरों का संहार करने वाले, युद्ध से न लौटने वाले फिर राक्षसों का, दूसरे पक्ष में—सुशर्मा के अधिकार में रहनेवाले वीर सैनिकों का जीवननाश करने वाले, देखने में सुन्दर, राक्षसों का प्रयत्न नष्ट करने वाले उस लक्ष्मण ने, उसी क्षण दुःख से युद्ध करने योग्य रावण का अभिमान भङ्ग कर दिया, दूसरे पक्ष में—अपने पराक्रमों से सभी कार्य सम्पादन कर लेने के कारण कृष्ण के सुदर्शन चक्र को प्रयत्नरहित बना देनेवाले उस अर्जुन ने उसी क्षण राजा दुर्योधन का अभिमान भङ्ग कर दिया।

तिरोहितार्कांशुचयैस्तदीयैर्निवार्यमाणे विशिखैर्विपक्षे ।
श्रमं विनीयोर्जितविक्रमस्था रयेण चक्रुर्हरयोऽस्य हर्षम् ॥२९॥

तिरोहितार्कांशुचयैः तिरोहितः आच्छादितः अर्कांशुचयः सूर्यकिरणसमूहः यैस्तैः तदीयैः तस्य लक्ष्मणस्य सम्बन्धिभिः, पक्षे—तस्य अर्जुनस्य सम्बन्धिभिः विशिखैः बाणैः विपक्षे शत्रौ निवार्यमाणे सति अपसारिते सति श्रमं विनीय शत्रुविजयेन क्लममपनीय, पक्षे—जलपानेन श्रमं दूरीकृत्य (अस्मिन् युद्धेऽर्जुनस्याश्वाः तृषार्ताः सन्तो रथवहनेऽसमर्था अभूवन् तदा श्रीकृष्णः पृथिवीतः पातालगङ्गाजलं निष्कास्य तान् जलं पाययित्वा तेषां क्लममपनिनाय इति भारती कथात्रानुसन्धेया) ऊर्जितविक्रमस्थाः वर्धितपराक्रमावस्थायिनः हरयः वानराः, पक्षे—अश्वाः रयेण स्ववेगेन अस्य लक्ष्मणस्य, पक्षे—अर्जुनस्य हर्षम् आनन्दं चक्रुः कृतवन्तः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

सूर्य की किरणों के समूह को आच्छादित करनेवाले उस लक्ष्मण के बाणों से, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन के बाणों से शत्रुओं का निवारण कर देने पर, शत्रुओं के ऊपर विजय होने से परिश्रममुक्त हो कर बढ़े हुए पराक्रमवाले वानरगण, दूसरे पक्ष में—जल पीने से श्रममुक्त हो कर बढ़े हुए पुरुषार्थ वाले

घोड़े अपने वेग से इस लक्ष्मण का, दूसरे पक्ष में—इस अर्जुन का आनन्द उत्पन्न किये।

यया जघान दुर्दर्शं वीराणामृषभं हरिम्।
तयैव जघ्ने गदया रणे मत्तः श्रुतायुधः ॥३०॥

रणे युद्धे मत्तः गर्वदृप्तः श्रुतायुधः श्रुतं जनेषु प्रसिद्धम् आयुधम् अस्त्रं यस्य सः कश्चिद्राक्षसः यया गदया दुर्दर्शं तेजसामाधिक्याद् द्रष्टुमशक्यं वीराणां शूराणाम् ऋषभं श्रेष्ठं हरिं वानरं सुग्रीवं जघान प्रहृतवान् तयैव गदया जघ्ने मारितः सः इति शेषः। तामेव गदां गृहीत्वा सुग्रीवेण स मारितः इत्यर्थः। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

युद्ध में बल-गर्व से मतवाला प्रसिद्ध अस्त्र वाले किसी राक्षस ने जिस गदा से अधिक तेजस्वी होने के कारण न देखने योग्य, वीरों में श्रेष्ठ वानर सुग्रीव के ऊपर प्रहार किया उसी गदा से वह मारा गया, अर्थात् उसी गदा से सुग्रीव ने उसे मार डाला।

पक्षे—रणे युद्धे श्रुतायुधः श्रुतायुधनामा कश्चित्क्षत्रियः मत्तः भ्रान्तः सन् यया वरदानप्राप्तया गदया गदास्त्रेण वीराणामृषभं वीरश्रेष्ठं दुर्दर्शं दुर्लभदर्शनं हरिं कृष्णं जघान प्राहरत् तयैव गदया जघ्ने मारितः स इति शेषः। श्रुतायुधो नाम कश्चित्क्षत्रियो महादेवाल्लब्धवरः यत् "यं कञ्चन युध्यमानं शत्रुम् अनया गदया हनिष्यसि स निश्चितमेव मरिष्यति, अयुध्यमानं चेत् प्रहरिष्यसि तर्हीयं परावृत्य त्वामेव मारयिष्यति" इति, श्रुतायुधोऽपि स्ववरदानप्रकारं विस्मृत्य अयमेव पाण्डवानां शक्तेर्मूलकारणमिति विचार्य अयुध्यमानं सारथिरूपेण पार्थरथोपरि तिष्ठन्तं कृष्णं तयैव गदया प्राहरत् अत एव परावृत्य तया गदया स मारितः, इति भारते।

युद्ध में श्रुतायुध नामक किसी क्षत्री ने भ्रान्त होकर वरदान के द्वारा प्राप्त जिस गदा से वीरों में श्रेष्ठ दुर्लभ-दर्शन वाले श्रीकृष्ण के ऊपर प्रहार किया उसी गदा से वह मारा गया।

श्रुतायुध नाम का कोई क्षत्री था जिसे महादेव के द्वारा गदा के साथ यह वरदान मिला था कि युद्ध करते हुए जिस किसी शत्रु के ऊपर इस से प्रहार करोगे वह अवश्य मरेगा, यदि युद्ध न करते हुए किसी को इस से मारोगे तो यह लौटकर तुम्हे मार डालेगी। श्रुतायुध ने अपने वरदान का प्रकार भूल कर 'यही कृष्ण पाण्डवों की शक्ति का मूल कारण है' यह सोच कर युद्ध न करते हुए

भी अर्जुन के रथ पर सारथी के रूप में बैठे हुए श्रीकृष्ण के ऊपर उसी गदा से प्रहार किया। फलतः लौट कर उसी गदा ने उस श्रुतायुध की जान ले ली।

अथ सङ्गररङ्गमभ्युपेतौ क्षपयामासतुरोजसा विपक्षम्।
पवमानशरीरजश्च भीमो युयुधानश्च पतिर्वरूथिनीनाम् ॥३१॥

अथ अनन्तरं पवमानशरीरजः पवनपुत्रो हनूमान्, पक्षे—पाण्डवमध्यमः युयुधानः युद्धं कुर्वन्, पक्षे—सात्यकिः, भीमः भयङ्करः, पक्षे—वृकोदरः वरूथिनीनां पतिः सेनापतिः नीलः, पक्षे—सात्यकिरेव सङ्गररङ्गं युद्धभूमिम् "रङ्गो ना रागे नृत्ये रणक्षितौ अस्त्री त्रपुणि" इति मेदिनी, अभ्युपेतौ प्राप्तौ सन्तौ ओजसा बलेन विपक्षं शत्रुं क्षपयामासतुः नाशयामासतुः। मालभारिणीवृत्तम्।

इस के बाद पवन के पुत्र हनुमान् युद्ध करते हुए तथा भयङ्कर सेनापति नील युद्ध भूमि में उपस्थित होकर अपने बल से शत्रु का संहार करने लगे।

दूसरे पक्ष में—इस के बाद पवन के पुत्र भीम तथा सेनापति सात्यकि युद्ध-भूमि में उपस्थित हो कर अपने बल से शत्रु का संहार करने लगे।

एकेन भग्नाङ्घ्रिपरंहसोच्चैरलं बलध्वंसकृता परेण।
ताभ्यां निरासेऽयुतवैरिवृन्दं यथान्धकारं शशिभास्कराभ्याम् ॥३२॥

उच्चैरधिकं यथा स्यात्तथा भग्नाङ्घ्रिपरंहसा भग्नः त्रोटितः, अङ्घ्रिपः वृक्षः येन एवंभूतं रंहः वेगो यस्य तेन एकेन हनुमता, पक्षे—भीमेन अलमत्यर्थं बलध्वंसकृता सैन्यसंहारकारिणा परेण अन्येन नीलेन, पक्षे—सात्यकिना, एवंप्रकारेण ताभ्यां हनुमन्नीलाभ्यां, पक्षे—भीमसात्यकिभ्याम् शशिभास्कराभ्यां चन्द्रसूर्याभ्याम् अन्धकारं यथा अन्धकारमिव अयुतवैरिवृन्दं दशसहस्रसैन्ययूथं निरासे निस्तीर्णं विनाशितमिति यावत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

अत्यन्त तोड़ डाले गये हैं पेड़ जिस से इस प्रकार के वेगवाले एक तथा अत्यधिक सैन्य संहार करनेवाले दूसरे इस प्रकार उन दोनों के द्वारा अर्थात् हनुमान् तथा नील के द्वारा, दूसरे पक्ष में—भीम तथा सात्यकि के द्वारा, सूर्य-चन्द्रमा के द्वारा जैसे अन्धकार नष्ट किया जाता है उसी प्रकार दस हजार सैन्य-समूह नष्ट कर दिया गया।

दधज्जिगीषाधृतिमाञ्जनेयः कृतावमानोऽपि स वृष्णिवीरः।
त्वाष्ट्रस्य वज्रीव रणे त्रिमूर्ध्नश्चिच्छेद भूरिश्रवसः शिरोधिम् ॥३३॥

जिगीषाधृतिं जिगीषया जेतुमिच्छया धृतिं धैर्यं दधत् धारयन् कृतावमानोऽपि कृतः अवमानः पराभवः येन सः एवंभूतोऽपि वृष्णिवीरः वृष्णिरिव पाण्डववद् वीरः "वृष्णिः पाण्डवचन्द्रयोः। त्रिषु ना यादवे मेषे" इति मेदिनी, आञ्जनेयः अञ्जनायाः पुत्रः सः हनूमान् , पक्षे—यः जने जनसमूहे धृतिमान् धैर्यशाली पराक्रमीत्यर्थः, जिगीषाः जेतुमिच्छाः दधत् धारयन् कृतावमानो कृतः अवमानः पराभवः यस्य एवंभूतः अपि वृष्णिवीरः यादववीरः सः सात्यकिः रणे युद्धे त्वष्टृनामकस्य मुनेः पुत्रस्य त्रिमूर्ध्नः त्रिशिरसः वज्रीव इन्द्र इव भूरिश्रवसः बहुकर्णस्य, पक्षे—भूरिश्रवाः सोमदत्तपुत्रः तस्य शिरोधिं कण्ठं चिच्छेद न्यकृन्तत्। "असियुद्धे भूरिश्रवाः सात्यकिं भूमौ निपात्य तस्य शिरश्छेत्तुमुद्यतोऽभूत् , ततः कृष्णप्रेरणयार्जुनो भूरिश्रवसः सखड्गं भुजमच्छिनत् पश्चादुत्थाय सात्यकिस्तस्य शिरश्चिच्छेद" इति भारते। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

जीतने की इच्छा से धैर्य धारण करने वाले, शत्रु का पराभव करने वाले पाण्डवार्जुन के समान वीर, अञ्जनी के पुत्र उस हनुमान् ने, दूसरे पक्ष में—जनसमूह के बीच में पराक्रम वाले, तथा जीतने की इच्छा धारण करने वाले, जिस का पराभव किया गया है उस प्रकार के यादववीर उस सात्यकि ने युद्ध में, त्वष्टा नामक मुनि के पुत्र त्रिशिरा का कण्ठ इन्द्र के समान बहुत कान वाले बहुकर्ण नामक राक्षस का, दूसरे पक्ष में—सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा का कण्ठ काट डाला।

तलवार के युद्ध में भूरिश्रवा सात्यकि को भूमि पर गिरा कर शिर काटने के लिये उद्यत हुआ, उसी समय कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने भूरिश्रवा की तलवार काट डाली, फिर सात्यकि ने उठ कर भूरिश्रवा का शिर काट डाला। यह कथा महाभारत में है।

प्राप्य भङ्गमिननन्दनाद् यशःपूरिताखिलजगन्महोदरात्।
नील एव पुनरुद्बभौ मणिः शाणघृष्ट इव भीमविक्रमः ॥३४॥

इननन्दनात् इनस्य राज्ञो रावणस्य "इनः पत्यौ नृपार्कयोः" इति मेदिनी, नन्दनात् पुत्रात् महोदरात् महोदरनामकात् भङ्गं पराजयं प्राप्य लब्ध्वा यशःपूरिताखिलजगत् यशसा कीर्त्या पूरितानि भरितानि अखिलानि सर्वाणि जगन्ति भुवनानि येन सः, भीमविक्रमः घोरपराक्रमः नील एव नीलनामा सेनापतिरेव शाणघृष्टः निकषघर्षितः

मणिरिव रत्नमिव पुनः पुनरपि उद्बभौ शुशुभे। अत्र रथोद्धतावृत्तं "रान्नराविह रथोद्धता लगौ" इति लक्षणात् उपमालङ्कारः।

राजा रावण के पुत्र महोदर से पराजय प्राप्त कर के अपनी कीर्त्ति से सभी भुवनों को भरने वाले तथा भयङ्कर पराक्रम वाले नील ही शान पर घिसे हुए मणि के समान फिर सुशोभित होने लगे।

पक्षे—यशःपूरिताखिलजगन्महोदरात् यशःपूरितं कीर्तिभरितम् अखिलानां सर्वेषां जगतां भुवनानां महोदरं महावकाशो येन तस्मात् इननन्दनात् सूर्यपुत्रात् कर्णात् भङ्गं पराजयं प्राप्य लब्ध्वा भीमविक्रमः एव भीमस्य वृकोदरस्य विक्रमः एव पराक्रमः एव शाणघृष्टः निकषघर्षितः नीलः नीलवर्णः मणिरिव रत्नमिव पुनः पुनरपि तदनन्तरमिति भावः उद्बभौ शोभते स्म। अस्मिन् दिने कर्णः बाणयुद्धे भीमं पराजित्य तत्कण्ठे धनुराधाय तमगृह्णात् पश्चात् मातुः कुन्त्याः वरदानं संस्मृत्य जीवन्तमेव तमत्यजत् नामारयत् इति भारते।

अपनी कीर्ति से सभी भुवनों का अवकाश भरने वाले सूर्यपुत्र कर्ण से पराजय प्राप्त कर के भीम का पराक्रम ही शान पर घिसे हुए नील मणि के समान फिर सुशोभित होने लगा।

अथ रिपुवधपुष्यद्भूमिपार्थः प्रसर्प-
त्प्रतिबलजलराशौ सायकैः साधिताध्वा।
त्वरितगति सुमित्रानन्दनः संप्रपेदे
तपन इव समीपं सिन्धुराजस्य शत्रोः ॥३५॥

अथ अनन्तरं रिपुवधपुष्यद्भूमिपार्थः रिपुवधेन शत्रुमारणेन पुष्यन् प्रवर्धमानः भूमिपस्य राज्ञो रामस्य अर्थः प्रयोजनं येन सः, प्रसर्पत्प्रतिबलजलराशौ प्रसर्पत् सञ्चरत् प्रतिबलं शत्रुसैन्यमेव जलराशिः समुद्रः तस्मिन् सायकैः बाणैः साधिताध्वा साधितः कृतः अध्वा मार्गः येन सः, सुमित्रानन्दनः सुमित्रापुत्रः लक्ष्मणः त्वरितगति त्वरिता वेगयुक्ता गतिः गमनं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, शत्रोः शोष्यजलाधारभूतत्वाद् शत्रुभूतस्य सिन्धुराजस्य समुद्रस्य समीपं निकटं तपन इव सूर्य इव शत्रोः द्विषतः अतिकायस्य समीपं संप्रपेदे प्राप्तवान्। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस के बाद शत्रुओं का वध करने से राजा राम का कार्य सिद्ध करनेवाले संचरणशील सेनारूपी समुद्र में बाणों से रास्ता बनाने वाले सुमित्रा के पुत्र

लक्ष्मण शीघ्रता से जैसे शत्रुभूत समुद्र के पास सूर्य पहुँचते हैं उसी प्रकार शत्रुभूत अतिकाय के समीप पहुँचे ।

पक्षे—अथ अनन्तरं प्रसर्पत्प्रतिबलजलराशौ प्रसर्पत् सञ्चरत् प्रतिबलमेव शत्रुसैन्यमेव जलराशिः समुद्रः तस्मिन् सायकैः बाणैः साधिताध्वा कृतमार्गः सुमित्रानन्दनः सु शोभनानां मित्राणां सुहृदाम् आनन्दनः आनन्दकर्ता पार्थः अर्जुनः शत्रोः शोष्यजलाधारभूतत्वात् शत्रुभूतस्य सिन्धुराजस्य समुद्रस्य समीपं निकटं तपन इव सूर्य इव रिपुवधपुष्यद्भूमि रिपुवधेन शत्रूणां मारणेन पुष्यन्ती पुष्टिं नीयमाना भूमिः पृथ्वी यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा त्वरितगति त्वरिता वेगवती गतिः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा शत्रोः शत्रुभूतस्य सिन्धुराजस्य जयद्रथस्य समीपं निकटं संप्रपेदे प्राप्तवान् ।

इस के बाद संचरणशील शत्रुसेनारूपी समुद्र में बाणों से रास्ता बनाने वाले, अच्छे मित्रों को आनन्द देने वाले अर्जुन शोषणीय जल का आधार होने से शत्रुभूत समुद्र के पास जैसे सूर्य पहुँचते हैं उसी प्रकार शत्रुओं के मारने से भूमि को पुष्ट बनाते हुए अत्यन्त शीघ्रता से शत्रुभूत जयद्रथ के पास पहुँचे ।

विद्युल्लेखाविलसितमिव व्योम्नि संदर्शयद्भि-
र्निर्विच्छेदप्रसरशलभश्रेणिशोभां वहद्भिः ।
जज्ञे जन्यं सममथ तयोरर्धमार्गे फलानां
संघट्टोद्यद्धुतवहशिखालीढपक्षैः पृषत्कैः ॥३६॥

अथ अनन्तरं तयोर्लक्ष्मणातिकाययोः, पक्षे—अर्जुनजयद्रथयोः व्योम्नि आकाशे विद्युल्लेखाविलसितमिव तडिद्रेखाप्रस्फुरणमिव संदर्शयद्भिः प्रकटयद्भिः, निर्विच्छेदप्रसरशलभश्रेणिशोभां निर्विच्छेदः अत्रुटितः प्रसरः प्रसरणं यस्याः एवंभूता या शलभश्रेणिः पतङ्गपरम्परा तस्याः शोभां छविं वहद्भिः धारयद्भिः, अर्धमार्गे गमनमध्यकालस्थितिस्थानभूताकाशे फलानां बाणमुखानां संघट्टोद्यद्धुतवहशिखालीढपक्षैः संघट्टेन संघर्षणेन उद्यन् उत्पद्यमानः यः हुतवहः अग्निः तस्य शिखाभिः ज्वालाभिः आलीढाः संलग्नाः पक्षाः वाजाः येषां तैः, "पक्षो वाजस्त्रिषूत्तरे" इत्यमरः, पृषत्कैः बाणैः "पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः" इत्यमरः, समं तुल्यमेव जन्यं युद्धं "युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्" इत्यमरः, जज्ञे प्रादुरभूत् । अत्र मन्दा-

क्रान्तावृत्तं "मन्दाक्रान्ता जलधि षडगै म्भौं नतौ ताद् गुरू चेत्" इति लक्षणात्, उत्प्रेक्षा निदर्शना चेत्यलङ्कारद्वयम्।

इस के बाद उस लक्ष्मण तथा अतिकाय का, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा जयद्रथ का आकाश में मानो विद्युल्लता का चमकना दिखलाते हुए, निर्विच्छिन्न प्रसारवाली पतङ्ग-परम्परा की शोभा धारण करने वाले, आधे रास्ते में बाणों के फलों के संघट्टन से उत्पन्न हुए अग्नि की ज्वाला से संलग्न पक्षवाले बाणों से समानरूप का युद्ध हुआ।

गगनातिविलङ्घिनातिवेगाद्धरिचक्रेण तिरोहिते पतङ्गे।
रजनीमुखशङ्कया जजृम्भे निजकालागमसत्वरो विपक्षः ॥३७॥

अतिवेगात् तीव्ररयेण गगनातिविलङ्घिना गगनस्य आकाशस्य अतिविलङ्घिना अत्यन्तलङ्घनशीलेन हरिचक्रेण वानरसैन्येन, पक्षे—कृष्णस्य सुदर्शनेन पतङ्गे सूर्ये तिरोहिते आच्छादिते सति रजनीमुखशङ्कया निशोपक्रमसन्देहेन निजकालागमसत्वरः स्वसमयागमनेन सत्वरः त्वरायुक्तः तमःस्वभावा राक्षसाः रात्रौ प्रबलाः भवन्ति इति, पक्षे—अर्जुनस्य प्रतिज्ञासीद् यद् अद्य चेत् सूर्ये तिष्ठति जयद्रथं न हन्याम् तर्हि स्वयमेव वह्नौ प्रविशेयम् अतः तद्दिनस्य स सूर्यास्तसमयो जयद्रथस्य स्वमहोत्सवस्य समय आसीत् इति च भावः। विपक्षः शत्रुरतिकायः, पक्षे—शत्रुर्जयद्रथः जजृम्भे विकसितोऽभूत् प्रसन्नोऽभूदिति यावत्। प्राणभयेन जयद्रथः शिबिरेऽदृश्योऽभूदत एव अर्जुनस्य प्रतिज्ञापूर्त्तिव्यग्रेण श्रीकृष्णेन सुदर्शनपिधानद्वारा सूर्यः आच्छादितः ततः समयमतिक्रान्तं ज्ञात्वा जयद्रथः प्रकटितोऽभूत् ततः सुदर्शनेऽपगते दिनमभवत् अतोऽर्जुनस्तं निहत्य स्वप्रतिज्ञामुदतरत्। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम्।

अत्यन्त वेग से आकाश का लङ्घन करने वाले वानर-सैन्य के द्वारा, दूसरे पक्ष में—कृष्ण के सुदर्शन चक्र के द्वारा सूर्य के छिप जाने पर रात्रि प्रारम्भ होने के सन्देह से, रात्रि में राक्षस प्रबल हो जाते हैं इसलिये अपना समय उपस्थित होने के कारण शीघ्रता से युक्त, दूसरे पक्ष में—अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि आज सूर्य अस्त होने के पहले यदि जयद्रथ को न मार सकूँगा तो स्वयं अग्नि में प्रवेश कर के मर जाऊँगा, इसलिये उस दिन का अस्तमन समय जयद्रथ के लिये अपना महोत्सव समय था, यही तात्पर्य है; शत्रु अतिकाय, दूसरे पक्ष में—शत्रु जयद्रथ अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

उस समय प्राण के भय से जयद्रथ शिबिर में छिप कर बैठ गया था। अत एव अर्जुन की प्रतिज्ञा-पूर्ति कैसे होगी, इस चिन्ता से श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र के द्वारा सूर्य को आच्छादित कर दिया, फिर सायं काल समझ कर अपने मारने के विषय में अर्जुन का समय बीता हुआ जान कर जयद्रथ प्रकट हो गया।

ततो महन्मन्त्रवदस्त्रमुग्रं संधाय सन्ध्यामुखसीम्नि शत्रोः।
मूर्धानमुद्दिश्य समीकमूर्ध्नि प्रायोजि पृथ्वीश्वरसोदरेण ॥३८॥

ततस्तदनन्तरं पृथ्वीश्वरसोदरेण पृथ्वीश्वरस्य राज्ञो रामस्य सोदरेण भ्रात्रा लक्ष्मणेन, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य भ्रात्रा अर्जुनेन समीकमूर्ध्नि युद्धमध्ये "मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं सांपरायिकम्। अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ" इत्यमरः, सन्ध्यामुखसीम्नि सायंकालिकसमयसीमायाम् आसन्नसूर्यास्तसमये इत्यर्थः, उग्रं भयङ्करं मन्त्रवत् अभिमन्त्रितं महत् महाप्रभावं दिव्यमिति यावद्, अस्त्रम् आयुधं संधाय धनुषि आरोप्य शत्रोः अरेः अतिकायस्य, पक्षे—जयद्रथस्य मूर्धानं शिरः उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य प्रायोजि प्रयुक्तं प्रेरितमिति यावद्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इस के बाद राजा राम के भाई लक्ष्मण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर के भाई अर्जुन के द्वारा युद्ध में आसन्न सूर्यास्त के समय में भयङ्कर तथा अभिमन्त्रित दिव्य अस्त्र धनुष पर चढ़ा कर शत्रु अतिकाय का शिर लक्ष्य बना कर, दूसरे पक्ष में—शत्रु जयद्रथ का शिर लक्ष्य बना करे प्रेरित कर दिया गया अर्थात् छोड़ दिजा गया।

अमुनास्य मुरद्विषेव राहोः क्षपिते मूर्ध्नि विहाय जीवलोकम्।
प्रचलन् गमितः कबन्धभावं न रणे कस्य भयं करोति कायः ॥३९॥

मुरद्विषा विष्णुना जीवलोकं संसारं विहाय अस्य राहोः मूर्ध्नि शिरसि क्षपिते छिन्ने सति कबन्धभावम् अपमूर्धकलेवरत्वं गमितः प्रापितः "कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तव्यपमूर्धकलेवरे। क्लीबं जले पुंस्युदरे बाहुरक्षोविशेषयोः" इति मेदिनी, प्रचलन् गमनशीलः कायः राहोः शरीरम् इव यथा कस्य सूर्यस्य न भयं करोति न भीतिं ददाति अपि तु ददात्येव "मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः" इत्यमरः, तथा अमुना लक्ष्मणेन, पक्षे—अर्जुनेन रणे युद्धे अस्य अतिकायस्य, पक्षे—जयद्रथस्य मूर्ध्नि शिरसि क्षपिते कर्तिते सति

लोक्यते दृश्यते इति लोकः, जीवलोकं जीवनदर्शनं विहाय त्यक्त्वा कबन्धभावम् अपमूर्धकलेवरस्वरूपं गमितः प्रापितः प्रचलन् इतस्ततः सञ्चरन् अतिकायः अतिकायनामा राक्षसः कस्य कस्य जनस्य न भयङ्करः न भीतिदायकः ? अपि तु सर्वस्यैव जनस्य भीतिदायक एव, पक्षे—अस्य जयद्रथस्य कायः शरीरम् कस्य कस्य जनस्य न भयं करोति न भीतिं ददाति अपि तु सर्वस्यैव जनस्य भीतिं ददात्येव। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम् उपमालङ्कारः।

जैसे विष्णु भगवान् के द्वारा संपूर्ण संसार को छोड़ कर अर्थात् संसारवालों का शिर न काट कर उस राहु का शिर काट लेने पर रुण्ड का स्वरूप प्राप्त कराया हुआ, आकाश में सञ्चार करने वाला राहु का शरीर अर्थात् रुण्डरूपी राहु सूर्य को भय पहुँचाता है उसी प्रकार उस लक्ष्मण के द्वारा युद्ध में इस अतिकाय का शिर काट लेने पर जीवन त्याग कर के रुण्ड का स्वरूप प्राप्त कराया गया तथा इधर-उधर चलता हुआ अतिकाय नाम का राक्षस किस व्यक्ति के लिये भयदायक नहीं हुआ ?—अर्थात् सभी के लिये भयदायक हुआ। दूसरे पक्ष में—उसी प्रकार उस अर्जुन के द्वारा युद्ध में उस जयद्रथ का शिर काट लेने पर जीवन त्याग कर रुण्ड का स्वरूप प्राप्त कराया हुआ तथा इधर-उधर चलता हुआ शरीर किस व्यक्ति को भय नहीं देता था अर्थात् सभी व्यक्तियों को भय देता था।

तदाननेनोत्पतता तदानीमसृक्स्रुता चित्रकिरीटभासा।
व्यरोचताखण्डलचापरेखा-सीमन्तितप्रान्तमिवान्तरिक्षम् ॥४०॥

तदानीं तस्मिन् समये असृक्स्रुता शोणितच्योतता चित्रकिरीटभासा चित्रा अनेकवर्णा किरीटस्य मुकुटस्य भाः कान्तिर्यस्य तेन उत्पतता ऊर्ध्वं गच्छता तदाननेन तस्य अतिकायस्य, पक्षे—जयद्रथस्य आननेन मुखेन शिरसा इति यावत्, आखण्डलचापरेखासीमन्तितप्रान्तमिव आखण्डलचापरेखया इन्द्रधनुर्लेखया सीमन्तितो रेखाङ्कितः प्रान्तः परिसरो यस्य तद् एवंभूतमिव अन्तरिक्षं गगनं व्यरोचत शुशुभे। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

उस समय शोणित का सीकर बरसाने वाले, मुकुट की बहुरंगी कान्ति वाले, ऊपर उछले हुए उस अतिकाय के मस्तक के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस जयद्रथ के मस्तक के द्वारा आकाश इन्द्रधनुषरेखा से विभाजितप्रान्तभाग की तरह सुशोभित हुआ।

कृत्तं लसत्कुण्डलमुत्तमाङ्गं शत्रो विवल्गत्कपिलक्ष्मणास्त्रैः ।
रणक्षितेः पातितमङ्कदेशे तेने पितुः प्राणभयं निजस्य ॥४१॥

शत्रोः द्विषतः अतिकायस्य, पक्षे—जयद्रथस्य लसत्कुण्डलं लसत् शोभमानं कुण्डलं कर्णभूषणं यस्य तत् कृत्तं छिन्नम् उत्तमाङ्गं शिरः विवल्गत्कपिलक्ष्मणास्त्रैः विवल्गन्तः औद्धत्यं दर्शयन्तः कपयः वानरवीराः यस्य एवंभूतस्य लक्ष्मणस्य रामानुजस्य अस्त्रैः बाणैः रणक्षितेः युद्धभूतलस्य अङ्कदेशे क्रोडस्थाने भूतलमध्ये इत्यर्थः पातितं प्रक्षिप्तं सत् निजस्य स्वकीयस्य पितुः जनयितुः रावणस्य प्राणभयं मरणभयं तेने चकार, पक्षे—विवल्गत्कपिलक्ष्मणा विवल्गन् शोभमानः कपिः वानरो हनुमान् लक्ष्म चिह्नं यस्य तेन अस्त्रैः बाणैः रणक्षितेः युद्धभूतलात् निजस्य स्वकीयस्य पितुः जनयितुः तपोवने तपस्यतो बृहद्रथस्य अङ्कदेशे क्रोडे पातितं प्रक्षिप्तं सत् प्राणभयं मरणं पितुरेवेत्यर्थः तेने चकार । जयद्रथस्य वर आसीद् यद् यः कश्चित्तव शिरो भूमौ पातयिष्यति तस्यापि शिरः पतिष्यति, इति मर्मज्ञेन कृष्णेन निर्दिष्टोऽर्जुनः तपोवने तपस्यतस्तत्पितुरङ्के तच्छिरः बाणैः प्राक्षिपत् । सोऽपि तच्छिरो भूमौ प्रक्षिप्य स्वशिरः पतनेन पञ्चत्वमगमत् इति भारते । अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् ।

शत्रु अतिकाय का कुण्डल से शोभा पाने वाला तथा कटा हुआ, औद्धत्य धारण करने वाले बन्दरों से युक्त लक्ष्मण के बाणों से युद्धभूमि की गोदी में गिराया हुआ शिर अपने पिता रावण के हृदय में मरण-भय उत्पन्न कर दिया । दूसरे पक्ष में—शत्रु जयद्रथ का कुण्डल से शोभा पाने वाला तथा कटा हुआ, शोभा पाने वाला बानर हनुमान् है चिह्न जिस का ऐसे अर्जुन के द्वारा बाणों से युद्ध-क्षेत्र से अपने पिता (तपोवन में तपस्या करने वाले बृहद्रथ) की गोदी में गिराया हुआ शिर (उस के पिता का) मरण उपस्थित कर दिया अर्थात् उस शिर के भूतल पर फेंकने से उस के पिता मर गये ।

तदनु कदनभूमेः खेचरैस्तूयमानः
प्रसभमवनिभर्तुः सोदरो निर्जगाम ।
युधि समधिकधौतां कीर्तिमुद्धृत्य पृथ्वीं
प्रलयजलधिमध्याच्छ्रीवराहः पुरेव ॥४२॥

तदनु ततः पश्चात् अवनिभर्तुः भूपतेः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य सोदरो भ्राता लक्ष्मणः, पक्षे—अर्जुनः युधि संग्रामे खेचरैराकाशचारिभिर्देवैः स्तूयमानः प्रशंसितः सन् कदनभूमेः व्यापादनभूतलात् "व्यापादनं विशसनं कदनं च निशुम्भनम्" इत्यमरः, पुरा पूर्वकाले श्रीवराहः महासूकरः प्रलयजलधिमध्याद् प्रलयकालिकसमुद्रोदरात् पृथ्वीमिव महीमिव समधिकधौताम् अत्यन्तनिर्मलां कीर्तिम् उद्धृत्य निष्कास्य निर्जगाम निरगच्छत्, युद्धभूमे निर्गत्य शिबिरं प्राप्तवानित्यर्थः। अत्र मालिनी वृत्तम् "न न म य य युतेयं मालिनीभोगिलोकैः" इतिलक्षणात् उपमालङ्कारः।

इसके पश्चात् राजा राम के भाई लक्ष्मण, दूसरे पक्ष में–राजा युधिष्ठिर के भाई अर्जुन युद्ध में आकाशचारी देवादिकों से प्रशंसित होते हुए शत्रुमर्दन के स्थान से अत्यन्त निर्मल कीर्ति को, पूर्वकाल में जैसे सूकररूपधारी श्री विष्णु भगवान् प्रलयकाल के समुद्र के पेट से पृथ्वी को निकाले थे उसी प्रकार निकाल कर युद्धभूमि से निकल कर अपने शिबिर को चले गये।

निशाकरेणेव नरेश्वरेण प्रणीतभास्वज्जयमङ्गलश्रीः।
रराज राजावरजो जनानां मुदं वितन्वन्निव कामदेवः ॥४३॥

इति हरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहित-कविराजपण्डितविरचिते कामदेवाङ्के राघवपाण्डवीये महाकाव्ये लङ्काकाण्डीयद्रोणपर्वस्थयुद्धवर्णने अतिकाय-जयद्रथवधो नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

निशाकरेणेव चन्द्रमसेव नरेश्वरेण राज्ञा रामेण, पक्षे—युधिष्ठिरेण प्रणीतभास्वज्जयमङ्गलश्रीः प्रणीता कृता भास्वतो दीप्तस्य जयस्य शत्रुविजयस्य मङ्गलश्रीः कल्याणशोभा यस्य सः, जनानां स्वपक्षीयलोकानां मुदं वितन्वन् आनन्दं वितरन् राजावरजः नृपानुजः जनानां लोकानां मुदं वितन्वन् आनन्दं वितरन् कामदेव इव मकरध्वज इव एतत्काव्यकारयिता कामदेवभूप इवेत्यपि व्यज्यते, रराज शुशुभे। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

इतिराघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीरघुनन्दन-शर्मात्मज-श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनाम-धेयायां व्याख्यायां दशमः सर्गः ॥१०॥

जैसे चन्दमा के द्वारा लोगों के आनन्द देने वाले कामदेव के उद्दीप्त विजय-मङ्गल की शोभा बढायी जाती है उसी प्रकार राजा राम के द्वारा, दूसरे पक्ष में–राजा युधिष्ठिर के द्वारा शत्रु-जीतने के उद्दीप्त महोत्सव की शोभा बढ़ायी गयी है जिस की वह, स्वपक्षीय लोगों को आनन्द देते हुए राजा राम के छोटे भाई लक्ष्मण, दूसरे पक्ष में–राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन अत्यन्त सुशोभित हुए।

इति राघवपाण्ड़वीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्रीदामोदर-झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में दशम सर्ग ॥१०॥



एकादशः सर्गः

अथ परिभवरोषात्प्रेषितास्तेन राज्ञा
रजनिचरचमूभिः संगताः सैन्यनाथाः ।
त्वरिततरमरौत्सुर्धर्मराजस्य सैन्यं
भुवमिव तिमिराणां राशयो वासरान्ते ॥१॥

अथ अनन्तरं राज्ञा भूपतिना तेन रावणेन, पक्षे—दुर्योधनेन परिभवरोषात् अतिकायपराभवक्रोधात्, पक्षे--जयद्रथपराभवक्रोधात् वासरान्ते सायंकाले प्रेषिताः गमिताः रजनिचरचमूभिः राक्षससैन्यैः, पक्षे—अलम्बुषानुयायि-राक्षससैन्यैः संगताः संयुक्ताः सैन्यनाथाः सेनापतयः त्वरिततरमतिशीघ्रं धर्मराजस्य धर्मप्रधानस्य राज्ञो रामस्य, पक्षे--युधिष्ठिरस्य सैन्यं वाहिनीम् वासरान्ते सायंकाले तिमिराणाम् अन्धकाराणां राशयः श्रेणयः भुवमिव पृथ्वीमिव अरौत्सुः रुन्धन्ति स्म । अत्र मालिनीवृत्तं "न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति लक्षणात् उपमालङ्कारः ।

इस के बाद उस राजा रावण के द्वारा अतिकाय-वध के क्रोध से, दूसरे पक्ष में—उस राजा दुर्योधन के द्वारा जयद्रथ-वध के क्रोध से सायंकाल भेजे गये राक्षस-सेनाओं से संयुक्त सेनापतिगण अत्यन्त शीघ्रता से धर्म-प्रधान राजा राम की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की सेना को, सायंकाल में अन्धकारों के समूह जैसे पृथ्वी को घेरते हैं उसी प्रकार घेर लिये ।

व्यूहावुभौ संमुखतामुपेतौ मिथो बलाङ्गानि बभञ्जतुस्तौ ।
सद्यो जगन्तीव युगान्तकाले परापरावम्बुनिधी प्रसक्तौ ॥२॥

संमुखताम् आभिमुख्यम् उपेतौ प्राप्तौ तौ उभौ द्वावपि व्यूहौ राम-रावणयोः, पक्षे—पाण्डवकौरवयोः सैन्यसंनिवेशौ सद्यः तत्कालमेव मिथोऽन्योन्यस्य बलाङ्गानि सेनाविभागान् हस्त्यश्वरथपादातादीनि, युगान्तकाले प्रलयसमये मिथः अन्योन्यस्मिन् प्रसक्तौ संमिलितौ

परापरौ पूर्वपश्चिमदिग्भवौ अम्बुनिधी समुद्रौ जगन्तीव भुवनानीव बभञ्जतुः मर्दयतः स्म। अत्र उपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

एक दूसरे के सामने पहुँचे हुए वे दोनों राम-रावण-सैनिक-संनिवेश, दूसरे पक्ष में—पाण्डवकौरव-सेना-संनिवेश तत्क्षण ही एक दूसरे के सेनाङ्ग-हस्त्यश्वरथ-पदाति आदि को प्रलयकाल में एक दूसरे में मिले हुए पूर्वपश्चिदिग्भव दोनों समुद्र जैसे भुवनों को नष्ट करते हैं उसी प्रकार नष्ट करने लगे।'

अविरलरणधूलिध्वान्तरुद्धेऽन्तरिक्षे
ज्वलितदशदिगन्ता तीव्रहेतिप्रदीपैः।
द्रुतकवलितरोदःकन्दरोदारधीर-
ध्वनिरजनि रणश्रीः सेनयोः संप्रवृत्ते ॥३॥

सेनयोः रामरावणसेनयोः, पक्षे--पाण्डवकौरवसैन्ययोः संप्रवृत्ते युद्धे प्रारब्धे सति अन्तरिक्षे आकाशे अविरलरणधूलीध्वान्तरुद्धे सति अविरला अविच्छिन्ना रणधूलीरेव रेणुरेव ध्वान्तं तिमिरं तेन रुद्धे आच्छादिते सति तीव्रहेतिप्रदीपैः तीव्राः तीक्ष्णाग्राः शीघ्रयायिन्यो वा हेतयः बाणाः एव प्रदीपाः तैः ज्वलितदशदिगन्ता ज्वलिताः वह्निज्वाला-मयीकृताः दशदिगन्ताः अन्तं यावद् दशदिग्भागाः यस्यां सा, द्रुतकवलितरोदःकन्दरोदारधीरध्वनिः द्रुतं शीघ्रं कवलितः ग्रस्तः यः रोदः-कन्दरः द्यावापृथिव्योरन्तरवकाशः तस्य उदारः स्फीतः धीरः गम्भीरः ध्वनिः निनादः यस्यां सा रणश्रीः युद्धशोभा अजनि जाता उत्पन्नेति यावत। अत्र मालिनीवृत्तम्, प्रदीपैरित्यत्र रूपकमलङ्कारः।

राम-रावण की सेना, दूसरे पक्ष में—पाण्डव-कौरव की सेना, इस प्रकार दोनों सेनाओं के युद्ध प्रारम्भ हो जाने से निरन्तर धूलीरूपी अन्धकार से आकाश अवरुद्ध हो जाने पर, तेज बाणरूपी प्रदीपों से दशों दिशाओं को ज्वालामय बना देनेवाली, शीघ्रता से भरे गये आकाश तथा पृथ्वी के अन्तरावकाश का दूरगामी तथा पुष्ट शब्द उत्पन्न करने वाली युद्धशोभा उत्पन्न हो गयी।

रणे रिपूणां बलभिद्विजेता गुरुः प्रभावाद् भृशदुर्निरीक्ष्यः।
महास्त्रधारानिकरैः प्रवीरानपेतसंग्रामतृषश्चकार ॥४॥

प्रभावाद् प्रतापाद् गुरुः श्रेष्ठः रणे युद्धे रिपूणां शत्रूणां भृश-दुर्निरीक्ष्यः अतिकष्टेनावलोकनीयः बलभिद्विजेता इन्द्रविजयकारकः मेघनादः, पक्षे—प्रभावात् अस्त्रविद्याप्रतापात् भृशदुर्निरीक्ष्यः अति-

दुःखेनावलोकनीयः रणे युद्धे रिपूणां विजेता शत्रूणां जयकारकः, बलभित् शत्रुसैन्यभञ्जकः गुरुः द्रोणाचार्यः महास्त्रधारानिकरैः दिव्यास्त्रवर्षासारैः प्रवीरान् शत्रुपक्षीयमहायोधान् अपेतसंग्रामतृषः व्यपगतयुद्धाभिलाषान् चकार कृतवान् । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

अपने प्रताप से श्रेष्ठ, युध में शत्रुओं के लिये अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद ने, दूसरे पक्ष में—अस्त्र विद्या के प्रताप से अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य युद्ध में शत्रुओं के जीतनेवाले तथा शत्रुसैन्यसंहारक द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्रधारा की वर्षा से शत्रुपक्षीय बड़े बड़े वीरों को युद्धाभिलाषाहीन बना दिया ।

भिन्नाङ्गदं त्रस्तबलाधिनाथं भ्राम्यद्गजं विह्वलदश्विपुत्रम् ।
अभीमसंरम्भमनेन भग्नं रराज नाजौ नरदेवसैन्यम् ॥५॥

अनेन मेघनादेन भिन्नाङ्गदं भिन्नः पराजितः अङ्गदः बालिपुत्रो यस्मिन् तत्, त्रस्तबलाधिनाथं त्रस्तः भीतः बलाधिनाथः सेनापतिः नीलः यस्मिन् तत्, भ्राम्यद्गजं भ्राम्यन् त्रासेनेतस्ततो भ्रमन् गजः गजनामा वानरो यस्मिन् तत्, विह्वलदश्विपुत्रम् विह्वलन्तौ विह्वलीभवन्तौ अश्विपुत्रौ अश्विनीकुमारतनयौ मैन्दद्विविदौ यस्मिन् तत्, अभीमसंरम्भं न भीमः भयङ्करः संरम्भः युद्धावेगः यस्मिन् तत्, आजौ युद्धे भग्नं पलायितं नरदेवसैन्यं नरदेवस्य राज्ञो रामस्य अनीकं न रराज न शुशुभे । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

इस मेघनाद के द्वारा पराजित है अङ्गद जिस में, भयभीत है सेनापति नील जिस में, भय से घूम रहा है गजनामक वानर जिस में, त्रास से विह्वल हो गये हैं अश्विनीकुमार के पुत्र मैन्द-द्विविद जिस में इस प्रकार का तथा भयङ्कर युद्धावेग से हीन, युद्ध में भागता हुआ राजा राम का सैन्य सुशोभित नहीं हुआ ।

पक्षे—अनेन द्रोणेन भिन्नाङ्गदं भिन्नः त्रुटितः अङ्गदः बाहुभूषणं यस्मिन् तत्, त्रस्तबलाधिनाथं त्रस्तः भीतः बलाधिनाथः सेनापतिः धृष्टद्युम्नः यस्मिन् तत्, भ्राम्यद्गजं भ्राम्यन्तः इतस्ततः पलायमानाः गजाः हस्तिनः यस्मिन् तत् विह्वलदश्विपुत्रं विह्वलन्तौ विह्वलीभवन्तौ अश्विपुत्रौ नकुलसहदेवौ यस्मिन् तत्, अभीमसंरम्भं न भीमस्य वृकोदरस्य संरम्भो युद्धावेगो यस्मिन् तत्, आजौ युद्धे भग्नं पलायितं नरदेवसैन्यं नरदेवस्य राज्ञो युधिष्ठिरस्य सैन्यं बलं न रराज न शोभते स्म ।

इस द्रोणाचार्य के द्वारा टूट गया है बाहुभूषण जिस में, भयभीत है सेनापति धृष्टद्युम्न जिस में, इधर-उधर भाग रहें हैं हाथी जिस में, व्याकुल हैं नकुल-सहदेव

जिस में, नहीं रह गया है भीम का युद्धावेग जिस में इस प्रकार का युद्ध में भागता हुआ राजा युधिष्ठिर का सैन्य सुशोभित नहीं हुआ।

तथा तदीये ज्वलति प्रतापे ज्ञात्वा महो ब्राह्ममभेद्यमन्यैः ।
विष्णोर्जगत्क्षेमकरोऽवतारः स्वपक्षपीडां कथमप्यसोढ ॥६॥

तदीये तस्य मेघनादस्य सम्बन्धिनि, पक्षे—द्रोणस्य सम्बन्धिनि प्रतापे विक्रमे तथा तेन प्रकारेण ज्वलति दीप्यमाने सति, ब्राह्मं ब्रह्मवरदानसम्बन्धि, पक्षे—ब्राह्मणसम्बन्धि महस्तेजः अन्यैः तद्विपक्षिभिः अभेद्यमधर्षणीयं ज्ञात्वा अवगत्य विष्णोः आदिपूरुषस्य जगत्क्षेमकरः संसारकल्याणकारी अवतारः सगुणस्वरूपं रामः, पक्षे—कृष्णः स्वपक्षपीडाम् आत्मीयवर्गस्य पीडां कष्टं कथमपि केनापि प्रकारेण मानसिककष्टेनेत्यर्थः, असोढ सहते स्म। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम्।

उस मेघनाद के, दूसरे पक्ष में—उस द्रोण के पराक्रम के उस प्रकार उद्दीप्त हो जाने पर ब्रह्मा के वरदानसम्बन्धी, दूसरे पक्ष में—ब्राह्मणसम्बन्धी तेज को विपक्षियों से अनभिभवनीय जान कर आदिपुरुष विष्णु के संसारकल्याणकारी अवतार श्रीराम ने, दूसरे पक्ष में—श्रीकृष्ण ने आत्मीयवर्गों का कष्ट किसी प्रकार अर्थात् अत्यन्त दुःख से सह लिया।

स्वशक्तिजृम्भाभिरिवौषधीभिर्निवारितारातिमहास्त्रपीडः ।
उज्जीवयन् राजबलं त्रिलोकीं विस्मापयामास हरेः कुमारः ॥७॥

स्वशक्तिजृम्भाभिरिव निजसामर्थ्यविकासैरिव औषधीभिः मृतसञ्जीवनीभिः, पक्षे—मृतसञ्जीवनीभिरिव निजसामर्थ्यविकासैः निवारितारातिमहास्त्रपीडः निवारिता दूरीकृता अरातेः शत्रोः महास्त्रस्य दिव्यास्त्रस्य पीडा कष्टं येन सः हरेः कुमारः पवनस्य पुत्रः हनूमान्, पक्षे—इन्द्रस्य पुत्रोऽर्जुनः राजबलं राज्ञो रामस्य सैन्यं, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य सैन्यम् उज्जीवयन् जीवितं कुर्वन्, पक्षे—रक्षन् त्रिलोकीं भुवनत्रयं विस्मापयामास विस्मिताम् अकरोत्। अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

अपनी शक्ति के विकास के समान मृतसंजीवनी ओषधी से, दूसरे पक्ष में—मृतसंजीवनी ओषधी के समान अपनी शक्ति के विकास से शत्रुओं के सम्पूर्ण महास्त्रों की पीड़ा दूर करने वाले पवन के पुत्र हनुमान् ने राजा राम की सेना को जीवित करते हुए, दूसरे पक्ष में—इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर

की सेना को सजीव अर्थात् उत्साहसम्पन्न बनाते हुए तीनों भुवनों को विस्मित कर दिया।

वीरेषु वैरात्परचक्रमध्यं विशत्स्वनालोचितकालमेव।
ततः क्षपायुद्धमवर्ततोल्काकरालदीपक्षपितान्धकारम् ॥८॥

ततस्तदनन्तरं वीरेषु योधेषु वैरात् शत्रुत्वामर्षात् अनालोचितकालमेव अनालोचितः अविचारितः कालः समयः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा परचक्रमध्यं शत्रुसैन्यान्तर्गतं विशत्सु प्रविशत्सु उल्काकरालदीपक्षपितान्धकारम् उल्काः एव करालदीपाः भयङ्करदीपाः तैः क्षपितः विनाशितः अन्धकारः तिमिरं यस्मिन् तत् क्षपायुद्धं रात्रिरणः अवर्तत प्रारभत। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तं काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

इस के बाद वीरों के शत्रुता के कारण उचितानुचित समय का विना विचार किये हुये शत्रु-सेना के मध्य प्रवेश कर लेने पर उल्कारूपी भयङ्कर दीपों से नष्ट किया गया है अन्धकार जिस में इस प्रकार का रात्रियुद्ध प्रारम्भ हो गया।

तत्रातिमात्रं रविनन्दनस्य तेजो दिदीपे परवाहिनीषु।
निषिद्धनासत्यसुतोद्यमस्य रक्षोवधाय स्वयमुद्यतस्य ॥९॥

तत्र तस्मिन् रात्रियुद्धे निषिद्धनासत्यसुतोद्यमस्य निषिद्धः निवारितः नासत्ययोः दस्रयोः सुतस्य पुत्रस्य सुषेणवैद्यस्य उद्यमः चिकित्साप्रयत्नः येन तस्य, पक्षे—निवारितः दस्रयोः पुत्रयोः नकुलसहदेवयोः उद्यमः युद्धप्रयत्नः येन तस्य रक्षोवधाय राक्षसमारणाय, पक्षे—घटोत्कचराक्षसमारणाय स्वयम् आत्मनैव उद्यतस्य उद्युक्तस्य रविनन्दनस्य सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य, पक्षे—कर्णस्य परवाहिनीषु शत्रुसैन्येषु तेजः पराक्रमः अतिमात्रम् अत्यर्थं दिदीपे उद्दीप्तमभूत्। अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तं काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

उस रात्रियुद्ध में अश्विनीकुमार के पुत्र सुषेण वैद्य का चिकित्सा-प्रयत्न रोकनेवाले तथा राक्षसों का वध करने के लिये स्वयं उद्यत सूर्य के पुत्र सुग्रीव का, दूसरे पक्ष में—अश्विनीकुमार के पुत्र नकुलत था सहदेव का युद्धोद्योग रोकने वाले तथा राक्षस घटोत्कच का वध करने के लिये स्वयं उद्यत सूर्य के पुत्र कर्ण का पराक्रम शत्रु-सेनाओं में अत्यन्त उद्दीप्त हो गया।

तमभ्यधावत्क्षतशत्रुरक्षोघटोत्कचस्फीतविटङ्कमौलिः।
चलाचलाकारकरीन्द्रपालीकुम्भप्रणुन्नाम्बुदसंहतिश्रीः ॥१०॥

चलाचलाकारकरीन्द्रपालीकुम्भप्रणुन्नाम्बुदसंहतिश्रीः चलाः संचरणशीलाः ये अचलाः पर्वताः तद्वद् आकारः स्वरूपं येषाम् एवंभूता ये करीन्द्राः श्रेष्ठगजाः तेषां पाली पङ्क्तिः यस्यां सा, कुम्भेन कुम्भनामकेन राक्षसेन प्रणुन्ना प्रेरिता तिरस्कृता इति यावद् , अम्बुदसंहतिश्रीः वारिदसमूहशोभा यस्यां सा, उत्कचस्फीतविटङ्कमौलिः उत्कचैः ऊर्ध्वकेशैः स्फीतानि उन्नतानि विटङ्कानि मुकुटानि मौलिषु शिरःसु यस्याः सा, रक्षोघटा राक्षसश्रेणिः क्षतशत्रु क्षताः विनष्टाः शत्रवः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा तम् सुग्रीवम् अभि लक्ष्यीकृत्य अधावत् समाक्रामत् । अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तम् ।

चलने-फिरनेवाले पर्वत के आकारवाले बड़े बड़े हाथियों को पङ्क्तयाँ हैं जिस में तथा कुम्भ नामक राक्षस के द्वारा तिरस्कृत की गयी है बादल-श्रेणियों की शोभा जिस से इस प्रकार की तथा ऊपर उठे हुए केशों से ऊँचे मुकुट शिर पर रखनेवाली राक्षसों की श्रेणी शत्रुओं को मारती हुई उस सुग्रीव को लक्ष्य बना कर दौड़ पड़ी ।

पक्षे—चलाचलाकारकरीन्द्रपालीकुम्भप्रणुन्नाम्बुदसंहतिश्रीः चलाचलाकारकरीन्द्रपाली गमनशीलपर्वताकारगजेन्द्रश्रेणिः तस्याः कुम्भैः प्रणुन्ना शिरःपिण्डैरधःकृता अम्बुदसंहतिश्रीः वारिदपङ्क्तिशोभा येन सः, स्फीतविटङ्कमौलिः उन्नतमुकुटशिरस्कः क्षतशत्रुरक्षः क्षता विनष्टा शत्रूणां रक्षा येन सः घटोत्कचः घटोत्कचनामा भीमस्य पुत्रः अस्मिन् पक्षे—घटोत्कच इत्यत्र "खर्परे शरि वा विसर्ग लोपो वक्तव्यः" इति विसर्गस्य लोपो बोध्यः, तम् कर्णम् अभि लक्ष्यीकृत्य अधावत् धावति स्म ।

चलते हुए पहाड़ के आकारवाले गजराजों की श्रेणी के कुम्भों से बादलों के समूह की शोभा जीतनेवाला, ऊँचा मुकुट शिर पर रखनेवाला तथा शत्रुओं की सुरक्षा नष्ट करनेवाला धटोत्कच उस कर्ण के प्रति दौड़ पड़ा ।

भ्रान्तान्तर्गिरिनक्रचक्रमचिरादुद्घूर्णितैरर्णवै-
राघ्राताहितजीवितैः प्रहरणैराक्रान्तरोदोन्तरम् ।
ध्वस्तद्वाःस्थविरिञ्चिलोकमपुनर्व्यावृत्तिनिष्ठैर्भटै-
र्गीर्वाणा ददृशुः सविस्मयधियो दूरात्तयोः संगरम् ॥११॥

सविस्मयधियः साश्चर्यबुद्धयः गीर्वाणाः देवाः "बर्हिर्मुखाः क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः । वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः

स्त्रियाम्" इत्यमरः, तयोः सुग्रीवकुम्भयोः, पक्षे—घटोत्कचकर्णयोः अचिरात् तूर्णमेव उद्घूर्णितैः चक्रवद् भ्रमद्भिः अर्णवैः समुद्रैः भ्रान्तान्तर्गिरिनक्रचक्रं भ्रान्तं परिवर्तितम् अन्तर्गिरीणां समुद्रान्तःस्थितपर्वतानां नक्राणां कुम्भीलानां चक्रं समूहो येन तत् "चक्रः कोके पुमान् क्लीवं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः" इति मेदिनी, आघ्राताहितजीवितैः आघ्रातानि कवलितानि अहितानां शत्रूणां जीवितानि प्राणाः यैस्तैः प्रहरणैरायुधैः आक्रान्तरोदोन्तरम् आक्रान्तं परिपूर्णं रोदसोः द्यावापृथिव्योरन्तरमवकाशो यस्मिन् तत्, अपुनर्व्यावृत्तिनिष्ठैः अपुनर्व्यावृत्तौ संसारान्तरपुनरावर्तने निष्ठा श्रद्धा येषां तैः भटैः वीरैः मृतवीरैरित्यर्थः, ध्वस्तद्वाःस्थविरिञ्चिलोकं ध्वस्ताः सम्मर्देन निपत्य अपसृताः द्वाःस्थाः द्वारपालाः यस्मिन् एवंभूतः विरिञ्चिलोकः ब्रह्मलोको येन तत् संगरं युद्धं दूरात् दूरस्थानात् प्रहरणभयेन दूरे स्थित्वेति भावः, ददृशुः अवलोकयामासुः। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

आश्चर्य से युक्त देवताओं ने उस सुग्रीव तथा कुम्भ का, दूसरे पक्ष में—घटोत्कच तथा कर्ण का शीघ्र ही घूमते हुए समुद्रों के द्वारा ऊपर नीचे लोट पोट हो रहे हैं समुद्र के अन्दर पहाड़ों तथा घड़ियालों का समूह जिस से, खा डाले गये हैं शत्रुओं के जीवन जिन के द्वारा ऐसे आयुधों से भर गया है पृथ्वी तथा आकाश का अवकाश जिस में, मोक्ष प्राप्त करने की श्रद्धावाले वीरों के द्वारा भीड़ से विनष्ट कर दिये गये हैं द्वारपाल जिस में इस प्रकार का ब्रह्मलोक हो गया है जिस से इस प्रकार का युद्ध बाणों के प्रहार के भय से दूर स्थान में खड़े होकर देखा।

ताभ्यामन्योन्यसैन्ये समरभुवि मुहुर्नोद्यमाने महास्त्रैः
सद्यो भारावतारात् क्षितिरपि सुवहा भोगिभर्तुर्बभूव।
वीरैर्द्वाराणि भङ्क्त्वाप्यहमहमिकया गाहमानैः समन्ता-
दाक्रान्तोद्यानहर्म्यस्थलमणिभवना द्यौर्ननामातिभारात् ॥१२॥

समरभुवि युद्धभूमौ ताभ्यां सुग्रीव-कुम्भाभ्यां, पक्षे—घटोत्कच-कर्णाभ्यां महास्त्रैः महाप्रहरणैः मुहुः वारंवारम् अन्योन्यसैन्ये परस्परस्यानीके नोद्यमाने सति मथ्यमाने सति मारिते सतीत्यर्थः, भारावताराद् भारस्याल्पीभावात् सद्यः तत्कालं क्षितिरपि पृथिव्यपि भोगिभर्तुः सर्पराजस्य शेषस्य सुवहा अल्पायासवहनयोग्या बभूव

जाता। द्वाराणि स्वर्गद्वाराणि भङ्क्त्वापि त्रोटयित्वापि अहमहमिकया अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवंरूपेण गाहमानैः प्रविशद्भिः वीरैः युद्धमृतैः भटैः समन्तात् सर्वतः आक्रान्तोद्यानहर्म्यस्थलमणिभवना आक्रान्तानि आक्रम्य भरितानि उद्यानानि आक्रीडाः, हर्म्यस्थलानि प्रासादोपरिभूमयः, मणिभवनानि रत्ननिर्मितविलासप्रकोष्ठानि यत्र सा द्यौः स्वर्गलोकः अतिभारात् भाराधिक्यात् ननाम नम्राभूत्। अत्र स्रग्धरावृत्तम् अतिशयोक्तिरलङ्कारः।

युद्धभूमि में उस सुग्रीव तथा कुम्भ के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस घटोत्कच तथा कर्ण के द्वारा बड़े बड़े अस्त्रों से बार बार एक दूसरे की सेना के मथन किये जाने से अर्थात् मारे जाने से भार हलका हो जाने के कारण पृथ्वी शेषनाग के लिये अल्प परिश्रम से वहन करने योग्य हो गयी। स्वर्ग के फाटकों को तोड़ कर भी 'मैं पहले मैं पहले' इस अहमहमिका से प्रवेश करने वाले युद्धमृत वीरों के द्वारा सब जगह भर दिये गये हैं उद्यान, छत की भूमियाँ तथा मणिनिर्मितविलास-भवन जिस में इस प्रकार का स्वर्गलोक अत्यन्त भार से झुक गया।

चरन्धरित्र्यामुत तूर्णमम्बरे पुरोऽथ पश्चादथ पार्श्वयोर्द्वयोः।
बलानि भिन्दन् बहुहेतिसंचयैर्न राक्षसेन्द्रो निरचीयतापरैः ॥१३॥

राक्षसेन्द्रः राक्षसश्रेष्ठः कुम्भः, पक्षे—घटोत्कचः बहुहेतिसंचयैः बहुशस्त्रसमूहैः "रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः" इत्यमरः, बलानि सैन्यानि भिन्दन् विदारयन् विनाशयन्निति यावत्, धरित्र्यां पृथिव्याम् उत अथवा तूर्णं शीघ्रमेव अम्बरे आकाशे चरन् विचरन्नस्ति पुरः अग्रे अथ अनन्तरं पश्चात् पृष्ठदेशे अथ अनन्तरं द्वयोः पार्श्वयोः पार्श्वप्रदेशयोः विचरन्नस्तीति अपरैः अन्यैर्भटैः न निरचीयत न निश्चितरूपेण ज्ञातः। अत्र वंशस्थं वृत्तम्।

वह राक्षसश्रेष्ठ कुम्भ, दूसरे पक्ष में—घटोत्कच बहुत से अस्त्रों के समूहों से सेनाओं का संहार करते हुए पृथ्वी पर अथवा शीघ्र ही आकाश में विचरण करता है, आगे में अथवा पीछे के स्थानों में अनन्तर ही बगलों के स्थानों में विचरण करता है, इस प्रकार किस जगह विचरण कर रहा है यह दूसरे वीरों के द्वारा नहीं निश्चित किया जा सका।

तदनु रविसुतेन प्रस्फुरच्छक्तिरुच्चै-
र्बृहदवयवभारैः क्षुण्णदिग्दन्तिकुम्भः।

रजनिचरचमूपः संयुगान्ते युगान्ते
गिरिरिव पवनेन क्ष्मातले पातितोऽभूत् ॥१४॥

तदनु ततः पश्चात् युगान्ते प्रलयकाले पवनेन वायुना गिरिरिव पर्वत इव रविसुतेन सूर्यपुत्रेण सुग्रीवेण, पक्षे—कर्णेन संयुगान्ते युद्धमध्ये "अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ। संप्रहाराभिसंपात-कलिसंस्फोटसंयुगाः" इत्यमरः, उच्चैरत्यर्थं प्रस्फुरच्छक्तिः प्रस्फुरन्ती दीप्यमाना स्वकीया शक्तिः अस्त्रविशेषः यस्य सः, पक्षे—दीप्यमाना कर्णप्रेरिता उरसि लग्ना शक्तिः एकघ्नी शक्तिः यस्य सः बृहदवयवभारैः महद्भिरङ्गभारैः क्षुण्णदिग्दन्तिकुम्भः क्षुण्णाः विमर्दिताः दिग्दन्तिनः दिग्गजाः येन सः क्षुण्णदिग्दन्ती स चासौ कुम्भः कुम्भनामा राक्षसः क्षुण्णदिग्दन्तिकुम्भः, पक्षे—क्षुण्णाः विमर्दिताः दिग्दन्तिनां दिग्गजानां कुम्भाः शिरःपिण्डाः येन सः घटोत्कचः, रजनिचरचमूपः राक्षससेनाध्यक्षः कुम्भः, पक्षे—घटोत्कचः क्ष्मातले भूतले पातितोऽभूत् निपातितः निहत इत्यर्थः। अत्र मालिनीवृत्तमुपमालङ्कारः।

इस के पश्चात् प्रलयकाल के वायु के द्वारा पर्वत के समान सूर्य के पुत्र सुग्रीव के द्वारा युद्ध में चमकते हुए अपने शक्ति नामक अस्त्रवाला, राक्षस-सेना का अध्यक्ष अपने विशाल अङ्गों के भार से दिग्गजों का मर्दन करने वाला कुम्भ भूतल पर गिरा दिया गया।

दूसरे पक्ष में—सूर्य के पुत्र कर्ण के द्वारा, युद्ध में कर्ण के द्वारा प्रेरित छाती में लगी हुई चमकती हुई एकघ्नी शक्तिवाला, अपने विशाल अङ्गों के भार से दिग्गजों के शिरःपिण्डों का मर्दन करनेवाला, राक्षससेना का अध्यक्ष घटोत्कच भूतल पर गिरा दिया गया।

तस्मिंस्तदोपेयुषि दीर्घनिद्रां बभूव शोकाकुलितः स्वपक्षः।
विरोधिवर्गः सुतरां जहर्ष न कोऽपि सर्वप्रियतामुपैति ॥१५॥

तदा तस्मिन् काले तस्मिन् कुम्भे, पक्षे—घटोत्कचे दीर्घनिद्रां मरणम् उपेयुषि सति प्राप्तवति सति स्वपक्षः निजपक्षीयो जनः शोकाकुलितः शोकव्याकुलः बभूव अभवत्। विरोधिवर्गः शत्रुसमूहः सुतराम् अत्यन्तं जहर्ष प्रसन्नोऽभूत्, कोऽपि कश्चिदपि सर्वप्रियतां सर्वमनोरमतां न उपैति न प्राप्नोति। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजाति वृत्तम् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

उस समय में उस कुम्भ के, दूसरे पक्ष में—घटोत्कच के मरण प्राप्त कर लेने पर अपने पक्ष के लोग शोक से व्याकुल हो गये तथा शत्रुओं का समूह

अत्यन्त आनन्दित हो गया। यह निश्चित है कि कोई भी व्यक्ति सभी का प्रिय नहीं होता है।

तदनु किल निकुम्भः कोष्ठशूलं यथोग्रं
निधिमिव सलिलानामुद्धृतं कुम्भजन्मा।
रणभुवि परसैन्यं शून्यतामाशु निन्ये
भुवन-दहन-दाहारम्भ-तीव्रास्त्रतेजाः ॥१६॥

तदनु ततः पश्चात् यथा यद्वत् निकुम्भः ओषधिविशेषः "निकुम्भः कुम्भकर्णस्य तनये दन्तिकौषधौ" इति मेदिनी, कोष्ठशूलं जठरकष्टं शून्यतां नयति "पुंसि कोष्ठोऽन्तर्जठरम्" इत्यमरः, किलेति निश्चये कुम्भजन्मा अगस्त्यः उद्धृतम् उत्कालितं सलिलानां निधिमिव समुद्रमिव यथा समुद्रं शून्यतामनयदित्यर्थः तथैव भुवनदहन-दाहारम्भ-तीव्रास्त्रतेजाः भुवनदहनस्य संसारभस्मीकरणस्य दाहारम्भः भस्मीकरणकार्यं तस्मिन् कार्ये तीव्रं तीक्ष्णं समर्थमिति यावत्, अस्त्रस्य तेजः प्रहरणस्य प्रभावो यस्य सः निकुम्भः निकुम्भनामा कुम्भकर्णपुत्रः कुम्भजन्मा कुं पृथ्वीं मा भजन् न प्राप्नुवन् "गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनी मही" इत्यमरः, पक्षे—निकुम्भः कुम्भान्निसृतः कुम्भजन्मा द्रोणः, "कुटजो वृक्षभेदे स्यादगस्त्यद्रोणयोरपि" इति मेदिनी, कुटस्तु कुम्भ एव "कुटः कोटे पुमानस्त्री घटे स्त्रीपुंसयोर्गृहे" इत्यपि मेदिनी, रणभुवि युद्धभूमौ परसैन्यं शत्रुसेनाम् आशु शीघ्रं शून्यतां जनराहित्यं निन्ये प्रापयत्। अत्र मालिनीवृत्तमुपमाद्वयमलङ्कारः।

इस के पश्चात् जैसे निकुम्भ नामक ओषधी उदरशूल को शून्य कर देती है अर्थात् नष्ट कर देती है तथा जैसे अगस्त्य ऋषि जल-प्रवाह से उछलते हुए समुद्र को जलशून्य बना दिये थे उसी प्रकार संसार-भस्म करने का जो भस्मीकरण कार्य उस कार्य में समर्थ है अस्त्र का तेज जिस का इस प्रकार के पृथ्वी पर न पहुँचते हुए निकुम्भ नामक कुम्भकर्ण के पुत्र ने, दूसरे पक्ष में—घड़े से निकले हुए द्रोण ने युद्धभूमि में शत्रु सेना को शीघ्र ही जनशून्य बना दिया।

बाणार्णवौघैर्गमितेषु भूयोऽनेकेषु नाकं बलनायकेषु।
युधः पलायन्त युधिष्ठिरस्य सैन्यानि कुम्भोद्भवभीतियोगात् ॥१७॥

भूयः पुनरपि बाणार्णवौघैः शरसमुद्रप्रवाहैः अनेकेषु बहुषु बलनायकेषु सेनाप्रधानेषु नाकं स्वर्गं गमितेषु प्रेषितेषु युधिष्ठिरस्य युद्धे

स्थिरस्य रामस्य सैन्याः सैनिकाः "सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च ते" इत्यमरः, निकुम्भोद्भवभीतियोगात् निकुम्भादुत्पन्नभयसम्बन्धात्, पक्षे—युधिष्ठिरस्य भीमाग्रजस्य सैन्यानि बलानि कुम्भोद्भवभीतियोगात् कुम्भोद्भवो द्रोणः "कुटजो वृक्षभेदे स्यादगस्त्यद्रोणयोरपि" इति मेदिनी, कुटस्तु कुम्भ एव "कुटः कोटे पुमानस्त्री घटे स्त्रीपुंसयो गृहे" इत्यपि मेदिनी, तस्मादुत्पन्नभयसम्बन्धात् युधः युद्धात् पलायन्त अपासरन्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

पुनः बाणजालरूपी समुद्र के प्रवाहों से अनेक सेनानायकों के स्वर्ग भेज दिये जाने पर युद्ध में स्थिर रहने वाले राम के सैनिक निकुम्भ से उत्पन्न भय के सम्बन्ध से, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर की सेनाएँ द्रोण से उत्पन्न भय के सम्बन्ध से युद्धभूमि से भागने लगीं।

ततः कुमारव्यसनश्रवात्तद्गुरोर्विदित्वा सुकरं निपातम्।
हरिर्मरुन्नन्दन उद्यतात्मा समादधे तन्निधनाय यत्नम्॥१८॥

ततस्तदनन्तरं कुमारव्यसनश्रवात् कुमारस्य कुम्भकर्णपुत्रस्य निकुम्भस्य व्यसनं विपत्तिः मरणमिति यावत् तच्छ्रवात्, तच्छ्रवणात् तद्गुरोः तस्य ज्येष्ठपितृव्यस्य रावणस्य निपातं मारणं सुकरं सुसाध्यं भविष्यति, तन्मरणं श्रुत्वा क्रोधेन रावणः स्वयं युद्धार्थमागमिष्यति ततो मरिष्यति इति विदित्वा ज्ञात्वा मरुन्नन्दनः वायुपुत्रो हरिर्वानरः हनूमान् उद्यतात्मा उद्यतः संनद्धः आत्मा स्वस्वरूपं यस्य सः युद्धतत्परः सन्नित्यर्थः, तन्निधनाय तस्य निकुम्भस्य निधनाय मरणाय "अन्तो नाशो द्वयोर्मृत्युर्मरणं निधनोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः, यत्नं प्रयत्नं समादधे अकरोत्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

इस के बाद कुमार निकुम्भ का मरण सुनने से उस के बड़े चाचा रावण का वध करना सुसाध्य है अर्थात् 'इस का मरण सुन कर क्रोध से रावण स्वयं युद्ध में आवेगा तब मारा जायगा' यह समझ कर, इस कार्य के लिये तैयार होकर वायु के पुत्र हनुमान् उस निकुम्भ को मारने का प्रयत्न करने लगे।

पक्षे—ततस्तदनन्तरं कुमारव्यसनश्रवात् कुमारस्य स्वपुत्रस्य अश्वत्थाम्नः व्यसनश्रवात् मरणश्रवणात् गुरोः द्रोणाचार्यस्य तत् महत्कठिनं निपातं मारणं सुकरं सुसाध्यं भविष्यति 'आसीद् द्रोणस्य चिरजीवित्ववरदाने एतन्मरणस्थानं यत् पुत्रस्य मरणं श्रुत्वा तव मरणं भविष्यति अन्यथा तव मरणं नास्ति' इति विदित्वा ज्ञात्वा

हरिः कृष्णः मरुन्नन्दनः पवनपुत्रो भीमश्च उद्यतात्मा एतत्कार्ये उद्यतः संनद्धः आत्मा स्वस्वरूपं यस्य सः, एतत्कार्यसंलग्नः सन्निति यावत्, तन्निधनाय तस्य द्रोणस्य निधनाय मरणाय यत्नं प्रयत्नं समादधे कृतवान्। मिथ्यैवाश्वत्थाम्नो मरणवार्तामश्रावयदिति भावः।

इस के बाद अपने पुत्र अश्वत्थामा का मरण सुनने से गुरु द्रोणाचार्य का मरना जो कि बहुत कठिन कार्य है वह सुसाध्य हो जायगा (द्रोणाचार्य के चिरजीवित्व के वरदान में यह मरणस्थान था कि—पुत्र का मरण सुन कर तुम्हारा मरण होगा, अन्यथा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी) यह जान कर श्री कृष्ण तथा भीम उस कार्य के लिये तैयार हो कर उस द्रोणाचार्य के मरने के विषय में प्रयत्न करने लगे। अर्थात्—'अश्वत्थामा मर गया' यह झूठ ही समाचार सुना दिया। इस मिथ्या भाषण के विना द्रोण के मरने का दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था; क्यों कि उन का एक ही पुत्र था अश्वत्थामा, जो कि वरदान के कारण चिरजीवी था।

कृतास्त्रसन्तानविघातवार्तामनीश्वरः सोढुमसौ समन्युः।
प्राणच्छिदः शत्रुबलस्य मध्ये नेता बलानां विससर्ज हेतिम् ॥१९॥

कृतास्त्रसन्तानविघातवार्तां कृतः यः अस्त्रसन्तानस्य अस्त्रसमूहस्य विघातः खण्डनं तस्य वार्तां समाचारं "सन्तानः सन्ततौ देववृक्षे चापत्यगोत्रयोः" इति त्रिकाण्डशेषः, सन्ततिः श्रेणिः सा च समूह एव, सोढुं अवहेलितुम् अनीश्वरः असमर्थः अत एव समन्युः सक्रोधः "मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि" इत्यमरः, बलानां सैन्यानां नेता सञ्चालकः असौ निकुम्भः प्राणच्छिदः प्राणघातकस्य शत्रुबलस्य शत्रुसैन्यस्य मध्ये मध्यभागे तस्योपरीत्यर्थः, हेतिं शस्त्रं "रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः" इत्यमरः, विससर्ज प्राक्षिपत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

किये गये अस्त्र समूह के खण्डन का समाचार सहन करने में असमर्थ अत एव क्रोधित हो कर सेना के सञ्चालक इस निकुम्भ ने प्राणलेनेवाली शत्रु-सेना के ऊपर शस्त्र प्रहार किया।

पक्षे—कृतास्त्रसन्तानविघातवार्तां कृतमभ्यस्तम् अस्त्रं शस्त्रविद्या येन सः कृतास्त्रः एवंभूतश्चासौ सन्तानः अपत्यम् अश्वत्थामा तस्य विघातस्य मारणस्य वार्तां युधिष्ठिरोक्तं समाचारं सोढुम् अवहेलितुम् अनीश्वरः असमर्थः अत एव समन्युः सशोकः बलानां नेता सेनापतिः असौ द्रोणः प्राणच्छिदः प्राणघातकस्य शत्रुबलस्य शत्रुसैन्यस्य

मध्ये मध्यदेशे हेतिम् अस्त्रं विससर्ज तत्याज। शोकेन धनुर्बाणादिकं परित्यज्य विमुखो भूत्वा रथोपरि उपाविशदित्यर्थः।

अस्त्रविद्या में निपुण पुत्र के मरने का समाचार सहन करने में असमर्थ अत एव शोकयुक्त सेनापति द्रोण ने प्राणघातक-शत्रुसेना के बीच में अपना अस्त्र त्याग कर दिया अर्थात् शोक के कारण धनुषबाण आदि शस्त्र त्याग कर विमुख होकर रथ पर बैठ गये।

धृष्टद्युम्नः सपदि पवमानोद्भवस्तीव्रकर्मा
निर्मुक्तास्त्रप्रकरमभितस्तं सवैरोऽभिपत्य।
कुर्वन् कायात्पृथगथ शिरः कौरवान् क्षोभयित्वा
संग्रामाग्रे त्रिदिवपदवीपान्थमेनं व्यधत्त ॥२०॥

सपदि तत्कालमेव सवैरः शत्रुभावयुक्तः तीव्रकर्मा तीव्रं तीक्ष्णं कर्म कर्तव्यं यस्य सः, धृष्टद्युम्नः धृष्टम् उद्धतं द्युम्नं बलं यस्य सः "द्युम्नं वित्ते बलेऽपि च" इति मेदिनी, पक्षे—धृष्टद्युम्नः द्रुपदपुत्रः, पवमानोद्भवः पवनपुत्रः हनूमान्, पक्षे—पवमानोद्भवः पवमानः अस्यास्ति अर्श आद्यच् इति पवमानो वायुसखः वह्निरित्यर्थः, स उद्भव उत्पत्तिस्थानं यस्य सः धृष्टद्युम्न इत्यर्थः, अभितः सर्वतः निर्मुक्तास्त्रप्रकरं निःशेषेण मुक्तः प्रक्षिप्तः, पक्षे—परित्यक्तः अस्त्रप्रकरः शस्त्रसमूहो येन तम्, तं निकुम्भं, पक्षे—द्रोणम् अभिपत्य उपेत्य आक्रम्येत्यर्थः, कौरवान् कौ पृथिव्यां रवान् हाहाकारशब्दान् क्षोभयित्वा वर्धयित्वा, पक्षे—कौरवान् धार्तराष्ट्रान् क्षोभयित्वा क्षुब्धान् कृत्वा अथ अनन्तरं कायात् शरीरात् शिरः मस्तकं पृथक अतिरिक्तं कुर्वन् विदधत् संग्रामाग्रे युद्धसंमुखे एनं निकुम्भं, पक्षे—द्रोणं त्रिदिवपदवीपान्थं त्रिदिवपदव्याः स्वर्गमार्गस्य पान्थं पथिकं व्यधत्त कृतवान्। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं "मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्" इति लक्षणात्।

उसी समय शत्रुता का भाव धारण करने वाले, तीक्ष्ण कर्म करने वाले उद्धत बल वाले, पवनपुत्र हनुमान् जी ने, दूसरे पक्ष में—द्रुपद के पुत्र अग्नि से उत्पन्न धृष्टद्युम्न ने सब जगह अस्त्र समूह फेंकने वाले निकुम्भ के पास पहुँच कर पृथ्वी पर हाहाकार शब्दों को बढ़ा कर, दूसरे पक्ष में—सब प्रकार से अस्त्र त्याग करने वाले द्रोण के पास पहुँच कर कौरवों को क्षुब्ध कर के, इस के बाद शरीर से शिर को अलग करते हुए युद्ध के संमुख इस निकुम्भ को, दूसरे पक्ष में—इस द्रोण को स्वर्गमार्ग का पथिक बना दिया।

सा युद्धधीरापि निरस्तधैर्या विभ्रष्ट-नानायुधयोधवाहा ।
दशेव पुंसां प्रतिकूलदैवात् सेना परेषामभवत्पराची ॥२१॥

युद्धधीरापि युद्धे अन्यस्मिन् रणे धीरापि धैर्यशालिन्यपि अत्र रणे निरस्तधैर्या धीरत्वरहिता विभ्रष्टनानायुधयोधवाहा विभ्रष्टाः इतस्ततो विनष्टाः नानायधानि अनेकशस्त्राणि योधाः वीराः वाहाः अश्वाः यस्याः सा परेषां शत्रूणां राक्षसानां, पक्षे—कौरवाणाम् सा प्रसिद्धा सेना वाहिनी प्रतिकूलदैवात् विपरीतभाग्यात् पुंसां पुरुषाणां दशेव परिस्थितिरिव पराची पराङ्मुखी अभवत् अभूत् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

अन्य युद्ध में धैर्यशालिनी होने पर भी इस युद्ध में धैर्य त्याग देने वाली, नष्ट हो गये हैं अनेक अस्त्र योद्धा तथा घोड़े जिस के इस प्रकार की शत्रु राक्षसों की, दूसरे पक्ष में—शत्रु कौरवों की वह प्रसिद्ध सेना विपरीत भाग्य से पुरुषों की दशा के समान पराङ्मुखी हो गयी ।

पितुर्निपातादनुबद्धवैरः पत्युर्बलानां तनयः खरस्य ।
रोषेण मूर्च्छन् मकराक्ष उच्चैर्युगक्षये वार्धिरिवोच्चचाल ॥२२॥

बलानां पत्युः सेनापतेः खरस्य खरनामकस्य, पक्षे—तीक्ष्णस्य पितुः जनयितुः खरराक्षसस्य, पक्षे—द्रोणस्य निपातात् मारणात् अनुबद्धवैरः अनुबद्धं पश्चादपि दृढीकृतं वैरं शत्रुभावो येन सः, तनयः तत्पुत्रः रोषेण क्रोधेन उच्चैः अत्यर्थं मूर्च्छन् वर्धमानः 'मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः' इति कौमुदी, मकराक्षः मकराक्षनामा खरात्मजः, पक्षे—मकराविव अक्षिणी यस्य सः अश्वत्थामा युगक्षये प्रलयकाले वार्धिरिव समुद्र इव उच्चचाल अग्रे अवर्धत । अत्रापि तदेवोपजातिवृत्तमुपमालङ्कारः ।

सेना के अध्यक्ष अपने पिता खर के मारे जाने से शत्रुत्व-भाव धारण करने वाला, क्रोध से अत्यन्त बढ़ा हुआ, उस खर का पुत्र मकराक्ष, दूसरे पक्ष में—सेना के पति, तीक्ष्ण पराक्रम वाले अपने पिता द्रोण के मारे जाने से शत्रुत्व-भाव धारण करने वाला, क्रोध से अत्यन्त बढ़ा हुआ उस द्रोण का पुत्र, मकर के समान आँख वाला अश्वत्थामा प्रलय काल में समुद्र के समान आगे बढ़ने लगा ।

तदुन्मुक्तनिराबाधबाणवाडववह्निभिः ।
क्षोणीपालबलाम्भोधिः क्षणात्क्षयमनीयत ॥२३॥

तदुन्मुक्तनिराबाधबाणवाडववह्निभिः तेन मकराक्षेण, पक्षे—

अश्वत्थाम्ना उन्मुक्ताः प्रक्षिप्ताः ये निराबाधाः बाधारहिताः प्रतिद्वन्दिबाणरहिता इति यावत् बाणाः शराः ते एव वाडववह्नयः वडवानलाः तैः क्षोणीपालबलाम्भोधिः क्षोणीपालस्य भूपतेः रामस्य, पक्षे--युधिष्ठिरस्य बलाम्भोधिः सेनासमुद्रः क्षणात् अल्पकालेनैव क्षयं विनाशम् अनीयत प्रापितः। अत्रानुष्टुप् छन्दः रूपकमलङ्कारः।

उस मकराक्ष के द्वारा, दूसरे पक्ष में उस अश्वत्थामा के द्वारा फेंके गये बाधारहित बाणरूपी बड़वानलों से राजा राम का, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर का सेनासमुद्र क्षणभर में विनष्ट कर दिया गया।

अभीतिभाजा विहिताभियोगस्तेन क्षणात् क्षोणिपतेर्बलौघः।
नारायणास्त्राभिहतो बभूव राहोरधःकाय इवापचेष्टः ॥२४॥

अभीतिभाजा भयरहितेन तेन मकराक्षेण, पक्षे—अश्वत्थाम्ना विहिताभियोगः कृताभिग्रहः कृतास्कन्द इति यावत् "अभियोगस्त्वभिग्रहः" इत्यमरः, क्षोणिपतेः राज्ञो रामस्य, पक्षे--युधिष्ठिरस्य बलौघः सेनासमूहः, भारतपक्षे--नारायणास्त्राभिहतो बलौघः नारायणदेवताकास्त्रेण प्रहृतः सेनासमूहः नारायणास्त्राभिहतः नारायणस्य मोहिनीरूपधारिणो विष्णोः अस्त्रेण चक्रेण अभिहतः ताडितः राहोः राहुदैत्यस्य अधःकाय इव कबन्ध इव अपचेष्टः चेष्टारहितः बभूव अभवत्। सर्वे सैनिकाः मूर्च्छया निश्चेष्टा बभूवुरिति भावः, भारतपक्षे—'इदं नारायणास्त्रं शस्त्ररहितं न हन्ति' इति कृष्णेनोक्ते सति सर्वेऽपि पाण्डवसैनिकाः अस्त्राणि परित्यज्य युद्धचेष्टारहिता अभवन् इति भावः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

भय से रहित उस मकराक्ष के द्वारा आक्रमण किया हुआ राजा राम का सैन्यसमूह, दूसरे पक्ष में—भय से रहित उस अश्वत्थामा के द्वारा ललकारा हुआ तथा नारायण-देवताक अस्त्र से प्रहार किया हुआ राजा युधिष्ठिर का सैन्यसमूह मोहिनीरूपधारी विष्णुभगवान् के चक्र से ताडित राहु दैत्य के कबन्ध के समान चेष्टाहीन हो गया। अर्थात् राम के सैनिक मूच्छित हो जाने के कारण निश्चेष्ट हो गये। महाभारत पक्ष में--युधिष्ठिर के सैनिक श्रीकृष्ण के द्वारा 'यह नारायणास्त्र शस्त्ररहित को नहीं मारता है' यह कहे जाने पर अस्त्रों का त्याग कर के युद्ध की चेष्टा से रहित हो गये।

मुक्तायुधमहायोधा संभ्रान्तपवनात्मजा।
रामावरजवाचा सा पर्यवस्थापिता चमूः ॥२५॥

मुक्तायुधमहायोधा, मूर्छया, पक्षे—कृष्णस्य वचनेन मुक्तानि परित्यक्तानि आयुधानि अस्त्राणि यैः एवंभूताः महायोधाः महावीराः यस्यां सा, संभ्रान्तपवनात्मजा संभ्रान्तः भयभीतः पवनात्मजः वायुपुत्रो हनूमान् , पक्षे—भीमसेनो यस्यां सा, "संभ्रमः साध्वसेऽपि स्यात् संवेगादरयोरपि" इति मेदिनी, सा चमूः रामसेना, पक्षे—युधिष्ठिरसेना रामावरजवाचा रामावरजस्य दाशरथेः रामस्य अनुजस्य लक्ष्मणस्य, पक्षे—बलभद्रानुजस्य कृष्णस्य वचनेन पर्यवस्थापिता प्रकृतिमापाद्य सुस्थिरा कृता। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

मूर्च्छा से, दूसरे पक्ष में—श्रीकृष्ण के वचन से अपने हथियार त्यागे हुए हैं बड़े बड़े वीर जिस में, भयभीत हैं वायु के पुत्र हनुमान्, दूसरे पक्ष में—भीम जिस में इस प्रकार की वह राम की सेना राम के छोटे भाई लक्ष्मण के वचन से प्रकृतिस्थ हुई, दूसरे पक्ष में—इस प्रकार की वह युधिष्ठिर की सेना बलराम के छोटे भाई कृष्ण के वचन से सुस्थिर हुई।

श्रीकण्ठकण्ठमचिरादिव कालकूटः
पूर्वं पयोनिधिमिवौर्वमुनेः प्रकोपः।
आसाद्य मानवतनुं पुरुषं पुराणं
तस्य प्रतापमहिमा प्रशशाम तीव्रः ॥२६॥

श्रीकण्ठकण्ठं श्रीकण्ठस्य शिवस्य कण्ठं गलम् "उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत्। वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः" इत्यमरः, आसाद्य प्राप्य अचिरात् शीघ्रमेव कालकूट इव विषमिव, यथा विषं प्रशशाम तद्वदित्यर्थः, पूर्वं प्राचीनकाले पयोनिधिं समुद्रं प्राप्य और्वमुनेः प्रकोप इव वडवानल इव मानवतनुं मनुष्यशरीरधारिणं पुराणं पुरुषं विष्णुं राममित्यर्थः, पक्षे—कृष्णम् आसाद्य उपेत्य तस्य मकराक्षस्य, पक्षे—अश्वत्थाम्नः तीव्रः तीक्ष्णः प्रतापमहिमा प्रभावस्य महत्त्वम् शस्त्राणां प्रभावः इति यावत्, पक्षे—नारायणास्त्रस्य तेज इति भावः, प्रशशाम शान्तो बभूव। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" इति लक्षणात् उपमाद्वयमलङ्कारः।

श्री शङ्कर जी का कण्ठ प्राप्त कर के विष के समान तथा प्राचीन काल में समुद्र को प्राप्त कर के वड़वानल स्वरूप और्वमुनि के क्रोध के समान रामरूपी, दूसरे पक्ष में—कृष्णरूपी पुराणपुरुष विष्णु को प्राप्त कर के उस मकराक्ष का

प्रताप अर्थात् अस्त्र का तीक्ष्ण प्रभाव, दूसरे पक्ष में--अश्वत्थामा के नारायणास्त्र का तीक्ष्ण प्रभाव समाप्त हो गया।

प्रतापमाग्नेयमिवास्त्रमस्य रुद्ध्वा जितारिं नरदेवसूनुम्।
तं वीरलक्ष्मीर्जुषते स्म नक्तं शृङ्गारलक्ष्मीरिव कामदेवम् ॥२७॥

इति हरधरणी-प्रसूत-कादम्बकुलतिलक-वीरचक्रवर्तिभूपकामदेव-प्रोत्साहितकविराजविरचिते कामदेवाङ्के राघवपाण्डवीये महाकाव्ये कुम्भनिकुम्भघटोत्कचद्रोणवधो नामैकादशः सर्गः ॥११॥

अस्य मकराक्षस्य आग्नेयम् अग्निदेवताकम् अस्त्रमिव आयुधमिव प्रतापं पराक्रमं रुद्ध्वा विजित्य, पक्षे—अस्य अश्वत्थाम्नः प्रतापमिव पराक्रममिव आग्नेयमस्त्रं नारायणास्त्रसम्बन्धिवह्निज्वालां रुद्ध्वा प्रशम्य जितारिं जितः पराजितः अरिः शत्रुर्येन तम् नरदेवसूनुं राजतनयं तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं वीरलक्ष्मीः विजयश्रीः नक्तं रात्रौ शृङ्गारलक्ष्मीः प्रसाधनशोभा कामदेवमिव मदनमिव जुषते स्म असेवत। एतद्ग्रन्थकारयितारं कामदेवभूपमिवेत्यपि व्यज्यते प्रसाधनशोभा तं भूपमपि भजते इति भावः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इति राघवपाण्डवीये काव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीरघुनन्दन-शर्मात्मज श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनी-नामधेयायां व्याख्यायामेकादशः सर्गः।

इस मकराक्ष के आग्नेय अस्त्र के समान पराक्रम को नष्ट कर के, दूसरे पक्ष में--इस अश्वत्थामा के पराक्रम के समान नारायणास्त्र सम्बन्धी ज्वाला को नष्ट कर के उस राम की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की विजयशोभा, जैसे—प्रशाधनशोभा रात में मन्मथ की सेवा करती है उसी प्रकार सेवा करने लगी। प्रसाधन-शोभा इस ग्रन्थ के कारयिता राजा कामदेव की भी सेवा करती है यह भी व्यङ्ग्य होता है।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिलब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूत श्री दामोदरझा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में एगारहवाँ सर्ग ॥११॥



द्वादशः सर्गः

अथ गोप्तारमङ्गानां जिष्णोर्जेतारमाहवे ।
संभाव्योद्योजयामास सदशास्यो जनेश्वरः ॥१॥

अथ अनन्तरं जनेश्वरः राजा दशास्यः दशमुखः सः रावणः आहवे युद्धे अङ्गानां हस्त्यश्वरथपादातानां गोप्तारं रक्षकं संभाव्य अनुमीय जिष्णोरिन्द्रस्य "जिष्णुर्ना वासवेऽर्जुने जित्वरे वाच्यवत्" इति मेदिनी, जेतारं विजयिनं मेघनादम् उद्योजयामास प्रेरितवान् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

इस के बाद दशमुख राजा रावण ने युद्ध में हस्त्यश्वरथपादातरूपी सेनाङ्गों का रक्षक होने की संभावना करके इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद को प्रेरित किया ।

पक्षे—अथ अनन्तरं सदशास्यः सतामनुपदेशार्हः जनेश्वरः राजा दुर्योधनः आहवे युद्धे जिष्णोरर्जुनस्य जेतारं विजयिनं संभाव्य अनुमीय अङ्गानाम् अङ्गदेशस्य गोप्तारं राजानं कर्णम् उद्योजयामास प्रेरितवान् ।

इस के बाद सज्जनों के लिये न उपदेश देने योग्य राजा दुर्योधन ने 'युद्ध में अर्जुन को जीतेगा' यह संभावना कर के अङ्ग देश के राजा कर्ण को प्रेरित किया ।

सशक्रचापच्छवि मेघनादो धुन्वन्धनुर्ज्याशरसङ्गिकर्णः ।
रणाय भर्तुर्जयकारणाय जवेन जैत्रं रथमारुरोह ॥२॥

ज्याशरसङ्गिकर्णः ज्याशरयोः मौर्वीबाणयोः सङ्गी सहावस्थायी कर्णः श्रवणं यस्य सः, सः प्रसिद्धपराक्रमी मेघनादः एतन्नामा रावण-पुत्रः शक्रचापच्छवि इन्द्रधनुराकारं धनुः चापं धुन्वन् कम्पयन्, पक्षे—मेघनादः मेघवत् नादः शब्दः यस्य सः, सः प्रसिद्धपराक्रमी कर्णः राधेयः शक्रचापच्छवि इन्द्रधनुराकारं ज्याशरसङ्गि मौर्वीबाण-संयुक्तं धनुः चापं धुन्वन् कम्पयन् भर्तुः पत्युः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य जयकारणाय विजयार्थं रणाय योद्धुं जवेन वेगेन जैत्रं

जयनशीलं रथं स्यन्दनम् आरुरोह आरोहति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

प्रत्यञ्चा खींचने से प्रत्यञ्चा तथा बाण से संयुक्त कान वाले प्रसिद्ध पराक्रमी मेघनाद ने इन्द्रधनुष के तुल्य कान्ति वाले धनुष को कँपाते हुए, दूसरे पक्ष में—मेघ के समान शब्द करने वाले उस प्रसिद्ध पराक्रमी कर्ण ने इन्द्रधनुष की कान्तिवाले तथा प्रत्यञ्चा और बाण से संयुक्त धनुष को कँपाते हुए राजा रावण की, दूसरे पक्ष में—राजा दुर्योधन की विजय के लिये युद्धार्थ बहुत वेग से जयनशील रथ पर आरोहण किया ।

उत्सर्पन्कलकलघोषभीषणाभिर्व्यालोलध्वजपटलीढदिक्तटीभिः ।
संग्रामप्रमदभरादसंभ्रमाभिर्वीराणामथ समनाहि वाहिनीभिः ॥३॥

अथ अनन्तरम् उत्सर्पता उद्गच्छता कलकलघोषेण अव्यक्ततुमुलशब्देन भीषणाभिः भयङ्कराभिः, व्यालोलध्वजपटलीढदिक्तटीभिः व्यालोलैः चञ्चलैः ध्वजपटैः पताकाञ्चलैः लीढा ग्रस्ताः आवृता इति यावत् दिक्तट्यः दिशामन्तभागाः याभिः ताभिः, संग्रामप्रमदभरात् युद्धामोदबाहुल्यात् असंभ्रमाभिः भयशून्याभिः 'संभ्रमः साध्वसेऽपि स्यात्संवेगादरयोरपि' इति मेदिनी, वीराणां योधानां वाहिनीभिः सेनाभिः समनाहि सन्नद्धम् । अत्र प्रहर्षिणी वृत्तं 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति लक्षणात् ।

इस के बाद उत्पन्न हुए अस्पष्ट तथा तुमुल शब्द से भयङ्कर, चञ्चल ध्वज-पताकाओं से दिशाओं को भर देने वाली, युद्ध के उत्साह से भयरहित, दोनों पक्षों के अर्थात्, राम-रावण के पक्षों के, दूसरे पक्ष में—कौरव-पाण्डवों के पक्षों के योधाओं की सेना लड़ने के लिये सन्नद्ध हो गयी ।

समिद्धराधेयभुजप्रतापे द्विषद्बले दृग्विषयं प्रपन्ने ।
चमूभृता वह्निभवेन गुप्ता नरेन्द्रसेना त्वरते स्म योद्धुम् ॥४॥

समिद्धराधेयभुजप्रतापे समितः युद्धस्य धरायां भूमौ आधेयः स्थापनीयः भुजप्रतापो बाहुपराक्रमो यस्य तस्मिन्, पक्षे—समिद्धः वर्धितः यः राधेयः कर्णः तस्य भुजप्रतापो बाहुबलं यस्मिन् तस्मिन् द्विषद्बले शत्रुसैन्ये रावणसेनायां, पक्षे—कौरवसेनायां दृग्विषयं नयनगोचरं प्रपन्ने प्राप्ते सति वह्निभवेन अग्निपुत्रेण नीलेन, पक्षे—अग्नेरुत्पन्नेन धृष्टद्युम्नेन चमूभृता सेनापतिना गुप्ता सुरक्षिता नरेन्द्रसेना राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य सेना योद्धुं रणाय त्वरते स्म त्वरामकरोत् । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

युद्धभूमि में स्थापनीय है बाहुबल जिस का, दूसरे पक्ष में--बढ़े हुए कर्ण का पराक्रम है जिस में इस प्रकार के शत्रुसैनिकों के अर्थात् रावण-सेना के दूसरे पक्ष में--दुर्योधन की सेना के दृष्टिगोचर हो जाने पर अग्नि के पुत्र सेनापति नील के द्वारा, दूसरे पक्ष में--अग्नि से उत्पन्न सेनापति धृष्टद्युम्न के द्वारा सुरक्षित राजा राम की सेना, दूसरे पक्ष में--युधिष्ठिर की सेना युद्ध करने के लिये शीघ्रता करने लगी।

रभसचलितनानाहेतिबालप्रवाले
प्रतिमुखमुपनीते मृत्युना मन्युना च।
द्रुतमिव वनराजी निर्गते निम्नगाभ्यां
रणभुवि जघटाते ते उभे राजसैन्ये ॥५॥

रभसचलितनानाहेतिबालप्रवाले रभसेन वेगेन चलिता ऊर्ध्वंगता नानाहेतयः अनेकशस्त्राणि "रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः" इत्यमरः, बालप्रवाला इव नवकिसलया इव ययोस्ते, मृत्युना यमेन मन्युना क्रोधेन च प्रतिमुखं संमुखम् उपनीते प्रापिते ते प्रसिद्धे उभे द्वे अपि राजसैन्ये राज्ञोः रामरावणयोः, पक्षे—युधिष्ठिरदुर्योधनयोः सैन्ये सेने रणभुवि युद्धभूमौ निम्नगाभ्यां नदीभ्यां निर्गते निःसृते वनराजी इव काननपङ्क्ती इव द्रुतं तूर्णं जघटाते संघट्टिते अभूताम्। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

वेग से चले हुए अनेक शस्त्र नव किसलय के समान हैं जिन में वे मृत्यु के द्वारा तथा क्रोध के द्वारा संमुख लाये हुए वे दोनों राजाओं की सेना राम की सेना तथा रावण की सेना, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की सेना तथा दुर्योधन की सेना युद्धभूमि में, दो नदियों से निकली हुई अर्थात् वहा कर लाई हुई दो वन श्रेणियों के समान शीघ्र ही एक दूसरे से भिड़ गईं।

आहूतामरलोकवारवनितं दिग्व्यापि-भेरीरवै-
र्दूराकृष्टकबन्धवृन्दमचिरात् सान्द्रैरसृक्सिन्धुभिः।
संबाधीकृतनाकनायकपुरं संशप्तकश्रेणिभि-
र्दन्तादन्ति कचाकचि द्रुतमभूद्युद्धं तलातल्यपि ॥६॥

दिग्व्यापिभेरीरवैः दिग्व्यापिभिः दिशामन्तं यावत्, प्रसरणशीलैः भेरीरवैः दुन्दुभिशब्दैः आहूतामरलोकवारवनितम् आहूताः आकारिताः अमरलोकस्य स्वर्गस्य वारवनिताः अप्सरसः येन तत्, अचि-

रात् शीघ्रमेव सान्द्रैः सघनैः असृक्सिन्धुभिः शोणितनदैः दूराकृष्टकबन्धवृन्दं दूरम् अत्यन्तम् आकृष्टानि आकृष्य नीतानि कवन्धवृन्दानि अपमूर्धकलेवरसमूहाः येन तत्, संशप्तकश्रेणिभिः युद्धादनिवर्तिवीरसमूहैः "संशप्तकास्तु समयात्संग्रामादनिवर्तिनः" इत्यमरः, संबाधीकृतनाकनायकपुरं संबाधीकृतं संकटीकृतं नाकनायकस्य स्वर्गाधीश्वरस्य इन्द्रस्य पुरं स्वर्गनगरं येन तत्, द्रुतं शीघ्रं दन्तादन्ति दन्तैर्दन्तैः प्रहृत्य प्रवृत्तम् कचाकचि कचैः कचैः केशैः केशैराकृष्य प्रवृत्तम् तथा तलातल्यपि तलैः तलैः चपेटाभिः चपेटाभिः प्रहृत्य प्रवृत्तमपि युद्धम् आयोधनम् अभूत् जातम्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं "सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" इति लक्षणात्।

दिशाओं को भरने वाले नगाड़ों के शब्दों से स्वर्गलोक की अप्सराओं को बुलानेवाला, शीघ्र ही सघन शोणित के नदों के द्वारा शिर से हीन शरीरों को दूर तक वहा कर ले जाने वाला, युद्ध में पीठ न दिखाने वाले मरे हुए वीरों से इन्द्रपुरी को ठसाठस भर देने वाला, शीघ्र ही दाँतों-दाँतों से प्रहार करके, केशों-केशों को घसीट कर के, चपेटों-चपेटों से ताडित करके प्रवृत्त होने वाला युद्ध हुआ।

विधाय निःस्पन्दमिवारिवृन्दं स्वतीव्रधामप्रभवैः प्रतापैः।
विवेश वीरः स निवेशभूमिं द्वीपान्तरं सूर्य इवोपसन्ध्यम् ॥७॥

स्वतीव्रधामप्रभवैः स्वानि आत्मीयानि तीव्रधामानि तीक्ष्णतेजांसि प्रभवः उत्पत्तिस्थानं येषां तैः प्रतापैः दण्डजप्रभावैः "स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजःकोषदण्डजम्" इत्यमरः, अरिवृन्दं शत्रुसमूहं निःस्पन्दमिव चेष्टारहितमिव संस्तब्धमिति यावद्, विधाय कृत्वा उपसन्ध्यं सन्ध्यायाः समीपकाले वीरः योद्धा सः मेघनादः, पक्षे—कर्णः उपसन्ध्यं सन्ध्यायाः समीपकाले सूर्यः रविः द्वीपान्तरमिव अन्यदन्तरीपमिव निवेशभूमिं शिबिरं विवेश प्राविशत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

अपने तीक्ष्ण तेजों से उत्पन्न होने वाले पराक्रम से शत्रुसमूह को संस्तब्ध कर के सन्ध्या समय करीब होने से उस योधा मेघनाद ने, दूसरे पक्ष में—उस योधा कर्ण ने जैसे सूर्य सायंकाल दूसरे द्वीप में चले जाते हैं उसी प्रकार अपने शिबिर में प्रवेश किया।

प्रगे सहस्रांशुरिवोज्ज्वलप्रभः सवेगसज्यीकृतभीमकार्मुकः।
रथेन भूयः समराय निर्ययौ विपक्षवाञ्छानुगशल्यसारथिः ॥८॥

प्रगे प्रातःकाले "सायं साये प्रगे प्रातः प्रभाते" इत्यमरः, उज्ज्वलप्रभः उज्ज्वला दीप्यमाना प्रभा तेजो यस्य एवंभूतः सहस्रांशुरिव सूर्य इव सवेगसज्यीकृतभीमकार्मुकः सवेगं तूर्णं सज्यीकृतं मौर्वीयुक्तं कृतं भीमं भयङ्करं कार्मुकं धनुः यस्य सः, विपक्षवाञ्छानुगशल्यसारथिः विपक्षे शत्रुविषये वाञ्छानुगौ इच्छामनुसरन्तौ शल्यसारथी शल्यम् अस्त्रविशेषः सारथिः सूतश्च यस्य सः मेघनादः, पक्षे—विपक्षस्य शत्रोर्युधिष्ठरादेः वाञ्छानुगः इच्छामनुसरन् शत्रुपक्षपातीत्यर्थः, शल्यः मद्राधिपः सारथिः यस्य सः कर्णः, भूयः पुनरपि रथेन स्यन्दनेन समराय युद्धाय निर्ययौ निरगच्छत्। अत्र वंशस्थं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

प्रातःकाल दीप्तप्रभावाले सूर्य के समान शीघ्रता से प्रत्यञ्चा लगाये गये भयङ्कर धनुषवाला, शत्रु के विषय में इच्छा के अनुसारी शल्यशस्त्र तथा सारथी वाला मेघनाद, दूसरे पक्ष में—शत्रु युधिष्ठिरादिकों की इच्छा का अनुसरण करने वाला है अर्थात् शत्रु का पक्षपाती है शल्य सारथी जिस का इस प्रकार का कर्ण पुनः रथ के द्वारा अर्थात् रथ पर चढ कर युद्ध के लिये निकल पड़ा।

निर्यतीषु परितो वरूथिनीष्वाहवाय परिपाकदारुणः।
श्रूयते स्म चकितैश्चमूचरैः कर्णशल्यपरुषोक्तिविस्तरः ॥९॥

वरूथिनीषु सेनासु आहवाय युद्धाय परितः सर्वतः चतसृषु दिक्षु इत्यर्थः, निर्यतीषु निर्गच्छन्तीषु सतीषु चकितैः भयत्रस्तैः, पक्षे—आश्चर्यितैः चमूचरैः सैनिकैः परिपाकदारुणः परिपाके परिणामे दारुणः भयङ्करः भयङ्करफलद इत्यर्थः, कर्णशल्यपरुषोक्ति-विस्तरः कर्णयोः श्रवणयोः शल्यमिव शल्यनामकास्त्रमिव तद्वत् कष्टकारक इत्यर्थः, परुषोक्तिविस्तरः वीराणाम् अन्योन्यं कठोरवचनप्रसारः श्रूयते स्म आकर्णितः, पक्षे—कर्णशल्ययोः राधेयमद्राधिपयोः कौरवपक्षं पाण्डवपक्षञ्चाश्रितवतोरित्यर्थः, परुषोक्तिविस्तरः स्वस्वपक्षमाश्रित्य कटूक्तिप्रसारः श्रूयते स्म श्रवणगोचरीकृतः। अत्र रथोद्धतावृत्तम् "रान्नराविह रथोद्धता लगौ" इति लक्षणात्।

युद्ध के लिये चारों ओर से सेनाओं के निकलने पर भय से सन्त्रस्त सैनिकों के द्वारा परिणाम में भयङ्कर फल देने वाला, कानों में शस्त्र की नोक के समान कष्ट देनेवाला कटुवचनों का अर्थात् वीरवादों का विस्तार सुना गया, दूसरे पक्ष में—आश्चर्यचकित सैनिकों के द्वारा दुर्योधन के पक्षपाती कर्ण का तथा पाण्डव के पक्षपाती शल्य का एक दूसरे के प्रति कटु वचनों का विस्तार सुना गया।

अनुकूलजुषा सोऽथ वीरः सारथिना युतः ।
अंशुमानरुणेनेव नीयमानरथो बभौ ॥१०॥

अथ अनन्तरं वीरः योद्धा सः मेघनादः, पक्षे—कर्णः अनुकूलजुषा आनुकूल्यं भजता, पक्षे—पश्चादानुकूल्यं भजता सारथिना सूतेन, पक्षे—सूतपदधारिणा शल्येन, युतः संयुक्तः अंशुमान् सूर्यः अरुणेनेव अरुणनामकेन सारथिनेव नीयमानरथः अतिवाह्यमानस्यन्दनः सन् बभौ शुशुभे। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः।

इसके बाद अरुण सारथी के द्वारा सूर्य के समान ले जाया जा रहा है रथ जिस का, तथा अनुकूलता धारण करने वाले सारथी से युक्त वह योधा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—पश्चात् अनुकूलता धारण करने वाले सारथी शल्य से युक्त वह योधा कर्ण सुशोभित होने लगा।

दिग्भित्ति-प्रतिघट्टनोद्भव-महाघोषैर्जगद्भीषयन्
बाणासारसृजा धनुर्जलमुचा तन्वन्नसृङ्निम्नगाः ।
नानावीरविमर्दवर्तितभुजाकण्डूविनोदः क्षणा-
दभ्यर्णं प्रलयार्णवप्रतिनिधिः पृथ्वीपतेः प्राप सः ॥११॥

दिग्भित्तिप्रतिघट्टनोद्भवमहाघोषैः दिशः एव भित्तयः तासु प्रतिघट्टनेन प्रतिघातनेन उद्भवः उत्पत्तिर्येषाम् एवंभूताः ये महाघोषा महान्तः शब्दाः तैः जगत् संसारं भीषयन् भयत्रस्तं कुर्वन् बाणासारसृजा बाणान् एव आसारं धारासम्पातं सृजति उत्पादयतीति बाणासारसृक् तेन धनुर्जलमुचा धनुषा एव जलमुचा वारिदेन असृङ्निम्नगाः शोणितनदीः तन्वन् विस्तारयन् सृजन्निति यावत्, नानावीरविमर्दवर्तितभुजाकण्डूविनोदः नानावीराणाम् अनेकयोधानां विमर्दन निष्पेषणेन वर्तितः निर्वर्तितः कृत इति यावत्, भुजयोः बाह्वोः कण्ड्वाः कण्डूतेः विनोदः मनःप्रमोदः शान्तिरिति यावत्, येन सः, प्रलयार्णवप्रतिनिधिः कल्पान्तसमुद्रतुल्यः सः मेघनादः, पक्षे—कर्णः क्षणात् तूर्णमेव पृथ्वीपतेः राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य अभ्यर्णं समीपं "समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत्। उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्" इत्यमरः, प्राप प्राप्तवान्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। रूपकम् उपमा चालङ्कारौ।

दिशारूपी दिवारों में प्रतिघट्टित होने से उत्पन्न बहुत बड़े शब्दों से संसार वालों को भयभीत बनाते हुए, बाण रूपी धारासंपात उत्पन्न करने वाले धनुष

रूपी बादल के द्वारा शोणित की नदियाँ बनाते हुए, अनेक वीरों के कुचलने से भुजाओं की खुजली शान्त करने वाला, प्रलयकाल के समुद्र के सदृश वह मेघनाद राजा राम के पास पहुँचा, दूसरे पक्ष में—वह कर्ण शीघ्र ही राजा युधिष्ठिर के समीप पहुँचा।

कुर्वाणौ बाणवर्षैर्वियति दिविषदां स्वैरयात्रान्तरायं
हुङ्कारैः कर्षयन्तौ बहुलमदनदीनिर्गमं दिग्गजानाम् ।
सद्यः प्रत्यर्थिवर्गैरपि गुणविवशैः स्तूयमानप्रकर्षौ
प्रायुध्येतां प्रवीरौ सुभटजनदृशां लक्ष्यभूतावुभौ तौ ॥१२॥

बाणवर्षैः शरासारैः वियति आकाशे दिविषदां स्वर्गवासिनां देवगन्धर्वाणां स्वैरयात्रान्तरायं स्वच्छन्दगमनविघ्नं कुर्वाणौ आचरन्तौ, हुङ्कारैः हुङ्कारशब्दैः दिग्गजानां दिशां हस्तिनां बहुलमदनदीनिर्गमं बहुलानां बहुसंख्यानां मदनदीनां दानजलसरितां निर्गमं निःसरणं कर्षयन्तौ आकृष्टं कुर्वन्तौ शोषयन्तावित्यर्थः, गुणविवशैः गुणपराधीनैः प्रत्यर्थिवर्गैरपि शत्रुसमूहैरपि सद्यः तत्कालं स्तूयमानप्रकर्षौ स्तूयमानः प्रशंसितः प्रकर्षः पराक्रमौन्नत्यं ययोस्तौ, सुभटजनदृशां वीरजनलोचनानां लक्ष्यभूतौ द्रष्टव्यभूतौ प्रवीरौ प्रकृष्टवीरौ उभौ द्वावपि तौ राममेघनादौ, पक्षे—युधिष्ठिरकर्णौ प्रायुध्येतां युद्धम् अकुरुताम्। अत्र स्रग्धरावृत्तम् "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" इति लक्षणात्, अतिशयोक्तिरलङ्कारः।

बाणवर्षा से आकाश में स्वर्गवासी देवगन्धर्वों का स्वच्छन्दगमन में विघ्न डालते हुए, हुङ्कारों से दिग्गजों की बहुत अधिक मदनदियों का निःसरण शोषते हुए, गुणों से पराधीन बनेहुए शत्रुसमूहों के द्वारा भी तत्काल प्रशंसितपराक्रमोत्कर्ष वाले वीर लोगों की आँखों का लक्ष्य बने हुए श्रेष्ठवीर दोनों वे राम तथा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर तथा कर्ण भयङ्कर युद्ध किये।

स वाक्छरैराहितमर्मघातनश्चकार पीडां महतीं महीपतेः ।
क्षणेन सीताक्षपणव्यलीककृत् कृषीवलस्येव महानवग्रहः ॥१३॥

वाक्छरैः वचनबाणैः दुर्वचनैरिति यावत्, आहितमर्मघातनः कृतहृदयाघातः सीताक्षपणव्यलीककृत् सीतायाः जानक्याः मायारचितसीताया इति भावः, यत् क्षपणं हिंसनं तदेव व्यलीकम् अकार्यं तत् करोतीति सः, पक्षे—सीतायाः स्वर्गङ्गायाः यत् क्षपणं बाणप्रक्षेपैर्विनाशः सः एव व्यलीकम् अप्रियकार्यं तत्करोतीति सः, "सीता लाङ्गल-

रेखा स्याद् व्योमगङ्गा च जानकी" इति त्रिकाण्डशेषः, सः मेघनादः, पक्षे—कर्णः महीपतेः राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य, कृषीवलस्य कृषकस्य सीताक्षपणव्यलीककृत् सीतायाः लाङ्गलरेखायाः हलकृष्टभूमेरिति भावः, यत् क्षपणं विनाशः स एव व्यलीकम् अप्रियकार्यं तत्करोतीति सः "व्यलीकमप्रियाकार्यवैलक्ष्येष्वपि पीडने। नागरेऽथ" इति मेदिनी, महान् दीर्घः अवग्रह इव वृष्टिविघात इव, "वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ" इत्यमरः, क्षणेन अल्पकालेनैव महतीं बृहतीं पीडां व्यथां चकार कृतवान्। मायासीतामारणेन सव्यथं रामं मेघनादो वचनैर्निरभर्त्सयत्, पक्षे—बाणप्रहारजर्जरदेहं सव्यथं युद्धात्पलायितुमिच्छन्तं युधिष्ठिरं गृहीत्वा कर्णस्तं वचनैर्निर्भर्त्स्य कुन्त्याः वचनस्मरणेन शल्यवचनेन च तमत्यजत्, इति महाभारते। अत्र वंशस्थं वृत्तम् "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इतिलक्षणात्, उपमालङ्कारः।

बचनरूपी बाणों से मर्म-ताड़न करने वाले, मायारचितजानकी का विनाश रूपी अप्रिय कार्य करने-वाले उस मेघनाद ने राजा राम का, दूसरे पक्ष में—आकाशगङ्गा का बाण-प्रक्षेपों से ध्वंसरूपी अकार्य करने वाले कर्ण ने राजा युधिष्ठिर का किसान का हल से जोते हुए खेत के सस्य का संहाररूपी अप्रिय कार्य करने वाली बहुत बड़ी अवृष्टि के समान थोड़े ही समय में बहुत बड़ा कष्ट उत्पन्न किया अर्थात् उन्हें बहुत अधिक कष्ट दिया।

नैर्घृण्यात् सव्यथं शत्रोर्नरदेवमुपस्थितः।
तद्गिरा फल्गुनोऽप्याप भ्राता चित्तस्य विक्रियाम् ॥१४॥

शत्रोर्मेघनादस्य फल्गुनोऽपि निःसारादपि "असारं फल्गु" इत्यमरः, नैर्घृण्यात् नृशंसत्वात् सव्यथं पीडितं नरदेवं राजानं रामम् उपस्थितः प्राप्तः भ्राता लक्ष्मणः तद्गिरा तस्य रामस्य वचनेन सीताहिंसनवृत्तान्तकथनेनेत्यर्थः, चित्तस्य मानसस्य विक्रियाम् विकारं शोकमिति यावत्, आप प्राप्तवान्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

शत्रु मेघनाद के निःसार भी अर्थात् मायाजनित भी सीतावधरूप क्रूरता से पीड़ित हुए राजा राम के पास उपस्थित हुए भाई लक्ष्मण उस राम के सीतावध-वृत्तान्त कथनरूप वचन से मन का विकार अर्थात् शोक प्राप्त किये।

पक्षे—शत्रोः कर्णस्य नैर्घृण्यात् शस्त्रप्रहारदुर्वचनकथनरूपनृशंसत्वात् सव्यथं पीडितं नरदेवं राजानं युधिष्ठिरम् उपस्थितः भ्राता

फल्गुनोऽपि अर्जुनोऽपि तद्गिरा तस्य युधिष्ठिरस्य गिरा 'मदपकारिणं कर्णम् अनिहत्यैवागतोऽसि अतो धिक् त्वां त्वं गाण्डीवं परित्यज' इत्यादिवचनेन चित्तस्य मानसस्य विक्रियां विकारं क्रोधमित्यर्थः, आप प्राप्तवान् क्रुद्धोऽभूदित्यर्थः।

शत्रु कर्ण के शस्त्र-प्रहार दुर्वचन-कथनरूप क्रूरता से व्यथित राजा युधिष्ठिर के पास पहुँचे हुए भाई अर्जुन भी उस युधिष्ठिर के 'मेरे कष्ट देने वाले कर्ण को विना मारे ही यहाँ आये हो अतः तुम्हे धिक्कार है तुम गाण्डीव फेंक दो' इत्यादि वचनों से मन का विकार अर्थात् क्रोध प्राप्त किये। अर्थात् 'गाण्डीव त्याग करने को जो मुझे कहेगा, उसे मैं मार डालूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण अर्जुन तलवार ले कर युधिष्ठिर को मारने को उद्यत हो गये, कृष्ण के रोकने पर अपना शिर काटने को उद्यत हुए, उसे भी रोक कर प्रायश्चित्त की विधि बता कर कृष्ण ने दोनों को शान्त किया। यह महाभारत में है।

कृतानुशययोरन्तः प्रतियोगिविभीषणः।
अपनिन्ये तयोः कृष्णः कार्यज्ञो मन्युमूर्च्छनम् ॥१५॥

कृतानुशययोः सीतामरणे युद्धविलम्ब एव कारणमिति निश्चित्य कृतपश्चात्तापयोः तयोः रामलक्ष्मणयोः "अथानुशयो दीर्घद्वेषानुतापयोः" इत्यमरः, अन्तः मध्ये कार्यज्ञः क्रियामर्मज्ञः कृष्णः कृष्णवर्णः प्रतियोगिविभीषणः प्रतियोगी प्रतिपक्षी तन्मन्तव्यविरुद्धसिद्धान्तप्रतिपादक इत्यर्थः, स चासौ विभीषणः रावणानुजः मन्युमूर्च्छनं शोकवृद्धिम् अपनिन्ये दूरीचकार। अत्राप्यनुष्टुप् छन्दः।

सीता के मरने में युद्ध-विलम्ब ही कारण है, यह निश्चय कर के पश्चात्ताप करने वाले राम-लक्ष्मण के बीच में सभी क्रिया का मर्म जानने वाले, काले स्वरूप वाले, रामलक्ष्मण के सिद्धान्त से विरुद्ध सिद्धान्त कहने वाले अर्थात् 'सीता नहीं मरी है वह मायारचित सीता थी' यह कहने वाले विभीषण ने शोकवृद्धि को दूर किया।

पक्षे—कृतानुशययोः स्वस्वकर्मणि कृतपश्चात्तापयोः तयोः युधिष्ठिरार्जुनयोः अन्तः मध्ये कार्यज्ञः कर्तव्यमर्मज्ञः प्रतियोगिविभीषणः प्रतियोगिनां प्रतिपक्षिणां शत्रूणामित्यर्थः, विभीषणः भयङ्करः कृष्णः वासुदेवः मन्युमूर्च्छनं क्रोधवृद्धिम् अपनिन्ये दूरीचकार।

अपने अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप करने वाले उन दोनो युधिष्ठिर तथा अर्जुन के बीच में कर्तव्य का मर्म जानने वाले, शत्रुओं के लिये भयङ्कर श्रीकृष्ण ने उन दोनों की क्रोधवृद्धि को दूर किया।

धृतप्रसादेन ततो नृपेण वधाय शत्रोः प्रहितः कनीयान् ।
बलेन सार्धं बृहता बलिष्ठो रोद्धुं द्विषामुद्यममुद्यतोऽभूत् ॥१६॥

ततस्तदनन्तरं धृतप्रसादेन विभीषणसान्त्वनया प्रसन्नेन, पक्षे—कृष्णसान्त्वनया प्रसन्नेन नृपेण राज्ञा रामेण, पक्षे—युधिष्ठिरेण शत्रोः मेघनादस्य, पक्षे—कर्णस्य वधाय मारणाय प्रहितः प्रेषितः बलिष्ठः बलवान् कनीयान् कनिष्ठो भ्राता लक्ष्मणः, पक्षे—अर्जुनः बृहता महता बलेन सैन्येन सार्धं सह द्विषां शत्रूणाम् उद्यमम् उद्योगं निकुम्भिलायां यज्ञरूपप्रयत्नं, पक्षे—युद्धप्रयत्नं रोद्धुं भङ्क्तुम् उद्यतः सन्नद्धः अभूत् । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

इस के बाद विभीषण की, दूसरे पक्ष में—कृष्ण की सान्त्वना से प्रसन्नता धारण करने वाले राजा राम के द्वारा शत्रु मेघनाद का वध करने के लिये भेजे गये बलवान् छोटे भाई लक्ष्मण, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर के द्वारा शत्रु कर्ण का वध करने के लिये भेजे गये बलवान् छोटे भाई अर्जुन बहुत बड़ी सेना के साथ शत्रुओं का निकुम्भिला में यज्ञ करने का प्रयत्न, दूसरे पक्ष में—युद्ध का प्रयत्न रोकने के लिये उद्यत हो गये ।

अतुलबलहनूमत्कल्पितस्यन्दनश्री-
र्दवदहन इवासौ वैरिकक्षं विगाह्य ।
प्रतिहतवृषसेनाडम्बराघूर्णमेनं
प्रसभमकृत बाह्वोर्विक्रमाणां निकर्षम् ॥१७॥

अतुलबलहनूमत्कल्पितस्यन्दनश्रीः अतुलबलेन अतिबलवता हनूमता मारुतिना कल्पिता कृता स्यन्दनश्रीः रथसम्पत्तिः, पक्षे—रथशोभा यस्य सः, हनूमत्स्कन्धमारूढः, पक्षे—रथध्वजे स्थितेन हनूमता कृतरथशोभः इति भावः । दवदहन इव वनाग्निरिव वैरिकक्षं वैरिणः शत्रवः कक्ष इव तृणसमूह इव इति तं, "कक्षौ तु तृणवीरुधौ" इत्यमरः, विगाह्य विलोड्य असौ लक्ष्मणः, पक्षे—अर्जुनः प्रतिहतवृषसेनाडम्बरं प्रतिहतः तिरस्कृतः, वृषा इन्द्रः यया एवंभूता या सेना तस्याः आडम्बरेण विक्रमप्रपञ्चेन आघूर्णम् उद्भ्रान्तं गर्वितमिति यावत्, एनं मेघनादं, पक्षे—प्रतिहतः मारितः यः वृषसेनः एतन्नामा कर्णपुत्रः तस्य आडम्बरेण शोकप्रपञ्चेन आघूर्णम् उद्भ्रान्तं व्याकुलमिति यावत्, एनं कर्णम् प्रसभम् हठात् बाह्वोर्भुजयोः विक्रमाणां पराक्रमाणां निकर्ष

संनिवेशम् आश्रयमिति यावत्, "संनिवेशो निकर्षणम्" इत्यमरः, अकृत कृतवान्। अत्र मालिनी वृत्तम् उपमालङ्कारः।

अत्यन्त बलवान् हनुमान् के द्वारा की गयी है कन्धे पर चढाने के द्वारा रथ की सम्पत्ति, दूसरे पक्ष में—ध्वज पर रहने से रथ की शोभा जिस की वह, दावाग्नि के समान तृणसमूह के सदृश शत्रु-समूह का मन्थन कर के इस लक्ष्मण ने, तिरस्कृत किया गया है इन्द्र जिस से ऐसी सेना के पराक्रमाडम्बर से गर्वित इस मेघनाद को, दूसरे पक्ष में—इस अर्जुन ने मारेगये वृषसेननामक अपने पुत्र के शोकाडम्बर से व्याकुल इस कर्ण को हठात् अपनी भुजाओं के पराक्रम का आश्रय बनाया।

अत्रान्तरे पार्ष्णिममुष्य गृह्णन् विभीषणः संयति भीमसेनः।
दुःशासनं वैरिबलं प्रमथ्य बलेन बाह्वोर्यमसाच्चकार ॥१८॥

अत्रान्तरे अस्मिन्नवसरे संयति युद्धे अमुष्य लक्ष्मणस्य पार्ष्णिं पृष्ठभागं गृह्णन् संरक्षन् पश्चाद्भागे युद्धं कुर्वन्नित्यर्थः, भीमसेनः भीमा भयकारिणी सेना वाहिनी यस्य सः, विभीषणः विभीषणनामा रावणभ्राता बाह्वोर्भुजयोः बलेन पराक्रमेण दुःशासनं दुष्टं शासनं शास्त्रं यस्य तत् "शासनं राजदत्तोर्व्यां लेखाज्ञाशास्त्रशान्तिषु" इति मेदिनी, वैरिबलं शत्रुसैन्यं प्रमथ्य विमर्द्य यमसात् कृतान्ताधीनं "तदधीनवचने सातिः" चकार कृतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इसी बीच में युद्ध में इस लक्ष्मण के पृष्ठभाग में युद्ध करते हुए भयङ्करसेनावाले विभीषण ने भुजाओं के बल से दुष्टशास्त्रवाले अर्थात् दुष्ट उपदेश ग्रहण करने वाले शत्रुसैन्य को मर्दन कर के यमराज के अधीन कर दिया।

पक्षे—अत्रान्तरे अस्मिन्नवसरे संयति युद्धे अमुष्य अर्जुनस्य पार्ष्णिं पृष्ठभागं गृह्णन् रक्षन् पृष्ठभागे युद्धं कुर्वन्नित्यर्थः विभीषणः भयङ्करः भीमसेनः वृकोदरः बाह्वोर्भुजयोर्बलेन पराक्रमेण वैरिबलं वैरिणः शत्रोः दुर्योधनस्य बलं शक्तिस्वरूपं दुःशासनं दुःशासननामानमनुजं प्रमथ्य विमर्द्य यमसात् मृत्योरधीनं चकार कृतवान्।

इसी बीच में युद्ध में इस अर्जुन के पृष्ठभाग में युद्ध करते हुए शत्रुओं के लिये भयङ्कर भीमसेन ने अपनी भुजाओं के पराक्रम से शत्रुदुर्योधन के बलस्वरूप दुःशासन नामक उस के छोटे भाई को पछाड़ कर मार डाला।

अरातिरक्तक्षरणातिरौद्रं आभ्यद्गदाभीषणबाहुदण्डम्।
तथा तमालोक्य रणे चरन्तं साक्षात्कृतान्तं मनुते स्म लोकः ॥१९॥

अरातिरक्तक्षरणातिरौद्रम् अरातीनां शत्रुराक्षसानां, पक्षे—अरातेः शत्रोर्दुःशासनस्य रक्तक्षरणेन स्वशरीरलिप्तशोणितच्यावनेन अतिरौद्रम् अत्यन्तभयङ्करं, भ्राम्यद्गदाभीषणबाहुदण्डं भ्राम्यन्ती चक्रवत्परिचलन्ती या गदा विपोथनास्त्रविशेषः तया भीषणः भयङ्करः बाहुरेव भुज एव दण्डः यमास्त्रविशेषः यस्य तम् , तथा तेन प्रकारेण रणे युद्धे चरन्तं विचरन्तं तम् विभीषणं, पक्षे—भीमम् आलोक्य दृष्ट्वा लोकः जनः साक्षात्कृतान्तं प्रत्यक्षयमं मनुते स्म अवागच्छत्। अत्र पूर्ववदुपजातिवृत्तम् रूपकमलङ्कारः।

शत्रुराक्षसों के, दूसरे पक्ष में—शत्रु दुःशासन के शोणित शरीर में लिपे हुए होने से टपकने के कारण अत्यन्त भयङ्कर, घूमती हुई गदा से भयङ्कर बाहुरूपी यमदण्डवाले, उस प्रकार से युद्ध में विचरण करते हुए उस विभीषण को, दूसरे पक्ष में—भीम को देख कर लोग प्रत्यक्षरूप में यमराज मानने लगे।

तद्वैभीषणमालोक्य रणकर्म महाजनः।
राजदारोपरोधस्य फलमाप्तममन्यत ॥२०॥

महाजनः श्रेष्ठलोकः वैभीषणं विभीषणसम्बन्धि तद् रणकर्म तद् युद्धम् , पक्षे—वै इति पादपूरणे, भीषणं भयङ्करं तद् रणकर्म दुःशासनवधरूपं युद्धम् आलोक्य दृष्ट्वा (अनेन रावणेन, पक्षे—दुःशासनेन) राजदारोपरोधस्य राज्ञो रामस्य दाराः पत्नी सीता तस्याः उपरोधस्य अवरुद्ध्य लङ्कायां स्थापनस्य, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य दाराः पत्नी द्रौपदी तस्याः उपरोधस्य वस्त्राकर्षणरूपतिरस्कारस्य फलमाप्तम् परिणामः प्राप्तः इति अमन्यत जानाति स्म। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

श्रेष्ठलोगों ने विभीषणसम्बन्धि उस युद्ध को देख कर 'इस रावण ने राजा राम की पत्नी सीता को लङ्का में रोक कर रखने का फल प्राप्त किया है' यह समझा। दूसरे पक्ष में—श्रेष्ठलोगों ने भीम के दुःशासनवधसम्बन्धी उस भयङ्कर युद्ध को देख कर 'इस दुःशासन ने राजा युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी के वस्त्राकर्षण स्वरूप तिरस्कार का फल प्राप्त किया है' यह समझा।

तदा सौमित्रिणा बाणैर्जिष्णुना संमुखीकृतः।
अङ्गनामीश्वरः क्षुभ्यन्मेघनादो रुषं दधौ ॥२१॥

तदा तस्मिन् काले जिष्णुना जयनशीलेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन शरैः बाणैः संमुखीकृतः संमुखतां नीतः लक्ष्यीकृत इति यावत् , क्षुभ्यन्

यज्ञविध्वंसेन क्षुब्धः व्याकुल इति यावत्, अङ्गानां हस्त्यश्वरथपदाति-रूपसेनाङ्गानाम् ईश्वरः अधिपतिः मेघनादः एतन्नामा रावणकुमारः रुषं क्रोधं दधौ धारयति स्म क्रुद्धो बभूवेति यावत्। अत्रापि अनुष्टुप् छन्दः।

उस समय में जयनशील लक्ष्मण के द्वारा बाणों से लक्ष्य बनाये हुए, यज्ञ-विध्वंस होने से व्याकुल, हस्त्यश्वरथपदातिरूपीसेनाङ्गों के अधिपति मेघनाद ने क्रोध धारण किया।

पक्षे—तदा तस्मिन् काले मित्रिणा कृष्णमित्रयुक्तेन कृष्णसहिते-नेति यावत्, जिष्णुना अर्जुनेन बाणैः शरैः संमुखीकृतः लक्ष्यीकृतः अङ्गानामीश्वरः अङ्गदेशपतिः क्षुभ्यन् स्वपुत्रवृषसेनवधेन क्षुब्धः व्याकुल इति यावत्, मेघनादः मेघवत् नादः शब्दो यस्य सः असौ कर्णः रुषं क्रोधं दधौ धारयति स्म।

उस समय श्रीकृष्ण से युक्त अर्जुन के द्वारा बाणों से लक्ष्य बनायेहुए, अङ्गदेश के राजा, अपने पुत्र वृषसेन के मरने से व्याकुल, मेघ के समान शब्द करने वाले इस कर्ण ने क्रोध धारण किया।

बलभारनिरन्तरा धरित्री गगनं निर्विवरं च दिव्यलोकैः।
रजसा पिहितं तदन्तरालं न विभागो निरणीयत त्रिलोक्याः ॥२२॥

लक्ष्मणमेघनादयोर्युद्धे, पक्षे—अर्जुनकर्णयोर्युद्धे प्रारब्धे सति धरित्री पृथ्वी बलभारनिरन्तरा बलभारैः सैन्यसमूहैः निरन्तरा निरवकाशा जाता, गगनं नभोमण्डलं दिव्यलोकैः स्वर्लोकवासिभिः निर्विवरं निश्छिद्रं जातम्, तदन्तरालं तयोः पृथ्वीनभसोः अन्तरालं मध्यवर्तिस्थानं रजसा पांशुना पिहितम् आच्छादितम् अभूत् एवं त्रिलोक्याः भुवनत्रयस्य विभागः पार्थक्यम् न निरणीयत निर्णीतो नाभूत्। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम्, अतिशयोक्तिर-लङ्कारः।

लक्ष्मण तथा मेघनाद का युद्ध प्रारम्भ होने पर, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा कर्ण का युद्ध प्रारम्भ होने पर पृथ्वी सेनासमूह से निरवकाश हो गयी, आकाश स्वर्गलोकनिवासी दर्शकों से निश्छिद्र हो गया, उन दोनों के अर्थात् पृथ्वी तथा आकाश के बीच का भाग धूली से आच्छादित हो गया, इस प्रकार तीनों लोकों का विभाग निर्णीत नहीं हो रहा था।

प्रथममतनुभिस्तौ जघ्नतुः सिंहनादैः
परमपि च महोल्काक्षेपरूक्षैः कटाक्षैः।

अथ च वचनबाणैर्मर्मभेदप्रवीणै-
स्तदनु दलितकायैः सायकानां निकायैः ॥२३॥

तौ लक्ष्मणमेघनादौ, पक्षे—अर्जुनकर्णौ प्रथमं पूर्वम् अतनुभिः दीर्घैः सिंहनादैः सिंहवद्गर्जनैः, परमपि च ततः परमपि महोल्काक्षेपरूक्षैः महोल्काक्षेपवद् आकाशनिर्गतज्वालाप्रचारवद्रूक्षैः परुषैः कटाक्षैः वक्रदृष्टिभिः, अथ च तदनन्तरं मर्मभेदप्रवीणैः हृदयाघातनिपुणैः वचनबाणैः वाक्छरैः तदनु ततः पश्चात् दलितकायैः दलितः खण्डितः कायः शरीरं यैस्तैः सायकानां बाणानां निकायैः समूहैः "समाजोऽथ सधर्मिणाम्। स्यान्निकायः पुञ्जराशी तूत्करः कूटमस्त्रियाम्" इत्यमरः, जघ्नतुः प्रजह्रतुः। अत्र मालिनीवृत्तम्।

लक्ष्मण तथा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा कर्ण ये दोनों पहले बड़े बड़े सिंहनादों से, इस के बाद बहुत बड़ी उल्का के विक्षेप के समान कठोर कटाक्षों से, इस के बाद हृदय पर चोट पहुँचाने में निपुण वचनरूपी बाणों से, इस के पश्चात् शरीरखण्डन करने वाले बाणों के समूह से एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे।

नभश्चरैर्मार्गणपातभीतैरभ्यर्णमुत्सृज्य विलोकयद्भिः।
सविस्मयं व्याहृतसाधुवादं तयोः समानं समरं बभूव ॥२४॥

तयोः लक्ष्मणमेघनादयोः, पक्षे—अर्जुनकर्णयोः मार्गणपातभीतैः बाणपतनशङ्कितैः अत एव अभ्यर्णं समीपम् उत्सृज्य परित्यज्य दूरं गत्वेत्यर्थः, सविस्मयं साश्चर्यं यथा स्यात्तथा विलोकयद्भिः पश्यद्भिः नभश्चरैः गगनचारिभिः देवगन्धर्वादिभिरिति यावत्, व्याहृतसाधुवादं व्याहृतः उच्चारितः साधुवादः प्रशंसाशब्दः यस्मिन् तत् समरं युद्धं समानं तुल्यं तुल्यप्रहारमिति भावः, बभूव अभवत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

लक्ष्मण तथा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा कर्ण इन दोनों का, बाणपतन के भय से शङ्कित अत एव समीप का आकाश छोड़ कर दूर जाकर आश्चर्य के साथ अवलोकन करनेवाले गगनचारी देव गन्धर्वादिकों के द्वारा प्रशंसित युद्ध समान रूप का अर्थात् परस्पर समान प्रहारवाला हुआ।

निर्भिन्नधाराधरगर्भनिर्यत्कीलालकुल्योक्षितभूमिभागाः।
दूरं चरन्तो विशिखास्तदीया दिशां शिरोभेदमिव व्यतन्वन् ॥२५॥

तदीयाः तयोः लक्ष्मणमेघनादयोः सम्बन्धिनः, पक्षे—अर्जुनकर्णयोः सम्बन्धिनः दूरं चरन्तः ऊर्ध्वम् अतिदूरं यावद् गच्छन्तः अत एव निर्भिन्नधाराधरगर्भनिर्यत्कीलालकुल्योक्षितभूमिभागाः निर्भिन्नाः विद्धाः ये धाराधराः मेघाः तेषां गर्भेभ्यः अन्तस्तलेभ्यः निर्यन्ति निःसरन्ति कीलालानि जलानि तेषां या कुल्या कृत्रिमा सरित् तया उक्षिताः सिक्ताः भूमिभागाः भूप्रदेशाः यैस्ते, "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्" इति "कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्" इति चामरः, विशिखाः बाणाः दिशामाशानां शिरोभेदमिव शीर्षच्छेदमिव व्यतन्वन् अकुर्वन्। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

लक्ष्मण तथा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा कर्ण इन दोनों के सम्बन्धी, ऊपर दूर तक जाने वाले अत एव बेधे गये बादलों के गर्भ से निकले हुए पानी के नहरों से भूमिभागों को सींचने वाले बाणों ने मानो दिशाओं के शिर में छेद कर दिया।

दृष्टानेकपुराणवीरसमरश्रीभिः समं खेचरै-
रारब्धस्तुति नारदेन मुनिना निर्णीयमानान्तरम्।
भेरीध्वानभवद्भयाश्रितमहादिक्कुञ्जदिक्कुञ्जरं
युद्धं वर्धितपक्षपातमुभयोः प्रैक्षन्त देवासुराः ॥२६॥

देवासुराः देवाः असुराश्च उभयोः लक्ष्मणमेघनादयोः, पक्षे—अर्जुनकर्णयोः दृष्टानेकपुराणवीरसमरश्रीभिः दृष्टा अवलोकिता अनेकेषां बहूनां पुराणानां प्राचीनानां वीराणां योधानां समरश्रीः युद्धशोभा यैस्तैः, खेचरैः आकाशचारिभिः देवगन्धर्वादिभिः समं सह नारदेन एतन्नामकेन ब्रह्मपुत्रेण मुनिना ऋषिणा आरब्धस्तुति आरब्धा कृता स्तुतिः प्रशंसा यस्य तत्, तथा तैरेव निर्णीयमानं निश्चीयमानम् अन्तरं पार्थक्यं यस्य तत्, भेरीध्वानभवद्भयाश्रितमहादिक्कुञ्जदिक्कुञ्जरम् भेरीणां युद्धपटहानां ध्वानेभ्यः शब्देभ्यः भवद् उत्पद्यमानं यद् भयं त्रासः तेन आश्रिताः अवलम्बरूपेण गृहीताः महादिक्कुञ्जाः बृहद्दिङ्निकुञ्जाः लतादिपिहितोदरप्रदेशाः इति यावद्, यैः एवंभूताः दिक्कुञ्जराः दिग्गजाः येन तत्, वर्धितपक्षपातं वर्धितः प्रोत्साहितः पक्षपातः एकपक्षकल्याणचिन्तनं यस्मिन् तत् युद्धम् आयोधनं प्रैक्षन्त अवलोकयन्ति स्म। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं दिक्कुञ्जेत्यत्र यमकमलङ्कारः।

देवों ने तथा राक्षसों ने लक्ष्मण तथा मेघनाद, दूसरे पक्ष में—अर्जुन तथा कर्ण इन दोनों की, देखी गयी है अनेक पुराने वीरों की युद्धशोभा जिन से इस-प्रकार के आकाश में विचरण करने वाले देवगन्धर्वादिकों के साथ नारद मुनि के द्वारा की गयी है प्रशंसा जिस की तथा निश्चित किया गया है दोनो पक्षों का अन्तर जिस में, नगाड़ों के शब्द से उत्पन्न भय के कारण बड़े बड़े दिक्कुञ्जों का आश्रय लेने वाले हैं दिग्गज जिस से, बढ़ी हुई है एक पक्ष की कल्याणभावना जिस में इस प्रकार का युद्ध देखा।

विरचितमरिणाहिक्रूरबाणप्रयोक्त्रा
सहचरहरिशक्तिव्याहतारातिवाञ्छः ।
रणभुवि नृपसूनुर्मौलिरत्नापहारं
भुजग इव न सेहे स्तोकमप्याशुभङ्गम् ॥२७॥

सहचरहरिशक्तिव्याहताराातिवाञ्छः सहचराः सहयायिनः ये हरयः वानराः तेषां शक्तिभिः सामर्थ्यैः व्याहता विनष्टा अरिवाञ्छा शत्रोरभिलाषः येन सः नृपसूनुः राजकुमारो लक्ष्मणः रणभुवि युद्ध-भूमौ क्रूरबाणप्रयोक्त्रा कठोरबाणप्रक्षेपकेण अरिणा शत्रुणा मेघनादेन आशु शीघ्रं विरचितं कृतं भङ्गं अस्त्रखण्डनं, मौलिरत्नापहारं मस्तक-मणेरपहरणं भुजग इव सर्प इव स्तोकमपि किञ्चिदपि न सेहे न सोढ-वान्। अत्र मालिनीवृत्तम् उपमालङ्कारः।

साथ में रहनेवाले वानरों की शक्ति से शत्रु का मनोरथभङ्ग करनेवाले राजकुमार लक्ष्मण ने युद्धभूमि में कठोर बाणों का प्रयोग करनेवाले शत्रु मेघनाद के द्वारा शीघ्रता से किया गया अस्त्रखण्डन, शिरोमणि का अपहरण सर्प के समान थोड़ा भी सहन नहीं किया।

पक्षे—सहचरहरिशक्तिव्याहताराातिवाञ्छः सहचरः मित्रं यः हरिः कृष्णः तस्य शक्त्या सामर्थ्येन व्याहताराातिवाञ्छः भग्नारि-मनोरथः नृपसूनुः राजकुमारोऽर्जुनः रणभुवि युद्धभूमौ अहिक्रूरबाण-प्रयोक्त्रा अहिः विजयनामा सर्प एव क्रूरबाणः कठोरशरः तस्य प्रयोक्त्रा प्रेरकेण अरिणा शत्रुणा कर्णेन (खाण्डववनदहनकालेऽ-र्जुनेन विजयनाम्नो नागस्य माता हता, तद्वैरशोधनार्थं विजयो योगशक्त्या बाणरूपं धृत्वा कर्णमाश्रयत् कर्णोऽपि तं धनुष्याधाय अर्जुनोपरि प्राक्षिपत् तेनार्जुनस्य किरीटं छिन्नम् इति भारते) विरचितं कृतम् आशुभङ्गम् आ समन्तात् अशुभम् अकल्याणं गच्छति आदधा-

तीति तत् मौलिरत्नापहारं मौलेः शिरसः रत्नस्य किरीटरत्नस्य अप-हारं छित्त्वा पातनम् मौलिरत्नापहारं शिरोमणिहरणं भुजग इव सर्प इव स्तोकमपि अल्पमपि न सेहे न सोढवान् ।

अपने मित्र कृष्ण के सामर्थ्य से शत्रु का मनोरथ भङ्गकरनेवाले राजकुमार अर्जुन ने युद्धभूमि में विजय-नामक सर्प का कठोरबाणरूप में प्रयोग करनेवाले शत्रु कर्ण के द्वारा (खाण्डव वन-दहन के समय में अर्जुन के द्वारा विजय-नामक सर्प की माता मारी गयी थी, उसी वैर का बदला चुकाने के लिये विजय ने योग-शक्ति से बाण का रूप धारण करके कर्ण का आश्रय लिया कर्ण ने भी उसे धनुष पर चढा कर अर्जुन के ऊपर फेंक दिया, उस से अर्जुन का इन्द्रदत्त किरीट कट गया) किया हुआ अशुभ उत्पन्न करनेवाला शिर के किरीटरत्न का काट कर गिराना, शिरोमणि का अपहरण सर्प के समान थोड़ा भी सहन नहीं किया ।

आशु रोषवशवर्तिनाऽमुना ज्यानिनादकृततीव्रभर्त्सनाः ।
प्रत्यराति विशिखाः प्रतेनिरे कर्णकुण्डलविघट्टनोत्कटाः ॥२८॥

रोषवशवर्तिना क्रोधवशीभूतेन अमुना लक्ष्मणेन, पक्षे—अर्जुनेन प्रत्यराति शत्रुं लक्ष्यीकृत्य ज्यानिनादकृततीव्रभर्त्सनाः ज्यायाः मौर्व्याः निनादेन शब्देन कृताः उच्चारिताः तीव्राः परुषाः भर्त्सनाः अपकार-शब्दाः यैस्ते, कर्णकुण्डलविघट्टनोत्कटाः कर्णयोः श्रवणयोः कुण्डलयोः कर्णवेष्टनयोः वर्तुलभूषणयोरिति यावत् , विघट्टनेन आघातेन उत्कटाः उग्राः, पक्षे--कर्णस्य राधेयस्य यत् कुण्डलं कर्णभूषणं तस्य विघट्टनेन वियोजनेन छित्त्वा पातनेनेत्यर्थः, उत्कटाः उग्राः विशिखाः बाणाः आशु शीघ्रं प्रतेनिरे प्रक्षिप्ताः । अत्र रथोद्धतावृत्तं "रान्नराविह रथोद्धता लगौ" इति लक्षणात् ।

क्रोध के वशीभूत हुए इस लक्ष्मण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—इस अर्जुन के द्वारा शत्रु को अर्थात् मेघनाद को, दूसरे पक्ष में—कर्ण को लक्ष्य बना कर प्रत्यञ्चा के शब्द से कठोर फटकारने वाले तथा कानों के कुण्डलों में ठोकर देने के कारण भयङ्कर, दूसरे पक्ष में—कर्ण के कुण्डलों के काटने से भयङ्कर बाण शीघ्र ही प्रेरित किये गये ।

ग्रस्तचक्रस्य धरया निष्पन्नस्यन्दनापदः ।
रणकर्म महच्छत्रो र्नासोढ नरदेवजः ॥२९॥

नरदेवजः राजकुमारो लक्ष्मणः ग्रस्तचक्रस्य लक्ष्मणसेनया ग्रस्तम् आक्रम्य विनाशितं चक्रं सैन्यं यस्य तस्य अत एव धरया पृथिव्या

अर्थात् पृथिव्याश्रयेण निष्पन्नस्यन्दनापदः निष्पन्ना संजाता स्यन्दने संचरणे आपत् काठिन्यं यस्य तस्य शत्रोः अरेर्मेघनादस्य महत् विस्तृतं रणकर्म युद्धकार्यं नासोढ न सोढवान्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

राजकुमार लक्ष्मण ने सैनिक आक्रमण से विनष्ट सेनावाले अत एव पृथ्वी पर से चलने में कठिनाई धारण करने वाले शत्रु मेघनाद का बहुत बड़ा युद्ध कार्य नहीं सहन किया।

पक्षे—नरदेवजः राजकुमारोऽर्जुनः धरया पृथिव्या ग्रस्तचक्रस्य निगलितरथाङ्गस्य अत एव निष्पन्नस्यन्दनापदः निष्पन्ना जाता स्यन्दनस्य रथस्य आपत् आपत्तिः कठिनपरिस्थितिरिति यावत्, यस्य तस्य शत्रोः अरेः कर्णस्य महत् विस्तृतं रणकर्म युद्धकार्यं नासोढ न सोढवान्।

राजकुमार अर्जुन ने पृथिवी के द्वारा पहिया ग्रसे हुए अत एव रथ की कठिन परिस्थिति प्राप्त करने वाले शत्रु कर्ण का बहुत बड़ा युद्धकार्य नहीं सहन किया।

ततः प्रतीतो जगतीन्द्रसूनुः समाप्तिमिच्छन् समरार्णवस्य।
संधाय सन्धां सफलीकरिष्यन् कर्णान्तसज्जं शरमुत्ससर्ज ॥३०॥

ततस्तदनन्तरं प्रतीतः स्वपराक्रमे विश्वस्तः जगतीन्द्रसूनुः राजकुमारो लक्ष्मणः, पक्षे—अर्जुनः समरार्णवस्य युद्धसमुद्रस्य समाप्तिम् समापनम् इच्छन् वाञ्छन् सन्धां प्रतिज्ञां सफलीकरिष्यन् पूरयिष्यन् "सन्धा प्रतिज्ञा मर्यादा" इत्यमरः। कर्णान्तसज्जं श्रवणसमीपसंनद्धम् "अन्तः स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु" इति मेदिनी "संनद्धे सज्जः" इति विश्वप्रकाशः, पक्षे—कर्णस्य राधेयस्य अन्ताय नाशाय सज्जं सनद्धं शरं बाणं संधाय धनुष्यासज्य उत्ससर्ज अत्यजत् प्राहरदिति यावत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

इस के बाद अपने पराक्रम पर विश्वास करने वाले राजकुमार लक्ष्मण ने, दूसरे पक्ष में—राजकुमार अर्जुन ने युद्धरूपी समुद्र की समाप्ति चाहते हुए अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये कान के समीप तक खींचा हुआ, दूसरे पक्ष में—कर्ण के विनाश के लिये तैयार किया हुआ बाण धनुष पर चढ़ा कर छोड़ दिया।

उद्यताञ्जलिकेनासौ नानाविक्रमशोभितः।
त्रिशिखं विशिखेन घ्नन् विस्मयं कस्य नाकरोत् ॥३१॥

नानाविक्रमशोभितः अनेकपराक्रमशोभमानः असौ लक्ष्मणः,

पक्षे—अर्जुनः उद्यताञ्जलिकेन उत्थापिताञ्जल्याकारेण विशिखेन बाणेन विशिखं बाणं घ्नन् विनाशयन् कस्य कस्य जनस्य विस्मयम् आश्चर्यम् नाकरोत् न उदपादयत्? अपि तु सर्वस्यैव जनस्य आश्चर्यमुदपादयदित्यर्थः। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

अनेक प्रकार के पराक्रमों से सुशोभित इस लक्ष्मण ने, दूसरे पक्ष में—अर्जुन ने उद्यत किये हुए अँजुरी के आकार वाले बाण से बाण को नष्ट करते हुए किस को आश्चर्यित नहीं कर दिया? अर्थात् सभी को आश्चर्यित कर दिया।

क्षिप्रोत्क्षिप्तभ्रुकुटिभुजगाभीष्मभालं पुरस्ता-
न्न्यस्तापाङ्गं विशिखशिखया साकमेवारिकण्ठे।
लूनं तेन प्रसभमिषुणा भूषयामास भूमिं
जिष्णुर्द्वेष्टुर्मुखमशनकैर्मुक्तहुङ्कारमेव ॥३२॥

जिष्णुः जयनशीलो लक्ष्मणः, पक्षे—जिष्णुरर्जुनः क्षिप्रोत्क्षिप्तभ्रुकुटिभुजगाभीष्मभालं क्षिप्रं शीघ्रमेव उत्क्षिप्ता उपरिप्रेरिता भ्रुकुटिः भ्रूरेव भुजगः सर्पः तेन आभीष्मं भीषणं भालं ललाटं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा विशिखशिखया बाणाग्रभागेन साकमेव सहैव अरिकण्ठे शत्रोर्मेघनादस्य, पक्षे—कर्णस्य कण्ठे गले न्यस्तापाङ्गं न्यस्तः धृतः अपाङ्गः नयनकोणः वक्रदृष्टिरिति यावत्, यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा द्वेष्टुः शत्रोर्मेघनादस्य, पक्षे—कर्णस्य पुरस्तात् पूर्वम् अशनकैः उच्चैः मुक्तहुंकारमेव मुक्तः उच्चारितः हुंकारः हुंकारशब्दः येन तत् एव एतद्रूपमेव तेन लक्ष्मणेन, पक्षे—अर्जुनेन प्रसभं हठात् लूनं छिन्नं मुखं वदनम् इषुणा बाणेन भूषयामास शोभयति स्म (ततः) भूमिमेव पृथ्वीमपि शोभयति स्म। एव शब्दोऽत्राप्यर्थकः अत्र, मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। रूपकं सहोक्तिरप्यलङ्कारौ।

जयनशील लक्ष्मण ने, दूसरे पक्ष में—अर्जुन ने शीघ्रता से उठाई गई भौं रूपी सर्प से भयङ्कर ललाट है जिस काम में, बाण के अग्रभाग के साथ ही शत्रु मेघनाद के, दूसरे पक्ष में—शत्रु कर्ण के गले में वक्रदृष्टि लगाई गई है जिस कर्म में उस प्रकार शत्रु मेघनाद का, दूसरे पक्ष में—कर्ण का प्रथमतः ऊँचा हुंकार करने वाला तथा उस लक्ष्मण के द्वारा, दूसरे पक्ष में—उस अर्जुन के द्वारा काटा हुआ शिर, बाण से सुशोभित किया, उस के बाद पृथ्वी को भी सुशोभित किया। अर्थात् शिर काट कर बाण जमीन पर जा पड़ा।

अङ्गभर्तुः शिरश्छिन्नमिति गद्गदवादिनी ।
प्रपलायत संग्रामात्सा परेषां पताकिनी ॥३३॥

अङ्ग ! भोः ! भर्तुः स्वामिनः मेघनादस्य, "स्युः प्याट् पाडङ्ग हे है भोः" इत्यमरः, पक्षे—अङ्गभर्तुः अङ्गदेशस्य पत्युः कर्णस्य शिरः मस्तकं छिन्नं खण्डितम् इति गद्गदवादिनी एतद् गद्गदं रुद्धकण्ठस्वरं यथा स्यात्तथा वादिनी शब्दायमाना सा प्रसिद्धा परेषां शत्रूणां पताकिनी सेना संग्रामात् युद्धात् प्रपलायत अपासरत । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

"हे ! स्वामी मेघनाद का, दूसरे पक्ष में—"अङ्गदेश के पति कर्ण का शिर कट गया" यह गद्गद कण्ठ से बोलती हुई शत्रुओं की वह प्रसिद्ध सेना युद्ध से भाग गयी ।

समं सुहृद्भिर्जयिनं समेतं स भूपतिर्भ्रातरमभ्यनन्दत् ।
उपेन्द्रमग्रे प्रणतं महेन्द्रः पुरेव वैरोचनिभङ्गहृष्टः ॥३४॥

जयिनं शत्रुपराजयकारिणं सुहृद्भिः समं मित्रैः साकं समेतं समागतं भ्रातरम् अनुजं लक्ष्मणं, पक्षे—अर्जुनं भूपतिः राजा सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः, पुरा पूर्वकाले अग्रे पुरस्तात् प्रणतं प्रणामनम्रम् उपेन्द्रं वामनरूपधारिणं विष्णुं वैरोचनिभङ्गहृष्टः वैरोचनेः बलेः भङ्गेन कपटदानग्रहणद्वारा पराजयेन हृष्टः प्रसन्नः महेन्द्र इव अभ्यनन्दत् स्वागतसंभारेण सभाजनमकरोत् । अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः ।

शत्रु मेघनाद के, दूसरे पक्ष में—शत्रु कर्ण के जीतने वाले तथा मित्रों के साथ आये हुए छोटे भाई लक्ष्मण का राजा राम ने, दूसरे पक्ष में—छोटे भाई अर्जुन का राजा युधिष्ठिर ने, पूर्वकाल में प्रणाम के लिये झुके हुए वामनरूपधारी विष्णुभगवान् का कपटदानग्रहण द्वारा बलि का पराजय करने से प्रसन्न इन्द्र ने जैसे अभिनन्दन किया था उसी प्रकार स्वागत-संभार से अभिनन्दन किया ।

चमूपतिर्मारुतिरश्विनन्दनौ गदाधरः पुण्यजनेश्वरस्तथा ।
पुरःस्फुरत्कीर्तिधनञ्जयं प्रभोस्तमृक्षराजेन समं प्रतुष्टुवुः ॥३५॥

ऋक्षराजेन समं भल्लूकपतिना जाम्बवता सह चमूपतिः सेनापतिः नीलः, मारुतिर्हनूमान् अश्विनन्दनौ अश्विनीकुमारपुत्रौ मैन्दद्विविदौ तथा गदाधरः गदास्त्रधारकः पुण्यजनेश्वरः राक्षसपतिर्विभीषणः "यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी" इत्यमरः, प्रभोः

रामस्य पुरः अग्रे स्फुरत्कीर्तिधनं स्फुरन्ती दीप्यमाना कीर्तिः यश एव धनं यस्य तं, जयं जयः अस्यास्तीति जयः 'अर्श आद्यच्' तम् विजयिनमिति यावत्, तम् लक्ष्मणं प्रतुष्टुवुः स्तुवन्ति स्म। अत्र वंशस्थं वृत्तम्।

भालुओं के राजा जाम्बवन्त के साथ सेनापति नील, पवनपुत्र हनूमान्, अश्विनीकुमार के पुत्र मैन्द और द्विविद तथा गदाधारण करने वाले राक्षसों के पति विभीषण राजा राम के सामने चमकती हुई कीर्तिरूपी धन वाले विजयी उस लक्ष्मण की प्रशंसा करने लगे।

पक्षे—चमूपतिः सेनापतिः धृष्टद्युम्नः मारुतिः पवनपुत्रो भीमः अश्विनन्दनौ अश्विनीकुमारपुत्रौ नकुलसहदेवौ तथा पुण्यजनेश्वरः पुण्यानां पवित्राणां जनानां नराणाम् ईश्वरः पतिः गदाधरः कृष्णः प्रभोः राज्ञो युधिष्ठिरस्य पुरः अग्रे ऋक्षराजेन समं नक्षत्रपतिना चन्द्रमसा तुल्यं "ऋक्षः पर्वतभेदे स्याद् भल्लूके शोणके पुमान्। कृतवेधनेऽन्यलिङ्गं नक्षत्रे पुंनपुंसकम्" इति मेदिनी, तं शत्रुविजयकारिणं धनञ्जयम् अर्जुनं स्फुरत्कीर्ति स्फुरन्ती दीप्यमाना कीर्तिर्यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा प्रतुष्टुवुः प्रशशंसुः। अस्मिन्, पक्षे—उपमालङ्कारः।

सेनापति धृष्टद्युम्न, पवनपुत्र भीम, अश्विनीकुमार के पुत्र नकुल-सहदेव तथा पवित्र मनुष्यों के अधीश्वर कृष्ण राजा युधिष्ठिर के सामने नक्षत्रपति चन्द्रमा के तुल्य, शत्रु के जीतने वाले उस अर्जुन की उन की कीर्ति फैलाते हुए प्रशंसा करने लगे।

रणातिभूमिः कटकद्वये सा शोकप्रहर्षावभजत्समानम्।
निवेशयोर्वारिजकैरवाणां निद्राप्रबोधौ युगपन्निशेव ॥३६॥

सा प्रसिद्धा रणातिभूमिः युद्धस्य पराकाष्ठा कटकद्वये रावणरामसैन्ययोः, पक्षे—कौरवपाण्डवसैन्ययोः शोकप्रहर्षौ मन्युप्रमोदौ कर्मभूतौ समानम् तुल्यरूपेण निशा रात्रिः वारिजकैरवाणां कमलकुमुदानां निवेशयोः आश्रयस्थलयोः कमलसरोवरे कैरवसरोवरे च युगपद् एककालमेव निद्राप्रबोधौ इव संकोचविकासाविव अभजत् व्यभाजयत्। रावणकटकाय शोकमददात् तथा रामकटकाय प्रहर्षमददात् एवमेव कौरवकटकाय शोकमददात् तथा पाण्डवकटकाय प्रहर्षमददादिति भावः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्। उपमालङ्कारः।

उस प्रसिद्ध भयङ्कर युद्ध ने रावण की तथा राम की दोनों सेनाओं में, दूसरे पक्ष में—कौरव की तथा पाण्डव की दोनो सेनाओं में शोक तथा हर्ष, जैसे रात्रि

कमलसरोवर में तथा कुमुदसरोवर में एक ही समय में संकोच तथा विकास बाँट देती है उसी प्रकार तुल्यभाव से बाँट दिये। अर्थात् रावणसेना को शोक दे दिया तथा रामसेना को हर्ष दे दिया, इसीप्रकार दूसरे पक्ष में—कौरव-सेना को शोक दे दिया तथा पाण्डव-सेना को हर्ष दे दिया।

तदाहवे तीव्रकरस्य सूनो र्नक्तंचरेभ्यो निधनं निशम्य।
शुशोच राजा बहुधार्तराष्ट्रः स्वदुर्णयस्यानुभवन् फलानि ॥३७॥

तदा तस्मिन् काले आहवे युद्धे तीव्रकरस्य उग्रबाहोः महापराक्रमस्येत्यर्थः, सूनोः स्वपुत्रस्य मेघनादस्य निधनं मरणं नक्तंचरेभ्यः राक्षसेभ्यः निशम्य श्रुत्वा बहुधा अनेकप्रकारेण आर्तराष्ट्रः आर्तानि पीडितानि राष्ट्राणि राज्यानि येन सः, राजा रावणः स्वदुर्णयस्य सीताहरणरूपस्य निजान्यायस्य फलानि अनुभवन् पुत्रादिवधरूपाणां फलानाम् अनुभवं कुर्वन् शुशोच अशुचत् शोकमकरोदिति यावत्। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम्।

उस समय में युद्ध में महापराक्रमी अपने पुत्र मेघनाद का वध राक्षसों से सुन कर अनेकप्रकार से राष्ट्रों को पीडित करने वाले राजा रावण ने सीताहरण-रूप किये हुए अपने अन्याय के पुत्रादिकों के वधरूप-फलों का अनुभव करते हुए शोक किया अर्थात् शोक से वह व्याकुल हो गया।

पक्षे—तदाहवे तस्मिन् युद्धे तीव्रकरस्य सूर्यस्य सूनोः पुत्रस्य कर्णस्य निधनं मृत्युं नक्तं रात्रौ चरेभ्यः प्रणिधिभ्यः निशम्य श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः धृतराष्ट्रस्य पुत्रः राजा दुर्योधनः स्वदुर्णयस्य द्रौपदीचीरहरणरूपस्य कपटद्यूतेन राज्यहरणरूपस्य च निजान्यायस्य फलानि अनुभवन् भीष्मद्रोणदुःशासनकर्णादीनां वधरूपाणां फलानाम् अनुभवं कुर्वन् बहु अत्यर्थं यथा स्यात्तथा शुशोच शोकमकरोत्।

उस युद्ध में सूर्य के पुत्र कर्ण का वध रात में अपने चरों से सुन कर धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन ने द्रौपदीचीरहरण कपटद्यूत से राज्य-हरण आदि अपनी अनीति के भीष्म-द्रोण-दुःशासन कर्ण आदिकों के वधरूप फलों का अनुभव करते हुए अत्यन्त शोक मनाया।

स्वामिना दशमुखेन नोदिता दिङ्मुखानि रजसा निरुन्धती।
प्रत्यराति विचचाल वाहिनी धीरनादपरशल्यनायका ॥३८॥

स्वामिना राज्ञा दशमुखेन रावणेन नोदिता प्रेरिता, पक्षे—स्वामिना राज्ञा दुर्योधनेन मुखेन स्वमुखेन स्ववचसेत्यर्थः, नोदिता प्रेरिता

दिङ्मुखानि दिग्भागान्, पक्षे—दशदिङ्मुखानि दशदिग्भागान् रजसा रेणुना निरुन्धती आच्छादयन्ती धीरनादपरशल्यनायका धीरः गम्भीरः नादः शब्दो यस्य सः, परं श्रेष्ठं शल्यं शङ्कुर्यस्य सः धीरनादश्चासौ परशल्यः धीरनादपरशल्यः एवंभूतः नायकः सेनापतिर्यस्याः सा, पक्षे—धीरनादे गम्भीरगर्जने परः तत्परः शल्यः मद्राधिपः नायकः सेनापतिर्यस्याः सा, वाहिनी सेना प्रत्यराति अरातिं प्रति शत्रुम् उद्दिश्य इति यावत्, विचचाल चलति स्म। अत्र रथोद्धतावृत्तम्।

दशमुख वाले राजा रावण के द्वारा प्रेरित दिग्भागों को धूली से आच्छादित करती हुई, दूसरे पक्ष में—राजा दुर्योधन के द्वारा अपने मुख से (वचन से) प्रेरित की गई दशो दिशाओं को धूली से आच्छादित करती हुई, गम्भीर गर्जन तथा श्रेष्ठ भाला वाला है सेनापति जिस का, दूसरे पक्ष में—गम्भीर गरजने में तत्पर है शल्य सेनापति जिस का इस प्रकार की सेना शत्रु की ओर चल पड़ी।

ततः श्रितव्यूहमुखाश्चमूभृता स्फुरत्प्रभावा नरनाथसैनिकाः।
समभ्ययुर्हन्तुमरातिमण्डलं निशान्धकारं द्युमणेरिवांशवः ॥३९॥

ततस्तदनन्तरं चमूभृता सेनापतिना नीलेन, पक्षे—धृष्टद्युम्नेन श्रितव्यूहमुखा श्रितम् अधिष्ठितं व्यूहस्य सैन्यसंनिवेशस्य मुखम् अग्रभागो येषां ते स्फुरत्प्रभावाः उद्दीप्ततेजसः नरनाथसैनिकाः नरनाथस्य राज्ञो रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य सैनिकाः सैन्ययोधाः अरातिमण्डलं शत्रुसमूहं हन्तुं विनाशयितुं निशान्धकारं रात्रितिमिरं हन्तुं विनाशयितुं द्युमणेः सूर्यस्य अंशवः इव किरणा इव समभ्ययुः आगच्छन्ति स्म। अत्र वंशस्थं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस के बाद सेनापति नील के द्वारा, दूसरे पक्ष में—धृष्टद्युम्न के द्वारा अधिष्ठित है व्यूह का अग्रभाग जिन का ऐसे तथा उद्दीप्ततेजवाले राजा राम के सैनिक, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर के सैनिक शत्रु-समूह का विनाश करने के लिये, रात्रि के अन्धकार का विनाश करने के लिये सूर्य की किरणों के समान आ गये।

भ्रमदविरलधूलिध्वान्तरुद्धान्तरिक्षं
विघटितसुरलोकद्वारशाखाकपाटम् ।
समदविबुधनारीनेत्रदत्तानुयात्रं
त्वरितविविधयोधं युद्धमासीद् ध्वजिन्योः ॥४०॥

ध्वजिन्योः रामरावणसेनयोः, पक्षे—पाण्डवकौरवसेनयोः

भ्रमदविरलधूलिध्वान्तरुद्धान्तरिक्षं भ्रमन्ती उपरि सञ्चरन्ती धूलिरेव ध्वान्तम् अन्धकारः तेन रुद्धम् आच्छादितम् अन्तरिक्षं गगनं येन तत्, विघटितसुरलोकद्वारशाखाकपाटं विघटितं निरर्गलीकृतं सुरलोकद्वारस्य स्वर्गलोकप्रतीहारस्य शाखाकपाटं पक्षाररं येन तत्, "कपाटमररं तुल्ये" इत्यमरः, समदविबुधनारीनेत्रदत्तानुयात्रं समदाः कामविकृताः याः विबुधनार्यः सुराङ्गनाः तासां नेत्रैः नयनैः दत्ता स्वर्गे नवीनागतेभ्यः उपहृता अनुयात्रा स्तोकमार्गानुगमनं यस्मिन् तत्, त्वरितविविधयोधं त्वरिताः द्रुतक्रियाशीलाः विविधा अनेके योधाः वीराः यस्मिन् तत् एवं भूतं युद्धं प्रधनम् आसीत् अभवत्। अत्र मालिनीवृत्तम्।

राम तथा रावण की सेनाओं में, दूसरे पक्ष में—पाण्डव तथा कौरव की सेनाओं में, ऊपर में घूमती हुई धूलीरूपी अन्धकार से आकाश को आच्छादित करने वाला तथा खुल गये हैं स्वर्ग के द्वार के फाटक जिस में, कामविकार से घूर्णित देवाङ्गनाओं के नेत्रों से किया गया है अनुगमन जिस में, शीघ्रता कर रहे हैं अनेक वीर जिस में इस प्रकार युद्ध हुआ।

अभिशत्रु समापतन्नितान्तं पृतनानां पतिरेधिताननश्रीः।
रजसा पिहितांशुमद्रराजस्थगयन् व्योमगभीरवीरनादैः ॥४१॥

अभिशत्रु शत्रोरभिमुखं समापतन् आगच्छन् एधिताननश्रीः एधिता प्रवृद्धा आननश्रीः मुखशोभा यस्य सः, गभीरवीरनादैः पुष्टशब्दैर्गर्जनैः व्योम आकाशं स्थगयन् परिपूरयन् पृतनानां सेनानां पतिः रावणः रजसा धूलिनिकरेण पिहितांशुमत् पिहितः आच्छादितः अंशुमान् सूर्यः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा नितान्तम् अत्यर्थं रराज शुशुभे। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम्।

शत्रु के अभिमुख आते हुए, बढी हुई मुखों की शोभा वाले, गंभीरगर्जनशब्दों से आकाश भरते हुए, सेनाओं के पति रावण धूली से सूर्य को ढकते हुए अत्यन्त सुशोभित हुए।

पक्षे—एधिताननश्रीः एधिता प्रवृद्धा आननश्रीः मुखशोभा यस्य सः, गभीरवीरनादैः पुष्टशब्दगर्जनैः व्योम आकाशं नितान्तम् अत्यन्तं स्थगयन् परिपूरयन् पृतनानां पतिः सेनाध्यक्षः मद्रराजः शल्यः, रजसा धूलीनिकरेण पिहितांशु पिहिताः आच्छादिताः अंशवः सूर्यकिरणाः

यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा अभिशत्रु शत्रोरभिमुखं समापतत् आक्रामत्। अस्मिन् पक्षे—'मद्रराजः स्थगयन्' इत्यत्र। "खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य" इति विसर्गलोपः।

बढी हुई मुख-शोभा वाले, गंभीर गर्जनों से आकाश को अत्यन्त भरते हुए, सेनाओं के पति मद्रदेश के राजा शल्य ने धूली से सूर्य की किरणों को आच्छादित करते हुए शत्रु के संमुख आक्रमण कर दिया।

जनितशङ्खरवानरकुञ्जरक्षतजरञ्जितदिक् त्रिदिवौकसाम्।
प्रतिभटावटशल्यमुखोद्भटा परचमूर्मनुजेश्वरमावृणोत् ॥४२॥

खरवानरकुञ्जरक्षतजरञ्जितदिक् खराः तीक्ष्णाः ये वानरकुञ्जराः कपिश्रेष्ठाः तेषां क्षतजैः रञ्जिताः दिशः यया सा, त्रिदिवौकसां देवानां प्रतिभटा सदृशपराक्रमवती अवटशल्यमुखा अवटानां खलानां शल्यानि शङ्कवः मुखे अग्रभागे यस्यां सा, "काके निम्बे च लशुने गर्ते कूपे खलेऽवटः" इति त्रिकाण्डशेषः, उद्भटा उद्दण्डा परचमूः शत्रु-सेना रावणसेना इत्यर्थः, मनुजेश्वरं रामं जनितशं जनितम् उपन्नं शं स्वसुखं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा आवृणोत् परिवृणोति स्म। अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तं "द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" इति लक्षणात् उपमालङ्कारः।

तीक्ष्णवानरश्रेष्ठों के शोणित से दिशाओं को रङ्गनेवाली, पराक्रम में देवताओं की बराबरी करने वाली, दुर्जनराक्षसों के अग्रभाग म शस्त्रों के नोक हैं जिस में इस प्रकार की उद्दण्ड शत्रुसेना ने अर्थात् रावण-सेना ने राजा राम को सुख पूर्वक अर्थात् उन के घेरने को ही अपनी सफलता समझती हुई घेर लिया।

पक्षे—जनितशङ्खरवा जनितः उत्पादितः शङ्खानां कम्बूनां रवः शब्दः यया सा, नरकुञ्जर-क्षतजरञ्जित-दिक् नराणां मनुष्याणां कुञ्जराणां हस्तिनां क्षतजैः शोणितैः रञ्जिताः अरुणीकृताः दिशः यया सा, त्रिदिवौकसां देवानां प्रतिभटा तुल्यपराक्रमवती अवटशल्यमुखा अवटः खलः यः शल्यः मद्रराजः सः मुखे अग्रभागे यस्याः सा उद्भटा उद्धता परचमूः परस्य शत्रोर्दुर्योधनस्य चमूः सेना मनुजेश्वरं राजानं युधिष्ठिरम् आवृणोत् परिवेष्टयति स्म।

शङ्ख का शब्द करने वाली मनुष्यों तथा हाथियों के शोणित से दिशाओं को रंगने वाली, देवताओं के तुल्यपराक्रम वाली, दुष्टशल्य को आगे में रखने वाली, उद्धत शत्रु-दुर्योधन की उस सेना ने राजा युधिष्ठिर को घेर लिया।

नरेश्वरशरच्छिन्ननानावीरशिरस्ततम् ।
भूभारभरसंहारि प्रधनं तत्र पप्रथे ॥४३॥

तत्र तस्मिन् स्थाने लङ्कायुद्धक्षेत्रे, पक्षे—कुरुक्षेत्रे नरेश्वरशरच्छिन्न-नाना-वीर-शिरस्ततम् नरेश्वरो राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः तस्य शरैः बाणैः छिन्नानि कर्तितानि नानावीराणाम् अनेकयोधानां शिरांसि मस्तकानि ततानि निपत्य विस्तृतानि यस्मिन् तत् भूभारभरसंहारि भुवः पृथिव्याः भारस्य गुरुत्वस्य यः भरः अतिशयः तं संहर्तुं शीलम् अस्य इति संहारि "भरोऽतिशयभारयोः" इति मेदनी, एवंभूतं प्रधनं युद्धं पप्रथे विस्तीर्णमभूत् ।

उस लङ्का के युद्धस्थल में राजा राम के, दूसरे पक्ष में—उस कुरुक्षेत्र के युद्ध में राजा युधिष्ठिर के बाणों से काट कर फैलाये गये हैं अनेक वीरों के शिर जिस में वह, तथा पृथ्वी के भार का अतिशय दूर करने वाला युद्ध प्रारम्भ हो गया ।

रथाश्वमातङ्गनिरन्तराणि हत्वा बहूनि द्विषतां बलानि ।
क्षणेन धर्मप्रसवः क्षितीशः शक्त्या क्षितेरुद्धरति स्म शल्यम् ॥४४॥

द्विषतां शत्रूणां राक्षसानां, पक्षे—कौरवपक्षीयाणाम् रथाश्वमातङ्गनिरन्तराणि रथैः स्यन्दनैः अश्वैः हयैः मातङ्गैः हस्तिभिः निरन्तराणि निरवकाशानि परिपूर्णानीति यावत्, बहूनि बहुसंख्यकानि बलानि सैन्यानि हत्वा विनाश्य धर्मप्रसवः धर्मस्य पुण्यस्य प्रसवः उत्पत्तिर्यस्मात् सः क्षितीशः राजा रामः, शक्त्या सामर्थ्येन क्षितेः पृथिव्याः शल्यं राक्षसस्वरूपं कण्टकम् उद्धरति स्म निष्कासयामास, पक्षे—धर्मप्रसवः धर्मात्मजः क्षितीशः राजा युधिष्ठिरः शक्त्या शक्तिनामकेन अस्त्रेण क्षितेः पृथिवीतः शल्यं मद्राधिपम् उद्धरति स्म ऊर्ध्वं गमयति स्म जघानेत्यर्थः, अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

शत्रु राक्षसों के, दूसरे पक्ष में—शत्रु-कौरवों के रथघोड़े तथा हाथियों से भरे हुए बहुतों सैन्यों को मार कर धर्म के उत्पन्न-करने वाले राजा राम ने अपने सामर्थ्य से पृथ्वी का राक्षस-रूपी कण्टक उखाड़ कर फेंक दिया, दूसरे पक्ष में—धर्म के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने शक्तिनामक अस्त्र के द्वारा पृथिवी पर से मद्रराज शल्य को ऊपर अर्थात् स्वर्गलोक भेज दिया ।

विननाश विरूपाक्षस्तीव्रतापनिपातितः ।
यथा विपक्षः शकुनिः सहदेवनिपीडनैः ॥४५॥

विपक्षः शत्रुः विरूपाक्षः विरूपाक्षनामा राक्षसः तीव्रतापनिपातितः

तीव्रः प्रचण्डः तापः प्रतापो यस्य तेन रामेण निपातितः स्वावस्थातो भ्रंशितः सन् देवनिपीडनैः सह देवो मेघः तस्य निपीडनैः सह करकापातनजन्यकष्टैः साकं "देवो मेघे सुरे राज्ञि स्यान्नपुंसकमिन्द्रिये" इति मेदिनी। विपक्षः अपगतपतत्रः शकुनिर्यथा पक्षीव विननाश विनाशमगच्छत् अम्रियत इति यावत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः।

विरूपाक्ष नामक शत्रु-राक्षस तीक्ष्ण-प्रताप-वाले राम के द्वारा स्वरूप से गिराया हुआ मेघ के द्वारा ओला गिराने के कष्टों से युक्त हो कर पङ्ख से हीन पक्षी के समान विनष्ट हो गया अर्थात् मर गया।

पक्षे—विपक्षः स्वपक्षीयजनरहितः एकलः सन्नित्यर्थः, विरूपाक्षः विरूपः अन्याक्षेभ्यो विसदृशः अक्षः पाशको यस्य सः, सहदेवनिपीडनैः सहदेवः कनिष्ठपाण्डवः तस्य निपीडनैः कष्टदानैः उग्रतापनिपातितः उग्रतया अङ्गुल्यादिच्छेदनरूपभयङ्करतया अपनिपातितः अनुचितप्रकारेण विध्वंसितः सन् शकुनिः दुर्योधनमातुलः सौबलः देवनिपीडनैः सह मेघकरकापातकष्टैः सार्धं विपक्षः पतत्त्रहीनः शकुनिर्यथा पक्षीव विननाश अम्रियत।

स्ववर्गीयजनों से हीन, विशेष प्रकार के पाशक वाला, छोटे पाण्डव सहदेव के कष्टदान से अङ्गुलीछेदनादिभयङ्करता से अपध्वस्त किया हुआ शकुनि नामक दुर्योधन का मामा, मेघ के ओलों के गिरने के कष्टों के साथ पङ्खहीन पक्षी के समान विनष्ट हो गया अर्थात् मर गया।

सुग्रीवेण दृढाङ्गदेन मथितं भीमेन विद्विट्शतं
सेनानीर्युयुधान एष जगृहे प्रौढारिहा संजयम्।
उक्षाञ्चक्रतुरश्विनोश्च तनयौ क्षोणीं द्विपच्छोणितै-
र्रक्षाणामधिपेन पद्मवनवद्ध्वस्ताः परे जिष्णुना ॥४६॥

भीमेन भयङ्करेण दृढाङ्गदेन दृढः अधर्षणीयः अङ्गदः वालिपुत्रो यस्य तेन, सुग्रीवेण वानरराजेन विद्विट्शतं विद्विषां शत्रूणां शतं शतसंख्यापरिमितं सैन्यं मथितं मर्दितम्। एषः अयं युयुधानः युद्धकर्ता प्रौढारिहा प्रौढं प्रबलम् अरिं शत्रुं हन्तीति सः सेनानीः सेनापतिः नीलः संजयं सम्यग्विजयं जगृहे गृह्णाति स्म विजयमकरोदित्यर्थः, अश्विनोः अश्विनीकुमारयोः (दस्रयोः) तनयौ पुत्रौ मैन्दद्विविदौ च द्विषच्छोणितैः शत्रुरुधिरैः क्षोणीं पृथ्वीम् उक्षाञ्चक्रतुः सिञ्चतः स्म,

जिष्णुना जयनशीलेन ऋक्षाणां भल्लूकानाम् अधिपेन राज्ञा जाम्बवता 'ऋक्षः पर्वतभेदे स्याद् भल्लूके शोणके पुमान्। कृतवेधनेऽन्यलिङ्गं नक्षत्रे पुंनपुंसकम्" इति मेदिनी, ऋक्षाणां नक्षत्राणाम् अधिपेन राज्ञा चन्द्रेण पद्मवनवत् कमलवनवत् परे शत्रवः ध्वस्ताः विनाशिताः। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

भयङ्कर तथा मजबूत अङ्गदवाले सुग्रीव के द्वारा सैकड़ो सैन्य-मर्दन किया गया। युद्ध करने वाले तथा प्रबल शत्रुओं के मारने वाले सेनापति इस नील ने भली भाँति विजय प्राप्त की। अश्विनीकुमारों के पुत्र मैन्द तथा द्विविद ने शत्रुओं के शोणितों से पृथ्वी को सिक्त कर दिया। जयनशील भालुओं के राजा जाम्बवन्त के द्वारा नक्षत्रों के पति चन्द्रमा के द्वारा कमलवन के समान शत्रुगण विनष्ट किये गये।

पक्षे—दृढाङ्गदेन दृढं गाढम् अङ्गदं केयूरं यस्य तेन सुग्रीवेण सुष्ठु शोभना ग्रीवा गलो यस्य तेन भीमेन वृकोदरेण विद्विट्शतं विद्विषां शत्रूणां शतं शतसंख्याकं सैन्यं मथितं विमर्दितम्। सेनानीः सेनापतिर्धृष्टद्युम्नः प्रौढारिहा प्रबलशत्रुहन्ता एषः अयं युयुधानश्च सात्यकिश्च संजयं सम्यग्विजयं जगृहे गृह्णाति स्म विजयं चकारेत्यर्थः, अथवा संजयनामानं वीरं पराजितवान्। अश्विनोः अश्विनीकुमारयोः दस्रयोः तनयौ पुत्रौ नकुलसहदेवौ द्विषच्छोणितैः शत्रूणां रुधिरैः क्षोणीं पृथ्वीम् उक्षाञ्चक्रतुः अभिषिषिचतुः। जिष्णुना अर्जुनेन ऋक्षाणां नक्षत्राणाम् अधिपेन राज्ञा चन्द्रेण पद्मवनवत् कमलषण्डवत् परे शत्रवः ध्वस्ताः विनाशिताः।

कस कर बान्धे हुए केयूर वाले तथा सुन्दर-ग्रीवा-वाले भीम के द्वारा सैकड़ों शत्रु मथ डाले गये। सेनापति धृष्टद्युम्न ने तथा प्रबल शत्रुओं के मारने वाले इस सात्यकि ने सम्यग् विजय प्राप्त की। अथवा संजय नामक वीर को हरा दिया। अश्विनीकुमारों के पुत्र नकुल ने तथा सहदेव ने शत्रुओं के शोणित से पृथ्वी को सींच दिया। अर्जुन के द्वारा नक्षत्रों के पति चन्द्रमा के द्वारा कमलवन के समान शत्रु विनष्ट कर दिये गये।

विलयं व्रजति क्रमाद्बलौघे नृपसेनामसुयोधनां विलोक्य।
गुरुपुत्रकृतानुबन्धभावः कृतवर्मा सुभटो विदूरमागात् ॥४७॥

क्रमात् क्रमशः बलौघे सैन्यसमूहे विलयं विनाशं व्रजति गच्छति सति नृपसेनां नृपस्य रामस्य सेनां वानरीसेनाम् असुयोधनां सुष्ठु अनायासेन योधयितुमशक्यां दुराधर्षामिति यावत्, विलोक्य दृष्ट्वा

गुरुपुत्रकृतानुन्धभावः गुरुः महान् पुत्रैः मेघनादादिभिः कृतः आचरितः अनुबन्धभावः आज्ञापालनं यस्य सः "दोषोत्पादेऽनुबन्धः स्यात्प्रकृत्यादिविनश्वरे। मुख्यानुयायिनि शिशौ प्रकृतस्यानुवर्तने" इत्यमरः, कृतवर्मा कृतं परिहितं वर्म कवचो येन सः सुभटः वीरो रावणः विदूरं युद्धस्थलादतिदूरं स्वनगरम् आगात् आगच्छत्। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम्।

क्रमशः सैन्य-समूह के नष्ट हो जाने पर राजा राम की सेना को सरलता से न युद्ध करने योग्य अर्थात् अधर्षणीय समझ कर अपने पुत्रों के द्वारा विशेषरूप से मरणान्त आज्ञापालन किया गया है जिस का वह, कवच-धारण करने-वाला वीर रावण युद्धस्थल से दूर अपने नगर को आ गया।

पक्षे—क्रमात् क्रमशः बलौघे सैन्यसमूहे विलयं व्रजति विनाशं गच्छति सति नृपसेनां नृपस्य राज्ञो दुर्योधनस्य सेनां वाहिनीम् असुयोधनां दुर्योधनरहितां विलोक्य दृष्ट्वा गुरुपुत्रकृतानुबन्धभावः गुरुपुत्रेण अश्वत्थाम्ना कृतः आचरितः अनुबन्धभावः अनुसरणं यस्य सः सुभटः वीरः कृतवर्मा कृतवर्मनामा दुर्योधनानुयायी यदुवंशीयः विदूरं कुरुक्षेत्राद् बहिरतिदूरं व्यासह्रदमित्यर्थः। आगात् आगच्छत्।

क्रमशः सैन्य-समूह के नष्ट हो जाने पर राजा दुर्योधन की सेना को दुर्योधन से रहित देख कर गुरुद्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा जिस का अनुसरण किया गया है वह, अर्थात् अश्वत्थामा के साथ वीर कृतवर्मा कुरुक्षेत्र से दूर जहाँ व्यासह्रद में जलस्तम्भनी विद्या से दुर्योधन जा कर छिपा था वहाँ आ गया।

आग्नेयेन रणे धृष्टद्युम्नेनान्ये द्विषो हताः।
वसन्ते कामदेवेन प्रोषिता इव रागिणः ॥४८॥

इति श्रीहरधरणीप्रसूतकादम्बकुलतिलकवीरचक्रवर्तिभूपकामदेवप्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते कामदेवाङ्के राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मेघनाद-विरूपाक्ष-कर्ण-दुःशासन-शल्य-शकुनि-वधो नाम द्वादशः सर्ग ॥ १२ ॥

रणे युद्धे धृष्टद्युम्नेन धृष्टं दृढं द्युम्नं बलं यस्य तेन "द्युम्नं वित्ते बलेऽपि च" इति मेदिनी, आग्नेयेन अग्निपुत्रेण नीलेन वसन्ते वसन्ततौ कामदेवेन मन्मथेन प्रोषिताः परदेशनिवासिनः रागिण इव प्रियानुरागवन्त इव अन्ये अवशिष्टा बहवः द्विषः शत्रवः हताः मारिताः। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः।

युद्ध में दृढबलवाले अग्निपुत्र नील के द्वारा वसन्त ऋतु में कामदेव के द्वारा जैसे परदेश में निवास करने वाले प्रियतमा के अनुरागी मारे जाते हैं उसीप्रकार अवशिष्ट बहुत से शत्रु मारे गये ।

पक्षे—रणे युद्धे आग्नेयेन अग्निकुण्डोद्भवेन धृष्टद्युम्नेन धृष्टद्युम्न-नाम्ना द्रुपदकुमारेण सेनापतिना वसन्ते वसन्ततौ कामदेवेन मदनेन प्रोषिताः परदेशनिवासिनः रागिण इव प्रियतमानुरागवन्त इव अन्ये अवशिष्टा बहवः शत्रवः हताः मारिताः । अस्मिन्पक्षेऽप्युपमालङ्कारः ।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुर-सोदरपुरकुलोद्भूत-श्रीरघुनन्दन-शर्मात्मज-श्रीदामोदरझासाहित्याचार्यविरचितायां सुबोधिनीनाम-धेयायां व्याख्यायां द्वादशः सर्गः ॥१२॥

युद्ध में अग्निकुण्ड से उत्पन्न धृष्टद्युम्न नामक द्रुपदपुत्र के द्वारा वसन्त ऋतु में कामदेव के द्वारा परदेश में निवास करने वाले प्रियतमानुरागी व्यक्तियों के समान अवशिष्ट बहुत से शत्रु मारे गये ।

इति राघवपाण्डवीय महाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुर-कुलोद्भूत श्री दामोदरझा साहित्याचार्य-विरचित 'सरला' नाम की टीका में बारहवाँ सर्ग ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

अथ स्फुरद्दक्षिणबाहुरुच्चैरङ्गारशेषानलसंनिभस्य ।
अल्पावशिष्टात्मबलस्य शत्रोर्नराधिपो निर्गमनमन्विथेष ॥१॥

अथ अनन्तरम् उच्चैरत्यर्थं स्फुरद्दक्षिणबाहुः स्फुरन् स्पन्दमानः शुभसूचनायेति भावः, दक्षिणः सव्येतरो बाहुः भुजो यस्य सः नराधिपो राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः अल्पावशिष्टात्मबलस्य अल्पमेव स्तोकमेव अवशिष्टं शेषभूतम् आत्मबलं वीरगणरहितस्य स्वस्यैव शक्तिर्यस्य तस्य, अत एव अङ्गारशेषानलसंनिभस्य अङ्गारः अलातमेव शेषोऽवशिष्टो यस्य एवंभूतस्य अनलस्य अग्नेः संनिभस्य तुल्यस्य शत्रोः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य निर्गमं नगराद् बहिरागमनं, पक्षे—व्यासह्रदजलाद् बहिरागमनम् अन्विथेष वाञ्छति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् । उपमालङ्कारः ।

इस के बाद अत्यन्त स्पन्दनशील दाहिनाभुजावाले राजा राम, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर चिनगारीशेषीभूत अग्नि के समान अल्प अवशिष्ट केवल अपनी शक्तिवाले शत्रु रावण का नगर से बाहर निर्गमन (निकलना) चाहने लगे, दूसरे पक्ष में—शत्रु दुर्योधन का व्यासह्रदजल से बाहर निर्गमन चाहने लगे।

रिपोरसहमानास्ते हरिमुख्या विलङ्घनम् ।
रुरुधुस्तदधिष्ठानं सरोवरमिव द्विपाः ॥२॥

हरिमुख्याः हरीणां वानराणां मुख्याः प्रधानाः ते सुग्रीवादयः, पक्षे—हरिः कृष्णः मुख्यः प्रधानो येषां ते भीमादयः रिपोः शत्रोः रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य विलङ्घनं विशेषेण लङ्घनं समययापनम्, पक्षे—युद्धस्थानं परित्यज्य दूरगमनम् असहमानाः मर्षयितुमसमर्थाः तदधिष्ठानं तस्य रावणस्य अधिष्ठानं निवासस्थानं लङ्कानगरम् द्विपाः हस्तिनः सरोवरमिव जलाशयमिव रुरुधुः रुन्धन्ति स्म, पक्षे—तदधिष्ठानं तस्य दुर्योधनस्य अधिष्ठानं निवासस्थानं सरोवरं व्यासह्रदं द्विपा इव हस्तिन इव रुरुधुः रुन्धन्ति स्म । अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः ।

वानरों में श्रेष्ठ वे सुग्रीव आदि शत्रु रावण का समय-यापन न सहते हुए उस रावण के निवास-स्थान लङ्कापुरी को सरोवर को हाथियों के समान घेर लिया।

दूसरे पक्ष में—श्री कृष्ण हैं मुख्य जिन के ऐसे भीम आदिकों ने शत्रु दुर्योधन का दूर-भागना न सहते हुए उस दुर्योधन के निवासस्थान व्यास सरोबर को हाथियों के समान घेर लिया।

ततः सगर्वं निरगादराति विंपक्षसिंहध्वनिकीर्णकर्णः।
तदा महानाग इव स्वधाम्नः संदर्शितोत्साहमहीनलक्ष्मा ॥३॥

ततस्तदनन्तरं तदा तस्मिन् काले स्वधाम्नः निजनिवास-निकुञ्जात् संदर्शितोत्साहं संदर्शितः प्रकटितः उत्साहः अध्यवसायो यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा अहीनलक्ष्मा अहीनं संयुक्तं लक्ष्म चिह्नं गण्डयोर्दानोदकरेखाचिह्नमिति यावत्, यस्य सः, विपक्षसिंहध्वनिकीर्णकर्णः विपक्षः शत्रुभूतः यः सिंहः केसरी तस्य ध्वनिना गर्जनेन कीर्णौ परिपूर्णौ कर्णौ यस्य एवंभूतः महानाग इव महागज इव स्वधाम्नः निजगृहात् लङ्कानगरादिति यावत्, पक्षे—स्वनिवासस्थानात् व्याससरोवरात् अहीनलक्ष्मा अहीनं संयुक्तं लक्ष्म राजचिह्नं मुकुटादिकं यस्य सः, विपक्षसिंहध्वनिकीर्णकर्णः विपक्षसिंहानां शत्रुसिंहानां शत्रुश्रेष्ठानाम् ध्वनिना गर्जनशब्देन अथवा—विपक्षाणां शत्रूणां सिंहध्वनिना सिंहनादेन कीर्णाः परिपूर्णाः कर्णाः श्रवणानि यस्य सः, पक्षे—कीर्णौ परिपूर्णौ कर्णौ श्रवणे यस्य सः, अरातिः शत्रुः रावणः, पक्षे—दुर्योधनः सगर्वं साभिमानं यथा स्यात्तथा निरगात् निर्गच्छति स्म। लङ्कानगरात्, पक्षे—व्यासह्रदादिति शेषः। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इसके बाद उस समय में अपने निवास-कुञ्ज से उत्साहसहित, गण्डस्थलों में मदजलरेखाचिह्न से संयुक्त, शत्रुभूत सिंह के गर्जन से भरे हुए कान वाले मतवाले हाथी के समान अपने निवास-स्थान लङ्का पुरी से, दूसरे पक्ष में—व्याससरोवर से, मुकुटादि राज-चिह्न से संयुक्त, शत्रुश्रेष्ठों के गर्जन से, अथवा शत्रुओं के सिंहनाद से भरे हुए कानवाला शत्रु रावण, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन घमण्ड के साथ निकल पड़ा (निकल कर सामने आ गया)'

दोर्विक्षेपैरमन्दैः परिवतशतमिव व्योम्नि संचारयन्तं
दृक्चारे मण्डलेषु प्रतिदिशमशनैर्दर्शितानेकवक्त्रम्।

कुर्वाणं दृष्टिपातैरनलकवलितानीव सैन्यानि दूरात्
तं कोपादापतन्तं कथमपि ददृशुः प्रत्यनीकप्रवीराः ॥४॥

अमन्दैः अतिशीघ्रैः दोर्विक्षेपैः बाहुप्रक्षेपणैः व्योम्नि आकाशे परिघशतं लोहमुद्गरशतं संचायन्तमिव परिचालयन्तमिव, अशनैः अतिशीघ्रतया मण्डलेषु मण्डलाकारभ्रमिषु प्रतिदिशम् चतसृषु दिक्षु दृक्चारे दृष्टिप्रक्षेपे दृष्टिपातेष्वित्यर्थः, दर्शितानेकवक्त्रं दर्शितानि अनेकवक्त्राणि दशमुखानि येन तम्, पक्षे—दर्शितानि प्रकटितानि अनेकवक्त्राणि भ्रूभङ्गादिवैशिष्ट्येन मुखस्यानेकप्रकाराः येन तम्, दृष्टिपातैः नयनप्रक्षेपैः सैन्यानि शत्रुसैन्यानि अनलकवलितानीव वह्निग्रस्तानीव कुर्वाणं विदधतं, कोपात् क्रोधात् आपतन्तम् आगच्छन्तं तं रावणं, पक्षे—दुर्योधनं प्रत्यनीकप्रवीराः शत्रुसेनायोधाः सुग्रीवादयः, पक्षे-भीमादयः कथमपि केनापि प्रकारेण युद्धविजये सन्देहेनेति भावः, दूराद् ददृशुः दूरत एव अवलोकयामासुः। अत्र स्रग्धरावृत्तमुत्प्रेक्षाद्वयस्य संसृष्टिरलङ्कारः।

अतिशीघ्रता से भुजाओं के प्रक्षेपों से आकाश में मानो सैकड़ों लोहमुद्गरों के चलाने वाले, अतिशीघ्रता से मण्डलाकारभ्रमणों के समय में चारों तरफ दृष्टिपातों में अपने अनेक अर्थात् दशो मुख दिखलाने वाले, दूसरे पक्ष में—भ्रूभङ्गादिविकारों से मुख के अनेक प्रकारों के दिखलाने वाले, दृष्टिप्रक्षेपों से शत्रुसैन्यों को आग से ग्रसित की तरह बनाने वाले तथा क्रोध से आते हुए उस रावण को, दूसरे पक्ष में—उस दुर्योधन को शत्रुसेना के वीरों ने अर्थात् सुग्रीवादिकों ने, दूसरे पक्ष में—भीमादिकों ने किसी प्रकार अर्थात् युद्धविजय में सन्देह धारण करते हुए दूर से ही देखा।

तमाहवायाह्वत दूषणघ्नो वृकोदरः काल इवात्तकोपः।
उत्तेजितश्रीर्वृषवाहनेन भर्ता भृगूणामिव कार्तवीर्यम् ॥५॥

वृषवाहनेन शिवेन उत्तेजितश्रीः वर्धितपराक्रमसम्पत्तिः भृगूणां भृगुवंशीयानां भर्ता पतिः परशुराम इति यावत्, कार्त्तवीर्यमिव सहस्रबाहुमर्जुनमिव दरः भयम् अस्य अस्तीति दरः अर्श आद्यच्, भयानकः कालः कृष्णवर्णः वृक इव इहामृग इव आत्तकोपः आत्तः धृतः कोपः क्रोधः येन सः, दूषणघ्नः दूषणं खरस्यानुजं राक्षसं हन्तीति दूषणघ्नः रामः तम् रावणम् आहवाय युद्धाय आह्वत आहूतवान्। पक्षे—काल इव यम इव आत्तकोपः, धृतकोपः धृतक्रोधः दूषणघ्नः दूषणं दोषः

अस्यास्तीति दूषणः "अर्श आद्यच्" दुष्ट इति यावत्, तं हन्तीति सः वृकोदरः भीमः तम् दुर्योधनम् आहवाय युद्धाय आह्वत आहूतवान्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमाद्वयमलङ्कारश्च।

शिवजी के द्वारा बढ़ाई हुई पराक्रमसम्पत्तिवाले परशुराम ने जैसे सहस्रार्जुन को ललकारा था उसी प्रकार काले रंग के भयङ्कर भेड़िये के समान क्रोध धारण करने वाले तथा दूषण के मारने वाले श्री राम ने उस रावण को युद्ध के लिये ललकारा। दूसरे पक्ष में—यमराज के समान क्रोध धारण किये हुए, दुष्टों के मारने वाले भीम ने उस दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारा।

मुखारविन्दैः सुरसुन्दरीणां नभो बभूवेह सहस्रचन्द्रम्।
सहस्रगङ्गं च तदोत्सुकानां विमानहंसावलिभिः सुराणाम् ॥६॥

इह अत्र लङ्कायुद्धक्षेत्रे, पक्षे—कुरुक्षेत्रे तदा तस्मिन् समये रामरावणयोर्युद्धसमये, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः युद्धसमये इति तात्पर्यम्, सुरसुन्दरीणाम् युद्धावलोकनायागतानाम् अप्सरसां मुखारविन्दैः मुखकमलैः नभः गगनं सहस्रचन्द्रं बहुसंख्यकेन्दुयुक्तं बभूव अभवत्, उत्सुकानां तद्युद्धदर्शनायोत्कण्ठितानां सुराणां देवानां विमानहंसावलिभिः विमानानां व्योमयानानां हंसावलिभिः हंससमूहैः सहस्रगङ्गं बहुसंख्यकाशगङ्गासंयुक्तं च अभवत्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् वैयधिकरण्येन रूपकद्वयस्य संसृष्टिरलङ्कारः।

इस लङ्का के युद्ध में राम तथा रावण के युद्ध के समय में, दूसरे पक्ष में—कुरुक्षेत्र में भीम तथा दुर्योधन के युद्ध के समय में युद्ध देखने के लिये आई हुई अप्सराओं के मुख-कमलों से आकाश हजार चन्द्रों से युक्त हो गया तथा उसी युद्ध के देखने के लिये उत्कण्ठित देवताओं के विमानों के हंसों की श्रेणियों से हजार आकाशगङ्गाओं से संयुक्त हो गया।

सरस्वतीपूततनुस्तरस्वी चिराय जायाविरही वनस्थः।
उपेयिवान् संयुगधाम रामो हरिप्रधानैर्ददृशे सुहृद्भिः ॥७॥

सरस्वतीपूततनुः सरस्वत्या वाण्या, पक्षे—सरस्वतीनद्या पूता पवित्रीकृता तनुः शरीरं यस्य सः, तरस्वी वेगवान् वनस्थः कैकेय्याः वरदानेन वनवासी, पक्षे—तीर्थयात्राप्रसङ्गेन वनवासी चिराय बहोः कालात् जायाविरही पत्नीवियोगयुक्तः एकत्र रावणापहरणेन अन्यत्र तीर्थयात्रायां व्रतनियमपालनार्थं पत्नीसङ्गत्यागेन इति भावः, रामो दाशरथिः, पक्षे—बलरामः संयुगधाम युद्धस्थानम् उपेयिवान् प्राप्त-

वान् उपस्थितोऽभूदिति यावत्, एकत्र युद्धकरणार्थमन्यत्र युद्धदर्शनार्थमिति तात्पर्यम्। तत्र हरिप्रधानैः वानरमुख्यैः सुहृद्भिः मित्रैः, पक्षे—हरिः कृष्णः प्रधानं मुख्यो येषां तैः भीमादिभिर्मित्रैः ददृशे अवलोकितः।

शास्त्रवाणी से पवित्र शरीर वाले, वेगवान् कैकेयी के वरदान के कारण वनवासी, रावण के द्वारा हरण होने के कारण बहुत समय से पत्नी-वियोगी लक्ष्मणाग्रज राम युद्ध करने के लिये युद्ध-स्थान में पहुँचे तथा प्रधान प्रधान वानररूपी मित्रों के द्वारा देखे गये। दूसरे पक्ष में—सरस्वती नदी के जल से पवित्र शरीर वाले, वेगवान्, तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में वनवासी, तीर्थ-यात्रा के व्रत के नियम पालन करने के कारण बहुत समय से पत्नी-वियोगी बलराम युद्ध देखने के लिये युद्ध-स्थान में पहुँचे तथा श्री कृष्ण हैं प्रधान जिन में ऐसे अर्जुनादि मित्रों के द्वारा देखे गये।

जज्ञे तयोरथ ददद्भुवनाय भीतिं
स्फीताङ्गदोज्ज्वलमहाभुजयोः समीकम्।
अन्योन्य-हेतिपरिघट्टन-कीर्णवह्नि-
ज्वाला-परिस्फुरण-तर्जितविद्युदर्चिः ॥८॥

अथ अनन्तरं स्फीताङ्गदोज्ज्वलमहाभुजयोः स्फीतः सोत्साहः यः अङ्गदः वालिपुत्रः तेन उज्ज्वलो दीप्तिमान् चासौ महाभुजः बलवान्, रावणपक्षे—स्फीतानि स्वच्छानि यानि अङ्गदानि बाहुभूषणानि तैः उज्ज्वलाः दीप्तिमन्तो महाभुजाः विशालबाहवो यस्य सः एवंभूतयोः तयोः रामरावणयोः, भारतपक्षेऽप्येवमेव स्वच्छबाहुभूषणदीप्तिमद्विशालदोष्णोः तयोः भीमदुर्योधनयोः भुवनाय संसारवासिने भीतिं भयम् ददद् उत्पादयत् अन्योन्यहेतिपरिघट्टनकीर्णवह्निज्वाला-परिस्फुरणतर्जितविद्युदर्चिः अन्योन्यस्य परस्परस्य हेतीनाम् शस्त्राणां 'रवेर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः, यत् परिघट्टनं संघर्षणं तेन कीर्णो विकीर्णो यो वह्निरग्निः तस्य ज्वालायाः परिस्फुरणेन दीपनेन तर्जिता विद्युदर्चिः सौदामन्याः शिखा यस्मिन् तत् समीकं युद्धं जज्ञे अभवत्, "मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं सांपरायिकम्। अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ" इत्यमरः। अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात्।

इस के बाद सोत्साह अङ्गद-नामक वालिपुत्र से दीप्तिमान् यह महाबाहु अर्थात् बली, रावण-पक्ष में स्वच्छ जो अङ्गद-नामक बाहुभूषण उन से चमकती

हुई बड़ी बड़ी भुजाओंवाले, इस प्रकार के इन दोनों का अर्थात् राम-रावण का, दूसरे पक्ष में—स्वच्छ बाहु-भूषणों से चमकती हुई भुजाओं वाले इन दोनों का अर्थात् भीम-दुर्योधन का संसारवासियों को भय देते हुए एक दूसरे के शस्त्रों का जो संघर्षण उस से बिखरी हुई आग की ज्वाला के चमकने से नीचा दिखायी गई है बिजली की शिखा जिस में इस प्रकार का युद्ध होने लगा।

आद्यैरायुधपातपूततनुभिर्वीरैर्विमानस्थितै-
रभ्यस्तामरसुन्दरीरतिरसैः सासूयमालोकितः।
घोरः स्यन्दनवेगनिःसहमहीदिक्कुम्भिकुम्भीनस-
श्रेष्ठप्रार्थितशान्तिराहवविधिस्तत्रास निस्त्रासयोः ॥९॥

निस्त्रासयोः भयशून्ययोः तयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः आहवविधिरित्यन्वयः, आद्यैः युद्धप्रारम्भकालिकैः आयुधपातपूततनुभिः शस्त्रप्रहारपवित्रदेहैः सम्मुखसंग्राममृतैरिति यावत्, अत एव विमानस्थितैः स्वर्गं गत्वा विमानारोहिभिः तत्र अभ्यस्तामरसुन्दरीरतिरसैः अभ्यस्तः अनुशीलितः अमरसुन्दरीणाम् अप्सरसाम् रतिरसः संभोगानन्दः यैस्तैः वीरैः युद्धमृतयोधैः सासूयम् सेर्ष्यम् आलोकितः दृष्टः, घोरः भयङ्करः स्यन्दनवेगनिःसहमहीदिक्कुम्भिकुम्भीनसश्रेष्ठप्रार्थितशान्तिः स्यन्दनयोः रथयोः वेगेन जवेन, पक्षे—स्यन्दनस्य गमनस्य वेगेन निःसहाया भारं सोढुमसमर्थायाः मह्याः पृथिव्याः शान्तिरित्यन्वयः, दिक्कुम्भिभिः दिग्गजैः कुम्भीनसश्रेष्ठेन नागराजेन शेषेण च 'कुम्भीनसः फणधरो हरिर्भोगधरस्तथा' इत्यमरः, प्रार्थिता वाञ्छिता शान्तिः उपद्रवव्याहतिः यस्मिन् सः, एवंभूतः आहवविधिः युद्धव्यापारः तत्र तस्मिन् स्थाने लङ्कायुद्धक्षेत्रे, पक्षे—कुरुक्षेत्रे आस अभूत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भय से रहित राम तथा रावण का, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन का, युद्ध के प्रारम्भ काल में रहनेवाले, संमुख-शस्त्र-प्रहार-मरण से पवित्र देह वाले अत एव विमान पर बैठे हुए और देवाङ्गनाओं के सम्भोग के आनन्द का अनुशीलन करने वाले। मृत वीरों के द्वारा ईर्ष्यासहित देखा गया तथा भयङ्कर रथ के वेग से, दूसरे पक्ष में—गमन के वेग से भार सहने में असमर्थ पृथ्वी की दिग्गजों के द्वारा तथा शेष नाग के द्वारा शान्ति चाही जाती है जिस म उस प्रकार का युद्ध-व्यापार लङ्का-युद्धस्थल में, दूसरे पक्ष में—कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में हुआ।

धूतचापलतया विराजतोर्मार्गणाभिहतमर्मणोर्मिथः ।
नान्तरं ददृशुराहवे तयोः साधुवादमुखरा नभश्चराः ॥१०॥

साधुवादमुखराः साधुवादैः साधुसाध्विति प्रशंसाशब्दैः मुखराः वाचालाः नभश्चराः युद्धावलोकनार्थमाकाशचारिणः देवाः धूतचापलतया कम्पितधनुर्दण्डेन, पक्षे–अपगतचापल्येन स्थैर्यमास्थायेत्यर्थः, विराजतोः शोभमानयोः, मिथः परस्परं मार्गणाभिहतमर्मणोः मार्गणेन बाणेन, पक्षे—अवसरान्वेषणेन अभिहतं ताडितं मर्म अतिव्यथाजनकमङ्गं ययोः तयोः, "मार्गणो याचके शरे। याच्ञान्वेषणयोः क्लीवम्" इति मेदिनी, तयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः आहवे युद्धे अन्तरं भेदं न्यूनाधिक्यमिति यावत्, न ददृशुः नावलोकयन्ति स्म। अत्र रथोद्धतावृत्तम्।

प्रशंसा के शब्दों से वाचाल, युद्धावलोकनार्थ आकाश में विचरण करने वाले देवताओं ने कम्पित धनुष-दण्ड से, दूसरे पक्ष में—युद्ध में मनोयोग के कारण स्थिरता धारण करने से सुशोभित, परस्पर बाण से, दूसरे पक्ष में—अवसरान्वेषण के द्वारा ताड़ित हुआ है अतिव्यथाजनक अङ्ग जिन के उन राम तथा रावण के, दूसरे पक्ष में—उन भीम तथा दुर्योधन के युद्ध में कोई भी फरक अर्थात् न्यूनाधिक्य नहीं देखा।

रक्ताशोकस्तवकनिकरैः सावतंसा इवाशा
विद्युच्छेदैरिव शबलिताः शारदा वारिवाहाः।
उल्काजालैरिव जटिलिता जज्ञिरे व्योमगर्भा-
स्तूर्णोत्कीर्णैः प्रसभमुभयोरायुधार्चिःकलापैः ॥११॥

उभयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः प्रसभं हठात् तूर्णोत्कीर्णैः त्वरया उत्क्षिप्तैः आयुधार्चिःकलापैः आयुधस्य शस्त्रस्य अर्चिःकलापैः वह्निस्फुलिङ्गशिखासमूहैः आशाः दिशः रक्ताशोकस्तवकनिकरैः अरुणवञ्जुलगुच्छकसमूहैः सावतंसा इव कर्णभूषणसहिता इव, शारदाः शरदृतुसंभवाः वारिवाहाः मेघाः विद्युच्छेदैर्विद्युल्लताखण्डैः शबलिता इव चित्रिता इव "चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे" इत्यमरः, व्योमगर्भाः आकाशान्तरालाः उल्काजालैः निर्गतज्वालासमूहैः जटिलिता इव निबिडीकृता इव जज्ञिरे अभवन्। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तं "मन्दाक्रान्ताजलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्" इति लक्षणात्। उत्प्रेक्षात्रयाणां मालोत्प्रेक्षा वक्तुं शक्या।

राम तथा रावण दोनों के, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन दोनों के एका-एक तेजो से ऊपर बिखरे हुए शस्त्रों के वह्निकण-शिखासमूहों से दिशाएँ रक्ताशोक (लाल अशोक) के गुच्छों के समूहों से कर्णभूषण पहनी हुई के समान, शरदृतु के बादल विद्युल्लता के टुकड़ों से चित्र वर्ण हुए के समान तथा आकाश के अवकाश उल्का के समूहों से भरे हुए के समान हो गये।

मनोरथगतिध्वंसपरिवर्धितरोषयोः ।
रणकर्म सुदक्षत्वादश्रान्तमुभयोरभूत् ॥१२॥

मनोरथगतिध्वंसपरिवर्धितरोषयोः मनोरथस्य अभिलाषस्य या गतिः प्रसरणं तस्य ध्वंसो विघातः तेन परिवर्धितः वृद्धिंगतः रोषः क्रोधः ययोस्तयोः उभयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः सुदक्षत्वात् अतिनिपुणत्वात् अश्रान्तम् विश्रान्तिरहितं रणकर्म युद्धम् अभूत् अभवत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

अपने अपने अभिलाष के विघात होने से बढ़े हुए क्रोधवाले दोनों राम तथा रावण का, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन का अतिनिपुण होने के कारण विना विश्राम किये हुए ही युद्ध हुआ।

तथा तयोर्विक्रम उद्दिदीपे दिदृक्षया व्योम्नि यथा समेताः।
दिवौकसोऽप्येकतरेण लभ्यं जयं न निश्चेतुमलं बभूवुः ॥१३॥

तयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः विक्रमः परपराभवप्रयत्नः तथा तेन प्रकारेण उद्दिदीपे उद्दीप्तोऽभूत् यथा येन प्रकारेण दिदृक्षया द्रष्टुमिच्छया व्योम्नि आकाशे समेताः समागताः दिवौकसोऽपि देवा अपि एकतरेण तयोरन्यतरेण लभ्यं प्राप्यं जयं विजयं निश्चेतुं निर्णेतुम् अलं समर्थाः न बभूवुः न अभवन्। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

उन दोनों राम तथा रावण का, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन का पराक्रम उस प्रकार चमकने लगा कि जिस से युद्ध देखने की इच्छा से आये हुए स्वर्गवासी देवता लोग भी 'दोनों में से इस एक की जीत होगी' यह निर्णय करने में समर्थ नहीं हुए।

मध्ये तयोरायुधघट्टजन्मा प्रतिक्षणं वह्निशिखोल्लसन्ती।
भीता तयोरेकतरं ग्रहीतुं साक्षाज्जयश्रीरिव लक्ष्यते स्म ॥१४॥

प्रतिक्षणं क्षणे क्षणे आयुधघट्टजन्मा शस्त्रसंघट्टनोत्पन्ना उल्लसन्ती

परिस्फुरन्ती वह्निशिखा अग्निज्वाला तयोरुभयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः एकतरं कमप्येकमेव ग्रहीतुं वरीतुं भीता ताभ्यामेव त्रस्ता तयोर्मध्ये रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः मध्ये मध्यभागे साक्षात् प्रत्यक्षस्वरूपा जयश्रीरिव विजयलक्ष्मीरिव लक्ष्यते स्म अवालोक्यते स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारश्च।

क्षण-क्षण में शस्त्रों के संघट्टन से उत्पन्न होने वाली तथा परिस्फुरित होने वाली अग्निशिखा राम तथा रावण, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन इन दोनों में से एक का वरण करने में इन दोनों से ही भयभीत होकर इन दोनों के बीच में प्रकट हुई विजय-लक्ष्मी के समान दिखलायी देने लगी ।

पौष्पी वृष्टिः पुरस्तात्तदुपरि कुसुमोपक्षये खेचरौघै-
र्मुक्ता मुक्ताकलापाः किल तदुपरमे केवलाः साधुवादाः ।
संयत्संरम्भभीतास्त्रिदशयुवतयोऽप्यञ्चलैरंशुकानां
चक्षूंपि च्छादयन्त्यो दिवि दयिततमैर्दूरमालिङ्ग्यनीताः ॥१५॥

खेचरौघैः आकाशचारिभिर्देवैः तदुपरि तयोः रामरावणयोः उपरि, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः उपरि पुरस्तात् पूर्वं पौष्पी वृष्टिः पुष्पमयी वृष्टिः कृता पुष्पाणि मुक्तानीति यावत्, किल प्रायः कुसुमोपक्षये पुष्पसमाप्तौ मुक्ताकलापाः मुक्तासमूहाः मुक्ताः प्रक्षिप्ताः, तदुपरमे तत्समाप्तौ केवलाः पुष्पमुक्तादिरहिताः साधुवादाः प्रशंसाशब्दाः उक्ताः इत्यर्थः । दिवि आकाशे दयिततमैः प्रियतमैः संयत्संरम्भभीताः संयतः युद्धस्य यः संरम्भः आवेगः तस्मात् भीताः त्रस्ताः, "अभ्यामर्दसमाघातसंग्रामाभ्यागमाहवाः । समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिसमिद्युधः" इत्यमरः, अत एव अंशुकानां वस्त्राणाम् अञ्चलैः प्रान्तैः चक्षूंपि नयनानि छादयन्त्यः पिदधत्यः त्रिदशयुवतयः देवाङ्गनाः आलिङ्ग्य आश्लिष्य दूरं नीताः दूरस्थानं प्रापिताः । अत्र स्रग्धरावृत्तम् ।

आकाशचारी देवों ने राम तथा रावण के ऊपर, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन के ऊपर पहले फूलों की वृष्टि की, प्रायः फूलों के समाप्त हो जाने पर मोतियों के समूहों की वर्षा की, उस के समाप्त हो जाने पर केवल प्रशंसा के शब्दों का प्रयोग किया । आकाश में युद्ध के आवेग के भय से त्रस्त अत एव वस्त्रों के अञ्चलों से आँखों को ढकने वाली देवाङ्गनाएँ प्रियतमों के द्वारा आलिङ्गन कर के दूर ले जायी गईं ।

दिग्भित्तिप्रतिनादिदुन्दुभिरवप्रक्षोभिगर्भोच्चल-
न्नानानागनगेन्द्रनक्रनिकरप्रोत्क्षिप्तवीचिच्छटः ।
वेलान्तानुदलङ्घयत्कुपितयोर्नूनं तयोरायुध-
ज्वालौर्वानललङ्घितस्य नभसो निर्वापणायाम्बुधिः ॥१६॥

दिग्भित्तिप्रतिनादिदुन्दुभिरवप्रक्षोभिगर्भोच्चलन्नानानागनगेन्द्र-नक्रनिकरप्रोत्क्षिप्तवीचिच्छटः दिग्भित्तिषु दिगन्तप्राकारेषु प्रतिनादी प्रतिध्वनिकारी यः दुन्दुभिरवः भेरीशब्दः तेन प्रक्षोभी क्षोभयुक्तः क्षुभित इति यावत्, यः गर्भः समुद्रान्तर्भागः तेन उच्चलताम् ऊर्ध्वमुच्छलतां नाना अनेकेषां नागानां सर्पाणां नगेन्द्राणां पर्वतानां नक्राणां कुम्भीलानां यः निकरः समूहः तेन प्रोत्क्षिप्ताः ऊर्ध्वं क्षिप्ताः वीचिच्छटाः तरङ्गोत्क्षिप्तबिन्दुपरम्पराः यस्य सः अम्बुधिः समुद्रः कुपितयोः क्रुद्धयोः तयोः रामरावणयोः, पक्षे—भीमदुर्योधनयोः आयुधज्वालौर्वानललङ्घि-तस्य आयुधस्य शस्त्रसंवर्षणस्य ज्वाला एव वह्निशिखा एव और्वानलः बाडवाग्निः तेन लङ्घितस्य आक्रान्तस्य नभसः आकाशस्य नूनं निश्चितमेव निर्वापणाय शान्तये वेलान्तान् तटसमीपभागान् "अन्तं स्वरूपे नाशे ना न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु" इति मेदिनी, उदलङ्घयत् आक्रामत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

दिगन्तभित्तियों में प्रतिध्वनित दुन्दुभियों के शब्द से संक्षुभित समुद्रगर्भ से उछले हुए अनेक सर्पों पर्वतों तथा घड़ियालों के द्वारा ऊपर उछाले गये हैं तरङ्ग के छींटे जिस में इस प्रकार के समुद्र ने निश्चय ही क्रुद्ध हुए उन दोनों के अर्थात् राम तथा रावण के, दूसरे पक्ष में—भीम तथा दुर्योधन के शस्त्र से निकले हुए अग्निज्वालारूपी बाडवानल से आक्रान्त आकाश की शान्ति के लिये ही तट के समीप भागों का लङ्घन कर दिया।

विलोक्य विद्वेषिवधे ससंशयं रणे जगत्प्राणभुवं नृपात्मजम् ।
उपायमस्मै निभृतं न्यवेदयज्जयोचितं कोऽपि पुरातनो मुनिः ॥१७॥

कोऽपि कश्चित् पुरातनः प्राचीनः मुनिः ऋषिः अगस्त्यः रणे युद्धे नृपात्मजं राजकुमारं रामं विद्वेषिवधे विद्वेषिणः शत्रोः रावणस्य वधे मारणे ससंशयं सन्देहयुक्तं विलोक्य दृष्ट्वा अस्मै रामाय निभृतं एकान्तभावेन जगत्प्राणभुवं जगतां भुवनानां प्राणानाम् भूः उत्पत्ति-स्थानं संरक्षकमिति यावत्, जयोचितं शत्रुविजययोग्यम् उपायं साध-

नम् आदित्याराधनरूपं न्यवेदयत् अकथयद् उपादिशदिति यावत्। अत्र वंशस्थं वृत्तम्।

किसी प्राचीन ऋषि अगस्त्य ने युद्ध में राजकुमार राम को शत्रु रावण के मारने में सन्देहयुक्त देख कर इस राम को चुपचाप संसारवालों का प्राणरक्षक विजय प्राप्त करने योग्य आदित्यहृदयस्तोत्र से सूर्य को आराधनारूपी उपाय का उपदेश दिया।

पक्षे—कोऽपि कश्चिदनिर्वचनीय इति यावत्, पुरातनो मुनिः प्राचीनः ऋषिः कृष्णः रणे युद्धे जगत्प्राणसुवं वायुपुत्रं "जगत्प्राणः समीरणः" इत्यमरः, नृपात्मज राजकुमारं भीमं विद्वेषिणः शत्रोः दुर्योधनस्य वधे मारणे ससंशयं सन्देहयुक्तं विलोक्य दृष्ट्वा अस्मै भीमाय निभृतं शान्तभावेन अन्यादृष्टविधिना शब्दरहितकेवलेङ्गितेन जयोचितं शत्रुपराजययोग्यम् उपायम् ऊरुताडनरूपं यक्तिं न्यवेदयत् असूचयत्।

किसी पुराने मुनि कृष्ण ने युद्ध में वायु के पुत्र राजकुमार भीम को शत्रु दुर्योधन के मारने में संदेहयुक्त देख कर इस भीम को चुपचाप विजय प्राप्त कराने के योग्य दुर्योधन के ऊरुताडनरूपी युक्ति अपने जाङ्घ पर हाथ मारने के रूप में सूचित कर दी।

प्रवर्त्य भीमोऽथ लसन्महायुधं विरोधिवीरं निजघान मर्मणि।
पुरेव रामः शतमन्युसंभवं महास्त्रमोक्षेण निशाचरेश्वरम् ॥१८॥

अथ अनन्तरं भीमः शत्रूणां भयङ्करः रामः दाशरथिः लसन्महायुधं लसन्ती दीप्यमाना या महायुत् महतो आजिः ताम् प्रवर्त्य संचाल्य महास्त्रप्रयोगेण विरोधिवीरं विद्वेषियोधं निशाचरेश्वरं राक्षसपतिं रावणं पुरा पूर्वं शतमन्युसंभवमिव इन्द्रपुत्रं वालिनमिव मर्मणि सन्धिस्थाने अतिव्यथाकरेऽङ्गे इति यावत्, निजघान प्रजहार। अत्रापि वंशस्थं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस के बाद शत्रुओं के लिये भयङ्कर राम ने दीप्यमान महायुद्ध संचालित कर के महास्त्र का प्रयोग कर के शत्रुवीर राक्षसपति रावण को, पूर्व काल में जैसे इन्द्र के पुत्र वालि को मारा था उसी प्रकार मर्मस्थल में मारा।

पक्षे—अथ अनन्तरं भीमः वृकोदरः लसन्महायुधं लसन्ती दीप्यमाना या महायुत् महाजिः ताम् प्रवर्त्य संचाल्य महायुद्धं कृत्वेति यावत्, महास्त्रमोक्षेण गदारूपमहाशस्त्रप्रयोगेण शतमन्युसंभवं शतमन्यूनां शतक्रोधानां संभवम् उत्पत्तिस्थानं "मन्युः पुमान् क्रुधि।

दैन्ये शोके च यज्ञे च" इति मेदिनी, विरोधिवीरं शत्रुवीरं दुर्योधनं पुरा पूर्वस्मिन् काले निशाचरेश्वरं रावणं राम इव दाशरथिरिव मर्मणि सन्धिस्थाने अतिकष्टकारकेऽङ्गे इत्यर्थः, जघान प्रजहार। अत्राप्युपमालङ्कारः।

इस के बाद भीम ने दीप्यमान महायुद्ध करके महागदा के प्रयोग से सैकड़ों क्रोध के पात्र शत्रुवीर दुर्योधन को पूर्वकाल में जैसे रावण को राम ने मारा था उसी प्रकार मर्म-स्थल में मारा।

ततः स उच्चैर्गतमानसोऽपि दुर्योधनश्छिन्नदशाननश्रीः।
प्राप्योरुभङ्गं जगतीं जगाम सुरद्विषां मूर्त इवाभिमानः॥१६॥

ततः तदनन्तरम् उच्चैरुच्चभूमिं गतं मानसं चित्तं यस्य सः रामविजयसीताविलासादिकल्पनाधारकः इत्यर्थः, एवंभूतोऽपि छिन्नदशाननश्रीः छिन्ना द्विधाकृता दशानां दशसंख्यानाम् आननानां मुखानां श्रीः शोभा यस्य सः दुर्योधनः दुःखेन योधयितुं शक्यः सः रावणः सुरद्विषां राक्षसानां मूर्तः स्वरूपधारी अभिमान इव अहङ्कार इव उरुभङ्गं महत्पराजयं प्राप्य जगतीं भूमिं जगाम प्राप्तवान् अपतदित्यर्थः, अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

इस के बाद राम को जीतना तथा सीताविलास आदि की मानसिक कल्पना करनेवाले, दुःख से युद्ध करने योग्य वह रावण राक्षसों के स्वरूपधारी अभिमान के समान बहुत बड़ी हार प्राप्त कर के पृथ्वी पर गिर गया।

पक्षे—ततः तदनन्तरम् उच्चैर्गतमानसोऽपि उच्चैर्गतं पाण्डवविनाशपाण्डवराज्योपभोगादिरूपोन्नतभूमिप्राप्तं मानसं चित्तं यस्य सः, पाण्डवविनाशपाण्डवराज्योपभोगाभिलाषी इति यावत्, एवंभूतोऽपि छिन्नदशाननश्रीः छिन्ना विदीर्णा विषण्णा इति यावत्, दशा परिस्थितिः यस्याः एवंभूता आननश्रीः मुखशोभा यस्य सः, सः प्रसिद्धमानी दुर्योधनः धृतराष्ट्रज्येष्ठपुत्रः ऊरुभङ्गम् ऊर्वोः सक्थ्नोः भङ्गं द्विधाभावं प्राप्य आसाद्य सुरद्विषाम् असुराणां मूर्तः मूर्तिमान् अभिमान इव अहङ्कार एव जगतीं पृथ्वीं जगाम गतवान् अपतदित्यर्थः।

इस के बाद पाण्डवों का विनाश तथा पाण्डवों के राज्य का उपभोग आदि आदि ऊँची अभिलाषा वाला हो कर भी उच्छिन्नमुखशोभावाला वह प्रसिद्ध मानी दुर्योधन जाङ्घों का भङ्ग प्राप्त कर के अर्थात् जाङ्घों के टूटने से असुरों के मूर्तिमान् अभिमान के समान पृथ्वी पर गिर गया।

अन्ते संग्रामयज्ञस्य सद्यः पूर्णाहुतीकृतः ।
तत्कायः परिचस्कार दारुणं रणमण्डलम् ॥२०॥

संग्रामयज्ञस्य युद्धमखस्य अन्ते अवसानकाले सद्यः तत्कालमेव पूर्णाहुतीकृतः अन्तिमाहुतिस्थाने पातितः तत्कायः तस्य रावणस्य, पक्षे—दुर्योधनस्य कायः शरीरम् दारुणं भयङ्करं रणमण्डलं युद्धक्षेत्रं परिचस्कार अलमकरोत् शोभयति स्मेति यावत् । अत्रानुष्टुप् छन्दः, रूपकमलङ्कारः ।

युद्धयज्ञ के अन्त में तत्काल ही पूर्णाहुति बनाया हुआ उस रावण का, दूसरे पक्ष में—उस दुर्योधन का शरीर युद्धक्षेत्र को सुशोभित किया ।

विससृजुरथ वृष्टिं कौसुमीमम्बुवाहा-
ननृतुरमरवध्वो दध्वनुः खे मृदङ्गाः ।
जगुरनिमिषसूता दिक्पुरन्ध्र्यः प्रसेदु-
स्तुतुषुरखिललोका मङ्गलेनेव पूर्णाः ॥२१॥

अथ रावणवधानन्तरं, पक्षे—दुर्योधनोरुभङ्गानन्तरम् अम्बुवाहाः मेघाः कौसुमीं पुष्पमयीं वृष्टिं वर्षं विससृजुः कुर्वन्ति स्म । अमरवध्वः देवयोषितः ननृतुः नृत्यन्ति स्म । खे आकाशे मृदङ्गाः वाद्यविशेषाः दध्वनुः शब्दं चक्रुः, देवाः हर्षातिरेकेण वाद्यानि वादयन्ति स्मेत्यर्थः । अनिमिषसूताः अनिमिषाणां देवानां सूताः मागधाः जगुः गायन्ति स्म, "सुरमत्स्यावनिमिषौ" इत्यमरः, दिक्पुरन्ध्र्यः दिगङ्गनाः प्रसेदुः प्रसन्ना बभूवुः । अखिललोकाः सर्वाणि भुवनानि मङ्गलेन कल्याणेन पूर्णाः इव भरिता इव तुतुषुः सन्तुष्टाः अभवन् । अत्र मालिनीवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

इस के बाद अर्थात् रावण-वध के पश्चात्, दूसरे पक्ष में—दुर्योधन के ऊरुभङ्ग होने के पश्चात् मेघ फूलों की वर्षा करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, आकाश में देवताओं के मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे, देवताओं के सूत-वन्दी गण गाने लगे, दिशारूपी ललनाएँ प्रसन्न हो गईं तथा सभी भुवन कल्याणों से परिपूर्ण हुए के समान सन्तुष्ट हो गये ।

तीर्त्वा प्रतिज्ञां पवनात्मजेन प्रत्यागतेनाभिहितारिभङ्गा ।
मेने तदानीं मनुजेन्द्रपत्नी महोत्सवं भर्तृमुखावलोकम् ॥२२॥

प्रतिज्ञां 'रावणवधं कारयित्वा त्वां रामेण सङ्गमयिष्यामि' इति

सन्धाम्, पक्षे—"दुर्योधनः यावूरू द्रौपद्यै अदर्शयत् तौ गदया भङ्दयामि" इति प्रतिज्ञां तीर्त्वा उत्तीर्य पूरयित्वेति यावत्, प्रत्यागतेन परावृत्यागतेन पवनात्मजेन पवनपुत्रेण हनुमता, पक्षे—भीमेन अभिहितारिभङ्गा अभिहितः कथितः अरिभङ्गः शत्रुपराजयः यस्यै सा मनुजेन्द्रपत्नी राजमहिषी सीता, पक्षे—द्रौपदी भर्तृमुखावलोकं पतिमुखदर्शनं महोत्सवं महान्तम् उद्धर्षं मेने अवागच्छत्। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

"रावण का वध करा कर आप को राम से मिलाऊँगा" इस प्रतिज्ञा की पूर्ति कर के फिर लौट कर आये हुए पवनपुत्र हनुमान् के द्वारा शत्रु रावण की पराजय कही गई है जिस को उस राजपत्नी सीता ने अपने पति के मुखावलोकन को बहुत बड़ा उत्सव समझा, । दूसरे पक्ष में—"दुर्योधन ने जिन जाङ्घों को द्रौपदी को दिखाया है उन जांघों को गदा से तोड़ दूँगा" इस प्रतिज्ञा की पूर्ति कर के फिर लौट कर आये हुए पवन-पुत्र भीम के द्वारा शत्रु-दुर्योधन की पराजय कही गयी है जिस को उस राजपत्नी द्रौपदी ने अपने पति के मुखदर्शन को बहुत बड़ा उत्सव समझा।

महावराहेण महीव सागरात्
समुद्धृता भीमबलेन संकटात्।
नरेन्द्रपत्नी प्रतिपन्न-मङ्गला
जहर्ष जन्मान्तरमास्थिता यथा ॥२३॥

महावराहेण आदिसूकरावतारेण सागरात् समुद्रात् समुद्धृता बहिरानीता महीव पृथ्वीव भीमबलेन भीमं भयङ्करं बलं सैन्यं यस्य तेन रामेण, पक्षे—भीमस्य वृकोदरस्य बलेन सामर्थ्येन संकटात् शत्रोर्विपदः समुद्धृता उत्तारिता प्रतिपन्नमङ्गला विहितकल्याणा नरेन्द्रपत्नी राजमहिषी सीता, पक्षे—द्रौपदी जन्मान्तरम् पुनर्जन्म आस्थिता यथा प्राप्तेव जहर्ष हृष्टाभूत्। अत्र वंशस्थं वृत्तम् उपमा उत्प्रेक्षा चालङ्कारौ।

महावराह के द्वारा समुद्र से बाहर निकाली गयी पृथिवी की तरह भयङ्कर-सेना वाले राम के द्वारा, दूसरे पक्ष में—भीम के सामर्थ्य के द्वारा शत्रु के संकट से उबारी गयी मङ्गल का विधानकरनेवाली राजपत्नी सीता, दूसरे पक्ष में-द्रौपदी दूसरे जन्म को प्राप्त हुई के समान अत्यन्त आनन्दित हुई।

पत्युः प्रतिज्ञार्णवलङ्घनेन सकञ्चुका संचितचारुवेणी ।
अनल्पसन्तापहुताशमध्याद् विनिःसृता राजवधूर्विरेजे ॥२४॥

पत्युः स्वामिनो रामस्य, पक्षे—भीमस्य प्रतिज्ञार्णवलङ्घनेन उररीकृतशत्रुविघातप्रतिज्ञापूरणेन सकञ्चुका निचोलवस्त्रयुक्ता संचितचारुवेणी संचिता संयमिता चारुवेणी शोभना प्रवेणी यया सा एकत्र पतिमिलनेन अन्यत्र प्रतिज्ञापूर्त्या इति भावः, अनल्पसन्तापहुताशमध्याद् अनल्पः अतिशयः सन्तापः ऊष्मा यस्मिन् एवंभूतात् हुताशमध्याद् वह्नेरन्तरतः, पक्षे—अनल्पसन्तापः महत्कष्टमेव हुताशः वह्निः तन्मध्यात् विनिःसृता विनिर्गता राजवधूः राज्ञो रामस्य वधूः पत्नी सीता, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य वधूः पत्नी द्रौपदी विरेजे शोभते स्म ।

अपने पति राम के शत्रुवधप्रतिज्ञा तथा समुद्र के पार करने से, दूसरे पक्ष में—अपने पति भीम के शत्रु के ऊरुभङ्ग-प्रतिज्ञारूपी समुद्र के पार करने से कञ्चुकवस्त्र पहनी हुई, पति मिलने से, दूसरे पक्ष में—शत्रुवध होने से बालों की वेणी बान्धने वाली (द्रौपदी ने वस्त्राकर्षण के बाद ही अपनी चोटी खोल कर प्रतिज्ञा की थी कि दुःशासन तथा दुर्योधन के मारे जाने के बाद ही अपनी चोटी बान्धूगी) अत्यन्त गर्मी से युक्त अग्नि के मध्य से, दूसरे पक्ष में—अत्यन्तकष्टरूपी अग्नि के मध्य से निकली हुई राजपत्नी सीता, दूसरे पक्ष में—द्रौपदी सुशोभित हुई ।

समुद्वहन् भर्तरि भक्तिमुत्कटां कृपानुगामी कृतवर्मनोदनः ।
तमन्वगच्छद् गुरुवंशवर्धनः क्षपाचरो राजवरं विभीषणः ॥२५॥

भर्तरि स्वामिनि रामे उत्कटाम् अतिशयां भक्तिं निष्ठां समुद्वहन् धारयन् कृपानुगामी कृपायाः भर्तुरनुकम्पायाः अनुगामी अनुगन्ता तदनुकम्पाभिलाषुक इत्यर्थः, कृतवर्मनोदनः कृतं वर्मणः कवचस्य नोदनं प्रक्षेपो येन सः युद्धसमाप्तेरिति भावः, गुरुवंशवर्धनः गुरोः ज्येष्ठभ्रातुः वंशस्य अन्ववायस्य वर्धनम् अवच्छेदनं विनाशो येन सः "अवच्छेदनार्थको वृधुधातुश्चौरादिकः, क्षपाचरः निशाचरः राक्षस इति यावत्, विभीषणः विभीषणनामा रावणानुजः राजवरं नृपश्रेष्ठं तम् रामम् अन्वगच्छत् अनुजगाम । अत्र वंशस्थं वृत्तम् ।

अपने स्वामी राम के विषय में उत्कट भक्ति धारण करने वाले, उन की कृपा का अनुसरण करने वाले, युद्ध समाप्त होने से कवच का परित्याग करने

वाले, अपने राक्षस बड़े-भाई के वंश का विनाश करने वाले विभीषण ने नृपश्रेष्ठ राम का अनुगमन किया।

पक्षे—भर्तरि स्वामिनि दुर्योधने उत्कटाम् अतिशयां भक्तिं स्वामिभक्तिं समुद्वहन् धारयन्, कृपानुगामी कृपाचार्यानुगतः कृतवर्मनोदनः कृतवर्मणा कृतवर्मनाम्ना यादवेन नोदनं प्रेरणा यस्य सः, गुरुवंशवर्धनः गुरोर्द्रोणाचार्यस्य वंशस्य अन्ववायस्य वर्धनं प्रसारो येन सः क्षपाचरः रात्रौ विचरणशीलः विभीषणः भयङ्करः अश्वत्थामा राजवरं नृपश्रेष्ठं तम् दुर्योधनम् अन्वगच्छत् अनुससार, दुर्योधनस्य मतानुसारेण आचरदित्यर्थः।

अपने स्वामी दुर्योधन के विषय में अत्यधिक स्वामिभक्तिधारण करने वाले, कृपाचार्य से युक्त, कृतवर्मा से प्रेरित हुए, द्रोणाचार्य का वंश बढ़ाने वाले, रात में विचरण करने वाले भयङ्कर अश्वत्थामा ने नृपश्रेष्ठ उस दुर्योधन का अनुसरण किया अर्थात् उस के मत के अनुसार आचरण किया।

शकुनस्यानुकूल्येन शनैरारात्पताकिनीम्।
प्रभञ्जनः कुम्भजाशासंभवस्तामवर्धयत् ॥२६॥

शकुनस्य शुभाशंसिनिमित्तस्य आनुकूल्येन अनुकूलप्रचारेण कुम्भजाशासंभवः कुम्भजोऽगस्त्यः तस्य आशा दिक् संभवः उत्पत्तिस्थानं यस्य सः दक्षिणदिगुद्भव इति यावत्, शनैः मन्दचारी प्रभञ्जनः पवनः तां रामसम्बन्धिनीं पताकिनीं सेनाम् आरात् दूरम् अवर्धयत् वर्धयति स्म, हर्षनिर्भरामकरोदिति यावत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

शुभसूचक निमित्तों के अनुकूल प्रचार से दक्षिणदिशा से उत्पन्न मन्द पवन ने उस रामसम्बन्धी सेना को अत्यन्त बढा दिया अर्थात् प्रसन्नचित्त कर दिया।

पक्षे—शकुनस्य उलूकपक्षिणः आनुकूल्येन अनुकूलताचरणेन कार्यसफलतासूचकशब्दकरणेनेति यावत्, "शकुनस्तु पुमान् पक्षिमात्रपक्षिविशेषयोः। शुभशंसिनिमित्ते च शकुनं स्यान्नपुंसकम्" इति मेदिनी, प्रभञ्जनः प्रकृष्टं भङ्क्ता विनाशक इति यावत्, कुम्भजाशासंभवः कुम्भजस्य द्रोणस्य आशया मनोरथेन संभवः उत्पत्तिर्यस्य सः अश्वत्थामा "कुटजो वृक्षभेदे स्यादगस्त्यद्रोणयोरपि" इति मेदिनी, कुटस्तु कुम्भ एव "कलशस्तु त्रिषु द्वयोः घटः कुटनिपावस्त्री" इत्यमरः, आरात् समीपे "आराद् दूरे समीपे च" इति मेदिनी, ताम् युधिष्ठिरसम्बन्धिनीं पताकिनीं सेनां शनैः मन्दं निःशब्दं यथा स्यात्तथा इति

भावः, अवर्धयत् अखण्डयत् "अत्र अवच्छेदनार्थको वृधुधातुश्चौरादिकः।

उल्लू पक्षी के अनुकूल शब्द करने के कारण अत्यन्त विनाश करने वाले द्रोण के मनोरथ से उत्पन्न अश्वत्थामा ने समीप में ही उस युधिष्ठिर-सम्बन्धिनी सेना को चुपके से काट डाला।

अभ्यर्णे कीर्णसेनापतिपृथुकुणपं कृत्तभीष्मारिकण्ठं
योधव्रातप्रतीकैर्विषमितवसुधं ध्वस्तनानाकुमारम्।
खेलद्वेतालमारादुपरिपरिपतत्फेरुभेरुण्डदण्डं
द्रष्टुं सा नालमासीत्पथिषु नृपवधू राजपुत्राजिरङ्गम्॥२७॥

नृपवधूः राजपत्नी सा सीता, पक्षे—द्रौपदी पथिषु मार्गेषु अभ्यर्णे समीपे कीर्णसेनापतिपृथुकुणपं कीर्णाः प्रक्षिप्ताः सेनापतीनां राक्षससेनानायकानां पृथवः महान्तः कुणपाः शवाः यस्मिन् तत्, पक्षे—कीर्णः प्रक्षिप्तः सेनापतेः धृष्टद्युम्नस्य पृथुः विशालः कुणपः शवः यस्मिन् तत् "कुणपः शवमस्त्रियाम्" इत्यमरः, कृत्तभीष्मारिकण्ठं कृत्ताः छिन्नाः भीष्माणां भयङ्कराणाम् अरीणां कण्ठाः गलाः यस्मिन् तत्, पक्षे—कृत्तः खण्डितः भीष्मारेः भीष्मस्य शत्रोः शिखण्डिनः कण्ठः गलः यस्मिन् तत्, ध्वस्तनानाकुमारम् ध्वस्ताः विनष्टाः नाना अनेके कुमाराः मेघनादातिकायादयः राजकुमाराः, पक्षे—द्रौपदीपुत्राः यस्मिन् तत्, योधव्रातप्रतीकैः योधव्रातानां वीरसमूहानां प्रतीकैः अङ्गैः विषमितवसुधं विषमिता असमीकृता वसुधा पृथ्वी यस्मिन् तत् "अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनोऽथ" इत्यमरः, आरात् समीपे खेलद्वेतालं खेलन्तः क्रीडन्तः बेतालाः प्रेतविशेषाः यस्मिन् तत्, उपरि अन्योन्यस्योपरि परिपतत्फेरु परिपतन्तः आक्रामन्तः फेरवः शृगालाः यस्मिन् तत्, "शृगालवञ्चकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बुकाः" इत्यमरः, भेरुण्डदण्डं भेरुण्डाः भयानकाः दण्डाः लगुडाः यस्मिन् तत् "भेरुण्डा देवताभेदे पक्षिण्यन्तरयोः स्त्रियाम्। भयानके वाच्यवत्स्यात्" इति "दण्डोऽस्त्री लगुडे पुमान्। व्यूहभेदे प्रकाण्डेऽश्वे कोणमन्थानयोरपि" इति च मेदिनी, एवंभूतं राजपुत्राजिरङ्गम् राजपुत्रस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य आजिरङ्गं युद्धक्षेत्रं "रङ्गो ना रागे नृत्ये रणक्षितौ अस्त्री त्रपुणि" इति मेदिनी, द्रष्टुम् अवलोकितुं न अलम् आसीत् न समर्था अभवत्। अत्र स्रग्धरावृत्तम्।

राजपत्नी सीता रास्ते में समीप ही में बिखरे हुए हैं राक्षस सेनापतियों के विशाल-विशाल शव जिस में, काटे गये हैं भयङ्कर शत्रुओं के कण्ठ जिस में, मारे हुए हैं मेघनाद आदि अनेक रावण-कुमार जिस में, दूसरे पक्ष में—राजपत्नी द्रौपदी रास्ते में समीप हो में पड़ा हुआ है सेनापति धृष्टद्युम्न का विशाल शव जिम में, काटा गया है भीष्म के शत्रु शिखण्डी का शिर जिस में, मारे गये हैं द्रौपदी के अनेक कुमार जिस में, योद्धाओं के समूह के कटे हुए अङ्गों से असमथल बना दी गई है भूमि जिस में, खेल कर रहे हैं बेताल जाति के प्रेत-विशेष जिस में, एक दूसरे के ऊपर आक्रमण कर रहे हैं शृगाल जिस में, गिरे हुए हैं भयङ्कर डण्डे जिस में, इस प्रकार के राजकुमार राम की, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर की युद्धभूमि को देखने में भी समर्थ नहीं हुई।

कृतप्रतीकारमरेः कृतागसः समग्रचूडामणिमौलिनिग्रहात्।
अभिष्टुवन्तो विजयं महाभुजं ससोदरं तं सुहृदोऽनुवव्रजुः ॥२८॥

कृतागसः सीतापहरणेन कृतापराधस्य अरेः शत्रोः रावणस्य समग्रचूडामणिमौलिनिग्रहात् समग्राः सम्पूर्णाः सर्वे इति यावत्, चूडामणयः मुकुटरत्नानि येषु एवंभूतानां मौलीनाम् मस्तकानां निग्रहात् खण्डनात् कृतप्रतीकारं कृतः विहितः प्रतीकारः वैरशोधनं येन तम्, विजयं विशिष्टो जयः यस्य तम् महाभुजं दीर्घबाहुं ससोदरं सोदरेणानुजेन लक्ष्मणेन सहितं तं रामम् अभिष्टुवन्तः प्रशंसां कुर्वन्तः सुहृदः मित्राणि सुग्रीवादयः अनुवव्रजुः अनु गच्छन्ति स्म। अत्र वंशस्थं वृत्तम्

सीतापहरणरूप अपराध करने वाले शत्रु रावण के मुकुटरत्नों से युक्त मस्तकों के काटने से वैर का बदला चुकाने वाले, विशिष्ट विजय वाले तथा लम्बी भुजावाले सहोदर लक्ष्मण सहित उस राम की प्रशंसा करते हुए सुग्रीवादि मित्रों ने अनुगमन किया।

पक्षे—कृतागसः सुप्तानां द्रौपदीपुत्रैः सहितानां धृष्टद्युम्नादीनां संहारेण सापराधस्य अरेः शत्रोः अश्वत्थाम्नः समग्रचूडामणिमौलिनिग्रहात् समग्रेण सम्पूर्णेन चूडामणिना शिरोरत्नेन कारणभूतेन मौलेः मस्तकस्य यः निग्रहः छेदनं तस्मात् तद्रूपादित्यर्थः, कृतप्रतीकारं कृतः विहितः प्रतीकारः वैरशोधनं येन तम्, ससोदरं सोदरैः युधिष्ठिरादिभिः सहितं महाभुजं विशालबाहुं तं प्रसिद्धं विजयम् अर्जुनम् अभिष्टुवन्तः प्रशंसन्तः सुहृदः कृष्णादीनि मित्राणि अनुवव्रजुः अनुसरन्ति स्म।

सोये हुए द्रौपदी के पुत्रों के सहित धृष्टद्युम्नादिकों का वध करने से सापराध शत्रु अश्वत्थामा का सम्पूर्ण मस्तकमर्माण के कारण मस्तक का विदारण करने से अर्थात् मस्तक चीर कर शिरोरत्न निकाल लेने से वैर का बदला चुकाने वाले, सहोदर युधिष्ठिरादिसहित विशालबाहु वाले प्रसिद्ध अर्जुन की प्रशंसा करते हुए कृष्णादि मित्रों ने अनुसरण किया।

राज्ये नियुक्तेन विभीषणेन हरिप्रणेत्रानुगतो बलेन।
नराधिपः स्वां नगरीं प्रतस्थे विमानराजप्रभुतां प्रपन्नः ॥२९॥

राज्ये लङ्काराज्ये नियुक्तेन स्थापितेन विभीषणेन विभीषणनाम्ना रावणानुजेन बलेन सैन्येन हरिप्रणेत्रा हरिः वानरश्चासौ प्रणेता नायकः तेन सेनापतिना सुग्रीवेणेति यावत्, अनुगतः कृतपश्चाद्गमनः विमानराजप्रभुतां विमानराजः वायुयानश्रेष्ठः पुष्पकं तस्य प्रभुतां प्रपन्नः स्वामित्वं प्राप्तः सन् पुष्पकविमानमारुह्येत्यर्थः, नराधिपः राजा रामः स्वां स्वकीयां नगरीं पुरीम् अयोध्यां पुरीं प्रतस्थे चचाल। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

लङ्काराज्य पर स्थापित किये हुए विभीषण, अपनी सेना तथा सेनापति सुग्रीव से संयुक्त होकर विमानश्रेष्ठ पुष्पक का स्वामित्व प्राप्त करके अर्थात् उस पर चढ़ कर राजा राम अपनी नगरी अयोध्या के प्रति चल दिये।

पक्षे—राज्ये राज्यविषये नियुक्तेन दत्तकार्यभारेण विभीषणेन भयङ्करेण हरिप्रणेत्रा हरिः कृष्णः प्रणेता सञ्चालकः यस्य तेन बलेन सैन्येन अनुगतः संयुक्तः विमानराजप्रभुतां प्रपन्नः विमानः विगताभिमानः यः राजा दुर्योधनः तस्य प्रभुतां स्वामित्वं राज्याधिकारमिति यावत्, प्रपन्नः प्राप्तः सन् नराधिपः राजा युधिष्ठिरः स्वां स्वकीयां नगरीं हस्तिनापुरीं प्रतस्थे चलति स्म।

राज्य के विषय में कार्यभार दिये हुए भयङ्कर तथा श्रीकृष्ण के नेतृत्व में रहने वाले सैन्य से संयुक्त होकर अभिमानहीन जो राजा दुर्योधन उस का राज्याधिकार प्राप्त किये हुए राजा युधिष्ठिर अपनी नगरी हस्तिनापुरी के प्रति चल दिये।

एवं विलङ्घ्यापदमर्णवं वा जवेन पश्चात्कृतदीर्घमार्गः।
स बन्धुवर्गं भरतप्रधानं ददर्श राजा धृतराष्ट्रमाशु ॥३०॥

एवम् उक्तप्रकारेण आपदं वा विपत्तिमिव अर्णवं समुद्रं विलङ्घ्य लङ्घयित्वा, पक्षे—अर्णवमिव आपदं लङ्घयित्वा जवेन वेगेन पश्चा-

स्कृतदीर्घमार्गः पश्चात्कृतः अतिवाहितः दीर्घः प्रलम्बः मार्गः पन्थाः येन सः, राजा भूपतिः सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः भरतप्रधानं भरतः स्वानुजः कैकेयीपुत्रः प्रधानं मुख्यः यस्मिन् तम्, पक्षे—भरतवंशीयानां मुख्यं धृतराष्ट्रं धृतं पालितं राष्ट्रं राज्यं येन तम् बन्धुवर्गं आत्मीयजनसमूहं, पक्षे—सबन्धुवर्गं बन्धुजनसहितं धृतराष्ट्रनामानं स्वज्येष्ठपितृव्यम् आशु शीघ्रमेव ददर्श अवलोकयति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

उपर्युक्त प्रकार से विपत्ति की तरह समुद्र को पार कर के, दूसरे पक्ष में—समुद्र के समान विपत्ति को पार कर के, शीघ्रता से लम्बा रास्ता पार कर के राजा राम ने—भरत हैं प्रधान जिस में तथा सम्पूर्णराष्ट्र का पालनभार धारण करने वाले अपने बान्धव-समूह को शीघ्र देखा, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर ने बन्धुवर्गों के सहित भरतवंश के प्रधान अपने चाचा धृतराष्ट्र को शीघ्र ही देखा।

शिखावलानामिव वारिवाहं वनप्रियाणामिव चैत्रमासम्।
उदन्वतामिन्दुमिवोज्जजृम्भे प्रीतिस्तमालोकयतां जनानाम् ॥३१॥

वारिवाहं मेघमालोकयतां पश्यतां शिखावलानामिव मयूराणामिव, चैत्रमासं वसन्तागमं पश्यतां वनप्रियाणामिव कोकिलानामिव, इन्दुं चन्द्रं पश्यताम् उदन्वतामिव समुद्राणामिव तम् रामं, पक्षे—युधिष्ठिरम् आलोकयतां पश्यतां जनानाम् आत्मीयलोकानां प्रीतिः प्रसन्नता उज्जजृम्भे प्रवर्धते स्म। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् मालोपमालङ्कारः।

मेघ के देखने वाले मयूरों के समान, वसन्तागम के देखने वाले कोकिलों के समान तथा चन्द्रमा के देखने वाले समुद्रों के समान उस राम के देखने वाले, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर के देखने वाले आत्मीयजनों को प्रसन्नता अत्यन्त बढ़ गयी।

चिराद्वियोगे तपसीव तीव्रे गते समाप्तिं परिपाकभाजा।
फलोदयेनेव तदीक्षणेन कृतार्थतामापुरमात्यवर्गाः ॥३२॥

तीव्रे कठिने तपसीव व्रते इव तपस्यायामिवेति यावत्, चिराद्वियोगे चिरविश्लेषे समाप्तिं गते पूर्णे भूते परिपाकभाजा परिपक्वतां गतेन फलोदयेनेव फललाभेनेव तदीक्षणेन तस्य रामस्य, पक्षे—तस्य युधिष्ठिरस्य ईक्षणेन अवलोकनेन अमात्यवर्गाः मन्त्रिगणाः कृतार्थतां पूर्णाभिलाषित्वम् आपुः प्रापुः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

कठिन तपस्या की तरह चिरवियोग के पूर्ण हो जाने पर परिपक्व हुए फलप्राप्ति की तरह उस राम के अवलोकन से, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर के अवलोकन से मन्त्रीगण पूर्ण मनोरथ हो गये।

श्रीखण्डद्रवनीरजीकृतपथा वल्गत्पताका क्वचिद्
भास्वत्तोरणराजिरुत्सुकजनप्रारब्धरम्योत्सवा ।
हृद्यातोद्यरवा ससंभ्रमवधूकान्तोच्चहर्म्यावली
पत्यावेष्यति कामिनीव नगरी सा क्लृप्तशोभा बभौ ॥३३॥

श्रीखण्डद्रवनीरजीकृतपथा श्रीखण्डस्य हरिचन्दनस्य द्रवेण तन्मिश्रितजलेन नीरजीकृतः धूलिरहितीकृतः पन्थाः मार्गो यस्यां सा, क्वचित् कस्मिंश्चित् स्थाने वल्गत्पताका वल्गन्त्यः आन्दोल्यमानाः पताकाः ध्वजाञ्चलानि यस्यां सा, भास्वत्तोरणराजिः भास्वन्त्यः दीप्यमानाः तोरणराजयः बहिर्द्वारपङ्क्तयः यस्यां सा, उत्सुकजनप्रारब्धरम्योत्सवा उत्सुकैः उत्कण्ठितैः जनैः लोकैः प्रारब्धः सञ्चालितः रम्यः मनोहरः उत्सवः उद्धव उद्धर्षमिति यावत्, यस्यां सा, हृद्यातोद्यरवा हृद्यः मनोहरः आतोद्यानां वादित्राणां रवः शब्दः यस्यां सा, ससंभ्रमवधूकान्तोच्चहर्म्यावली ससंभ्रमाः सत्वरा या वध्वः योषितः ताभिः वातायनेषु उपरितनभागेषु च स्थिताभिरिति भावः, कान्ताः शोभनाः उच्चाः अभ्रंलिहः हर्म्यावल्यः प्रासादमालाः यस्यां सा, एवंभूता नगरी सा अयोध्यापुरी, पक्षे—हस्तिनापुरी पत्यौ स्वामिनि एष्यति आगमिष्यति सति क्लृप्तशोभा रचितप्रसाधना कामिनीव युवतिरिव बभौ शुशुभे। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

श्रीखण्डचन्दन-मिश्रितजल से धूलीरहित बनाये हुए मार्गवाली, कहीं कहीं आन्दोलित पताकावाली, उद्दीप्त तोरण-परम्परावाली, उत्कण्ठित मनुष्यों के द्वारा प्रारम्भ किये गये मनोहर उत्सववाली, वादित्रों के रमणीय शब्द वाली, त्वरायुक्त युवतियों के द्वारा रमणीय ऊँचे महल वाली वह अयोध्यापुरी, दूसरे पक्ष में—हस्तिनापुरी स्वामी के भविष्य आगमन से आभूषण सजाने वाली युवती के समान सुशोभित हुई।

करकिसलयमुक्तैर्लाजवर्षैर्वधूना-
मलघुभिरनुवेलं कीर्यमाणाङ्गयष्टिः।
प्रमुदितजनवर्गं राजमार्गेण गत्वा
भवनमवनिपालः प्राविशत्पूर्वजानाम् ॥३४॥

राजमार्गेण प्रधानवर्त्मना गत्वा आव्रज्य वधूनां प्रासादवातायनस्थितानां योषितां करकिसलयमुक्तैः हस्तपल्लवप्रक्षिप्तैः अलघुभिः अत्यधिकैः लाजवर्षैः भृष्टसस्यवर्षणैः अनुवेलं सततं निरवच्छिन्नसमयमिति यावत्, कीर्यमाणाङ्गयष्टिः कीर्यमाणा भरिता अङ्गयष्टिः शरीरदण्डः यष्टिरिव कृशशरीरमिति यावत्, यस्य सः, अवनिपालः राजा रामः, पक्षे—राजा युधिष्ठिरः पूर्वजानां स्वपितृपितामहादीनां प्रमुदितजनवर्गं प्रमुदितः प्रसन्नः जनवर्गः जनसमूहः यस्मिन् तत् भवनं निकेतनं प्राविशत् प्रविशति स्म । अत्र मालिनीवृत्तम् ।

प्रधान मार्ग से जाकर महल की खिड़कियों पर की युवतियों के करपल्लवों के द्वारा बरसायी गयी अत्यधिक लावा की वृष्टि से सतत भरे हुए शरीरवाले राजा राम, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर अपने पूर्वजों के प्रसन्नजनसमूह से भरे हुए भवन में प्रवेश किये ।

नाथेन साकं प्रथमं गतायास्तेनैव साकं पुनराव्रजन्त्याः ।
साक्षाच्छ्रियो मूर्तिरिवाविवेश पुरे नरेन्द्रस्य तदा पुरन्ध्री ॥३५॥

प्रथमं पूर्वं नाथेन साकं पत्या सह गतायाः वनं प्रविष्टायाः पुनः इदानीम् तेनैव साकं पत्या सहैव आव्रजन्त्याः आगच्छन्त्याः साक्षात् प्रत्यक्षभूतायाः श्रियः लक्ष्म्याः मूर्तिरिव स्वरूपमिव नरेन्द्रस्य राज्ञो रामस्य पुरन्ध्री पत्नी सीता, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य पत्नी द्रौपदी तदा तस्मिन् काले पुरे अयोध्यानगरे, पक्षे—हस्तिनापुरे आविवेश प्रविशति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्, उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

पूर्व में अपने पति के साथ वन को गई हुई तथा इस समय में फिर पति के साथ ही लौट कर आती हुई प्रत्यक्ष लक्ष्मी की मूर्ति की तरह राजा राम की पत्नी सीता ने उस समय अयोध्या पुरी में प्रवेश किया, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी ने उस समय हस्तिनापुरी में प्रवेश किया ।

तदा तदालोकनसत्वराणां मुखैर्वधूनां निचिता गवाक्षाः ।
विकासिहेमाम्बुजनिर्भराणां सरोवराणां समतामवापुः ॥३६॥

तदा तस्मिन् काले तदालोकनसत्वराणां तेषां रामादीनां, पक्षे—युधिष्ठिरादीनाम् आलोकने दर्शने सत्वराणां त्वर्यमाणानां वधूनां वनितानां मुखैर्वदनैः निचिताः भरिताः गवाक्षाः जालमार्गाः विकासिहेमाम्बुजनिर्भराणां विकासीनि विकसितानि यानि हेमाम्बुजानि सुवर्णकमलानि तैः निर्भराणां निःशेषेण भरितानां सरोवराणां जला-

शयानां समतां सादृश्यम् अवापुः प्राप्तवन्तः। अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस समय में उन रामादिकों के, दूसरे पक्ष में—उन युधिष्ठिरादिकों के अवलोकन के विषय में शीघ्रता करने वाली युवतियों के मुखों से भरी हुई खिड़कियाँ खिले हुए सोने के कमलों से भरे हुए सरोवरों का सादृश्य प्राप्त कर गईं।

चयेन दन्ताधरलोचनत्विषां विलक्ष्यमाणानुभवेन सुभ्रुवाम्।
सुवर्णवातायनपङ्क्तयस्तदा विचित्ररत्नैः खचिता इवाबभुः ॥३७॥

तदा तस्मिन् काले सुभ्रुवां सुन्दरीणां त्विषां कान्तीनां विलक्ष्यमाणानुभवेन विविधः नानारूपः लक्ष्यमाणः प्रकटीभूतः अनुभवः मानसिको भावः यस्मिन् तेन दन्ताधरलोचनत्विषां दन्तानाम् अधराणां लोचनानाञ्च त्विषां चयेन समूहेन सुवर्णवातायनपङ्क्तयः कनकगवाक्षश्रेण्यः विचित्ररत्नैः अनेकवर्णमणिभिः खचिता इव नद्धा इव आबभुः शुशुभिरे। अत्र वंशस्थं वृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

उस समय में सुन्दरियों के दाँत, ओठ तथा आँखों की कान्तियों के स्पष्ट लक्षित होते हुए अनेक प्रकार के मानसिक भाव वाले समूह के द्वारा सोने की खिड़कियों की श्रेणियाँ अनेकवर्ण की मणियों से जड़ी हुई की तरह शोभा पाने लगीं।

शरीरसंधारणदुःखराशेरेतत्फलं श्रेय इति स्मरन्तीम्।
स्नुषामुखन्यस्तसबाष्पदृष्टिं भक्त्या ववन्दे जननीं नरेन्द्रः ॥३८॥

शरीरसंधारणदुःखराशेः शरीरसंधारणं जीवनरक्षणं तेन यः दुःखराशिः दुःखसमूहः तस्य एतत् दृश्यमानं श्रेयः कल्याणम् पुत्रस्नुषामुखदर्शनम् इति यावत्, अस्ति इति स्मरन्तीं ध्यायन्तीं स्नुषामुखन्यस्तसबाष्पदृष्टिं स्नुषायाः पुत्रवध्वाः सीतायाः, पक्षे—द्रौपद्याः मुखे आनने न्यस्ता संयोजिता सबाष्पा अश्रुसहिता दृष्टिः दृक् यया ताम्, जननीं मातरम् कौसल्यां, पक्षे—कुन्तीं नरेन्द्रः राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः भक्त्या श्रद्धया ववन्दे प्रणमति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम्।

जीवन धारण किये रहने से जो दुःखसमूह पड़ा उस का यही पुत्र तथा पुत्रवधू का मुखदर्शन रूपी कल्याण फल है, यह स्मरण करती हुई तथा पुत्र-वधू के मुख पर आँसुओं से भरी हुई आँख संसक्त करने वाली माता कौसल्या को राजा

राम ने भक्ति से प्रणाम किया, दूसरे पक्ष में—माता कुन्ती को राजा युधिष्ठिर ने भक्ति से प्रणाम किया।

आयोधनान्मृत्युमुखादिवोग्राद्विनिःसृतं भ्रातृसहायमग्रे।
कृतप्रणामं तमवेक्ष्य माता बालस्तदा जात इतीव मेने ॥३९॥

मृत्युमुखादिव यमवदनतुल्यात् उग्राद् भयङ्करात् आयोधनात् युद्धात् विनिःसृतं निःसृत्य आयातं भ्रातृसहायं भ्रात्रा लक्ष्मणेन सहितं, पक्षे—भ्रातृभिः भीमादिभिः सहितम् अग्रे सम्मुखे कृतप्रणामं प्रणमन्तं तम् रामं, पक्षे—युधिष्ठिरम् अवेक्ष्य दृष्ट्वा माता कौसल्या, पक्षे—कुन्ती तदा तस्मिन् काले बालः जातः पुत्रः उत्पन्नः इति एवं मेने इव अजानादिव। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमोत्प्रेक्षयो-रङ्गाङ्गिभावः सङ्करः।

यमराज के मुख के समान भयङ्कर युद्ध से उबर कर आये हुए भाई लक्ष्मणसहित आगे में प्रणाम करते हुए राम को देख कर माता कौसल्या ने, दूसरे पक्ष में—भाई भीमादि सहित आगे में प्रणाम करते हुए युधिष्ठिर को देख कर माता कुन्ती ने उस समय में—मानो पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह समझा।

संमोचिते तस्य जटाकलापे प्रसाधकैः कङ्कतिसक्तहस्तैः।
निरन्तरग्रन्थिरपि श्लथोऽभूत् तदा जनानां हृदयेषु शोकः ॥४०॥

कङ्कतिसक्तहस्तैः प्रसाधनीयुक्तकरैः प्रसाधकैः केशसंस्कारकारकैः तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य जटाकलापे सटासंहतौ संमोचिते श्लथिते सति, तदा तस्मिन्नेव समये जनानां लोकानां हृदयेषु अन्तः-करणेषु निरन्तरग्रन्थिरपि निरन्तरा दृढबद्धा ग्रन्थिः सन्धिबन्धनं यस्य सः एवं भूतोऽपि शोकः मन्युः श्लथः मुक्तग्रन्थिः अभूत् अभ-वत्। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् असङ्गतिरलङ्कारः।

कङ्घी हाथ में रखे हुए केशसजाने वालों के द्वारा उस राम का, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर का जटासमूह खोल देने पर उस समय लोगों के हृदय में बंधी हुई गाँठ वाला शोक ढीला हो गया अर्थात् शोक की गाँठ खुल गयी।

अथाभिषेकाय नृपस्य मौलैः सर्वा विसृष्टा निपुणाः पुमांसः।
तीर्थाम्भसामाहरणाय चेरुः पृथ्वीं रसानामिव सूर्यपादाः ॥४१॥

अथ अनन्तरं मौलैः प्रधानलोकैः अमात्यादिभिरिति यावत्, नृपस्य राज्ञः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य अभिषेकाय राज्याभिषेकाय

तीर्थाम्भसां तीर्थजलानाम् आहरणाय आनयनाय विसृष्टाः प्रेषिताः निपुणाः कार्यकुशलाः पुमांसः पुरुषाः रसानां जलानाम् आहरणाय शोषणाय सूर्यपादा इव सूर्यस्य रवेः पादा इव किरणा इव पृथ्वीं सम्पूर्णां भूमिं चेरुः बभ्रमुः। अत्रापि पूर्ववदुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

इस के बाद मन्त्री आदि प्रधानव्यक्तियों के द्वारा राजा राम के, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के लिये तीर्थजलों के लाने के लिये भेजे गये कार्यकुशल पुरुषों ने जलों के शोषण के लिये सूर्य का किरणों के समान सम्पूर्ण पृथ्वी में भ्रमण किया।

तं चार्वङ्ग्या सह दयितया भद्रपीठोपविष्टं
वारां पूरैः कनककलशावर्जितैरभ्यषिञ्चन्।
इष्टान्मन्त्राञ्जगदघहरान् व्याहरन्तो मुनीन्द्रा
मेरुं मेघा इव सुनिनदाः संगतं कल्पवल्ल्या ॥४२॥

चार्वङ्ग्या सुन्दराङ्ग्या दयितया प्रियतमया सीतया, पक्षे—द्रौपद्या सह साकं भद्रपीठोपविष्टं कल्याणमये आसने उपविश्य स्थितं तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं जगदघहरान् संसारपापविमोचकान् इष्टान् तत्कार्ये अभीप्सितान् मन्त्रान् वेदभेदान् व्याहरन्तः उच्चारयन्तः अत एव सुनिनदाः शोभनशब्दयुक्ताः मुनीन्द्राः ऋषिश्रेष्ठाः वशिष्ठादयः, पक्षे—धौम्यादयः कनककलशावर्जितैः सुवर्णघटप्रक्षिप्तैः वारां पूरैः जलप्रवाहैः, कल्पवल्ल्या कल्पलतया संगतं संयुक्तं मेरुं सुमेरुपर्वतं सुनिनदा मेघा इव वारिदा इव अभ्यषिञ्चन् अभिषिञ्चन्ति स्म। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् उपमालङ्कारः।

सुन्दर अङ्गवाली प्रियतमा सीता के साथ मङ्गलमय पीठासन पर बैठे उस राम का, दूसरे पक्ष में—सुन्दर अङ्गवाली प्रियतमा द्रौपदी के साथ मङ्गलमय पीढ़े पर बैठे हुए उस युधिष्ठिर का संसार के पाप दूर करने वाले, इस अभिषेक कार्य के लिये प्रिय, वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुन्दर शब्दयुक्त वशिष्ठादि ऋषियों ने, दूसरे पक्ष में—धौम्यादि ऋषियों ने सोने के घड़ों से गिराये हुए जलप्रवाहों से कल्पलता से संयुक्त सुमेरु पर्वत का सुन्दर शब्दयुक्त मेघों के समान अभिषेक किया, अर्थात् जल का सिञ्चन किया।

जलोच्चयस्तन्मुकुटाग्रभागान्निपत्य गात्रं परितो विसर्पन्।
रराज मेरोः शिखराभिघाताद्विष्वग्विसारीव सुरापगौघः ॥४३॥

तन्मुकुटाग्रभागात् तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य मुकुटस्य किरीटस्य अग्रभागात् उपरिदेशात् निपत्य अध आगत्य परितो गात्रं सम्पूर्णशरीरे विसर्पन् प्रसरन् जलोच्चयः अभिषेकवारिसमूहः मेरोः सुमेरुपर्वतस्य शिखराभिघातात् शृङ्गप्रदेशसंघट्टनात् विष्वक् सर्वतः विसारी प्रसरणशीलः सुरापगौघ इव स्वर्गङ्गाप्रवाह इव रराज शुशुभे। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस राम के, दूसरे पक्ष में—युधिष्ठिर के मुकुट के अग्रभाग से गिर कर सम्पूर्णशरीर पर फैलता हुआ अभिषेक-जल का समूह, सुमेरु पर्वत के शिखर के अभिघात से चारों तरफ फैलने वाले स्वर्गगङ्गा के प्रवाह के समान सुशोभित हुआ।

सद्यो विद्याधरकरपुटैर्वारिवाहैश्च मुक्ता
दूरोत्सर्पत्-परिमलमिलद्-भृङ्गसंगीतहृद्या ।
ज्योत्स्नाफेनस्तबकसदृशी मङ्क्षु पर्यस्तरत्क्ष्मां
दिव्योद्यानद्रुमशिखरजा पुष्कला पुष्पवृष्टिः ॥४४॥

सद्यः तत्कालं विद्याधरकरपुटैः विद्याधराणां विद्याधरनामकदेवजातिविशेषाणां "विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥" इत्यमरः, करपुटैः हस्तयुगलैः, वारिवाहैश्च मेघैश्च मुक्ता विक्षिप्ता दूरोत्सर्पत्परिमलमिलद्भृङ्गसंगीतहृद्या दूरम् अतिविप्रकृष्टं यावत् उत्सर्पत् प्रसरत् यत् परिमलं सौरभं तेन मिलन्तः संगच्छन्तः ये भृङ्गाः भ्रमराः तेषां संगीतैः गायनैः गुञ्जितैरिति यावत्, हृद्या मनोहरा, ज्योत्स्नाफेनस्तबकसदृशी ज्योत्स्ना तथा फेनस्तबकं हिण्डीरगुच्छकं तयोः सदृशी, तुल्या, दिव्योद्यानद्रुमशिखरजा दिव्यं स्वर्गीयं यदुद्यानं वाटिका नन्दनवनमिति यावत्, तस्य ये द्रुमाः पारिजातादिपुष्पवृक्षाः तेषां शिखरजा अग्रभागोद्भवा, पुष्कला पर्याप्ता पुष्पवृष्टिः सुमनोवृष्टिः मङ्क्षु शीघ्रं क्ष्मां पृथ्वीं पर्यस्तरत् अवाकिरत् आस्तरति स्मेति यावत्। अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् उपमालङ्कारः।

उसी समय विद्याधरों के हाथों से (विद्याधर नामक देव-जाति) तथा मेघों के द्वारा विखेरी गयी, दूर तक फैलने वाली सुगन्ध से उस में मिले हुए भौरों के गुञ्जन के द्वारा मनोहर, चान्दनी तथा फेन के गुच्छों के सदृश, स्वर्गीय वाटिका नन्दनवन के वृक्षों के अग्रभाग से उत्पन्न होने वाली, पर्याप्तमात्रा की पुष्पवृष्टि पृथ्वी को फूलों से आच्छादित कर दी।

प्रासादान्प्रतिनादयन्क्षितिभृतां द्राक्कन्दराः पूरयन्
दिग्भित्तीः प्रतिघट्टयन्प्रगुणयन्नम्भोनिधीनां ध्वनिम् ।
मूर्च्छन्नुच्चविमानसद्मसु मुहुः स्वर्लोकवाद्यस्वनै-
राध्मातः शिवमाविरास जगतः कल्याणतूर्यध्वनिः ॥४५॥

प्रासादान् सौधान् प्रतिनादयन् प्रतिध्वनितान् कुर्वन्, क्षितिभृतां पर्वतानां कन्दराः गुहाः पूरयन् संभृताः कुर्वन्, दिग्भित्तीः दिश एव भित्तयः कुड्यानि ताः प्रतिघट्टयन् संघर्षयन्, अम्भोनिधीनां समुद्राणां ध्वनिं शब्दं प्रगुणयन् वर्धयन्, उच्चविमानसद्मसु उच्चेषु ऊर्ध्वायतेषु विमानसद्मसु सप्ताट्टालभवनेषु सप्ततलसौधेष्विति यावत्, मुहुः वारं वारं मूर्च्छन् वर्धमानः, स्वर्लोकवाद्यस्वनैः स्वर्लोकस्य स्वर्गस्य वाद्यस्वनैः वादित्रशब्दैः आध्मातः प्रवृद्धः कल्याणतूर्यध्वनिः मङ्गलवाद्यशब्दः जगतः संसारस्य शिवं कल्याणं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा आविरास प्रादुर्बभूव। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

मकानों को प्रतिध्वनित करता हुआ, पहाड़ों की गुफाओं को भरता हुआ, दिग्भित्तियों का घर्षण करता हुआ, समुद्रों के शब्द को बढाता हुआ, ऊंचे सात-महल वाले मकानों में वार वार बढता हुआ, स्वर्ग के वाद्यों के शब्द से बढा हुआ, मङ्गल-वाजों का शब्द संसार का कल्याण करता हुआ उत्पन्न हुआ ।

तं तरुण्योऽभिषेकान्ते राजानं निरराजयन् ।
दीपैर्विद्युत्कलापेन मेघमाला इवाचलम् ॥४६॥

तरुण्यः युवतयः अभिषेकान्ते मन्त्राभिषेकावसाने दीपैः प्रदीपैः, मेघमालाः वारिदपङ्क्तयः विद्युत्कलापेन विद्युल्लतासमूहेन अचलमिव पर्वतमिव राजानं भूपतिं तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं निरराजयन् नीराजयन्ति स्म, तस्य आरार्तिक्यमकुर्वन्निति यावत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः उपमालङ्कारः ।

युवतियों ने मन्त्राभिषेक के बाद दीपों से, जैसे मेघों की पङ्क्तियां विद्युल्लता के समूह से पर्वत का नीराजन करती हैं उसी प्रकार राजा राम का, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर का नीराजन किया अर्थात् आरती की ।

परितापमपानुदज्जनानां क्षितिभर्तुः कृतशोभमातपत्रम् ।
निरवद्यतदीयकीर्तिगङ्गानवपूरोत्सुकहंसमण्डलाभम् ॥४७॥

निरवद्यतदीयकीर्तिगङ्गानवपूरोत्सुककीर्तिमण्डलाभम् निरवद्या दोषरहिता या तदीया तत्सम्बन्धिनी तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिर-

सम्बन्धिनी कीर्तिः यश एव गङ्गा जाह्नवी तस्याः यः नवः नूतनः पूरः प्रवाहः तस्मिन् उत्सुकानां सोत्कण्ठानां हंसमण्डलानां मरालसमूहानाम् आभा कान्तिर्यस्मिन् तत्, क्षितिभर्तुः राज्ञः रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य कृतशोभं कृता विहिता शोभा सुषमा येन तत् केवलशोभाधायकमिति भावः, आतपत्रं श्वेतराजच्छत्रं जनानां तत्प्रियलोकानां परितापं मनःसन्तापम् अपानुदत् दूरमकरोत्। अत्र मालभारिणी नाम विषमंपदवृत्तम्। कीर्तिगङ्गेत्यत्र रूपकमलङ्कारः, हंसमण्डलाभमित्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः किन्त्ववाच्यतादोषः आभाशब्देनोत्प्रेक्षायाः अनभिधानात्, क्षितिभर्तुः कृतशोभमातपत्रं जनानां परितापमहरदित्यत्रासङ्गतिरलङ्कारः अन्यस्य कृतशोभस्यातपत्रस्यान्यतापनिवारणादर्शनात्कारणकार्ययोर्भिन्नदेशत्वाच्च।

दोषरहित जो उन्हीं की कीर्तिगङ्गा उस के नवीन प्रवाह के विषय में उत्सुक हंसमण्डल के समान, राजा राम की, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर की शोभा बढ़ाने मात्र के लिये प्रयुक्त श्वेत छत्र (छाता) ने उन के प्रियजनों का मनःसन्ताप दूर कर दिया।

विमलमुकुटमौलिः कुण्डलेद्धाङ्गदश्री-
र्मणिवलयविलासी तारहाराभिरामः।
परिगतकटिसूत्रः सोऽधिकं प्रेक्ष्य आसी-
दपर इव नराणां पुण्यजः पारिजातः ॥४८॥

विमलमुकुटमौलिः विमलम् अत्यच्छं मुकुटं किरीटं मौलौ मस्तके यस्य सः, कुण्डलेद्धाङ्गदश्रीः कुण्डलाभ्यां कर्णवेष्टनाभ्याम् इद्धा प्रवृद्धा अङ्गदश्रीः केयूरशोभा यस्य सः, मणिवलयविलासी मणिवलयेन रत्नकटकेन विलसितुं शोभितुं शीलम् अस्य अस्तीति सः, तारहाराभिरामः तारेण अत्यच्छेन हारेण मुक्तामालया अभिरामः मनोहरः, परिगतकटिसूत्रः परिगतं धारितं कटिसूत्रं श्रोणीसूत्रं येन सः, सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः नराणां जनानां पुण्यजः पुण्यादुद्भूतः अपरः प्रसिद्धादन्यः पारिजात इव सुरतरुरिव अधिकम् अत्यर्थं यथा स्यात्तथा प्रेक्ष्यः दर्शनीयः आसीत् अभूत्। अत्र मालिनीवृत्तम् उत्प्रेक्षालङ्कारः।

चमकीले मुकुट पहने हुए, कान के कुण्डलों से बढ़ी हुई केयूरशोभा वाले, रत्न के वलयों से सुशोभित, चमकीले मोती के हार से सुन्दर, करधन धारण

किये हुए राजा राम, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर मनुष्यों के पुण्य से उत्पन्न दूसरे पारिजात वृक्ष की तरह अत्यन्त दर्शनीय हुए।

पुराणभूपालपरम्पराणां साम्राज्यलक्ष्मीवरकार्मणं सः।
मणिप्रभाभासुरमध्यतिष्ठत् सिंहासनं सूर्य इवोदयाद्रिम् ॥४९॥

सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः पुराणभूपालपरम्पराणां पुराणाः प्राचीनाः ये भूपालाः राजानः स्वपूर्वजाः इति यावत्, तेषां समूहानां साम्राज्यलक्ष्मीवरकार्मणं साम्राज्यलक्ष्म्याः राज्यश्रियः वरं श्रेष्ठं कार्मणं वशीकरणमन्त्रः, मणिप्रभाभासुरं मणीनां रत्नानां प्रभाभिः किरणैः भासुरम् उद्दीप्तं सिंहासनं राजसिंहासनं सूर्यः भानुः उदयाद्रिमिव उदयाचलमिव अध्यतिष्ठत् आरोहति स्म। अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस राम ने, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर ने पुराने अपने पूर्वज राजाओं के समूह की साम्राज्यलक्ष्मी के लिये श्रेष्ठ वशीकरणमन्त्रस्वरूप, मणियों की कान्ति से चमकते हुए सिंहासन पर उदयाचल पहाड़ पर सूर्य के समान आरोहण किया।

मणिदर्पणमण्डले मनोज्ञे परिफुल्ला विरराज तस्य मूर्तिः।
सुधियां हृदयेषु तद्गुणौघः ककुभां भित्तिषु पुण्यकीर्तिपूरः ॥५०॥

मनोज्ञे शोभने मणिदर्पणमण्डले मुकुरसमूहे तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य परिफुल्ला अतिप्रसन्ना मूर्तिः स्वरूपं विरराज शुशुभे, सुधियां विदुषां हृदयेषु अन्तःकरणेषु तद्गुणौघः तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य गुणौघः गुणसमूहः विरराज तथा ककुभां दिशां भित्तिषु अन्तिमसीमासु पुण्यकीर्तिपूरः पुण्यः पवित्रः कीर्तिपूरः यशःप्रवाहः विरराज शुशुभे। अत्र मालभारिणी नाम विषमपदवृत्तम्, अत्रानेकेषां प्रस्तुतानाम् एकधर्माभिसम्बन्धात्तुल्ययोगितालङ्कारः।

मनोहर रत्नदर्पणों के समूह में उस राम की, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर की अत्यन्त प्रसन्नमूर्ति सुशोभित हुई और विद्वानों के हृदयों में उस के गुणों का समूह सुशोभित हुआ तथा दिशाओं की अन्तिमसीमाओं में पवित्र कीर्तियों का प्रवाह सुशोभित हुआ।

लीलायातैर्नयनचलनैः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्यूनां चित्ते मनसिजदशां गाढमुद्बोधयन्त्यः।

चञ्चच्छिञ्जद्वलयनिजदोर्वल्लरीवेल्लितैस्तै-
र्भेजुस्तं सप्रणयमबलाश्चामरालीमरालैः ॥५१॥

लीलायातैः विलासगमनैः, नयनचलनैः दृष्टिविक्षेपैः, सस्मितैः मन्दहाससहितैः भ्रूविलासैः भ्रूभङ्गिभिः यूनां युवकानां चित्ते मनसि मनसिजदशां कामविकारं गाढम् अत्यर्थम् उद्बोधयन्त्यः प्रादुर्भावयन्त्यः अबलाः योषितः चञ्चच्छिञ्जद्वलयनिजदोर्वल्लरीवेल्लितैः चञ्चन्ति विचलन्ति शिञ्जन्ति कलरवं कुर्वन्ति वलयानि कटकानि यासु ताभिः निजदोर्वल्लरीभिः स्वभुजलताभिः वेल्लितैः आन्दोलितैः तैः प्रसिद्धैः चामरालीमरालैः चामराणां प्रकीर्णकानाम् आल्यः समूहाः मरालाः हंसाः इव तैः, तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं सप्रणयं सानुरागं भेजुः सेवन्ते स्म । अत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् । वल्लरीत्यत्र मरालैरित्यत्र च उपमालङ्कारः ।

विलासपूर्वक गमनों से, दृष्टिविक्षेपों से, मन्दहास के साथ भ्रूविक्षेपों से युवकों के मन में कामविकार अत्यन्त उद्बुद्ध करती हुई सुन्दरियों ने चञ्चल तथा मधुर शब्द करने वाले कङ्कण से युक्त लताओं के सदृश भुजाओं के द्वारा आन्दोलित अति प्रसिद्ध हंसों के तुल्य चामरों से उस राम का, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर का अनुराग के साथ सेवन किया ।

प्रसन्नचक्षुश्चलनेष्वथ क्षणं किरीटकोटीषु कराग्रसंपुटम् ।
विधारयन्तः सुहृदश्चिराय तं यथोचितस्थानजुषः सिषेविरे ॥५२॥

चिराय बहुकालानन्तरं यथोचितस्थानजुषः स्वं स्वम् उचितस्थानं प्राप्नुवन्तः, अथ अनन्तरं प्रसन्नचक्षुश्चलनेषु प्रसन्नदृष्टिपातेषु क्षणं किञ्चित्कालं किरीटकोटीषु मुकुटाग्रभागेषु कराग्रसंपुटं संयुक्तकरयुगलं प्रणामपर्यस्तकरद्वयमिति यावत्, विधारयन्तः संयोजयन्तः सुहृदः मित्राणि तं रामं, पक्षे—युधिष्ठिरं सिषेविरे सेवन्ते स्म । अत्र वंशस्थं वृत्तम् ।

बहुत दिनों के बाद अपने अपने योग्यतानुसार तथा पदानुसार उचित स्थान पर बैठे हुए तथा उस के बाद उन की प्रसन्न दृष्टि के पात होने पर क्षण भर के लिये कृतज्ञता-समुदाचारानुसार मुकुटों के अग्रभागों में संपुटित दोनों हाथों को लगाते हुए बन्धुवर्गों ने उस राम की, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर की सेवा की ।

अयाचिताभीष्टवरप्रदानैरुत्साहविस्रम्भकरैश्च वाक्यैः ।
कृतानुयोगैश्च गुणानुरूपैरतू तुषन्मित्रजनं जनेश्वरः ॥५३॥

जनेश्वरः राजा रामः, पक्षे—राजा युधिष्ठिरः अयाचिताभीष्टवरप्रदानैः अयाचितस्य अप्रार्थितस्य अभीष्टवरस्य अभीष्टस्य प्रियस्य वरस्य अभीप्सितस्य प्रदानैः वितरणैः "वरो जामातरि वृतौ देवतादेरभीप्सिते । कुङ्कुमे च मनागिष्टे क्लीबं श्रेष्ठे च वाच्यवत्" इति विश्वः, उत्साहविस्रम्भकरैः उत्साहस्य अध्यवसायस्य विस्रम्भस्य विश्वासस्य च वर्धकैः वाक्यैश्च वचनैश्च गुणानुरूपैः योग्यतानुकूलैः कृतानुयोगैश्च कृतप्रश्नैश्च "प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च" इत्यमरः, मित्रजनं बन्धुवर्गम् अतू तुषत् सन्तोषयति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रावंशस्थानामुपजातिवृत्तम् ।

राजा राम ने, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर ने विना माँगे हुए अतिप्रिय अभीप्सित विषय देने से, उत्साह तथा विश्वास बढ़ाने वाले वचनों से तथा योग्यतानुसार प्रश्न पूछने से मित्रजनों को सन्तुष्ट किया ।

अग्र्यासु सम्पत्तिषु संनिवृत्ताः वृता वरार्थं सुहृदः प्रसाद्य ।
ययाचिरे संपदमानतास्ते तद्भृत्यभावादधिकां न काञ्चित् ॥५४॥

प्रसाद्य मृदुवचनैरनुकूलान् कृत्वा वरार्थम् अभीप्सितयाचनार्थं सुहृदः मित्राणि वृताः आमन्त्रिताः, किन्तु अग्र्यासु उन्नतासु संपत्तिषु धनादिसंपत्सु संनिवृत्ताः आकाङ्क्षारहिताः सन्तः आनताः नम्रीभूताः ते सुहृदः तद्भृत्यभावात् तस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य भृत्यभावात् दासताकार्यात् अधिकाम् श्रेष्ठां काञ्चित् कामपि सम्पदं सम्पत्तिं न ययाचिरे नार्थितवन्तः, केवलं भृत्यभावमेव प्रार्थयन्ते स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् ।

मृदु वचनों से अनुकूल बना कर अभीष्ट वस्तु माँगने के लिये मित्र गण आमन्त्रित किये गये, (कहे गये) किन्तु ऊँची ऊँची धनादिसम्पत्तियों में निराकाङ्क्ष हो कर तथा कृतज्ञता से झुक कर उन मित्रों ने उस राम के, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर के दासता-कार्य से अधिक कोई भी सम्पत्ति नहीं मांगी ।

अनुज्झितास्थानकगर्भमानकैर्ध्वनद्भिरारात्प्रथमं निवेदितैः ।
अशेषसंगीतकलाविचक्षणैः क्षणात्स भेजे कुशलैः कुशीलवैः ॥५५॥

क्षणात् किञ्चित्कालानन्तरमेव सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः प्रथमं पूर्वमेव निवेदितैः सूचितैरादिष्टैरिति यावत्, अशेषसंगीतकलाविच-

चारणैः सम्पूर्णगायनकलानिपुणैः कुशलैः चतुरैः कुशीलवैः चारणैः "चारणास्तु कुशीलवाः" इत्यमरः, कर्तृभूतैः आरात् समीपे ध्वनद्भिः शब्दायमानैः आनकैः पटहैः करणभूतैः अनुज्झितास्थानकगर्भम् अनुज्झितः न परित्यक्तः आस्थानकगर्भः सभामण्डपान्तर्गृहं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा भेजे सेवितः । अत्र वंशस्थं वृत्तम् ।

कुछ ही क्षण के बाद वह राजा राम, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर पहले ही सूचित किये हुए, सभी संगीत-कलाओं में निपुण तथा चतुर चारणों के द्वारा समीप में शब्द करने वाले पटहों से सभामण्डप के अन्तर्गृह का परित्याग न करते हुए अर्थात् शब्दों से सभा भवन को भरते हुए सेवित हुए ।

ततेषु विज्ञैर्विततेषु कोविदैर्घनेषु दक्षैः सुषिरेषु सूरिभिः ।
अवादि वाद्यं पुरतोऽस्य वादकैरमुक्तगेयैर्लयबन्धसुन्दरम् ॥५६॥

अस्य रामस्य, पक्षे—युधिष्ठिरस्य पुरतः अग्रे ततेषु वीणादिकेषु वाद्येषु विज्ञैः अभिज्ञैः विततेषु, विततेषु वीणादिकानां विशेषवादनेषु कोविदैः पण्डितैः घनेषु मध्यलयेषु दक्षैः निपुणैः, सुषिरेषु वंशादिक-वाद्येषु सूरिभिः पण्डितैः अमुक्तगेयैः संगीतयुक्तैः वादकैः वाद्यवादकैः लयबन्धसुन्दरं लयानां तालक्रियासाम्यानां बन्धेन संयोजनेन सुन्दरं रमणीयं वाद्यं मृदङ्गादिकं वाद्यम् अवादि वादितम् । अत्र वंशस्थं वृत्तम् ।

इस राम के सामने, दूसरे पक्ष में—इस युधिष्ठिर के सामने वीणादिबाजों में अभिज्ञ, वीणादिकों के विशेष प्रकार से बजाने में पण्डित, मध्य लय के बजाने में निपुण, बांसुरी आदि बाजा बजाने में पण्डित, संगीत से युक्त बाजा बजाने वालों ने तालक्रियासाम्य के संयोग से सुन्दर मृदङ्गादि बाजे कजाये ।

सकेतकदलं यथा चतुरनेत्रचारैः सदः
सपल्लवचयं यथा करतलाञ्चलैः शोभयन् ।
सविद्युदिव गात्रकैः सकमलावलीवाङ्घ्रिभि-
र्ननर्त ललितक्रियं निपुणलासकः स्त्रीगणः ॥५७॥

निपुणलासकः कुशलनर्तकः स्त्रीगणः नर्तकीसमूहः सदः सभाभवनं चतुरनेत्रचारैः निपुणनयनप्रक्षेपणैः सकेतकदलं यथा केतकीपुष्पदल-युक्तमिव, करतलाञ्चलैः हस्ततलाग्रभागैः सपल्लवचयं यथा नवकि-सलयसमूहयुक्तमिव गात्रकैः शरीरैः सविद्युदिव विद्युल्लतायुक्तमिव अङ्घ्रिभिश्चरणैः सकमलावलीव पद्मसमूहयुक्तमिव शोभयन् शोभा-

युक्तं कुर्वन् ललितक्रियं ललिता मनोरमा क्रिया व्यापारो यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा ननर्त नृत्यति स्म। अत्र पृथ्वी नाम वृत्तम् "यसौ यसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" इति लक्षणात्। चतसृणाम् उत्प्रेक्षाणां संसृष्टिरलङ्कारश्च। यथाशब्दस्य उत्प्रेक्षाया अवाचकत्वादवाचकता दोषोऽप्यत्रास्ति।

कुशल नाचने वाले नर्तकीसमूह ने सभाभवन को अपने निपुण नयनों के सञ्चार से केतकीपुष्पदलयुक्त की तरह, करतलों के अग्रभागों से नवपल्लवों के समूहों से संयुक्त की तरह, अपने शरीरों से विद्युल्लताओं से संयुक्त के सदृश, अपने चरणों से कमलसमूहों से संयुक्त की तरह शोभायुक्त करते हुए, तथा हस्तविक्षेपादि मनोहर व्यापार जिस काम में है उस प्रकार नाच किया।

सचन्द्रलेखश्चलहंसपक्षतिः सपद्मकोशः शुकतुण्डभासुरः।
कराङ्गहारः सुदृशामशोभयत् तदा शरत्काल इव प्रभोः सभाम्॥५८॥

तदा तस्मिन् काले सुदृशां सुलोचनानां नर्तकीणां सचन्द्रलेखः चन्द्रलेखाकारेण भुजविन्यासेन संयुक्तः, शरत्कालपक्षे—चन्द्रमसः कलया संयुक्तः, चलहंसपक्षतिः चला चञ्चला हंसपक्षतिः हंसपक्षाकारा मुद्रा यस्मिन् सः, पक्षे—चलाः चञ्चलाः हंसानां पक्षतयः पक्षाः यस्मिन् सः, सपद्मकोशः पद्मकोशेन कमलकोशाकारया मुद्रया, पक्षे—कमलकुड्मलेन सहितः शुकतुण्डभासुरः शुकतुण्डेन शुकचञ्च्वाकारया मुद्रया, पक्षे—शुकचञ्च्वा भासुरः दीप्तः, एवंभूतः कराङ्गहारः हस्तविक्षेपः "अङ्गहारोऽङ्गविक्षेपः" इत्यमरः, शरत्काल इव शरत्समय इव प्रभोः राज्ञो रामस्य, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य सभाम् आस्थानीम् अशोभयत् शोभयति स्म। अत्र वंशस्थं वृत्तम् उपमालङ्कारः।

उस समय में सुन्दर नेत्र वाली नर्तकियों का चन्द्रमा की कला से युक्त, चलते हुए हंसों के पङ्खवाले, कमलकोरकों से युक्त तथा शुकों की चोंच से उद्दीप्त शरद ऋतु के समय के समान चन्द्रकला के आकार वाले भुजविन्यास से युक्त, उड़ते हुए हंस के पङ्खों के आकार वाली मुद्रा से युक्त, कमलकोरक के आकारवाली मुद्रा वाला तथा शुकों की चोंच के आकार वाली मुद्रा से उद्दीप्त हाथों का विक्षेप राजा राम की, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित किया।

स पूज्यानभिषेकान्ते स्वापतेयैरपूपुजत्।
यथा ते संपदा प्रापुर्नरकिन्नरराजताम्॥५९॥

सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः अभिषेकान्ते राज्याभिषेककृत्यसमाप्तौ पूज्यान् सत्कारार्हान् गुणिनोऽन्यांश्च स्वापतेयैः धनैः "द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु" इत्यमरः, तथेति शेषः, तेन प्रकारेण अपूपुजत् सत्करोति स्म, यथा येन प्रकारेण ते पूजिताः पूज्याः संपदा सम्पत्तिद्वारा नरकिन्नरराजतां मनुष्यकुवेरत्वम् मनुष्यः सन्नपि कुवेरत्वम् अतिधनित्वमिति यावत्, प्रापुः अधिजग्मुः । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

उस राजा राम ने, दूसरे पक्ष में—उस राजा युधिष्ठिर ने राज्याभिषेक के पश्चात् सत्कार के योग्य गुणियों तथा ब्राह्मणों का उस प्रकार धन से सत्कार किया अर्थात् उन्हें धन दिया जिस से कि वे लोग सम्पत्ति के द्वारा नरकुबेर की पदवी प्राप्त किये अर्थात् धनाढ्य हो गये ।

स स्थूललक्षो बहुलक्षसंख्यैर्वनीपकौघानवनीपवर्यः ।
धनैस्तदानीमधिनोदधिश्रीः सस्यानि पाथोभिरिवाम्बुवाहाः ॥६०॥

अधिश्रीः अधिगतलक्ष्मीकः, स्थूललक्षः महादानी "स्युर्वदान्यस्थूललक्षदानशौण्डा बहुप्रदे" इत्यमरः, अवनीपवर्यः भूपश्रेष्ठः सः रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः तदानीं तस्मिन् समये वनीपकौघान् याचकसमूहान् "वनीपको याचनको मार्गणो याचकार्थिनौ" इत्यमरः, बहुलक्षसंख्यैः अनेकशतसहस्रसंख्यैः धनैः द्रव्यैः, सस्यानि धान्यपादपान् पाथोभिः जलैः अम्बुवाहाः इव मेघाः इव अधिनोत् प्रीणयति स्म । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिवृत्तम् उपमालङ्कारः ।

सम्पत्तिशाली तथा महादानी नृपश्रेष्ठ उस राम ने, दूसरे पक्ष में—उस युधिष्ठिर ने उस समय याचक-समूहों को अनेकलाखसंख्यक धनों से जैसे धान के पौधों को पानी से बादल सन्तुष्ट करते हैं उसी प्रकार सन्तुष्ट किया ।

रम्याकल्पविलासिनी क्षितिपतेर्लावण्यतेजस्विनी,
नुत्याविष्कृतमण्डना स्थितिमती याऽभीष्टलोकान्तरा ।
रक्षोराजसभाजकं मतिमतामाद्यं सुसेव्यं मुदा,
दातारं रसितानुजेन रशतानीकेन रामं तदा ॥६१॥

रमा रसासारमारमानताननतानमा ।
रतागमामागतारसानमाननमानसा ॥६२॥

अत्र द्वयोः श्लोकयोरेकत्रान्वयादिदं युग्मकम् तदुक्तं—"द्वाभ्यां

युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम्। कलापकं चतुर्भिः स्यात् तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्" इति।

रम्याकल्पविलासिनी रम्यैः मनोहरैः आकल्पैः वेशप्रसाधनैः विलसितुं शीलम् अस्याः इति सा, क्षितिपतेः राज्ञो रामस्य, पक्षे—राज्ञो युधिष्ठिरस्य लावण्यतेजस्विनी लावण्यस्य सौन्दर्यस्य तेजस्विनी कान्तिधारिणी नुत्याविष्कृतमण्डना नुतौ कवीनां स्तुतौ आविष्कृतं प्रकटितं मण्डनं वेषसज्जा यस्याः सा, स्थितिमती मर्यादावती अभीष्टलोकान्तरा अभीष्टलोकानां प्रियजनानाम् अन्तरम् अवकाशो यस्यां सा, "अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये" इति मेदिनी, रसिता आस्वादिता उपभुक्तेति यावत्, आरमानतानतानमा अरीणां समूहः आरं तस्य यः मानः अभिमानः तस्य तानेन विस्तारेण "तनु विस्तारे" नतानां नम्राणां तत्पक्षीयाणामिति यावत् अनमा अनम्रा न तदधीना इत्यर्थः, रतागमा रतः अनुरक्तः आगमः नीतिशास्त्रं यस्यां सा, नीतिशास्त्रानुसारिणीति यावत्, अमा न मा मानं सादृश्यमिति यावत्, यस्याः सा, रसानमाननमानसा रसेन आनन्देन आनमम् आ समन्तात् नमं नम्रम् आननं मुखं मानसं चित्तं जनानामिति शेषः, यास्यां सा, एवंभूता रमा या राजलक्ष्मीः सा तदा तस्मिन् काले रसासारं रसायां पृथिव्यां सारं प्रधानांशभूतम् "सारो बले दृढांशे च मज्ज्ञि पुंसि जले धने" इति मेदिनी, "भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा" इत्यमरः, रक्षोराजसभाजकं रक्षोराजस्य विभीषणस्य सभाजकं सभाजयति संमानयतीति सभाजकः तम्, पक्षे—रक्षोराजस्य मयस्य सभायाः इन्द्रप्रस्थनगरे तन्निर्मितायाः सभायाः अजकः गन्ता "अज गतिक्षेपणयोः" इति धात्वनुसारात्, तम्, मतिमतां बुद्धिमताम् आद्यं प्रथमं सुसेव्यं सुष्ठु सेवनीयं मुदा हर्षेण दातारं दानशीलम् अनुजेन भरतादिभिः भ्रातृभिः, पक्षे—भीमादिभिः भ्रातृभिः, अनुजेनेत्यत्र जातावेकवचनम्, रणता शब्दायमानेन अनीकेन सैन्येन च सहितम् अनुजेन अनीकेन चेत्युभयत्र सहार्थे तृतीया, रामं भरताग्रजं, पक्षे—रमन्ते जनाः यस्मिन् इति रामः तं रामं युधिष्ठिरं गता प्राप्ता। अत्र प्रथमश्लोके शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् द्वितीये चानुष्टुप् छन्दः। अत्र प्रथमश्लोके चक्रबन्धः, द्वितीये श्लोके गतप्रत्यागतप्रकारेण सर्वतोभद्रं नाम चित्रकाव्यम्।

रमणीय वेषभूषाओं से सुशोभित, राजा राम के, दूसरे पक्ष में—राजा

युधिष्ठिर के सौन्दर्य की कान्ति धारण करने वाली, कवियों की स्तुति में प्रकट हुई है वेषसज्जा जिस की वह, मर्यादाधारण करने वाली, प्रिय लोगों को अवसर देने वाली, राजपरम्पराओं के द्वारा उपभोग की हुई, शत्रुओं के अभिमान के बढाने में सपक्ष लोगों के अधीन में न रहने वाली, नीतिशास्त्रका अनुसरण करने वाली तथा अतुलनीय, आनन्द से सब प्रकार से झुके हुए हैं लोगों के मस्तक तथा मन जिस में वह, इस प्रकार की जो राजलक्ष्मी, वह उस समय में पृथिवी में प्रधान, राक्षसों के राजा विभीषण का संमान करने वाले, दूसरे पक्ष में—राक्षसों के राजा मयदानव को बनायी हुई इन्द्रप्रस्थ की सभा में गमन करने वाले, बुद्धिमानों में प्रथम, अच्छी तरह सेवा करने योग्य, प्रसन्नता से दान करने वाले, भरतादि भाइयों के साथ, दूसरे पक्ष में—भीमादि भाइयों के साथ तथा गरजने वाली सेना के साथ राम के पास चली गयी, दूसरे पक्ष में—लोग जिस में रमण करते हैं ऐसे युधिष्ठिर के पास चली गयी।

श्रुतचित्रकथस्तीर्थभूतात्कुम्भभुवः कवेः ।
स्वपुरप्राप्तये चक्रे राजा हरिविसर्जनम् ॥६३॥

तीर्थभूतात् उपाध्यायस्वरूपात् "तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च । अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु" इति मेदिनी, कवेः विदुषः "विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः सन् सुधीः कोविदो बुधः। धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः, कुम्भभुवः घटोद्भवात् अगस्त्यात्, पक्षे—कुम्भभुवः कौ पृथिव्यां भातीति कुभः कुं पृथ्वीम् अभिव्याप्य भातीति कुम्भः अत्यन्तसंयोगे द्वितीया, सा कुम्भा गङ्गेत्यर्थः कुम्भा भूरुत्पत्तिस्थानं यस्य स कुम्भभूः भीष्मः बहुव्रीहावुपसर्जनत्वात्पुंवद्भावः तस्माद् भीष्मात् श्रुतचित्रकथः श्रुताः आकर्णिताः चित्राः आश्चर्यदायिकाः कथाः आख्यायिकाः येन सः राजा रामः, पक्षे—युधिष्ठिरः स्वपुरप्राप्तये निजनगरगमनाय हरिविसर्जनम् हरीणां वानराणां सुग्रीवादीनां, पक्षे—हरेः श्रीकृष्णस्य विसर्जनं प्रस्थापनं चक्रे कृतवान्। अत्रानुष्टुप् छन्दः।

उपाध्यायस्वरूप विद्वान् अगस्त्य ऋषि से, दूसरे पक्ष में—भीष्मपितामह से आश्चर्यजनक अनेक पुरानी कथा सुनने वाले राजा राम ने, अपने किष्किन्धानगर को जाने के लिये सुग्रीवादि वानरों को विदा किया, दूसरे पक्ष में—राजा युधिष्ठिर ने अपने द्वारका नगर को जाने के लिये श्री कृष्ण को विदा किया।

श्रिया जुष्टः स भारत्या सानुजः साधुवत्सलः ।
पृथिवीं पालयामास कामदेव इवापरः ॥६४॥

इति श्रीहरधरणीप्रसूतकादाम्बकुलतिलकचक्रवर्तिवीरश्रीकामदेव-प्रोत्साहितकविराजपण्डितविरचिते राघवपाण्डवीये महा-काव्ये कामदेवाङ्के रावणदुर्योधनवधश्रीरामयुधिष्ठिर-राज्याभिषेको नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

भारत्या अनुजस्य भरतस्य सम्बन्धिन्या, पक्षे—भरतवंशसम्बन्धिन्या, कामदेवपक्षे—अथवा त्रिष्वेव पक्षेषु—भारतवर्षसम्बन्धिन्या श्रिया शोभया वा सम्पत्त्या जुष्टः सेवितः "जुषी प्रीतिसेवनयोः" इति कौमुदी, सानुजः भरतादिभ्रातृभिः सहितः, पक्षे—भीमादिभ्रातृभिः सहितः साधुवत्सलः साधुषु सज्जनेषु वत्सलः स्निग्धः सः राजा रामः, पक्षे—राजा युधिष्ठिरः अपरः अन्यः कामदेव इव एतद्ग्रन्थकारयिता कामदेवनामा राजेव पृथिवीं वसुन्धरां पालयामास रक्षति स्म । अत्रानुष्टुप् छन्दः, अपरशब्दप्रयोगादुत्प्रेक्षैवालङ्कारः नोपमा ।

इति राघवपाण्डवीये महाकाव्ये मैथिलभूसुरसोदरपुरकुलोद्भूतश्री-रघुनन्दनशर्मात्मज-श्रीदामोदरझा-साहित्याचार्य-विरचितायां सुबोधिनी-नामधेयायां व्याख्यायां त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

भाई भरतसम्बन्धिनी, दूसरे पक्ष में—भरतवंश-सम्बन्धिनी कामदेव राजा के पक्ष में अथवा तीनों पक्षों में—भारतवर्ष-सम्बन्धिनी शोभा से अथवा सम्पत्ति से सेवित, भाई भरतादिकों के सहित, दूसरे पक्ष में—भाई भीमादिकों के सहित, सज्जनों के स्नेही, उस राजा राम ने, दूसरे पक्ष में—उस राजा युधिष्ठिर ने इस ग्रन्थ के बनबाने वाले अन्य कामदेव राजा के सदृश पृथिवी का पालन किया ।

इति राघवपाण्डवीयमहाकाव्य में मैथिल ब्राह्मण सोदरपुरकुलोद्भूतश्री दामोदर झा साहित्याचार्य विरचित सरला नाम की टीका में तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥१३॥

समाप्तेयं टीका सुबोधिनी सरला च ।
विभूतिनारायणसिंहदेवे काशीपुरीं शासति वैक्रमाब्दे ।
भूम्यक्षिखाक्षिप्रमिते समाप्तिं सुबोधिनीयं सरलापि नीता ॥

श्रीगुरुः शरणम् ।

श्लोकानुक्रमणिका

